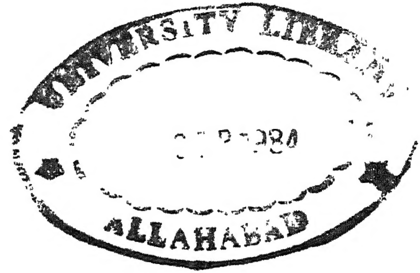
सूर्य-सिद्धान्त

का

विज्ञान भाष्य

प्रथम खण्ड

[मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार]



भाष्यकार

स्व० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

डा० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान

इलाहाबाद

प्रकाशक
डा० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान
विज्ञान परिषद् भवन
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद-२११००२
फोन नं० ५४४१३

प्रथम संस्करण, दिसम्बर १९४०
[विज्ञान परिषद् प्रयाग से]
द्वितीय संस्करण, मार्च १९८२
(स्वाध्याय संस्थान से)

मूल्य रु० ४०.००

मुद्रक
सरयू प्रसाद पाण्डेय
नागरी प्रेस, अलोपीबाग, इलाहाबाद

प्रस्तावना

डॉ० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान की ओर से प्राचीन वाङ्मय के कई ग्रन्थ प्रकाशित किये जा चुके हैं—स्वामी सत्यप्रकाश और डॉ० उषा ज्योतिष्मती के ग्रन्थ, जैसे बखशाली-मेनुस्क्रिप्ट, शुल्ब-सूत्र (संस्कृत और अंग्रेजी में)। इसी परम्परा में हम स्वर्गीय श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव के सूर्य-सिद्धान्त का विज्ञान भाष्य प्रकाशित कर रहे हैं। यह गौरव हमें विज्ञान-परिषद्, प्रयाग की उदारता से प्राप्त हुआ है, जिसके लिए हम परिषद् के अधिकारियों के उपकृत हैं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का व्ययसाध्य कार्य सम्पादित करना हमारे लिए कठिन होता यदि हमें करनाल के आदरणीय रायसाहब चौधरी प्रताप सिंह जी और उनके द्वारा स्थापित न्यास द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं हुई होती। चौधरी साहेब के हम अत्यन्त आभारी हैं। अभी हम प्रथम खण्ड प्रकाशित कर रहे हैं, जिसमें मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार और त्रिप्रश्नाधिकार हैं। दूसरे खण्ड में यह ग्रन्थ संपूर्ण समाप्त हो जायगा।

एस० रंगनायकी,
एम०एस-सी०, डी० फिल, डी० एस-सी०
निदेशिका

फाल्गुनी पूर्णिमा
९ मार्च, १९८२.

भूमिका

स्वामी दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में १८७४ ई० में विद्यालयों के स्नातकों के पठन-पाठन का एक समग्र पाठ्य-क्रम दिया। इस पाठ्यक्रम का एक ऐतिहासिक महत्व है क्योंकि ऋषि दयानन्द की इस आयोजना से पूर्व इस देश में पाठ्यक्रमों की कोई सर्वांगीण पद्धति न थी। १८५८ ई० में देश में तीन विश्वविद्यालय खुले—कलकत्ता, मद्रास और बम्बई के। १८८८ ई० में प्रयाग और लाहौर के दो और विश्वविद्यालय (महर्षि दयानन्द की मृत्यु के बाद) स्थापित हुए। संस्कृत की ऐसी परीक्षायें भी, जैसे काशी की, आरम्भ नहीं हुई थीं। अतः हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं, कि ऋषि दयानन्द की समग्र पाठ्यक्रम विधि ही इस दिशा में प्रथम प्रयास है। व्याकरणादि पढ़ने के अनन्तर ऋषि ने मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण, महाभारत, षड् दर्शन, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपवेद (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद; अर्थवेद-शिल्पादि) सिखाने की बात कही। फिर लिखा कि दो वर्ष में ज्योतिष शास्त्र, सूर्य-सिद्धान्त, जिसमें बीजगणित, अंक, भूगोल, खगोल, और भूगर्भ विद्या हैं, इसको यथावत् सीखें।

ज्योतिष् विषयों का आदि स्रोत वेद की ऋचाएँ हैं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के सूक्त १६४ का नाम अस्यवामीय सूक्त है। इस सूक्त के मन्त्रद्रष्टा ऋषि दीर्घतमस् हैं। यह सूक्त ज्योतिष् शास्त्र का प्रेरणादायक स्रोत है—

> द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य।
> आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्तशतानि विंशतिश्च तस्थुः॥
>
> (ऋ० १/१६४/११)

सूर्य का चक्र जिसमें बारह अरे हैं, जो निरन्तर घूमता रहता है, कभी थकता भी नहीं, जीर्ण भी नहीं होता, मरता भी नहीं। ७२० इसके पुत्र हैं (३६० दिन और ३६० रात्रियाँ)। अथर्ववेद में दो सूक्त उन्नीसवें काण्ड में हैं (सूक्त ७ और ८), जिनका ऋषि गार्ग्य है। इस सूक्त में २७ नक्षत्रों का गणना दी गयी है। वेद से प्रेरणा पाकर लगध मुनि ने वेदांग ज्योतिष की रचना की जिसके श्लोक ऋग् ज्योतिष और यजुः-ज्योतिष् नाम से मिलते हैं। लगध का काल ६०० ईसा से पूर्व माना जाता है। ज्योतिष् के लिए एक और शब्द **काल-विधान-शास्त्र** (यजुः-ज्योतिष् ३) है। "गणित" शब्द का भी प्रयोग इसी अर्थ में लगध ने किया है, और वेदांग के इस अंग की महिमा इस प्रकार व्यक्त की है—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद् वेदाङ्ग शास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ॥

(यजुः ज्योतिष्, श्लोक ४)

मयूर के शरीर में जो शिखा की शोभा है, और साँपों के शिर में मणि की वही महिमा वेदांगों में गणित की अर्थात् गणित-ज्योतिष् की है।

वेदांग ज्योतिष् के बाद ज्योतिष् शास्त्र के क्षेत्र में ज्योतिष् के कई सिद्धान्तों का प्रचलन हुआ। इनमें से पांच सिद्धान्त विशेष महत्व के हैं। इनका तुलनात्मक विवेचन वराहमिहिर ने अपनी प्रसिद्ध रचना "पंचसिद्धान्तिका" में किया है। पांच सिद्धान्त निम्न श्लोक में गिनाये हैं—

पौलिश-रोमक-वासिष्ठ-सौर-पैतामहास्तु पंचसिद्धान्तः।

इन पांचों में से प्रथम दो का (पौलिश और रोमक का) लाटदेव ने विवेचन किया। वराहमिहिर की दृष्टि से पौलिश सिद्धान्त में गणना यथार्थ है, रोमक-सिद्धान्त भी लगभग ऐसा ही है। इन दोनों से भी अधिक स्पष्ट सावित्र-सिद्धान्त अर्थात् सौर सिद्धान्त या सूर्य-सिद्धान्त है। शेष दो वासिष्ठ और पैतामह झूठे (दुरविभ्रष्ट) हैं। **पंचसिद्धान्तिका** का एक संस्करण प्रोफेसर थीबोट (G. Thibaut) और महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित किया। सुधाकर जी के संस्कृत भाष्य का नाम "**पंचसिद्धान्तिका प्रकाशिका**" है (प्रयाग, १५ दिसम्बर' १८८८)।

इसकी परम्परा में ही विज्ञान परिषद, प्रयाग, के पुराने पार्षद श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव ने **सूर्यसिद्धान्त** के विज्ञान-भाष्य का दुस्तर कार्य हाथ में लिया। उनके जीवन भर का यह गुरुतर कार्य १९४० ई० में समाप्त हुआ। १९२२ में ग्रन्थ आरंभ हुआ, इसका प्रथम अध्याय (मध्यमाधिकार) १९२४ में प्रकाशित हुआ। बारहवाँ अध्याय १९३१ में छपा। धनाभाव से फिर काम रुक गया। अन्तिम दो अध्याय १९४० में छपे। इस प्रकार यह भाष्य भ्रातृ द्वितीया संवत् १९९७ वि० अर्थात् सन् १९४० ई० को समाप्त हुआ था। श्रीवास्तव जी का यह ग्रन्थ थोड़ा-थोड़ा करके **विज्ञान-मासिक** पत्रिका में-लगभग प्रतिमास निकलता था, और ग्रन्थ रूप में इसकी कुछ प्रतियाँ अलग से भी तैयार कर दी गयीं। पिछले लगभग २० वर्ष से सूर्य-सिद्धान्त का यह विज्ञान भाष्य अनुपलब्ध रहा है।

डा० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान को यह गौरव प्राप्त है, कि विज्ञान परिषद्, प्रयाग के अधिकारियों की असीम उदारता से इसके प्रकाशन की अनुमति इस संस्थान को प्राप्त हुई। प्राचीन वाङ्मय के अनमोल ग्रन्थों के प्रकाशन की आयोजना, स्वाध्याय संस्थान ने अपने हाथ में ली है। इस ग्रन्थ को हम दो खण्डों में प्रकाशित कर रहे हैं। ग्रन्थ के अन्तर्गत जो चित्र हैं, उनके ब्लाक विज्ञान-परिषद् ने

तैयार कराके संस्थान को सौंपे। स्वर्गीय महावीर प्रसाद श्रीवास्तव के पुत्र श्री श्रीकृष्ण श्रीवास्तव, अवकाश प्राप्त जज, ने इस कार्य में रुचि ली। विज्ञान परिषद् के महामंत्री डा० शिवगोपाल मिश्र जी ने समस्त ग्रन्थ का प्रूफ-संशोधन कार्य स्वयं तपस्या-पूर्वक तत्परता से किया। सूर्य-सिद्धान्त का मूल संस्कृत पाठ प्रो० कृपाशंकर शुक्ल, लखनऊ विश्वविद्यालय, के सम्पादित संस्करण के आधार पर दिया गया है। पाठ के संशोधन में हमें यथेष्ट सहायता अपने वयोवृद्ध सदस्य पं० ओंकारनाथ शर्मा जी से भी प्राप्त हुई थी। हम इन सब के आभारी हैं।

स्वर्गीय श्री श्रीवास्तव जी ने पुस्तक की एक विस्तृत भूमिका (४३ पृष्ठों की) लिखी थी, जो अन्तिम खण्ड के साथ प्रकाशित हुई थी (१९४०)। खेद है, कि उनकी यह भूमिका वर्तमान संस्करण में पूरी तरह से नहीं दी जा सकी है। इसके कुछ ही आवश्यक अंश हम यहाँ दे रहे हैं। स्व० श्रीवास्तव जी ने विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा प्रकाशित "सरल विज्ञानसागर" (१९४६) ग्रन्थ में भारतीय ज्योतिष् पर अत्युपयोगी सामग्री दी है। यदि यह अलग से प्रकाशित हो जाय, तो अत्युत्तम होगा।

स्वर्गीय श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव ने यह विज्ञान-भाष्य अपने दिवंगत पूज्य पिता जी को समर्पित किया था। समर्पण के शब्द थे—"पूज्य पिताजी की पुण्य स्मृति में, जिनके चरणों में बैठकर गणित का प्रथम पाठ पढ़ा था।"

—उषा ज्योतिष्मती
अध्यक्ष
अनुसंधान विभाग

डॉ० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान,
प्रयाग
१५ मार्च १९८२

भाष्यकार की भूमिका

[स्व० श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव द्वारा लिखित
भूमिका का संक्षिप्त अंश]

ज्योतिषशास्त्र वेद का प्रधान अंग है क्योंकि इसी से यज्ञों का समय निश्चित किया जाता है। इसलिए प्राचीन काल में भारतवर्ष में ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन-अध्यापन पुण्यकार्य समझा जाता था। इसका दूसरा नाम कालविधानशास्त्र अथवा कालज्ञान भी है। कश्यप संहिता के अनुसार ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक १८ आचार्य थे जिनके नाम यह हैं :—

१—सूर्य, २—पितामह, ३—व्यास, ४—वसिष्ठ, ५—अत्रि, ६—पराशर, ७—कश्यप, ८—नारद, ९—गर्ग, १०—मरीचि, ११—मनु, १२—अंगिरा, १३—लोमश, १४—पौलिष, १५—च्यवन, १६—यवन, १७—भृगु और १८—शौनक।

यहाँ जो १८ नाम गिनाये गये हैं उन सब के सिद्धान्त-ग्रन्थों का पता नहीं है। इनमें कई संहिता और सिद्धान्त दोनों के कर्ता हैं, कोई दोनों में केवल एक ही विषय के हैं, किसी के नाम का ग्रन्थ दोनों विषयों पर भी नहीं उपलब्ध है।

जिन प्राचीन सिद्धान्तों की चर्चा वराहमिहिर के समय से अब तक होती आयी है वे हैं १—पौलिश, २—रोमक, ३—वासिष्ठ, ४—सौर, और ५—पैतामह सिद्धान्त, जिनका संग्रह वराहमिहिर ने (५५० ई० के लगभग) अपनी पंच-सिद्धांतिका नामक पुस्तक में किया है जिसमें यह भी बतलाया है कि पौलिश सिद्धान्त स्पष्ट है, उसी के निकट रोमक-सिद्धान्त है, परन्तु सबसे स्पष्ट सूर्य-सिद्धान्त है, शेष दो बहुत भ्रष्ट है। पंचसिद्धान्तिका-प्रकाशिका टीका के पृष्ठ २ पर म० म० सुधाकर द्विवेदी जी सूर्यारुण-संवाद का अवतरण देकर कहते हैं कि गर्गादि मुनियों का जो ज्ञान पुलिश महर्षि ने कहा वह पौलिश सिद्धान्त, ब्रह्मशाप के कारण रोमक नगर में उत्पन्न होकर, सूर्य भगवान ने जो ज्ञान रोमक के यवन जाति को बतलाया वह रोमक सिद्धान्त, जिसे वसिष्ट ने अपने पुत्र पराशर को दिया वह वसिष्ट सिद्धान्त, जिसे सूर्य ने मय दैत्य को दिया वह सौर-सिद्धान्त और जिसे ब्रह्मा ने अपने पुत्र वसिष्ठ को दिया वह पैतामह-सिद्धान्त है।

यह सूर्यारुण संवाद कहाँ से लिया गया यह नहीं बतलाया गया है। इसके अनुसार रोमक सिद्धान्त और सौर-सिद्धान्त दोनों के उपदेशक सूर्य भगवान् हैं, पहला

रोमक नगर में यवनों को बतलाया गया और दूसरा मय दैत्य को जिनके स्थान का पता नहीं है परन्तु जिसको पाश्चात्य विद्वान यूनानी (यवन) तथा भारतीय विद्वान असीरिया या बैबीलोनिया का निवासी समझते हैं। परन्तु ब्रह्मगुप्त ने (६२८ ई०) केवल रोमक-सिद्धान्त को विदेशी (स्मृति बाह्य) समझा था, सौर-सिद्धान्त को नहीं। वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त के पहले अध्याय के श्लोक २-९ मे लिखा है कि सतयुग के अंत में मय नामक असुर ने ज्योतिष सीखने के लिए सूर्य भगवान् की तपस्या की, तब उन्होंने अपने अंश पुरुष को इस काम के लिए नियुक्त किया। इसी अंश पुरुष ने सारा सूर्य-सिद्धान्त जिसे पहले के युगों में स्वयं सूर्य भगवान् ने महर्षियों को बतलाया था मयासुर को बतलाया जिससे महर्षियों ने फिर प्राप्त किया।

यदि वद की संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों और उपनिषदों का निष्पक्ष भाव से अध्ययन किया जाय तो पता चलेगा कि उन प्रागैतिहासिक काल में भी आकाश-दर्शन के अनुभव जहाँ-तहाँ भरे पड़े हैं और उन पर खूब तर्क-वितर्क किया गया है। यदि ऐसा न होता तो अयन विन्दु के भिन्न-भिन्न नक्षत्रों में होने की बात कहाँ से आती, ऋतुओं और महीनों तथा तिथियों और नक्षत्रों का सम्वन्ध किस प्रकार जान पाते ! मध्यकालीन भारत में भी बुद्धिमान और सूक्ष्मदर्शी ज्योतिषियों और गणितज्ञों का अभाव नहीं था। आर्यभट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, मुंजाल, केशव, गणेश आदि के ग्रन्थ पढ़नेवाले यह जान सकते हैं कि आकाश की घटनाओं के बारे में इन्होंने कैसी-कैसी सूक्ष्म बातें लिखी हैं। अब तो शंकर बालकृष्ण दीक्षित, प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त आदि ने प्राच्य और पाश्चात्य ज्योतिषियों के ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन से भी यह सिद्ध कर दिया है कि भारतीय ज्योतिष हिपार्कस या टालमी की ज्योतिष से सर्वथा स्वतंत्र है।

आर्यभटीय से स्पष्ट प्रतीत होता है कि आर्यभट ने भारत के प्राचीन ज्योतिष् का मंथन करके तथा सूर्य, चन्द्र, ग्रहों और नक्षत्रों का स्वयं निरीक्षण करके आर्यभटीय ग्रन्थ का निर्माण किया था।[१]

जी० आर० के (G. R. Kaye) लिखते हैं, "इसमें संदेह नहीं कि वराह-

---

[१] सदसज्ज्ञान समुद्रात् समुद्धृतं देवताप्रसादेन।
सज्ज्ञानोत्तर रत्नं मया निमग्नं स्वमतिनावा ॥४९॥
आर्यभटीयं नाम्नापूर्वं स्वायम्भुवं सदासद्यत्।
सुकृतायुषोः प्रणाशं कुरुते प्रति कञ्चुकं योऽस्यः ॥५०॥
क्षितिरवियोगाद्दिनकृद्रवीन्दुयोगात् प्रसाधितश्चेन्दुः।
शशि तारा ग्रह योगात्तथैव ताराग्रहास्सर्वे ॥४८॥ (आर्यभटीय गोलपाद)

मिहिर के पास यवनों के सिद्धान्तग्रंथ मौजूद थे और उनकी व्याख्या के ढंग से यह जान पड़ता है कि वे नये विचार या कम से कम ऐसे विचार और शब्द जो दोनों में सामान्य नहीं थे अपने ग्रंथों में ला रहे थे और यह तो निश्चय है कि इनमें से कुछ विचार टालमी के बाद के हैं।" इस मत का खण्डन करने के लिए मुझे सबसे प्रबल प्रमाण यह जान पड़ता है जिसमें वराहमिहिर ने अयन-चलन या बसंत-सम्पात-चलन की अनभिज्ञता दिखलायी है, यद्यपि उनको इस बात का ज्ञान था कि उनके समय में दक्षिणायन कर्क राशि के आरम्भ में अथवा पुनर्वसु नक्षत्र में होता था और प्राचीन काल में यह अश्लेषा के आधे भाग पर होता था।[1] यदि उनको हिपार्कस या टालमी के ग्रंथ से परिचय होता तो इनके लिखे बसन्त-सम्पात-चलन (precession of equinoxes) को अवश्य मान लेते। इस बात पर ब्रह्मगुप्त ने भी नहीं ध्यान दिया था जिससे प्रकट होता है कि ब्रह्मगुप्त के समय तक बसंत-सम्पात-चलन की बात मध्यकालीन भारतीय ज्योतिषियों को नहीं खटकी थी यद्यपि प्राचीन काल में आकश के प्रत्यक्ष दर्शन से उनको अनुभव हो गया था कि उत्तरायण और दक्षिणायन के नक्षत्र बदल गये हैं क्योंकि मैत्रायिणी उपनिषद में इस बात का उल्लेख है कि दक्षिणायन उस समय होता था जब सूर्य मघा से लेकर धनिष्ठा के आधे भाग तक रहता था और उत्तरायण उस समय होता था जब सूर्य श्रविष्ठार्ध से अश्लेषा तक रहता था। वेदांग ज्योतिष में भी यह साफ़-साफ़ बतलाया गया है कि उत्तरायण का आरम्भ उस समय होता था जब सूर्य श्रविष्ठा के आदि में आता था। वराहमिहिर इसी की चर्चा करते हुए बतलाते हैं कि हमारे समय में दक्षिणायन पुनर्वसु मे होता है, जब इससे भिन्न हो तो निरीक्षण करके निश्चय कर लेना चाहिए[2]।

ऊपर के अंकों से स्पष्ट है कि नाक्षत्र वर्ष के भारतीय मान यथार्थ नाक्षत्र वर्ष से ३ मिनट २७ सेकण्ड से अधिक बड़े नहीं हैं और ब्रह्मगुप्त का मान इसके सबसे निकट है। वास्तव में यह मान मन्द-केन्द्र वर्ष के मान से सवा मिनट के लगभग कम हैं इसलिए इससे प्रायः बिल्कुल मिलते हैं। यही कारण है कि सूर्य के मन्दोच्च की गति हमारे ग्रन्थों में प्रायः नगण्य सी मानी गयी है। इनकी तुलना में मेटन और बैबीलोनिया के नाक्षत्र वर्ष के मानों में अधिक भूल है। टालमी और केपलर के सायन वर्ष के मान यथार्थ सायन वर्ष से साढ़े ६ या ७ मिनट अधिक हैं। इसलिए

१· आश्लेषार्द्धादासीद्यदा निवृत्तिः किलोष्णकिरणस्य।
युक्तमयनं तदासीत् साम्प्रतमयनं पुनर्वसुतः ॥२१॥

२· वाराही संहिता आदित्य चार पृष्ठ १६, १७, विज्ञानभाष्य पृष्ठ ३३६।

सौर वर्ष के मान—भिन्न-भिन्न मतों के अनुसार

	दिन	घंटा	मिनट	सेकंड	
वर्तमान सूर्य सिद्धान्त	३६५	६	१२	३६.५६	यथार्थ से ३ मिनट २७ से० अधिक
आर्यभटीय	३६५	६	१२	२९.६४	,, ३ ,, २० ,, ,,
ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त	३६५	६	१२	९	,, ३ मिनट अधिक
मध्यमनाक्षत्र वर्ष लॉकियर के अनुसार	३६५	६	९	९.३	यथार्थ नाक्षत्र वर्ष
मन्द-केन्द्र-वर्ष ,,	३६५	६	१३	४९.३	
सायनवर्ष ,,	३६५	५	४८	४६.०५४	
सायनवर्ष टालमी के अनुसार*	३६५	५	५५	१२	यथार्थ सायन वर्ष से ६ मि० २६ से० अधिक
,, कोपरनिकस के अनुसार×	३६५	५	५५	५८	,, ,, ७ ,, ९ ,,
नाक्षत्रवर्ष मेटन के अनुसार†	३६५	६	१८	५७	यथार्थ नाक्षत्र वर्ष से ९ ,, ४८ ,,
,, बेबीलोनियन§	३६५	६	१३	३९.३	,, ,, ४ ,, ३० ,,

* Syntaxis, Karl Manitius's edition, Vol. I, p. 146.

× Heroes of Science, p. 63

§ Encyclopaedia Britannica, History of Astronomy.

सिद्ध है कि हमारे ज्योतिषियों के बेध टालमी वा केपलर के बेधों की अपेक्षा अधिक शुद्ध हैं और इसलिए स्वतन्त्र भी हैं।

इसी प्रकार यदि मन्दोच्चों, पातों तथा अन्य ध्रुवांकों की तुलना की जाय तो प्रगट हो जाता है कि हमारे आचार्यों के माने हुए ध्रुवांक अधिकांश में यथार्थ से अधिक निकट हैं। इसलिए यह सिद्ध हो जाता है कि हमारा ज्योतिष टालमी या किसी अन्य विदेशी ज्योतिष की छाया नहीं है वरन् स्वतन्त्र है। इन बातों का दिग्दर्शन विज्ञान-भाष्य में जगह-जगह कराया गया है।

सूर्य-सिद्धान्त का रचना काल—इस सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। इस पुस्तक में जो रचना काल बतलाया गया है वह तर्क से तो समझ में आता नहीं क्योंकि यदि यह इतने प्राचीनकाल, इक्कीस लाख पैंसठ हजार वर्ष से इसी प्रकार चला आता तो आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व महाभारत-काल में उस समय के महाराजाधिराज दुर्योधन के दरबार में जहाँ उस समय के बड़े-बड़े विद्वान मौजूद थे यह प्रश्न क्यों उठ खड़ा होता कि पाण्डवों के चौदह वर्ष का बनवास-काल कब पूरा होगा ? इस सम्बन्ध में भीष्म का जो उत्तर है उससे तो यह समझ में नहीं आता कि उस समय सूर्य-सिद्धान्त जैसे ग्रन्थ की ज्योतिष-गणना का उनको परिचय था। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि इस ग्रन्थ का आदि रूप वराहमिहिर के बहुत पहले का है और संभव है कि पंचसिद्धान्तिका में जो रूप देख पड़ता है वह आदि रूप नहीं है वरन् उसमें वराहमिहिर ने कुछ संशोधन किया है। परन्तु आश्चर्य है कि आर्यभट्ट (४७६ ई०) ने अपने ग्रन्थ इसकी कहीं चर्चा नहीं की है, इससे यह अनुमान होता है कि आर्यभटीय के रचना काल के आसपास ही इसकी रचना भी हुई है। वराहमिहिर ने सूर्य-सिद्धान्त का जो रूप दिया है वह वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त से भिन्न है जिसमें अयन-चलन की बातें पीछे से बढ़ायी गयी हैं क्योंकि यदि अयन-चलन की चर्चा सूर्य-सिद्धान्त में वराहमिहिर के पहले होती तो यह पञ्चसिद्धान्तिका में कहीं न कहीं इसका समावेश जरूर करते और इतना ही लिखकर न संतोष करते कि प्राचीनकाल में अयन-विन्दु आश्लेषा नक्षत्र में था अब पुनर्वसु में है। ब्रह्मगुप्त (६२८-६६५ ई०) के समय में भी सूर्य-सिद्धान्त का जो रूप था उसमें अयन-चलन की बात नहीं थी क्योंकि ऐसी दशा में ब्रह्मगुप्त इसकी चर्चा अवश्य करते। यह बात तो भास्कराचार्य के कुछ पहले मिलायी गयी होगी परन्तु फिर भी उस रूप में नहीं जैसा कि अब देख पड़ती है क्योंकि भास्कराचार्य ने स्वय इसकी शुद्धता पर शंका प्रकट की है। इसलिये यह सिद्ध है कि वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त का आदि-रूप तो वही है जो पञ्च सिद्धान्तिका में दिया गया है और वराहमिहिर के पहले भी मौजूद था अथवा वाराही सूर्य-सिद्धान्त उसका संशोधित रूप है और बाद में भी उसमें ज्योतिषियों ने समय-समय पर संस्कार

	कलियुग के आरंभ में ३००२ ई० पूर्व			कलि संबत १००० में २१०२ ई० पूर्व			कलि संबत [illegible]००० में १०२ ई० पूर्व			कलि संबत ३००० में १०२ ई० पूर्व			कलि संबत ३६३९ में ५३८ ई०			कलि संबत ४१०२ में १०९१ ई०			ठीक कब था
ग्रह	अंश	कला	विकला	अंश	कला	विकला	अंश	कला	विकला	अंश	कला	विकला	अंश कला विकला			अंश कला विकला			ईस्वी
बुध	+३३	२५	३५	+२५	९	५२	+१६	५४	९	+८	३८	२६	+३	२१	४०	−१	१२	२८	९४५
शुक्र	+३२	४३	३६	−२४	३७	३१	−१६	३१	२६	−८	२५	२१	−३	१४	४५	+१	१४	३	९३९
मंगल	+१२	५	४२	+९	२६	३२	+६	४७	२२	+४	८	[illegible]	+२	२६	३०	+०	५८	२९	१४५८
गुरु	−१७	२	५३	−१२	४४	१६	−८	२५	३९	−४	७	२	−१	२१	४७	+०	४१	१४	९०६
शनि	+२०	५९	३	+१५	४३	२०	+१०	२७	३७	−५	११	५४	+१	५०	१०	−१	४	२५	८८७
चन्द्र	−५	५२	४१	−३	५०	४८	−२	९	१७	−०	५२	३२	−०	१८	३०	−०	०	११	१०९७
चंद्रोच्च	−३०	११	२५	−२३	९	[illegible]	−१६	७	४७	−९	५	५८	−४	३६	२६	−०	४३	१०	१९३
चन्द्र-पात	+२३	३७	३१	+१७	५९	२१	+१२	३१	[illegible]	+७	३	[illegible]	+३	३३	१९	+०	३१	५०	११८८

मध्यम मान १०९१

करके इसको वर्तमान रूप में प्रकट किया है, जिसके लिये आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त आदि के ग्रन्थों या वेधों से सहायता ली गयी होगी, जैसा कि सेनगुप्त महोदय अपनी खण्डखाद्यक की भूमिका में सिद्ध करते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों का मत—इसके रचना काल के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों ने बड़ा ऊहा-पोह किया है जिसके लिये उनको धन्यवाद देना हमारा परम कर्त्तव्य है। इस विषय में बेंटली महोदय ने बहुत परिश्रम किया है। इन्होंने सूर्य-चन्द्रमा आदि ग्रहों की गणना सूर्य-सिद्धान्त तथा नवीन वेधों के अनुसार भिन्न-भिन्न कालों के लिये करके उस समय को सूर्य-सिद्धान्त का रचनाकाल स्थिर किया है जब दोनों गणनाओं के अनुसार ग्रहों के भोगांश एक हो जाते हैं। यह बात पृष्ठ १४ के कोष्ठक से स्पष्ट होगी जिसमें ग्रहों की अशुद्धियाँ दिखलाई गयी हैं।

इससे बेंटली यह परिणाम निकालते हैं कि सूर्य-सिद्धान्त ११वीं सदी के अन्तिम चरण में लिखा गया। देखने में तो यह बहुत ही युक्ति-युक्त जान पड़ता है और इसमें संदेह नहीं कि लेखक महोदय ने इसमें बड़ी नवीनता दिखलाई है परन्तु यथार्थ में यह रीति बिना अच्छी तरह परीक्षा किये मानने योग्य नहीं है। यह बात मैं बर्जेस के अनुवाद की प्रकाशन समिति के शब्दों में ही बतला देना पर्याप्त समझता हूँ :—

"दूसरे ग्रहों के सम्बन्ध में बेंटली ने शून्य अशुद्धि के जो समय निकाले हैं वे हमारे निकाले हुए समयों से बहुत मिलते हैं जिनको हमने १८६० ई० की अशुद्धियों से पीछे की तरफ गणना कर के निकाले हैं और जो ६७वें श्लोक की टीका के साथ दिये गये हैं।"

"इन दोनों कोष्ठकों की तुलना करने पर यह तुरन्त देख पड़ेगा कि बेंटली ने अपना निर्णय ग्रहों के निरपेक्ष स्थानों की अशुद्धियों से नहीं निकाला है वरन् सूर्य के स्थान की तुलना में। परन्तु सूर्य के स्थान की अशुद्धि का उन्होंने विचार ही नहीं किया है। हिंदुओं का राशि-चक्र नाक्षत्रिक (Sidereal) है और सूर्य की गति पर किसी प्रकार निर्भर नहीं है। अन्य ग्रहो की तरह सूर्य भी ३१०२ ई० पूर्व उस स्थान पर नहीं था, जहाँ मान लिया गया है और इसलिये इस पद्धति के अनुसार सूर्य की जो गति मानी गयी है वह यथार्थ से भिन्न है क्योंकि नाक्षत्रवर्ष ३।। मिनट बड़ा माना गया है। इसलिये सूर्य की अशुद्धि का विचार क्यों न किया जाय और ग्रहों की नाक्षत्रिक गति का विचार इसी अशुद्ध गति की तुलना में क्यों किया जाय? यह प्रकट है कि बेंटली को सूर्य के स्थान का भी पूरी तरह विचार करना चाहिए था और यह दिखलाना चाहिए था कि इससे भी वही परिणाम निकलता है जैसा कि अन्य ग्रहों की गणना से और यदि नहीं तो असंगति का कारण क्या था? ऐसा

पहली जनवरी सन् १८६० ई० को वाशिंगटन की मध्यरात्रि में ग्रहों के मध्यम भोगांश

ग्रह	सूर्य-सिद्धान्तानुसार						अर्वाचीन ज्योतिषानुसार		
	मूल			बीज संस्कृत					
	अंश	कला	विकला	अंश	कला	विकला	अंश	कला	विकला
सूर्य	९६	१८	२१	९६	१८	२१	१००	५	६
बुध	१५५	२	३०	१४८	२५	३९	१५१	२८	२०
शुक्र	३३९	५४	५५	३३४	५७	१८	३६६	१३	३६
मंगल	१९२	३६	५	१९२	३६	५	१९७	२६	३२
गुरु	१०४	७	२२	१००	४८	५६	१०३	३५	१७
शनि	१२८	१७	११	१३३	१४	४९	१३७	१०	१०
चन्द्रमा	९	४	९	९	४	९	१२	४१	२३
चन्द्रोच्च	३२७	५०	२४	३२६	११	११	३२६	४७	३५
चन्द्रपात	३१२	२९	५१	३१०	५०	३८	३१२	४८	१०

सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार निकाले हुए ग्रहों के मध्यम भोगांशों की अशुद्धियाँ

ग्रह	मूल ग्रन्थ के अनुसार अशुद्धियाँ				बीज संस्कृत ग्रन्थ के अनुसार अशुद्धियाँ			
	*निरपेक्ष	कब शुद्ध	सूर्य की अपेक्षा	कब शुद्ध	निरपेक्ष	कब शुद्ध	सापेक्ष	कब शु
	अंश कला विकला	ई०	अंश कला विकला	ई०	अंश कला विकला	ई०	अंश कला विकला	ई०
सूर्य	—३ ४६ ४५	२५०	० ० ०	......	—३ ४६ ४५	२५०	० ० ०	......
बुध	+३ ३४ १०	२३३२	+७ २० ५५	३२७१	—३ २ ४१	१५१७	+० ४४ ५	१६७०
शुक्र	+३ ४१ १६	१२२२	+७ २८ ४	६४१	—१ १६ १८	२१२६	+२ ३० २७	१५०६
मंगल	—४ ५० २७	८८६	—१ ३ ४२	१४५५	—४ ५० २७	८८६	—१ ३ ४२	१४५५
गुरु	+० ३२ ५	१५७१	+४ १८ ५०	८३२	—२ ४६ २१	४२०३	+१ ० २४	१५७५
शनि	—८ ५२ ५६	६६६	—५ ६ १४	८५७	—३ ५५ २१	१२५०	—० ८ ३६	१८२५
चन्द्रमा	—३ ३७ १४	११५	+० ६ ३१	१०६७	—३ ३७ १४	११५	+० ६ ३१	१०६७
चन्द्रोच्च	+१ २ ४६	१६७६	+४ ४६ ३४	१२५२	—० ३६ २४	१६६६	+३ १० २१	१४५६
चन्द्रपात	—० १८ १६	१६७६	+३ २८ २६	११६२	—१ ५७ ३२	२७१४	+१ ४६ १३	१४६८

*निरपेक्ष स्थान वह है जो राशि-चक्र के स्थिर आदि विन्दु से नापा जाता है और सापेक्ष वह स्थान है जो सूर्य से नापा जाता है जिसकी स्थिति सौर नाक्षत्र वर्ष के अनुसार निश्चय की जाती है जो यथार्थ से ३ मिनट के लगभग बड़ा है, इसलिये सूर्य का स्थान भी इसी के अनुसार बदल रहा है।

न करके हमारी समझ में मारी गणना का बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंश छोड़ दिया गया है जिससे बहुत ही महत्वपूर्ण परिणाम निकलता है।''......

''लेकिन हमारे सिद्धान्त के बारे में यथार्थ बात क्या है? हमें यह मिलता है कि इसमें ग्रहों के ऐसे ध्रुवाङ्क दिये गये हैं जिनके स्थानों की भूलों की परीक्षा ऊपर बतलायी हुई रीति से करने पर जान पड़ता है कि इन ध्रुवाङ्कों का निश्चय इस विचार से नहीं किया गया है कि किसी निर्दिष्ट काल में इनकी यथार्थ नाक्षत्रिक स्थिति जानी जा सके। बल्कि इसके प्रतिकूल ये ऐसी गवाही देते हैं कि ईसा की १० वीं या ११वीं सदी में इस बात का प्रयत्न किया गया है कि ग्रहों की स्थिति सूर्य की स्थिति की तुलना में ठीक-ठीक जानी जा सके। इसका भी ठीक-ठीक समय संदेहात्मक है क्योंकि उन समयों में बड़ी भिन्नता है, जिनमें अशुद्धि शून्य समझी जाती है। संस्कृत साहित्य के इतिहास में यह बात उतनी ही ध्रुव है जितनी कोई बात हो सकती है कि उस समय से बहुत पहले सूर्य-सिद्धान्त का अस्तित्व था। अन्य ज्योतिष के ग्रन्थों के निर्देशों और उद्धरणों से इस बात का भी पता चलता है कि इस नाम के ग्रन्थ के कई पाठान्तर भी थे और हम ऊपर (श्लोक ९ में) यह देख भी चुके हैं जो बहुत अस्पष्ट सूचना नहीं है कि वर्तमान ग्रन्थ में ठीक-ठीक वही ध्रुवाङ्क नहीं दिये गये हैं जो पहले सूर्य-सिद्धान्त के माने गये थे। इसलिए इस अनुमान के निकट और क्या हो सकता है कि १०वीं या ११वीं शताब्दी में संशोधन के लिये बीज की जो गणना की गयी थी यह मूल में केवल चार या पाँच श्लोकों को बदल कर छपा दी गयी। इसलिये जबकि दूसरे ग्रहों की तुलनात्मक अशुद्धियाँ उस समय का निर्देश करती हैं जब यह बीज संस्कार किया गया था, सूर्य की निरपेक्ष अशुद्धि मूल पुस्तक का प्रायः अच्छा समय प्रकट करती है।''

''हमारे कोष्ठक में सूर्य की शून्य अशुद्धि का समय २५० ई० है। इस तारीख को अशुद्धता के लिये बहुत जोर देने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह उस वेध की शुद्धता पर निर्भर है जिससे सूर्य का स्थान पहले-पहल निश्चय किया गया और फिर उस विन्दु से निर्देश किया गया जिसको आकाश चक्र का आदि विन्दु कहते हैं। कोरी आँख से इसका वेध करना असंभव था कि सूर्य का केन्द्र मध्यम गति के अनुसार रेवती के योग तारा Zeta Piscium के दस कला पूर्व कब था और यह तो स्पष्ट है कि हिन्दुओं ने इस विन्दु से राशिचक्र के अन्य विन्दुओं का जो निश्चय किया है उनमें बड़ी-बड़ी भूलें हैं और यदि सूर्य के स्थान के निश्चय करने में एक अंश की भी भूल हो जाय तो इससे शून्य अशुद्धि के काल में ४२५ वर्ष का अन्तर पड़ सकता है।

ब्रह्मगुप्त आदि के दिये हुए योग तारों के ध्रुवांकों (Polar longitude) की तुलना से भी सूर्य-सिद्धान्त का समय इसीके आस-पास आता है। इनमें कुछ ध्रुवांक परम्परा प्राप्त हैं। ये वह हैं जो तीनों ग्रन्थों में अभिन्न हैं, कुछ को ग्रन्थ-कर्त्ताओं ने स्वयं शुद्ध कर दिया है। इनके तुलनात्मक अध्ययन से हम सूर्य-सिद्धान्त काल की परा और अपरा सीमा (Superior and inferior limit) जान सकते हैं। वराह की पञ्चसिद्धान्तिका में भी (थीबो के अनुसार) सात योग तारों के ध्रुवांक दिये गये हैं जिनको हम उस प्राचीन सूर्य-सिद्धान्त के ध्रुवांक मानते हैं जो वराह के पहले मौजूद था (देखो पृष्ठ २०-२१)।*

प्राचीन सूर्य-सिद्धान्त के समय निरूपण के लिये नीचे लिखे नक्षत्र चुने जाते हैं जिनके ब्रह्मगुप्त के ध्रुवांक सूर्य-सिद्धान्त के ध्रुवांक से जितने अधिक हैं वह सामने लिखे जाते हैं :—

	अंश	कला
कृत्तिका	[illegible]	४८
रोहिणी	१	२८
पुनर्वसु	५	३
मघा	३	०
पू० फाल्गुनी	३	०
चित्रा	३	०
योग	२०	१६
मध्यममान	३	२३

इन छः तारों के ध्रुवांकों की अधिकता का मध्यमान ३ अंश २३ कला के समान है। यदि अयन चलन के कारण ध्रुवांकों की एक अंश की वृद्धि ७२ वर्ष में मानी जाय, तो यह वृद्धि लगभग २४४ वर्ष के समय में हुई होगी। परन्तु ब्रह्मगुप्त का समय हमें निश्चयपूर्वक मालूम है कि ६२८ ई० है। इसलिए सूर्य-सिद्धान्त का समय इससे २४४ वर्ष पूर्व अथवा ३८४ ईस्वी आता है। इसको स्थूल रूप से ४००ई० समझा जा सकता है। जो इस समय की परा सीमा (Upper limit) है। अपरा सीमा की खोज करने के लिए हमें नीचे लिखे तारों के ध्रुवकों को देखना चाहिए जिनके ध्रुवांक ब्रह्मगुप्त के ध्रुवकों से जितने अधिक हैं उनका मध्यममान १ अंश १५

---

*बर्जेस के सूर्य-सिद्धान्त के अनुवाद के दूसरे संस्करण की पी० सी० सेनगुप्त की लिखी भूमिका पृष्ठ XXVI-XXIX

योग तारों के ध्रुवक (Polar Longitude)

तारा	पंच सिद्धान्तिका		ब्राह्मस्फुट सद्धान्त		शिष्यधीवृद्धि		वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त		वर्तमान सूर्य सिद्धान्त के ध्रुवक कहाँ से लिये गये
	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	
अश्विनी	...		८	०	८	३	८	३	परम्पराप्राप्त
भरणी	...		२०	०	२०	०	२०	०	,,
कृत्तिका	३२	४०	३७	२८	३६	०	३७	३०	ब्रह्मगुप्त
रोहिणी	४८	०	४९	२८	४९	०	४९	३०	,,
मृगशिरा	...		६३	०	६२	०	६३	०	,,
आर्द्रा	...		६७	०	७०	०	६७	२०	नया ?
पुनर्वसु	८८	०	९३	३०	९२	०	९३	०	ब्रह्मगुप्त
पुष्य	९७	२०	१०६	०	१०५	२०	१०६	०	,,
अश्लेषा	१०७	४०	१०८	०	११४	०	१०९	०	नूतन
मघा	१२६	०	१२९	०	१२८	०	१२९	०	ब्रह्मगुप्त
पू० फाल्गुनी	...		१४७	०	१३९	२०	१४४	०	परम्पराप्राप्त
उ० फाल्गुनी	...		१५५	०	१५४	०	१५५	०	ब्रह्मगुप्त

हस्त		......	१७०	०	१७३	०	१७०	०	ब्रह्मगुप्त
चित्रा	१८०		५०	१८३	०	१८४	२०	१८०	०	परम्पराप्राप्त
स्वाती		......	१९९	०	१९७	२०	१९९	०	ब्रह्मगुप्त
विशाखा		......	२१२	०	२१२	०	२१३	०	नूतन
अनुराधा		......	२२४	०	२२२	०	२२४	०	ब्रह्मगुप्त
ज्येष्ठा		......	२२९	०	२२८	०	२२९	०	,,
मूल		......	२४१	०	२४१	०	२४१	०	परम्पराप्राप्त
पूर्वाषाढ़ा		......	२५४	०	२५४	०	२५४	०	,,
उत्तराषाढ़ा		......	२६०	०	२६७	०	२६०	०	ब्रह्मगुप्त
अभिजित		......	२६५	०	२६७	२०	२६६	०	नया
श्रवण		......	२७८	०	२८३	१०	२८०	०	,,
धनिष्ठा		......	२९०	०	२९६	२२	२९०	०	ब्रह्मगुप्त
शतभिषा		......	३२०	०	३१३	२०	३२०	०	,,
पूर्वाभाद्रपदा		......	३२६	०	३२७	०	३२६	०	,,
उत्तराभाद्रपदा		......	३३७	०	३३५	०	३३७	०	,,
रेवती		......	०	०	३५९	०	३५९	५०	,,

कला है जो ब्रह्मगुप्त से ९० वर्ष बाद हुआ होगा। इस प्रकार यह अपरा सीमा ६२८+९०=७१८ ईस्वी होती है।

	अंश	कला
अश्लेषा	१	०
विशाखा	१	०
अभिजित	१	०
श्रवण	२	०
योग	५	०
मध्यम	१	१५

इस प्रकार यह परिणाम निकाला जा सकता है कि सूर्य-सिद्धान्त की रचना ४०० ई० से लेकर ७२५ ई० तक हुई। बेंटली और बर्जेस ने भी सूर्य-सिद्धान्त में दिये हुए नक्षत्रों के ध्रुवाङ्कों की तुलना अर्वाचीन ज्योतिर्गणित से सिद्ध ध्रुवांकों से करके सूर्य-सिद्धान्त का समय निरूपण इसी प्रकार किया है, परन्तु वह इतना ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि वेधों के विषय में जिस प्रकार की भूल सूर्य-सिद्धान्तकार ने की होगी, वैसी ही ब्रह्मगुप्त आदि ने भी की होगी। इस प्रकार रचनाकाल की परा सीमा इससे अधिक बढ़ायी जा सकती। परन्तु अपरा सीमा ११०० ई० तक आ सकती है जैसा कि बेंटली ने सिद्ध किया है।

अयन-चलन की बात से भी बेंटली के मत का समर्थन होता है। भास्कराचार्य के समय में सूर्य-सिद्धान्त में लिखित अयन गति उतनी नहीं थी जितनी वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त में है। इससे जान पड़ता है कि अयन गति का संशोधन भास्कराचार्य के बाद किया गया है। परन्तु भास्कराचार्य का समय ११५० ई० है।

सूर्य-सिद्धान्त का लेखक—यह दिखलाया जा चुका है कि सूर्य-सिद्धान्त के ध्रुवाङ्क यूनानी ज्योतिषी हिपार्कस टालमी या अन्य पाश्चात्य देशों के ज्योतिषियों के ध्रुवाङ्कों से नहीं मिलते। इसलिये यह ग्रन्थ उन लोगों के वेधों के आधार पर नहीं लिखा गया। इसकी परम्परा विवस्वान् अर्थात् सूर्य से बतलायी गयी है (देखो मध्यमाधिकार श्लोक ८-९) जिस प्रकार भगवद्गीता में बतलाये हुए योग मार्ग की परम्परा बतलायी गयी है (देखो भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक १-२)। मयासुर विदेशी नहीं है। उसने भारत का निवासी होकर यह ज्ञान प्राप्त किया था और उसी से ऋषियों ने भी पीछे सीखा। यही सूर्य-सिद्धान्त में दी हुई कथा का रहस्य मालूम होता है। ब्रह्मशाप के कारण सूर्य भगवान् का रोमक नगर में उत्पन्न होने की कथा मनगढ़न्त है और केवल एक या दो हस्त-लिखित पुस्तकों में पायी जाती

है, इसलिए प्रक्षिप्त है जिसको किसी ने स्वीकार नहीं किया। यदि सूर्य-सिद्धान्त विदेशी के द्वारा प्राप्त हुआ होता तो ब्रह्मगुप्त अवश्य लिखते, क्योंकि रोमक सिद्धान्त के लिये, जो निस्सन्देह विदेशी है, उन्होंने साफ-साफ लिख दिया है। पञ्चसिद्धान्तिका प्रकाशिका टीका में म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी का दिया हुआ सूर्यारुण-संवाद के मूल का पता नहीं है, इसलिए नहीं कहा जा सकता कि यह किसने लिखा और किस आधार पर लिखा। नित्यानान्द[1] का यह लिखना कि यह कलियुग के ३६०० वर्ष बीतने पर अर्थात् शक ४२१ या ४९९ ई० में लिखा गया जब कि आर्यभट्ट ने अपना आर्यभटीय ग्रन्थ लिखा है, भ्रम है। शायद इसी भ्रम के कारण मुनीश्वर ने भी आर्यभट्ट को सूर्य-सिद्धान्त का रचयिता मान लिया था। अलबेरूनी का यह कहना कि इसको लाटाचार्य या लाटसिंह ने बनाया भ्रम है[2] क्योंकि वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त किसी ने भी लाटाचार्य को सूर्य सिद्धान्त का रचयिता नहीं माना। वराहमिहिर के अनुसार लाटाचार्य रोमक और पौलिश सिद्धान्तों के व्याख्याता हैं। लाट के अहर्गण[3] यवनपुर के सूर्यास्त-काल के हैं। इस प्रकार मत प्रकट है कि सूर्य-सिद्धान्त के रचना काल तथा रचयिता के सम्बन्ध में जितने अनुमान हैं वे सिद्ध नहीं होते। अंतरंग प्रमाणों के आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इसकी वृद्धि ४०० ई० के आसपास से प्रारम्भ होकर १५०० ई० तक समाप्त हुई। पहले-पहल इसका विस्तार (संशोधन) वराहमिहिर ने किया होगा। फिर अन्य संशोधकों ने आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, मंजुल आदि के वेधों से लाभ उठाकर इसको अप्-टु-डेट (Up-to-date) बनाने की कोशिश की। यह संशोधन उस समय तक जारी था जब तक रंगनाथ जी ने इसकी टीका लिखकर इसके श्लोकों को बाँध नहीं दिया। माधव पुरोहित की टीका में कुछ श्लोक अधिक मिलते हैं, पता नहीं वे किसी पुराने ग्रन्थ के आधार पर लिखे गये या यों ही बढ़ा दिये गये।

प्रयाग

भ्रातृ-द्वितीया; सं १९९७ वि० — महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

---

[1] सूर्य-सिद्धान्त रचनाकालस्तु नित्यानन्देन सिद्धान्तराजकृता कलेः षट्त्रिंशच्छतमिते अब्दगणे व्यतीते निगद्यते—पंचसिद्धान्तिका प्रकाशिका पृष्ठ २

[2] लाटाचार्येणोक्तो यवनपुरेऽर्द्धास्तगे सूर्ये पंच सिद्धान्तिका अध्याय १ श्लोक ३.

[3] वही अध्याय १५ श्लोक १८.

प्रथम अध्याय

मध्यमाधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

[१ श्लोक—ईश्वर वंदना । २-७ श्लोक—ज्योतिःशास्त्र जानने के लिए मयासुर का सूर्य भगवान की तपस्या करना, सूर्य भगवान का प्रसन्न होकर वर देना तथा अपने शरीर से एक पुरुष का उत्पन्न करना । ८-६ श्लोक—सूर्यांश पुरुष का मायासुर से कहना कि जो शास्त्र पहले सूर्य भगवान ने महर्षियों से कहा था वही कुछ परिवर्तन के साथ कहा जा रहा है । १० श्लोक—काल के दो भेद (१) अनादि और अनन्त, (२) कलनात्मक । ११-२० श्लोक—निमेष से लेकर कल्प तक की काल की इकाइयाँ । २१-२३ श्लोक—ब्रह्मा की वर्तमान आयु । २४ श्लोक—कल्प के आरंभ से कितने समय में सृष्टि रची गयी । २५-२७ श्लोक—नक्षत्रों और ग्रहों की गति का कारण । २८ श्लोक—कोण नापने की इकाइयाँ । २६-३४ श्लोक—एक महायुग में ग्रहों, उनके शीघ्रोच्चों, चन्द्रमा के उच्च और पात तथा नक्षत्रों के कितने चक्कर होते हैं । ३५-३६ श्लोक—चान्द्र और सौर मासों का सम्बन्ध । ३७-३६ श्लोक—एक महायुग में कितने सावन दिन, अधिमास तथा तिथियाँ होती हैं। ४० श्लोक—एक कल्प में कितने सावन दिन तथा तिथियां होती हैं । ४१-४४ श्लोक—एक कल्प में ग्रहों के मन्दोच्चों तथा पातों के कितने चक्कर होते हैं। ४५-४७ श्लोक—कल्प के आरंभ से सत्ययुग के अंत तक का समय । ४८-५० श्लोक—सृष्टि के आरंभ से अब तक कितने दिन बीते, यह जानने की रीति । ५१-५२ श्लोक—दिनपति, वर्षपति और मासपति जानने की रीति । ५३-५४ श्लोक—ग्रहों के मध्यम स्थान जानने की रीति । ५५ श्लोक—वृहस्पति का वर्ष (संवत्सर) जानने की रीति । ५६-५८ श्लोक - सत्ययुग के अंत में ग्रहों के स्थान क्या थे । ५६ श्लोक—व्यास और परिधि का सम्बन्ध तथा भूपरिधि का परिमाण । ६०-६१ श्लोक—किसी स्थान के अक्षांश-वृत्त का परिमाग जानना तथा उससे ग्रह का मध्यम स्थान निकालना । ६२ श्लोक—भारतवर्ष की मध्यरेखा पर कौन-कौन प्रसिद्ध नगर हैं। ६३-६५ श्लोक—चंद्र-ग्रहण से यह जानना कि अमुक स्थान मध्य रेखा से कितना पूर्व या पश्चिम है । ६६ श्लोक—सौर-प्रवृत्ति कब होती है । ६७ श्लोक—किसी इष्टकाल में ग्रहों का स्थान क्या है । ६८-७० श्लोक—चन्द्रमा इत्यादि ग्रह कान्ति-वृत्ति से कितने उत्तर या दक्षिण जा सकते हैं ।]

अचिन्त्याव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
समस्तजगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः ।।१।।

अनुवाद—उस परब्रह्म को नमस्कार है जिसका रूप न तो ध्यान में आ सकता है और न प्रकट किया जा सकता है, जो निर्गुण है परन्तु जिससे सब गुण उत्पन्न हुए हैं और जो सम्पूर्ण विश्व का आधार है ॥ १ ॥

अल्पावशिष्टे तु कृते मयो नाम महासुरः ।
रहस्यं परमं पुण्यं जिज्ञासुर्ज्ञानमुत्तमम् ।। २ ।।
वेदाङ्गमग्र्यमखिलं ज्योतिषां गतिकारणम् ।
आराधयन्विवस्वन्तं तपस्तेपे सुदुष्करम् ।। ३ ।।

अनुवाद—सत्ययुग के कुछ शेष रहने पर मय नामक महा असुर ने सब वेदाङ्गों में श्रेष्ठ, सारे ज्योतिष्क पिण्डों की गतियों का कारण बतलाने वाले, परम पवित्र और रहस्यमय उत्तम ज्ञान को जानने की इच्छा से कठिन तप करके सूर्य भगवान की आराधना की ।। २-३ ।।

विज्ञान भाष्य—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग की व्याख्या इसी अध्याय के १६वें श्लोक में की गयी है ।

वेदाङ्ग ६ हैं—शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, कल्प और ज्योतिष । इनसे वेदों के समझने-समझाने में सहायता मिलती है, इसलिए यह वेदाङ्ग कहलाते हैं । वेदाङ्गों में ज्योतिष की श्रेष्ठता भास्कराचार्य जी ने इस प्रकार दिखलाई है—शब्द-शास्त्र वेद भगवान का मुख है, ज्योतिःशास्त्र आँख है, निरुक्त कान है, कल्प हाथ है, शिक्षा नासिका है, छन्द पाँव हैं, इसलिए जैसे सब अंगों में आँख श्रेष्ठ होती है वैसे ही सब वेदाङ्गों में ज्योतिःशास्त्र श्रेष्ठ है ।

तोषितस्तपसा तेन प्रीतस्तस्मै वरार्थिने ।
ग्रहाणां चरितं प्रादान्मयाय सविता स्वयम् ।। ४ ।।

अनुवाद—उसकी तपस्या से संतुष्ट और प्रसन्न होकर सूर्य भगवान् ने स्वयम् वर चाहनेवाले मय को ग्रहों के चरित अर्थात् ज्योतिःशास्त्र का उपदेश दिया ।। ४ ।।

विज्ञान भाष्य—पाश्चात्य ज्योतिषी ग्रह उन ज्योतिष्क पिंडों को कहते हैं जो सूर्य की परिक्रमा किया करते हैं । इस परिभाषा के अनुसार बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु, शनि, युरेनस और नेपचून यह आठ ग्रह हैं, जिनमें से पिछले दो ग्रहों का पता

पिछले दो सौ वर्ष के भीतर लगा है और यह कोरी आँख से नहीं दिखाई पड़ते। चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है, इसलिए यह उपग्रह है। अन्य ग्रहों के भी उपग्रह दूरवीक्षण यंत्र से देखे गये हैं। परन्तु हमारे ज्योतिष ग्रन्थों में पृथ्वी को नहीं वरन् सूर्य को ग्रह माना है। चन्द्रमा भी ग्रहों की श्रेणी में रखा गया है। युरेनस और नेपचून की कहीं चर्चा नहीं है। इसलिए हमारे यहाँ सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरु अथवा वृहस्पति, शुक्र और शनि सात स्थूल ग्रह तथा राहु और केतु दो सूक्ष्म ग्रह माने जाते हैं। दो सूक्ष्म ग्रहों का पूरा विवरण इसी अध्याय में चन्द्रमा के पातों का वर्णन करते समय लिखा जायगा। ज्योतिःशास्त्र में इन ग्रहों की गतियों से जो घटनाएँ आकाश में होती हैं उनका वर्णन है, इसलिए इस श्लोक में ज्योतिःशास्त्र का दूसरा नाम 'ग्रहों का चरित' बतलाया गया है।

विदितस्ते मया भावः तपसाऽऽराधितस्त्वहम्[1]।
दद्यां कालाश्रयं ज्ञानं ज्योतिषां[2] चरितं महत् ॥ ५ ॥
न मे तेजस्सहः कश्चिदाख्यातुं नास्ति मे क्षणः।
मदंशः पुरुषोऽयं ते निश्शेषं कथयिष्यति ॥ ६ ॥

अनुवाद—भगवान सूर्य ने कहा कि तेरा भाव मुझे विदित हो गया है और तेरे तप से मै बहुत संतुष्ट हूँ, मैं तुझे ग्रहों के महान् चरित का उपदेश करता हूँ, जिससे समय का ठीक-ठीक ज्ञान हो सकता है; परंतु मेरा तेज कोई सह नहीं सकता और उपदेश देने के लिए मुझे समय भी नहीं है इसलिए यह पुरुष, जो मेरा अंश है, तुझे भली भांति उपदेश देगा ॥ ५-६ ॥

इत्युक्ताऽन्तर्दधे देवस्तमादिश्यांशमात्मनः।
स पुमान्मयमाहेदं प्रणतं प्राञ्जलिं स्थितम् ॥७॥*
शृणुष्वैकमनाः पूर्वं यदुक्तं ज्ञानमुत्तमम्।
युगे युगे महर्षीणां स्वयमेव विवस्वता ॥८॥

---

* इस श्लोक के पहले पूना के आनन्दाश्रम के सूर्य सिद्धान्त की एक टीका रहित प्रति में यह श्लोक भी पाया जाता है :—

तस्मात्वं स्वां पुरीं गच्छ तत्र ज्ञानम् ददामि ते।
रोमके नगरे ब्रह्मशापान्म्लेच्छावतार धृक् ॥

परन्तु यह सूर्य सिद्धान्त की अन्य किसी प्रति में नहीं है। आगे पीछे के श्लोकों से इसका कोई सम्बन्ध भी नहीं देख पड़ता, इसलिए यह क्षेपक है।

शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः ।
युगानां परिवर्तेन कालभेदोऽत्र केवलम् ॥६॥

अनुवाद—इतना कह कर सूर्य भगवान अन्तर्ध्यान हो गये और सूर्यांश पुरुष ने, आदेशानुसार, मय से जो विनीत भाव से झुके हुए और हाथ जोड़े हुए थे कहा—एकाग्र चित होकर यह उत्तम ज्ञान सुनो, जिसे भगवान सूर्य ने स्वयम् समय-समय पर महर्षियों से कहा था; भगवान सूर्य ने पहले जिस शास्त्र का उपदेश दिया था वही आदि शास्त्र यह है; युगों के परिवर्तन से केवल काल में कुछ भेद पड़ गया है ॥७-६॥

विज्ञान भाष्य—नवें श्लोक के दूसरे पद का कुछ लोग यह अर्थ करते हैं कि सूर्य भगवान ने जिस शास्त्र का उपदेश महर्षियों को किया था वही शास्त्र बिना किसी परिवर्तन के यह है, केवल कहने के समय में भेद है। परन्तु यदि इसका यही अर्थ होता तो यह कहने की क्या आवश्यकता थी कि केवल काल में भेद है, पहले पद में जो कुछ कहा गया है वही पर्याप्त था। इसलिए इस पद का अधिक युक्तियुक्त अर्थ यह है कि पहले के बतलाये हुए और इस समय बतलाये जाने वाले ज्योतिः-शास्त्र में यदि कुछ भेद है तो वह काल के कारण हो गया है, तत्वतः कोई अन्तर नहीं है। काल के कारण भेद कैसे हो सकता है; इसका कारण यह है कि ज्योतिः-शास्त्र प्रयोगात्मक विज्ञान है और प्रयोग में कुछ न कुछ सूक्ष्म भूल रह ही जाती है, जिसे प्रयोगात्मक भूल (Experimental error) कहते हैं। ज्योतिःशास्त्र में यह भूल प्रति वर्ष इकट्ठी होती रहती है और सैकड़ों वर्ष के बाद वह बहुत बड़ा रूप धारण कर लेती है; इसलिए समय-समय पर उसका संशोधन करना पड़ता है, जिसको बीज-संस्कार कहते हैं। इसी दृष्टि से यह वाक्य सूर्यांश पुरुष ने कहा है जिसके प्रमाण में सूर्य सिद्धान्त के अन्तिम अध्याय में 'बीजोपनयन' नाम के २१ श्लोक हैं, जिनकी टीका रंगनाथ जी ने तथा पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी जी ने क्षेपक मान कर नहीं की है और क्षेपक मानने का कारण यह बतलाया है कि सूर्य भगवान के कहे हुए शास्त्र में बीज-संस्कार स्वयम् सूर्य भगवान कैसे करते। परन्तु रंगनाथ जी अपनी गूढ़ार्थ-प्रकाशिका टीका में ६ वें श्लोक की व्याख्या करते हुए यह भी बतलाते हैं कि काल पाकर कुछ अन्तर हो जाया करता है। उनके वाक्य ज्यों के त्यों यह हैं :—

"तथा च कालवशेन ग्रहचारे किञ्चिद्वैलक्षण्यं भवतीति युगान्तरे तत्तदनन्तरं ग्रहचारेषु प्रसाध्य तत्कालस्थित लोकव्यवहारार्थं शास्त्रान्तरमिव कृपालुरुक्तवानिभि-न्नानन्तर शास्त्राणां वैयर्थ्यम् । एवञ्च मया वर्तमान युगीय सूर्योक्त शास्त्र सिद्धग्रहचार-संगीकृत्याद्य सूर्योक्त शास्त्रसिद्धं ग्रहचारं च प्रयोजनाभावादुपेक्ष्य तदुक्तमेनत्वां प्रत्युपदिश्यत इति भावः । एवञ्च युग मध्येऽप्यवान्तर काले ग्रहचारेष्वन्तर दर्शने तत्तत्काले तदन्तरं

प्रसाध्यग्रंथास्तत्काल वर्तमानाभियुक्ताः कुर्वन्ति । तदिदमन्तरं पूर्व ग्रंथे बीजमित्याम-नन्ति । पूर्वग्रंथानां लुप्तत्वात्सूर्य्यर्षि संवादोऽपीदानीं न दृश्यत इति । तदप्रसिद्धिरागम प्रामाण्याच्च नाशंक्या ।।"†

काल पाकर अन्तर पड़ने के उदाहरण अनेक हैं, जो इसी टीका में उचित स्थान पर बतलाये जायेंगे ।

लोकानामन्तकृत्कालः कालोन्यः कलनात्मकः ।
स द्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान्मूर्त्तश्चामूर्त उच्यते ।।१०।।

अनुवाद—एक प्रकार का काल संसार को नाश करता है और दूसरे प्रकार का कलनात्मक है अर्थात् जाना जा सकता है । यह भी दो प्रकार का होता है—(१) स्थूल और (२) सूक्ष्म । स्थूल नापा जा सकता है, इसलिए मूर्त कहलाता है और सूक्ष्म नापा नहीं जा सकता इसलिए अमूर्त कहलाता है ।।१०।।

विज्ञान भाष्य—पहले प्रकार के काल की कल्पना भी नहीं हो सकती, क्योंकि न तो यही मालूम है कि वह कब से आरंभ हुआ और न यही मालूम होगा कि उसका अन्त कब होगा । यह अखंड और व्यापक है; परन्तु इसके बीच में ही अथवा इसके उपस्थित रहते ही लोक का अन्त हो जाता है, ब्रह्मा उत्पन्न होते, सृष्टि रचते तथा लय करते हैं, परन्तु काल बना ही रहता है । इसलिए इसको लोकों का अन्त कर देनेवाला, नाश कर देनेवाला, कहते हैं । इसीलिए मृत्यु को भी काल कहते हैं ।

काल का जो थोड़ा-सा मध्य भाग जाना जा सकता है; उसमें भी जो बहुत छोटा है वह नापा नहीं जा सकता है और अमूर्त कहलाता है । नापने में जितनी ही सूक्ष्मता होगी अमूर्त काल की परिभाषा भी नयी होती जायगी; जैसा कि अगले श्लोक की व्याख्या में दिखाया जायगा ।

प्राणादिः कथितो मूर्तः त्रुट्याद्योऽमूर्तसंज्ञकः ।
षड्भिःप्राणैः विनाड़ी स्यात्तत्षष्ट्या नाड़िका स्मृता ।।११।।
नाड़ी षष्ट्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम् ।
तत्त्रिंशता भवेन्मासः सावनोऽर्कोदयैःस्मृतः ।।१२।।
ऐन्दवस्तिथिभिः तद्वत्सङ्क्रान्त्या सौर उच्यते ।
मासैर्द्वादशभिर्वर्ष दिव्यं तदह उच्यते ।।१३।।

अनुवाद—प्राण से लेकर ऊपर की जितती समय की इकाइयाँ हैं वह मूर्त

†वेंकटेश्वर प्रेस का १९५३ वि० का छपा सूर्य सिद्धान्त, पृष्ठ ७ ।

कहलाती हैं और त्रुटि से लेकर प्राण के नीचे की इकाइयों को अमूर्त कहते हैं। ६ प्राणों की एक विनाड़ी (पल) तथा ६० विनाड़ियों की एक नाड़ी (घड़ी) होती है ॥ ११ ॥ ६० नाड़ियों का एक नाक्षत्र अहोरात्र (दिन रात का एक जोड़ा) तथा ३० नाक्षत्र अहोरात्रों का एक नाक्षत्र मास होता है। इसी प्रकार ३० सावन दिनों का एक सावन मास होता है ॥ १२ ॥ उसी प्रकार ३० चान्द्र तिथियों का एक चान्द्रमास तथा एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति तक के समय को सौरमास कहते हैं। १२ मासों का एक वर्ष होता है; जिसको* दिव्यदिन अथवा देवताओं का दिन कहते हैं।

विज्ञान भाष्य—स्वस्थ मनुष्य सुख से बैठा हुआ हो तो जितने समय में वह सहज ही हवा (प्राण वायु) भीतर खींचता और बाहर निकालता है उस समय को प्राण कहते हैं। यही सबसे छोटी इकाई है, जो उस समय नापी जा सकती थी। इससे कम समय के नापने का कोई साधन उस समय नहीं था; इसलिए उसको अमूर्त कहते थे। अब ऐसी घड़ियाँ बनायी जाती हैं जिनसे उस इकाई का भी नापना सहज है जो अमूर्त कही गयी हैं। एक नाक्षत्र दिन में ६० घड़ी=६०×६० पल=६०×६०×६० प्राण अथवा २१६०० प्राण होते हैं। इसी तरह १ दिन में २४ घंटे=२४×६० मिनट=२४×६०×६० सेकंड अथवा ८६४०० सेकंड होते हैं। इसलिए १ प्राण में ४ सेकंड होते हैं। जिस घड़ी में सेकंड जानने की सुई लगी रहती है उससे सेकंड का नापना कितना सहज है, यह सबको विदित है। ऐसी घड़ियाँ भी हैं जिनसे १ सेकंड का पांचवाँ अथवा दसवां भाग सहज ही जाना जा सकता है। परन्तु १ सेकंड का दसवां भाग १ प्राण के चालीसवें भाग के समान है। इसलिए आजकल प्राण के नीचे की कुछ इकाइयाँ भी मूर्त कही जा सकती हैं।

प्राण को असु भी कहते हैं। प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य जी सिद्धान्त-शिरोमणि में प्राण की दूसरी परिभाषा छन्द-शास्त्र के शब्दों में यों देते हैं—एक गुरु अक्षर के उच्चारण करने में जितना समय लगता है उसके दस गुने समय को प्राण कहते हैं। सानुस्वार, विसर्गान्त, दीर्घ और जिस लघु अक्षर के पीछे कोई संयुक्ताक्षर हो उसको गुरु अक्षर कहते हैं।

पल तोलने की एक इकाई का भी नाम है, जो चार तोले के समान होता है।

---

*इस शब्द से यह प्रकट होता है कि जिन १२ मासों का वर्ष होता है वह सौर-मास हैं। चांद्र, नाक्षत्र अथवा सावन मासों का वर्ष नहीं होता है।

जितने समय में १ पल अथवा ४ तोला जल एक विशेष नाप के छिद्र द्वारा घटिका[1] यंत्र में चढ़ता है उस समय को पल कहते हैं।

त्रुटि की कल्पना भास्कराचार्य जी ने[2] इस प्रकार की है। जितने समय में पलक गिरती है उसको निमेष कहते हैं। १ निमेष के तीसवें भाग को तत्पर तथा १ तत्पर के सौवें भाग को त्रुटि कहते हैं। निमेष के ऊपर की इकाइयों का सम्बन्ध यह है :—

१८ निमेष = १ काष्ठा

३० काष्ठा = १ कला

३० कला = १ घटिका

२ घटिका = १ मुहूर्त

३० मुहूर्त = १ दिन (नाक्षत्र)

इस प्रकार १ नाक्षत्र दिन = ३० × २ × ३० × ३० × १८ निमेष

= ९७२००० निमेष

पहले दिखलाया गया है कि १ दिन में २१६०० प्राण अथवा ८६४०० सेकंड होते हैं इसलिए १ प्राण में $\frac{९७२०००}{२१६००}$ निमेष अथवा ४५ निमेष और १ सेकंड में ११$\frac{१}{४}$ निमेष होते हैं।

नाक्षत्र अहोरात्र—नक्षत्र का अर्थ है तारा, तारा-समूह तथा उस चक्र का २७वाँ भाग जिस पर सूर्य एक वर्ष में एक परिक्रमा करता हुआ दीख पड़ता है। पृथ्वी की दैनिक गति के कारण आकाश के सब तारे पूरब में उदय हो कर ऊपर उठते, पश्चिम की ओर बढ़ते, पश्चिम में अस्त होते और फिर पूरब में उदय होते हैं। किसी तारे के उदय का समय घड़ी में देखकर लिख लीजिये और देखिए कि वह तारा फिर कब उदय होता है। यदि घड़ी ठीक हो तो इन दोनों उदयों के बीच का समय २३ घंटा ५६ मिनट और ४ सेकंड के लगभग होता है। इसी को नाक्षत्र अहोरात्र या केवल नाक्षत्र दिन कहते हैं। यह सदा एक-सा होता है, घटता बढ़ता नहीं, यदि तारों के बहुत सूक्ष्म गति का विचार न किया जाय। इसलिए ज्योतिषी लोग इसीसे समय का हिसाब लगाते हैं।

सावन दिन—सूर्य के एक उदय से लेकर दूसरे उदय तक के समय को सावन दिन कहते हैं। यह नाक्षत्र दिन से कोई ४ मिनट बड़ा होता है। सावन दिन का

---

१. इसका विशेष विवरण ज्योतिषोपनिषत नामक १३वें अध्याय में किया जायगा।

२. सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय मध्यमाधिकार, काल मानाध्याय श्लोक १६, १७।

मान समान नहीं होता। इसलिए मध्यम सावन दिन का जो मान होता है वही समय घड़ियों के द्वारा जाना जाता है।

ऐन्दव तिथि या चान्द्र तिथि—चन्द्रमा आकाश में चक्कर लगाता हुआ जिस समय सूर्य के बहुत पास पहुँचता है उस समय अमावस्या होती है। एक अमावस्या से दूसरी अमावस्या तक के समय को चान्द्रमास कहते हैं। इसका मध्यम मान २९·५३०५८७९४६ मध्यम सावन दिन का होता है। अमावास्या के बाद चन्द्रमा सूर्य से आगे पूर्व की ओर बढ़ता जाता है और जब १२ अंश आगे हो जाता है तब पहली तिथि (परिवा) बीतती है, १२ अंश से २४ अंश तक का जब अन्तर रहता है तब दूइज रहती है। २४ अंश से ३६ अंश तक जब चन्द्रमा सूर्य से आगे रहता है तब तीज रहती है। जब अन्तर १७८ से १८० अंश तक होता है तब पूर्णिमा होती है, १८० अंश से १९२ अंश तक जब चन्द्रमा आगे रहता है तब १६वीं तिथि अथवा परिवा (प्रतिपदा) होती है, १९२° से २०४° तक दूइज होती है, इत्यादि। पूर्णिमा के बाद चन्द्रमा सूर्यास्त से प्रति दिन कोई २ घड़ी (४८ मिनट) पीछे निकलता है। पूर्णिमा से अमावस्या तक के १४, १५ दिन को कृष्णपक्ष कहते हैं। अमावस्या को ३०वीं तिथि भी कहते हैं, इसीलिए पंचांगों में अमावस्या के लिए ३० लिखते हैं।

सौरमास—सूर्य जिस मार्ग से चलता हुआ आकाश में परिक्रमा करता है उसको क्रांतिवृत्त कहते हैं। इसके बारहवें भाग को राशि कहते हैं। सूर्यमंडल का केन्द्र जिस समय एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करता है उस समय दूसरी राशि की संक्रान्ति होती है। एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति तक के समय को सौरमास कहते हैं। १२ सौर मास परिमाण में भिन्न-भिन्न होते हैं; इसका कारण यह है कि सूर्य की गति सर्वदा समान नहीं होती। जब सूर्य की गति तीव्र होती है तब वह एक राशि को जल्दी पूरा कर लेता है और वह सौरमास छोटा होता है। इसके प्रतिकूल जब सूर्य की गति मन्द होती है तब सौरमास बड़ा होता है।

वर्ष—जितने प्रकार के महीने होते हैं उतने ही प्रकार के वर्ष होते हैं, बारह चान्द्र मासों का एक चान्द्रवर्ष, १२ सावन मासों का एक सावनवर्ष तथा बारह सौरमासों का एक सौरवर्ष होता है। हमारे ज्योतिषी परम्परा से यही मानते आये हैं। परन्तु १३वें श्लोक में दूसरे पद का सीधा अर्थ यह है कि १२ मासों का वर्ष होता है, जिसको दिव्यदिन कहते हैं। इसलिए जिन बारह मासों का वर्ष कहा गया है वह अन्य मास नहीं हैं, केवल सौरमास हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि सूर्य सिद्धान्त में केवल सौर वर्ष की चर्चा है और सौर वर्ष को ही वर्ष माना गया है, अन्य को नहीं।

दिव्यदिन—पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव पर देवताओं के रहने का तथा दक्षिणी ध्रुव पर राक्षसों के रहने का स्थान बतलाया गया है। इसलिए उत्तरी ध्रुव को देवलोक तथा दक्षिणी ध्रुव को असुरलोक कहते हैं। जिस समय सूर्य विषुववृत्त पर आता है उस समय दिन और रात समान होते हैं। यह घटना वर्ष में केवल दो बार होती है। ६ महीने तक सूर्य विषुववृत्त के उत्तर तथा ६ महीने तक दक्षिण रहता है। पहली छमाही में उत्तर गोल में दिन बड़ा और रात छोटी तथा दक्षिण गोल में दिन छोटा और रात बड़ी होती है। दूसरी छमाही में ठीक इसका उलटा होता है। परन्तु जब सूर्य विषुववृत्त के उत्तर रहता है तब वह उत्तरी ध्रुव पर (सुमेरु पर्वत पर) ६ महीने तक सदा दिखाई देता है और दक्षिणी ध्रुव पर इस समय में नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए इस छमाही को देवताओं का दिन तथा राक्षसों की रात कहते हैं। जब सूर्य ६ महीने तक विषुववृत्त के दक्खिन रहता है तब उत्तरी ध्रुव पर देवताओं को नहीं देख पड़ता और राक्षसों को ६ महीने तक दक्षिणी ध्रुव पर बराबर देख पड़ता है। इसलिए इस छमाही को देवताओं की रात और असुरों का दिन कहा गया है। इसलिए हमारे १२ महीने देवताओं अथवा राक्षसों के एक अहोरात्र के समान होते हैं।

सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात्।
षट् षष्टिसङ्गुणं दिव्यं वर्षमासुरमेव च ॥१४॥

अनुवाद—जो देवताओं का दिन होता है वही असुरों की रात होती है और जो देवताओं की रात होती है वह असुरों का दिन कहलाता है। यही देवता या असुर के अहोरात्र का ६०×६ गुना दिव्य या असुर वर्ष कहलाता है।

विज्ञान भाष्य—जैसे ३६० सावन दिन के एक सावन वर्ष की कल्पना की गयी है उसी प्रकार ३६० दिव्य दिन का एक दिव्य वर्ष माना गया है। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि हमारे ३६० वर्षों का देवताओं का एक वर्ष होता है।

तद्द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम्।
सूर्याब्दसंख्यया द्वित्रिसागरैरयुताहतैः ॥१५॥
सन्ध्यासन्ध्यांशसहितं विज्ञेयं तच्चतुर्युगम्।
कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया ॥१६॥
युगस्य दशमो भागः चतुस्त्रिद्व्येक सङ्गुणः।
क्रमात्कृतयुगादीनां षष्ठांऽशः सन्ध्ययोः स्वकः ॥१७॥

अनुवाद—इन बारह हजार दिव्य वर्षों का एक चतुर्युग होता है जिसकी संख्या सौर वर्षों में तैंतालीस लाख बीस हजार (४३२००००) होती है। इसमें संध्या और संध्यांश के वर्ष भी मिले हुए हैं। एक चतुर्युग में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और

कलियुग चार युग होते हैं; जिनके मान धर्म के चरणों के अनुसार होते हैं। चतुर्युग के दसवें भाग का चार गुना सत्ययुग, तीन गुना त्रेता, दो गुना द्वापर और एक गुना कलियुग होता है। प्रत्येक युग के छठें भाग के समान उसकी दोनों संध्याएँ होती हैं ॥ १५-१७ ॥

विज्ञान-भाष्य—१४वें श्लोक में बतलाया गया है कि सुरों या असुरों के ३६० दिन का एक दिव्य वर्ष होता है। तेरहवें श्लोक में बतलाया गया है कि देवताओं का एक दिन एक सौर वर्ष के समान होता है इसलिए यह स्पष्ट है कि देवताओं का एक वर्ष ३६० सौर वर्षों के समान हुआ। १५वें श्लोक के अनुसार १२००० दिव्य वर्षों का अथवा १२०००×३६० (अर्थात् ४३२००००) सौर वर्षों का एक चतुर्युग होता है। चतुर्युग को महायुग भी कहते हैं। एक महायुग में चार युग सत्ययुग; त्रेता, द्वापर और कलियुग होते हैं इसीलिए इसको चतुर्युग भी कहते हैं। सत्ययुग में धर्म चार चरण होता है, त्रेता में तीन चरण, द्वापर में दो चरण और कलियुग में एक चरण। इसी तरह एक महायुग में सत्ययुग चार भाग, त्रेता तीन भाग, द्वापर दो भाग और कलियुग एक भाग होता है। इसलिए

			दिव्य वर्षों में	सौर वर्षों में
दोनों संध्याओं सहित	सत्ययुग	का मान हुआ	४८००	१७२८०००
,,	त्रेता	,,	३६००	१२९६०००
,,	द्वापर	,,	२४००	८६४०००
,,	कलियुग	,,	१२००	४३२०००
	महायुग		१२०००	४३२००००

प्रत्येक युग की दोनों सन्ध्याएँ उसके छठें भाग के समान होती हैं इसलिए एक संध्या (सन्धि-काल) बारहवें भाग के समान हुई। युग के आदि में जो संध्या होती है उसको आदि संध्या और अन्त में जो संध्या होती है उसको संध्यांश कहते हैं। इनके मान यह हुए :—

			दिव्य वर्षों में	सौर वर्षों में
सत्ययुग की आदि वा अन्त संध्या			४००	१४४०००
त्रेता की	,,	,,	३००	१०८०००
द्वापर की	,,	,,	२००	७२०००
कलियुग की	,,	,,	१००	३६०००

जैसे एक, अहोरात्र में प्रातः और सायं दो संध्याएँ होती हैं वैसे ही चतुर्युग के प्रत्येक युग में दो संध्याएँ होती हैं, एक आरम्भ में और एक अन्त में।

युगानां सप्ततिस्सैका मन्वन्तरमिहोच्यते।
कृताब्दसङ्ख्या तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः ॥१८॥
ससन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश।
कृतप्रमाणः कल्पादौ संधिः पञ्चदश स्मृताः ॥१९॥

अनुवाद—७१ महायुगों का एक मन्वन्तर होता है, जिसके अंत में सत्ययुग के समान संध्या होती है। इसी संध्या में जलप्लव होता है। संधि सहित १४ मन्वन्तरों का एक कल्प होता है, जिसके आदि में भी सत्ययुग के समान एक संध्या होती है; इसलिए एक कल्प में १४ मन्वन्तर और १५ सत्ययुग के समान संध्याएँ हुईं ॥१८-१९॥

विज्ञान भाष्य—चतुर्युग के प्रत्येक युग में दो संध्याएँ मानी गयी हैं; परन्तु मन्वन्तर के केवल अंत में एक संध्या मानी गयी है जिसका मान सत्ययुग के समान होता है। १ मन्वन्तर ७१ महायुगों का अर्थात् ७१×४३२०००० = ३०६७२०००० सौरवर्षों का होता है। प्रत्येक मन्वन्तर के अंत में १७२८००० सौर वर्षों की एक संध्या होती है तथा कल्प के आदि में भी इसीके समान एक संध्या होती है। इस प्रकार

१ कल्प = १४ मन्वन्तर + १५ सत्ययुग के समान संध्याएँ

= १४×७१ महायुग + १५ सत्ययुग

= ९९४ महायुग + $\frac{१५ \times ४}{१०}$ महायुग [क्योंकि सत्ययुग = महायुग का $\frac{४}{१०}$]

= ९९४ + ६ महायुग

= १००० महायुग

अथवा = १०००×१२००० = १२०००००० दिव्य वर्ष

अथवा = १०००×४३२०००० = ४३२०००००० सौर वर्ष

महायुग अथवा मन्वन्तर के यह मान मनुस्मृति इत्यादि धर्मशास्त्रों से मिलते हैं; परन्तु आर्यभट ने अपने आर्यभटीय में युगों के मान कुछ भिन्न दिये हैं। इनके अनुसार १ कल्प में १४ मनु और १ मनु में ७२ चतुर्युग के प्रत्येक युग सत्ययुग त्रेता, द्वापर और कलियुग समान[1] होते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आर्यभट के अनुसार एक कल्प में १४×७२ = १००८ चतुर्युग होते हैं।

---

१. देखिये २३वें श्लोक का विज्ञान भाष्य।

इत्थं युगसहस्रेण भूतसंहारकारक: ।
कल्पो ब्राह्ममह: प्रोक्तं शर्वरी तस्य तावती ॥२०॥

अनुवाद—इस प्रकार एक हज़ार महायुग का एक कल्प होता है जो ब्रह्मा के एक दिन के समान है। इतने ही समय की ब्रह्मा की एक रात होती है, जिसमें सृष्टि का लय हो जाता है ॥ २० ॥

विज्ञान भाष्य—ब्रह्मा के दिन और रात का बहुत ही अच्छा चित्र भगवान कृष्ण ने श्री मद्भगवत्गीता में आठवें अध्याय में यों किया है :—

"सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदु: ।
रात्रिं युगसहस्रां तां तेऽहोरात्रविदो जना: ॥ १७ ॥
अव्यक्ताद् व्यक्तय: सर्वा: प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके ॥ १८ ॥
भूतग्राम: स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवश: पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥

अर्थात् "(१७) अहोरात्र को (तत्वत:) जाननेवाले पुरुष समझते हैं कि (कृत, त्रेता, द्वापर और कलि इन चार युगों का महायुग होता है और ऐसे) हजार महायुगों का समय ब्रह्मदेव का एक दिन होता है और ऐसे ही हजार युगों की (उसकी) एक रात्रि होती है।

(१८) 'ब्रह्मदेव के दिन का आरंभ होने पर अव्यक्त से सब व्यक्त (पदार्थ) निर्मित होते हैं और रात्रि होने पर उसी पूर्वोक्त अव्यक्त में लीन हो जाते हैं। (१९) हे पार्थ ! भूतों का यही समुदाय (इस प्रकार) बार-बार उत्पन्न होकर अवश होता हुआ, अर्थात् इच्छा हो या न हो रात होते ही लीन हो जाता है और दिन होने पर (फिर) जन्म लेता है।"*

परमायुश्शतं तस्य तयाऽहोरात्रसङ्ख्यया।
आयुषोऽर्धमितं तस्य शेषात्कल्पोऽयमादिम: ॥ २१ ॥
कल्पादस्माच्च मनव: षड् व्यतीतावससंधय: ।
वैवस्वतस्य च मनो: युगानां त्रिघनो गत: ॥ २२ ॥
अष्टाविंशाद्युगादस्माद्यातमेकं कृतं युगम् ।
अत: कालं प्रसंख्याय सङ्ख्यामेकत्र पिण्डयेत् ॥ २३ ॥

अनुवाद—(२१) ब्रह्मा की आयु उन्हीं के दिन-मान से सौ वर्ष की होती है। इस समय ब्रह्मा की आधी आयु बीत चुकी है, शेष आधी आयु का यह पहला कल्प

*गीता रहस्य पृष्ठ ७३४. ७३५

है। (२२) इस कल्प के संधियों सहित ६ मनु बीत गये हैं और सातवें मनु वैवस्वत के २७ महायुग बीत गये हैं, तथा (२३) अठाईसवें महायुग का सत्ययुग बीत गया है; इसलिए काल गणना के लिए इतनी संख्याओं को एकत्र कर लेना चाहिये ॥ २१-२३॥

विज्ञान भाष्य—आयु का परिमाण सौ वर्ष का माना गया है। मनुष्य की परम आयु सौ सौर वर्षों की होती है, देवता की आयु सौ दिव्य वर्षों की होती है और एक दिव्य वर्ष ३६० सौर वर्षों का होता है। इसी तरह ब्रह्मा की आयु सौ ब्राह्म वर्षों की समझनी चाहिये। एक ब्राह्म वर्ष ३६० ब्राह्म दिनों का और एक ब्राह्म दिन (अहोरात्र) दो कल्प अथवा २००० महायुगों का होता है। इस गणना से ब्रह्मा के ५० वर्ष बीत गये हैं, इक्यावनवें वर्ष का पहला दिन (कल्प) आरंभ हो गया है जिसके संधियों सहित ६ मनु, २७ महायुग और २८वें महायुग का सत्ययुग बीत गया है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि यह बात सत्ययुग के अंत में कही जा रही है; जैसा कि दूसरे श्लोक के 'अल्पावशिष्टेतु कृते'* इत्यादि से प्रकट है। इस गणना से वर्तमान कल्प के आरम्भ से २८ वें महायुग के सत्ययुग के अन्त तक का समय यों निकलता है :—

		सौ वर्षों में
कल्प की आदि संध्या	=	१७,२८,०००
६ मन्वन्तर=६ × ३०,६७,२०,०००	=	१,८४,०३,२०,०००
६ मन्वन्तरों की ६ संध्याएँ		
=६×१७,२८,०००	=	१,०३,६८,०००
सातवें मन्वन्तर के २७ महायुग	=	
=२७×४३,२०,०००	=	११,६६,४०,०००
२८वें महायुग का सत्ययुग	=	१७,२८,०००
∴ कल्प के आरम्भ से वर्तमान महायुग के सत्ययुग के अन्त तक का समय	=	१,९७,०७,८४,०००

इस समय १९७९ वि० में कलियुग के ५०२३ वर्ष बीते हैं; इसलिए यदि कल्प के आरम्भ से अब तक का समय जानना हो तो ऊपर सत्ययुग के अन्त तक के सौर वर्षों में त्रेता के १२,९६,००० सौर वर्ष, द्वापर के ८, ६४,००० सौर वर्ष तथा कलियुग के ५०२३ वर्ष और जोड़ देने चाहिये। इस प्रकार कल्प के आरम्भ से अब तक का समय हुआ १, ९७, २९, ४९, ०२३ सौर वर्ष। संकल्प के मंत्र में समय की गणना इसी प्रकार की गई है जिसका समय संबन्धी भाग यह है :—

*देखिये १९वें श्लोक का विज्ञान भाष्य

प्रवर्तमानस्याद्य ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे श्री श्वेतवाराह कल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशति तमे कलियुगे कलि प्रथम चरणे···बौद्धावतारे वर्तमानेऽस्मिन् वर्तमान् संवत्सरेऽमुकनाम वत्सरेऽमुकायने अमुक ऋतौ अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुक-वासरे अमुकनक्षत्रे संयुक्ते चन्द्रे···तिथौ···।

आर्यभट के मत से कल्प के आरम्भ से कलियुग के आरम्भ तक का समय

$=$ ६ मनु $+$ २७ चतुर्युग $+ \frac{३}{४}$ चतुर्युग†

$=$ ६ $\times$ ७२ $+$ २७ $+ \frac{३}{४}$ चतुर्युग

$=$ ४३२ $+$ २७ $+ \frac{३}{४}$ चतुर्युग

$=$ ४५९$\frac{३}{४}$ $\times$ ४३, २०,००० सौर वर्ष

$=$ (४६० $- \frac{१}{४}$) $\times$ ४३, २०,००० ”

$=$ १,९८,७२,००,००० — १०,८०,००० सौर वर्ष

$=$ १,९८,६१,२०,००० सौर वर्ष ।

इसमें यदि ५०२३ वर्ष और जोड़ दिये जायँ तो १९७९ वि० में कल्प के आरम्भ से जितने सौर वर्ष बीते हैं वह निकल आवेंगे। ब्रह्मगुप्त भास्कराचार्य इत्यादि ने आर्यभट के इस मत को नहीं माना है। उनके मत से कल्प के आरम्भ से अब तक की सौर वर्षों की संख्या वही आती है, जो सूर्य सिद्धान्त के अनुसार आती है।

बीते हुए ६ मन्वन्तरों के नाम हैं—(१) स्वायम्भुव, (२) स्वारोचिष, (३) औत्तमि, (४) तामस, (५) रैवत और (६) चाक्षुष। वर्तमान मन्वन्तर का नाम वैवस्वत है। वर्तमान कल्प को श्वेत-वाराह-कल्प कहते हैं।

ग्रहर्क्षदेवदैत्यादिसृजतोस्य चराचरम् ।
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शतघ्ना वेधसो गताः ॥२४॥

अनुवाद—ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य, मनुष्य, पशु, पक्षी, पर्वत, वृक्ष इत्यादि चराचर जगत के बनाने में ब्रह्मा को ४७,४०० दिव्य वर्ष अथवा ४७,४०० $\times$ ३६० $=$ १,७०,६४,००० सौर वर्ष लग गये। (इसलिए कल्प के आदि से इतने समय के बाद सारी सृष्टि तैयार हुई) ॥ २४ ॥

विज्ञान भाष्य—सूर्य सिद्धान्त का यह मत है कि कल्प के आदि में सृष्टि की रचना नहीं थी। इसके लिए ब्रह्मा को १,७०,६४,००० सौर वर्ष लगाने पड़े थे।

---

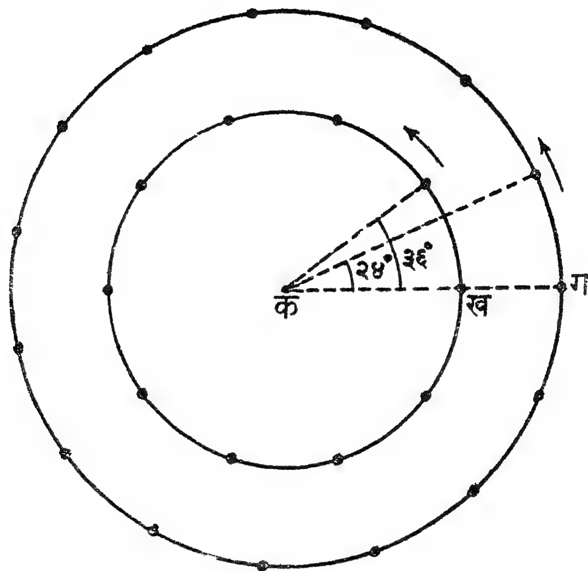
†काहो मनवोढ (१४) मनुयुग श्ख (७२) गतास्ते च (६) मनुयुग छ्ना (२७) च। कल्पादेर्युगपादा ग (३) च गुरु दिवसाच्च भारतात्पूर्वम् ॥ ३ ॥ आर्य-भटीय प्रथम पाद, बा० उदयनारायण सिंह द्वारा संपादित।

दूसरे आर्यभट का भी यही मत है; परन्तु ब्रह्मगुप्त भास्कराचार्य इत्यादि के गणित से जान पड़ता है कि इनको यह मत मान्य नहीं था, क्योंकि इन्होंने ग्रहों का स्थान जानने के लिए कल्प के आदि से गणना की है; परन्तु सूर्य सिद्धान्त ने सृष्टि के तैयार होने में जितना समय लगा है उसको ग्रह गणित में छोड़ दिया है।

पश्चाद्व्रजन्तोऽतिजवान्नक्षत्रैस्सततं ग्रहाः।
नीयमानाश्च लम्बन्ते तुल्यमेव स्वमार्गगाः ॥२५॥
प्राग्गतित्वमतस्तेषां भगणैः प्रत्यहं गतिः।
परिणाहवशाद्भिन्नाः तद्वशाद्भानि भुञ्जते ॥२६॥
शीघ्रगस्स्वर्क्षमल्पेन कालेन महताऽल्पगः।
तेषां तु परिवर्तेन पौष्णान्ते भगणास्स्मृतः ॥२७॥

अनुवाद—(२५) शीघ्रगामी नक्षत्रों के साथ सदैव पश्चिम की ओर चलते हुए ग्रह अपनी-अपनी कक्षा में समान परिमाण में हारकर पीछे रह जाते हैं; (२६) इसलिए वह पूर्व की ओर चलते हुए देख पड़ते हैं और कक्षाओं की परिधि के अनुसार उनकी दैनिक गति भी भिन्न देख पड़ती है; इसलिए नक्षत्र चक्र को भी यह भिन्न समय में अर्थात् (२७) शीघ्र चलनेवाले थोड़े समय में और कम चलने वाले बहुत समय में पूरा करते हैं। रेवती के अंत में पूरे होनेवाले चक्र को भगण कहते हैं ॥२५—२७॥

विज्ञान भाष्य—इन तीन श्लोकों में ग्रहों की गति का सिद्धान्त बतलाया गया है; इसलिए यह बड़े महत्व के श्लोक हैं। इनसे संक्षेप में यह पता चलता है कि भारत के प्राचीन ज्योतिषी ग्रहों के बारे में क्या विचार रखते थे। २५वें श्लोक में बतलाया गया है कि आकाश में जितने तारे देख पड़ते हैं वह सब ग्रहों के साथ पश्चिम की ओर जा रहे हैं; परन्तु नक्षत्रों के बहुत शीघ्र चलने के कारण ग्रह पीछे रह जाते हैं और इसीसे पूर्व की ओर चलते हुए देख पड़ते हैं। इनकी पूरब की ओर बढ़ने की चाल तो समान है, परन्तु इनकी कक्षाओं का विस्तार भिन्न होने से इनकी गति भी भिन्न देख पड़ती है। इसका रहस्य आगे के चित्र से प्रकट होगा—मान लीजिये कि दिये हुए चित्र में भीतरी वृत्त १० इंच का और बाहरी १५ इंच का है और मान लीजिये कि ख और ग स्थानों से, जो क केन्द्र की सीध में हैं दो चींटियां १ इंच प्रति सेकंड की चाल से भीतरी और बाहरी वृत्त की परिक्रमा करने को चलती हैं; तो यह स्पष्ट है कि बाहरी वृत्त पर चलनेवाली चींटी एक् परिक्रमा १५ सेकंड में और भीतरी वृत्त पर चलने वाली चींटी एक परिक्रमा १० सेकंड में कर डालेगी। इससे यह सिद्ध हुआ कि समान रेखात्मक गति से चलने पर भिन्न-भिन्न आकार की कक्षा का चक्कर भिन्न-भिन्न समय में होगा। परन्तु २७वें श्लोक में



चित्र १

कहा गया है कि शीघ्र चलनेवाले ग्रह थोड़े काल में तथा मंद चलने वाले ग्रह अधिक काल में चक्कर पूरा करते हैं। यहाँ कुछ विरोध जान पड़ता है, परन्तु यह विरोध नहीं है; क्योंकि पहले श्लोक में जो समान गति बतलायी गई है वह योजनात्मक गति है और इस श्लोक में गति का मान कोणात्मक (Angular velocity) है। एक चक्कर ३६० अंशों का होता है; इसलिए बाहरी वृत्त का एक इंच, केन्द्र पर $\frac{३६०}{१५}$°=२४° का कोण बनाता है और भीतरी वृत्त का एक इंच $\frac{३६०}{१०}$=३६° का कोण बनाता है। इसलिए यद्यपि चींटियों की रेखात्मक (rectilinear) गति १ इंच प्रति सेकंड होने से समान है यद्यपि इनकी कोणात्मक गति प्रति सेकंड भिन्न है। बाहरी चींटी प्रति सेकंड २४° तथा भीतरी ३६° चलती है। इसलिए यह स्पष्ट है कि शीघ्र चलनेवाली कम समय में तथा मंद चलनेवाली अधिक समय में चक्कर पूरा करेगी।

२७वें श्लोक में भगण की परिभाषा भी दी गयी है। रेवती नक्षत्र के अंत से आरम्भ करके पूरब की ओर बढ़ता हुआ जब ग्रह एक चक्कर लगाकर फिर वहीं रेवती के अत में आ जाता है तब वह एक भगण (नक्षत्र गण जो २७ हैं) पूरा करता है। इसलिए भगण को चक्कर भी कहते हैं।

इस सिद्धान्त के अनुसार यह मानना पड़ेगा कि ग्रहों की दूरी और उनके भगण-काल में एक विशेष सम्बन्ध है। जो ग्रह जितना ही दूर है उसका भगण काल (चक्कर लगाने का समय) उतना ही अधिक है। यह सम्बन्ध यहाँ बहुत संक्षेप में बतला दिया जाता है। इसकी पूरी व्याख्या भारतीय तथा पाश्चात्य ज्योतिषियों के सिद्धान्तों की तुलना करते हुए भूगोलाध्याय नामक बारहवें अध्याय में की जायगी।

जब सभी ग्रहों की रेखात्मक गतियाँ समान मान ली जायं तब यह सहज ही सिद्ध हो सकता है कि ग्रहों की दूरियों का परस्पर सम्बन्ध क्या है; क्योंकि यह जानना तो कुछ कठिन नहीं है कि कौन ग्रह कितने दिन में एक चक्कर लगा लेता है। जब यह मालूम हो गया कि शनि एक चक्कर स्थूल रीति से ३० वर्ष में लगाता है और सूर्य १ वर्ष में और दोनों की रेखात्मक गतियाँ समान हैं तब यह स्वयंसिद्ध है कि सूर्य की कक्षा की ३० गुनी शनि की कक्षा है; क्योंकि ३० वर्ष में सूर्य अपनी कक्षा का ३० गुना चलता है और शनि अपनी कक्षा को केवल एक ही बार पूरा कर पाता है। इसलिए शनि की कक्षा = ३० × सूर्य की कक्षा। अर्थात् पृथ्वी से शनि की दूरी, सूर्य की दूरी की ३० गुनी है। इसी प्रकार और ग्रहों की दूरी भी जानी जा सकती है।

आजकल की गवेषणाओं से जाना गया है कि ग्रहों की परस्पर दूरियों का सम्बन्ध इतना सरल नहीं है और न इनकी रेखात्मक गति ही समान है। अब तो यह सिद्ध होता है कि पृथ्वी से जितनी सूर्य की दूरी है उसका लगभग १० गुना शनि पृथ्वी से दूर है।

विकलानां कला षष्ट्या तत् षष्ट्या भाग उच्यते।
तत्त्रिंशता भवेद्राशिः भगणो द्वादशैव ते ॥ २८ ॥

अनुवाद—६० विकलाओं की एक कला, ६० कलाओं का एक भाग या अंश, ३० भागों या अंशों की एक राशि तथा १२ राशियों का एक भगण होता है ॥२८॥

विज्ञान भाष्य—यह कोण नापने की इकाइयां हैं। पूरे नक्षत्रचक्र को भगण कहते हैं। यदि इस चक्कर के १२ समान भाग किये जायं तो प्रत्येक भाग को राशि कहते हैं। राशि के तीसवें भाग को अंश, अंश के साठवें भाग को कला तथा कला के साठवें भाग को विकला कहते हैं। इनमें से भगण और राशि का प्रयोग तो केवल उस आकाश-स्थित चक्र के लिए होता है जिसके तल (plane) में सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ देख पड़ता है और अन्य ग्रह इधर उधर कुछ हटकर परिक्रमा करते हैं। परन्तु अंश, कला और विकला का प्रयोग अन्य कोणों के नापने में भी किया जाता है। आजकल अंश को संक्षेप में लिखने की रीति यह है कि अंश का परिमाण बतलाने वाले अंक के ऊपर तनिक-सा दाहिने हटकर एक छोटा-सा वृत्त

लिख देते हैं, कला लिखने के लिए अंक के ऊपर कुछ दाहिने हटकर बायें हाथ को झुकती हुई एक टेढ़ी रेखा छोटी-सी खींच देते हैं और विकला के लिए उसी प्रकार की दो तिरछी रेखाएं खींच देते हैं; जैसे ५ अंश १६ कला और ५० विकला लिखना हो तो ५°१६′५०″ यों लिखते हैं।

कोण और समय नापने की इकाइयों में घनिष्ट सम्बन्ध है। सूर्य जितने समय में एक भगण पूरा करता है वह एक वर्ष, जितने समय में एक राशि चलता है वह एक मास, जितने समय में एक अंश चलता है वह एक दिन, जितने समय में एक कला चलता है वह एक घड़ी और जितने समय में एक विकला चलता है वह पल के प्रायः समान होता है।

युगे सूर्यज्ञशुक्राणां खचतुष्करदार्णवाः।
कुजार्किगुरुशीघ्राणां भगणाः पूर्वयायिनाम् ॥ २९ ॥
इन्दो रसाग्नि त्रित्रीषुसप्तभूधरमार्गणाः।
दस्रत्र्यष्टरसाङ्काक्षिलोचनानि कुजस्य तु ॥ ३० ॥
बुधशीघ्रस्य शून्यर्तुखाद्रित्र्यङ्कनगेन्दवः।
बृहस्पतेः खदस्राक्षिवेदषड्वह्नयस्तथा ॥ ३१ ॥
सितशीघ्रस्य षट्सप्तत्रियमाश्विखभूधराः।
शनेर्भुजङ्गषट्पञ्चरसवेदनिशाकराः ॥३२ ॥
चन्द्रोच्चस्याग्निशून्याश्विवसुसर्पार्णवा युगे।
वामं पातस्य वस्वग्नियमाश्विशिखिदस्रकाः ॥ ३३ ॥

अनुवाद—(२९) एक (महा) युग में पूर्वाभिमुख चलनेवाले सूर्य, बुध और शुक्र के ४३,२०,००० भगण, मंगल, शनि और वृहस्पति के शीघ्रों के भी उतने ही भगण, (३०), चन्द्रमा के ५,७७,५३,३३६ भगण, मंगल के २२,९६,८३२ भगण (३१) बुधशीघ्र के १७९,३७,०६० भगण, वृहस्पति के ३,६४,२२० भगण. (३२) शुक्रशीघ्र के ७०,२२,३७६ भगण, शनि के १,४६,५६८ भगण और (३३) चन्द्रोच्च के ४, ८८,२०३ भगण तथा बायीं (पच्छिम की) ओर चलने वाले चन्द्रपात के २,३२,२३८ भगण होते हैं ॥२९–३३॥

विज्ञान भाष्य—इस जगह यह बतला देना अच्छा होगा कि हमारे यहाँ संख्या लिखने की पुरानी परिपाटी क्या है। एक, दो,तीन, चार इत्यादि अंकों को पद्य में लिखने के लिए कुछ शब्द नियत कर लिये गये हैं। वही या उनके पर्याय पद्य में 'अंकानां वामतो गतिः' नियम के अनुसार क्रम से रख दिये जाते हैं अर्थात् इकाई के स्थान में लिखे जाने वाले अंक का सूचक शब्द पहले, फिर दहाई के स्थान में लिखे

जाने वाले अंक का सूचक शब्द, फिर सैकड़े के स्थान में लिखे जाने वाले अंक का सूचक शब्द क्रम से रख दिये जाते हैं। जैसे ३२५ कहना हुआ तो पहले ५ का सूचक कोई शब्द पंच, इषु, मार्गण इत्यादि लिखकर उसके पीछे २ का सूचक कोई शब्द द्वि, अश्वि, यम इत्यादि लिखा जाता है, फिर ३ का सूचक त्रि, अग्नि, शिखि इत्यादि लिखा जाता है। इस तरह ३२५ को हम पंचाश्विशिखि या इषुयमाग्नि लिख सकते हैं। सूर्य सिद्धान्त, ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त तथा सिद्धान्त-शिरोमणि में संख्याओं के लिखने की यही परिपाटी है। प्रथम आर्यभट के आर्यभटीय तथा दूसरे आर्यभट के महा-सिद्धान्त में संख्या लिखने की रीतियां इससे भिन्न हैं।

एक महायुग में ग्रहों के जितने भगण होते हैं वह सूर्य सिद्धान्त के अनुसार ऊपर दिये गये हैं। आर्यभट तथा ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्तों के अनुसार महायुगीय भगणों के मानों में कुछ अंतर है तथा आजकल सूक्ष्मयंत्रों की सहायता से भगणों के जो मान जाने गये हैं वह भी किसी सिद्धान्त के अनुसार नहीं मिलते वरन् थोड़ी सी भिन्नता रखते हैं। अगले पृष्ठ में हम सूर्य सिद्धान्त, ब्रह्मगुप्त-सिद्धान्त तथा आधुनिक भगण-कालों के मान तुलनात्मक दृष्टि से देते हैं, जिनसे यह प्रकट होगा कि हमारे प्राचीन ज्योतिषियों के निकाले हुए भगण काल में और आजकल के सूक्ष्मयंत्रों के द्वारा निकाले हुए भगण काल में कितना कम अंतर है। जितने समय में किसी ग्रह का एक भगण या चक्कर पूरा होता है उसको भगण काल कहते हैं। इसके निकालने की रीति सिद्धान्त के अनुसार यह है कि एक महायुग में जितने भगण उस ग्रह के होते हैं उससे महायुग के सौर वर्षों में भाग दे दीजिये तो १ भगण काल (सौर वर्षों में) निकल आवेगा। अब इसको चाहे आप दशमलव भिन्न में लिखिये और चाहे सावन दिनों में। सावन दिनों में भगणकाल निकालने के लिए सबसे सुगम रीति यह है कि महायुग में जितने सावन दिन हों उनमें महायुगीय भगण का भाग दे दीजिये, जितनी लब्धि आवे वह सावन दिन है। शेष की घड़ी, पल, विपल इत्यादि बना लीजिये। जैसे १ घड़ी में ६० पल होते हैं वैसे ही १ पल में ६० विपल की तथा १ विपल में ६० प्रतिविपल की भी कल्पना की जा सकती है।

इन श्लोकों में जिन नये शब्दों का प्रयोग हुआ है वह हैं ग्रह-शीघ्र, चन्द्रोच्च और पात। इन शब्दों को समझने के लिए पहले हमको अपने ऋषियों की उन कल्पनाओं का ज्ञान होना चाहिये जिन्हें उन्होंने ग्रहों की चाल के सम्बन्ध में मान रखी थीं। उन्होंने पृथ्वी को अचल समझा था और सूर्य, चन्द्रमा, ग्रहों और नक्षत्रों को पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए समझा था। परन्तु इतने से ही ग्रहों की गतियों का हिसाब ठीक-ठीक नहीं निकलता था; इसलिए उन्होंने ग्रहशीघ्रों की कल्पना की थी। वह यह तो देखते ही थे कि दो ग्रह बुध और शुक्र सूर्य के आसपास ही रहते हैं; इसलिए

ग्रहों के भगणकाल का कोष्टक

ग्रह	सूर्यसिद्धान्त के अनुसार				ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त के अनुसार				आधुनिक खोज के अनुसार			
	दिन	घड़ी	पल	विपल	दिन	घड़ी	पल	विपल	दिन	घड़ी	पल	विपल
रवि	३६५	१५	३१	३१.४	३६५	१५	३०	२२.५	३६५	१५	२२	५६.८७
चंद्र	२७	१६	१८	१.६	२७	१६	१८	० २५	२७	१६	१७	५८.८६६
चंद्रोच्च	३२३२	५	३७	१३.६	३२३२	४४	२	४५	३२३२	३४	३१	१४.०८८
चन्द्रपात या राहु	६७९४	२३	५६	२३.५	६७९२	१५	१४	१४.७	६७९८	१६	४४	२४.०००
बुध	८७	५८	१०	५५७	८७	५८	११	४३.७	८७	५८	९	२४.९८९
शुक्र	२२४	४१	५४	५०.६	२२४	४१	५२	३४.७	२२४	४२	२	४७.४८६
मंगल	६८६	५९	५०	५.८७	६८६	५२	५२	३३.७	६८६	५८	४६	२.५१८
गुरु	४३३२	१९	१४	२०.९	४३३२	१४	२४	१९.२	४३३२	३५	५	१७.४९
शनि	१०७६५	४६	२३	४.१	१०७६५	४८	५४	५१.२	१०७५९	१३	१०	५७.४९

—मराठी के भारतीय ज्योतिःशास्त्र पृ० २०३ से उद्धृत ।

इनका स्थान जानने के लिए सबसे पहले यह जानना चाहिये कि सूर्य कहाँ है। सूर्य का स्थान जान लेने पर यह निश्चय हो जाता है कि बुध सूर्य से या तो २८[१] अंश के लगभग आगे होगा या पीछे और शुक्र सूर्य से या तो ४७[२] अंश के लगभग आगे होगा या पीछे। इसीलिए २९वें श्लोक में सूर्य, बुध और शुक्र का महायुगीय भगण समान बतलाया गया है। परन्तु यह जानने के लिए कि बुध या शुक्र सूर्य से कितना आगे या पीछे है बिना इनके शीघ्रों या शीघ्रोच्चों के स्थानों के जाने काम नहीं चल सकता। इनके शीघ्रोच्चों के भगण काल उस समय के समान हैं जितने समय में आजकल के मतानुसार बुध या शुक्र सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इसलिए बुध या शुक्र के शीघ्रोच्च के भगण काल से उस समय को समझना चाहिये जितने समय में यह नक्षत्र चक्र की परिक्रमा नहीं, वरन सूर्य की परिक्रमा करते हैं। मंगल, गुरु और शनि के शीघ्रोच्चों की बात उपर्युक्त दो ग्रहों के शीघ्रोच्चों से न्यारी है। इनके शीघ्रों का भगण काल वही माना गया है जो सूर्य का है। इसका अर्थ यह हुआ कि मंगल, गुरु और शनि के शीघ्रोच्च वह बिन्दु हैं जो १ वर्ष में पूरे नक्षत्र चक्र की परिक्रमा कर आते हैं। किन्तु सूर्य भी १ वर्ष में नक्षत्र चक्र की एक परिक्रमा कर लेता है; इसलिए मंगल, गुरु और शनि के शीघ्रोच्च सूर्य के पास ही रहते हैं। इन शीघ्रोच्चों के संबंध में दूसरे अध्याय में विशेष चर्चा की जायगी।

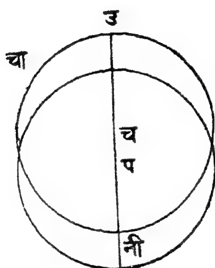
मन्दोच्च अथवा उच्च—ऊपर बतलाया गया है कि चन्द्रमा का उच्च एक महायुग में ४,८८,२०३ भगण करता है, इसलिए एक भगणकाल सूर्य सिद्धान्त के मत से ३२३२ सावन दिन, ५ घड़ी, ३७ पल और १३·६ विपल होता है। चन्द्रमा का उच्च चन्द्रकक्षा का वह बिन्दु है जो पृथ्वी से चन्द्र-कक्षा के अन्य विन्दुओं की अपेक्षा सबसे अधिक दूरी पर है। जब चन्द्रमा इस विन्दु पर रहता है तब बहुत दूर होने के कारण आकार से अत्यन्त छोटा देख पड़ता है और गति भी बहुत मंद होती है। चन्द्र-कक्षा में चन्द्रोच्च से १८०° पर एक विन्दु ऐसा भी है जो पृथ्वी के बहुत पास है। जब चन्द्रमा इस विन्दु पर आता है तब उसकी गति सबसे तीव्र हो जाती है और बहुत पास होने के कारण आकार भी बहुत बड़ा देख पड़ता है। चन्द्रमा की इस विषम गति के कारण यह सहज ही नहीं बतलाया जा सकता कि किसी समय उसका स्थान क्या होगा। ऊपर यह भी

---

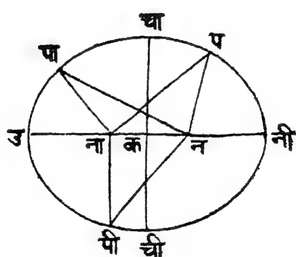
१. बुध का सूर्य से महत्तम अन्तर १६° १२′ और २८° ४८′ के बीच होता है।

२. शुक्र का सूर्य से महत्तम अन्तर ४७° से अधिक नहीं होता। (Outlines of Astronomy by Herschel pp. 281 and 291)

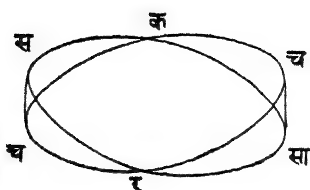
बतलाया गया है कि चन्द्रमा का भगण काल २७.३२१६७ मध्यम सावन दिन का होता है। इससे चन्द्रमा का जो स्थान निकलता है वह मध्यम स्थान कहलाता है। इस मध्यम-स्थान से चन्द्रमा कभी कुछ आगे और कभी कुछ पीछे देख पड़ता है। चन्द्रमा प्रत्यक्ष जिस स्थान पर देखा जाता है उसको स्पष्ट स्थान कहते हैं। मध्यम स्थान से स्पष्ट स्थान का सबसे अधिक अन्तर ५°२′ ३०″ होता है। इतने कोण की जो ज्या (sine) होती है उसी के समान अन्तर पर पृथ्वी से चन्द्र-कक्षा का केन्द्र माना गया है और चन्द्रमा इसी केन्द्र की परिक्रमा करता हुआ पृथ्वी के चारों ओर घूमता हुआ देख पड़ता है। चित्र २ में प पृथ्वी का केन्द्र है, च चन्द्र-कक्षा का केन्द्र है और पच



चित्र २



चित्र ३



चित्र ४

५°२′ ३०″ की ज्या है। चन्द्रमा उ चा नी वृत्त पर घूमता हुआ पृथ्वी की परिक्रमा करता है। यह स्पष्ट है कि जब चन्द्रमा उ पर होता है तब वह प से अत्यन्त अधिक दूरी पर रहता है और जब नी पर रहता है तब अत्यन्त निकट रहता है। उ को चन्द्रोच्च (apogee) तथा नी को नीच (perigee) कहते हैं। यह उ बिन्दु

आकाश में एक ही जगह स्थिर नहीं रहता वरन् मन्दगति से पूरब की ओर बढ़ता रहता है। चन्द्रमा का उच्च १ चक्कर प्राय: ३२३२ सावन दिनों में कर लेता है। अन्य ग्रहों के उच्च या मन्दोच्च और भी मंदगति से पूरब की ओर बढ़ते हैं। आज-कल इस कल्पना से काम नहीं लिया जाता। गणित से यह सिद्ध किया गया है कि चन्द्रमा पृथ्वी की और पृथ्वी तथा अन्य ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं और परिक्रमा करने का मार्ग वृत्ताकार नहीं वरन् दीर्घ-वृत्ताकार है। इस सम्बन्ध में कुछ कहने के पहिले दीर्घ-वृत्त के कुछ गुणों का बतला देना आवश्यक है। उ चा नी एक दीर्घ-वृत्त का चित्र है (चित्र ३)। उ नी को दीर्घ अक्ष तथा चा ची को लघु अक्ष कहते हैं और इन दोनों अक्षों के मिलने के विन्दु क को दीर्घ वृत्त का केन्द्र कहते हैं। केन्द्र पर लघु अक्ष तथा दीर्घ अक्ष के दो समान भाग हो जाते हैं। दीर्घ अक्ष पर केन्द्र से समान दूरी पर न ना दो ऐसे बिन्दु होते हैं जिनको यदि दीर्घ-वृत्त के किसी बिन्दु प, पा या पी से मिला दिया जाय तो प न+पना=पान+पाना=पीन+पीना। न, ना बिन्दुओं को दीर्घवृत्त की नाभि कहते हैं। यदि उ चा नी चन्द्र-कक्षा मान लिया जाय तो पृथ्वी का स्थान न होगा। न से चन्द्र कक्षा की दूरी उ बिन्दु पर सबसे अधिक तथा नी बिन्दु पर सबसे कम है, इसलिए उ विन्दु चन्द्रमा का उच्च या मन्दोच्च कहलायेगा और नी बिन्दु चन्द्रमा का नीच। यदि मन्दोच्च का स्थान ज्ञात हो तो नीच का स्थान सहज ही जाना जा सकता है, क्योंकि यह सदैव उच्च से १८०° पर रहता है।

इसी प्रकार पृथ्वी, मङ्गल, बुध, शुक्र इत्यादि भी दीर्घवृत्त में सूर्य की परिक्रमा करते हैं और सूर्य इन कक्षा-वृत्तों की नाभि पर रहता है। उच्च स्थान पर गति बहुत मंद और नीच स्थान पर बहुत तीव्र क्यों होती है, इसका कारण आकर्षण शक्ति की घटती-बढ़ती है। जब ग्रह उच्च पर रहता है तब उसका अंतर अत्यन्त अधिक होने के कारण आकर्षण शक्ति अत्यन्त कम होती है, जिससे ग्रह की गति मंद पड़ जाती है और जब वह नीच पर होता है तब अंतर अत्यन्त कम होने से आकर्षण शक्ति अत्यन्त अधिक होती है, जिससे ग्रह की गति बहुत तीव्र हो जाती है। इसके सम्बन्ध में कई नियम जाने गये हैं, जो केपलर के सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध हैं; जिनकी चर्चा स्पष्टाधिकार नामक दूसरे अध्याय में उचित स्थान पर की जायगी।

पात—सूर्य जिस मार्ग पर चलता हुआ १ वर्ष में आकाश का चक्कर लगाता हुआ जान पड़ता है, उसको क्रान्ति-वृत्त कहते हैं। इसी तरह चन्द्रमा, जिस मार्ग पर चलता हुआ पृथ्वी की परिक्रमा लगाता है उसको चन्द्र-कक्षा कहते हैं। क्रान्ति-वृत्त और चन्द्र-कक्षा एक ही तल पर नहीं हैं और समानान्तर भी नहीं हैं; इसलिए यह दोनों कक्षाएँ एक दूसरे से दो विन्दुओं पर मिलती हुई जान पड़ती हैं; जैसे दो उड़ती हुई पतंगों की डोरियाँ एक दूसरी से बहुत दूर रहती हुई भी एक विन्दु पर मिलती

हुई जान पड़ती हैं और उन पतंगों की गतियों में भिन्नता होने से यह विन्दु एक ही दिशा में नहीं देख पड़ता। इन्हीं विन्दुओं को चन्द्रमा के पात कहते हैं। चन्द्रमा अपनी कक्षा में चलता हुआ आधे भ्रमण काल तक क्रान्तिवृत्त के उत्तर और आधे भ्रमण काल तक क्रान्तिवृत्त के दक्खिन रहता है। जब वह अपने पात पर पहुँचता है तब या तो वह क्रान्तिवृत्त से उत्तर की ओर बढ़ता है और/या दक्खिन की ओर। जिस पात पर पहुँच कर वह उत्तर की ओर जाता है उसे उत्तर पात (Ascending node) और जिस पात पर पहुँच कर वह दक्खिन की ओर जाता है उसे दक्खिन पात (Descending node) कहते हैं। उत्तर पात को राहु तथा दक्खिन पात को केतु भी कहते हैं। जब चन्द्रमा पूर्णमासी या अमावस्या के समय इन्हीं पातों के पास होता है तब चन्द्र-ग्रहण या सूर्य-ग्रहण लगता है; इसीलिए यह कल्पना हो गयी कि राहु और केतु राक्षस हैं, जो ग्रहण के कारण होते हैं। कुछ लोग पृथ्वी की छाया की नोक को राहु और चन्द्रमा की छाया की नोक को केतु मानते हैं; परन्तु यह भ्रम है।

इन पातों के स्थान भी स्थिर नहीं हैं वरन् पश्चिम की ओर खिसकते हुए जान पड़ते हैं। जितने समय में यह पश्चिम की ओर खिसकते हुए एक परिक्रमा कर लेते हैं उतने समय को इनका भगण-काल कहते हैं। इसी तरह अन्य ग्रहों के पातों के बारे में समझ लेना चाहिये। यह पश्चिम की ओर क्यों खिसकते हैं, इसका कारण भौतिक ज्योतिर्विज्ञान (Physical Astronomy) में बहुत ही सूक्ष्मगणित के द्वारा समझाया गया है, जो उचित स्थान पर इस विज्ञान भाष्य में भी समझाया जायगा। चित्र ४ में यदि स र सा क को सूर्य का मार्ग अर्थात् क्रान्तिवृत्त समझा जाय और च र चा क को चन्द्रकक्षा तो र और क विन्दु चन्द्रमा के पात कहलाते हैं। चन्द्रमा तीर की दिशा में भ्रमण करता हुआ जब र पात से आगे बढ़ता है तब क्रान्तिवृत्त से उत्तर हो जाता है और र चा क भाग तक उत्तर रहता है, इसलिए र पात को उत्तर पात कहते हैं। क विन्दु पर पहुँच कर चन्द्रमा क्रान्तिवृत्त से दक्खिन जाता है, इसलिए क दक्खिन पात कहा जाता है। भारतीय ज्योतिषी चन्द्रमा के उत्तर पात को राहु तथा दक्षिण पात को केतु कहते हैं। चा र सा कोण क्रान्तिवृत्त और चन्द्रकक्षा के तलों के बीच का कोण है, जिसका मान ५° के लगभग है। इसी कोण को चंद्रमा का विक्षेप कहते हैं, जिसकी चर्चा इसी अध्याय के ६८वें श्लोक में की गयी है।

यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि ऊपर जो भगण काल दिये हुए हैं वह कैसे जाने गये और भिन्न-भिन्न मतों में अन्तर क्यों है। इसका उत्तर भास्कराचार्य जी के मतानुसार यों है :—

सातु तत्तद्भाषाकुशलेन तत्तत् क्षेत्रसंस्थानज्ञेन श्रुत गोलेनैव श्रोतुं शक्यते, नान्येन। ग्रह मन्द शीघ्रोच्च पाताः स्व स्वमार्गेषु गच्छन्तः एतावतः पर्य्ययान् कल्पे

कुर्व्वन्तीत्यत्रागम एव प्रमाणम् । स चागमो महता कालेन लेखकाध्यापकाध्येतृ दोषैर्बहुधा जातः; तदा कतमस्य प्रामाण्यम् ? अथ यद्येवमुच्यते गणितस्कन्ध उपपत्तिमानेवागमः प्रमाणम् । उपपत्या ये सिध्यन्ति भगणास्ते ग्राह्याः । तदपि न । यतोऽतिप्राज्ञेन पुरुषेणोपपत्तिर्ज्ञातुमेव शक्यते । न तया तेषां भगणानामियत्ता कर्त्तुं शक्यते; पुरुषायुषोऽल्पत्वात् । उपपत्तौ तु ग्रहः प्रत्यहं यन्त्रेण वेध्यः, भगणान्तं यावत् । एव शनैश्चरस्य तावद्वर्षाणां त्रिशता भगणः पूर्य्यते । मन्दोच्चानान्तु वर्षशतैरनेकैः । अतो नायमर्थः पुरुषसाध्य इति । अत एवातिप्राज्ञा गणकाः साम्प्रतोपलब्ध्यनुसारिणं प्रौढ़गणकस्वीकृतं कमप्यागममङ्गीकृत्य ग्रहगणित आत्मनो गणितगोलयोर्निरतिशयं कौशलं दर्शयितुं तथाऽन्यैर्भ्रान्ति ज्ञानेनान्यथोदितानर्थांश्च निराकर्त्तुमन्यान् ग्रन्थान् रचयन्ति । ग्रह गणित इति कर्तव्यतायामस्माभिः कौशलं दर्शनायं भवत्वागमो योऽपिको ऽप्ययमाशयस्तेषाम् ।*

अर्थ—किन्तु यह रीति केवल वही जान सकता है जिसने (ज्योतिःशास्त्र की) विशेष भाषा में कुशलता प्राप्त की हो, नक्षत्रादि के स्थानों को जानता हो और जिसने भूगोल खगोल के बारे में अच्छी तरह सुना हो । अपने अपने मार्गों में जाते हुए ग्रह, मन्दोच्च, शीघ्रोच्च तथा पात एक कल्प में इतने भगण करते हैं, इसका प्रमाण आगम अर्थात् परम्परागत ज्ञान ही है । किन्तु अधिक समय बीतने के कारण लेखकों, अध्यापकों तथा पढ़ने वालों की भूल से आगम अनेक हो गये हैं ! इसलिए प्रश्न होता है कि कौन-सा आगम प्रमाण माना जाय । यदि ऐसा कहा जाय कि जो आगम गणित के अनुसार खरा सिद्ध हो उसी को प्रमाण मानकर जो भगण निकले वही माने जायँ तो यह भी ठीक नहीं है । क्योंकि अत्यन्त ज्ञानी पुरुष भी केवल रीति के ही जानने में समर्थ हो सकता है; परन्तु रीति से ग्रहों के भगण की संख्या नहीं निकाल सकता । कारण यह है कि मनुष्य की आयु बहुत थोड़ी होती है और उपपत्ति जानने के लिए ग्रह को प्रतिदिन बेध करना होता है, जब तक कि भगण पूरा न हो । इस तरह शनिश्चर का एक भगण ३० वर्षों में पूरा होता है । मन्दोच्चों के भगण तो अनेक शताब्दियों में पूरे होते हैं । इसलिए यह कार्य पुरुषसाध्य नहीं है । इसलिए बुद्धिमान गणक किसी ऐसे आगम को मानकर जो उस समय ठीक समझा जाता हो और जिसको प्रतिष्ठाप्राप्त गणक ने स्वीकार कर लिया हो, अपनी गणित तथा गोल सम्बन्धी ग्रहों की गणना की कुशलता दिखाने के लिए तथा भ्रमवश जो कुछ अनर्थकारी दोष आ गये हैं उनके दूर करने के लिए, दूसरे ग्रंथ बनाते हैं । उनका यह अभिप्राय है कि हमको ग्रहों की ठीक गणना करने में कुशलता दिखानी चाहिये, आगम चाहे जो हो ।

*सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृ० १६-१७ (कलकत्ते का छपा । द्वितीय संस्करण)

सूर्य, बुध और शुक्र के भगण के सम्बन्ध में भास्कराचार्य जी कहते हैं कि कल्प में जितने वर्ष होते हैं उतने ही सूर्य के भगण होते हैं। इसलिए सूर्य का भगण काल ही वर्ष है। बुध और शुक्र रवि के पास कभी कुछ आगे और कभी कुछ पीछे सदा अनुचर की तरह रहते हैं। इसलिए इनके भगण भी रवि भगण के समान हुए।

सूर्य का भगण काल जानने के लिए यह युक्ति बतलायी गयी है—

समतल भूमि में एक वृत्त खींचकर उसमें दिशाओं के चिह्न लगा लो। जब सूर्य उत्तरायण हो तब जिस दिन वह पूर्व दिशा से कुछ ही दक्षिण होकर उदय हो उस दिन वृत्त के मध्य में गड़ी हुई कील के द्वारा उदय होते हुए सूर्य को बेध लो। इसके बाद एक वर्ष तक सूर्य के उदय की गणना करनी चाहिये। एक वर्ष में ३६५ बार उदय होगा। अन्तिम उदय पहले दिन के उदय-स्थान के कुछ दक्षिण होगा। इन दोनों में अन्तर हो वह लिख लो। दूसरे दिन फिर उदय होते हुए सूर्य को बेध करो। इस दिन यह पूर्व दिशा से कुछ उत्तर हो कर उदय होगा। पिछले दिन के उदय स्थान से कितना उत्तर होकर उदय होता है इसको भी जान लो। फिर अनुपात के द्वारा यह जान लो कि जब ६० घड़ी में इतना उत्तर बढ़ता है तब पहला अन्तर कितने समय में हुआ होगा। इस प्रकार १५ घड़ी ३० पल २२ विपल ३० प्रति-विपल और ३६५ सावन दिनों में सूर्य का उदय उसी स्थान पर होता है जिस स्थान पर वर्ष के आरम्भ में हुआ था। इसलिए यही समय सूर्य का भगण काल हुआ। फिर अनुपात के द्वारा यह जान लो कि जब १ वर्ष में उतने सावन दिन होते हैं तब १ कल्प वर्षों में कितने सावन दिन होते हैं, इत्यादि।

आजकल वसन्त-सम्पात जानने के लिए जो रीति काम में लायी जाती है उससे भास्कराचार्य जी की बतलायी हुई रीति बहुत कुछ मिलती है। अन्तर यह है कि भास्कराचार्य जी ने क्षितिजवृत्त पर बेध करने को कहा है और आजकल याम्योत्तर-वृत्त पर बेध किया जाता है, जिससे लम्बन और प्रकाश वक्रीभवन के कारण कोई भूल नहीं हो सकती; दूसरा अंतर यह पड़ता है कि आजकल के यन्त्र बहुत सूक्ष्म हैं पर भास्कराचार्य की बतलायी हुई रीति में कोरी आँख से ही काम लिया गया है।

चन्द्र भगण की उपपत्ति भी गोल यन्त्र के द्वारा जिसमें नक्षत्र-चक्र, क्रान्तिवृत्त, विषुवद्वृत्त, चंद्रकक्षा, ग्रहकक्षा इत्यादि बने रहते हैं, बेध करके जानना चाहिये। इसका वर्णन बहुत विस्तार के साथ करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। यह केवल इसलिए लिखा गया है कि प्राचीन ज्योतिषी भी बेध के द्वारा ग्रन्थ में दी हुई बातों की परीक्षा करते थे और जो ठीक निकलता था उसी को मानते थे।

चन्द्रोच्च का भगणकाल जानने की रीति

प्रतिदिन गोल यंत्र के द्वारा चंद्रमा का वेध करके स्पष्ट गति निकालनी चाहिये। जिस दिन गति सबसे कम हो उस दिन मध्यम और स्पष्ट चन्द्रमा के स्थानों में अंतर नहीं होता। यही चंद्रमा के उच्च का स्थान है। इसी प्रकार प्रतिदिन वेध करते-करते जब चन्द्रमा की गति फिर परम अल्प हो तब उसी स्थान को उच्च समझना चाहिये। यह स्थान पहले स्थान से कुछ आगे रहता है। कितना आगे हो जाता है यह जानकर अनुपात के द्वारा यह गणित कर लेना चाहिये कि उच्च की दैनिक गति कितनी होती है तथा एक भगण काल कितने दिन में पूरा होता है।

चन्द्रपात का भगण काल जानने की रीति—प्रति दिन चन्द्रमा का वेध करते हुए यह देखना चाहिये कि किस दिन चन्द्रमा का दक्षिण विक्षेप कम होते-होते शून्य हो जाता है। जिस समय विक्षेप शून्य हो उस समय चन्द्रमापात स्थान पर होता है। इसी प्रकार जब दूसरे चक्कर में चंद्रमा का दक्षिण विक्षेप कम होते-होते शून्य हो जाय तब समझना चाहिये कि वह अपने पात पर पहुँच गया। दूसरी बार पात का स्थान पहले स्थान से कुछ पश्चिम होता है, इसीलिए यह कहा जाता है कि पात की गति विलोम होती है अर्थात् पश्चिम की ओर होती है। फिर अनुपात के द्वारा जानना चाहिये कि जब इतने दिन में पात इतना चलता है तो एक दिन में कितना चलेगा। यही पात की दैनिक गति समझनी चाहिये। इसी प्रकार यह भी जानना चाहिये कि एक कल्प में कितने भगण होते हैं।

मंगल, गुरु और शनि के शीघ्रोच्चों के सम्बन्ध में—जब सूर्य, शनि, गुरु या मंगल से आगे रहता है तब ग्रह मध्यम स्थान से कुछ आगे रहते हैं और जब सूर्य पीछे रहता है तब ग्रह मध्यम स्थान से पीछे रहते हैं; इसलिए विद्वानों ने यह कल्पना की कि इन तीनों के शीघ्रोच्च सूर्य के साथ ही रहते हैं और ग्रहों को अपनी ओर अर्थात् सूर्य की ओर आकर्षित करते हैं; इसलिए इनके शीघ्रोच्चों के भगण सूर्य के समान होते हैं।

भानामष्टाक्षिवस्वद्रित्रिद्विद्व्यष्टशरेन्दवः।
भोदया भगणैः स्वैः स्वैरूनाः स्वस्वोदया युगे ॥३४॥

अनुवाद—१ महायुग में नक्षत्रों के १,५८,२२,३७,८२८ भगण होते हैं। किसी ग्रह के महायुगीय भगण को नक्षत्र के महायुगीय भगण में से घटा देने से जो बचता है उतने ही बार एक महायुग में वह ग्रह पूर्व क्षितिज में उदय होता है ॥३४॥

विज्ञान भाष्य—१२वें श्लोक के विज्ञान भाष्य में नाक्षत्र-अहोरात्र की परिभाषा दी गयी है। एक नाक्षत्र-अहोरात्र में तारे पश्चिम की ओर चलते हुए एक

परिक्रमा कर लेते हैं। इसी परिक्रमा को नाक्षत्र भगण कहते हैं। इसलिए एक महायुग में जितने नाक्षत्र भगण होते हैं उतने ही नाक्षत्र-अहोरात्र होते हैं।

ऊपर के श्लोक के पिछले भाग में यह जानने की रीति बतलायी गयी है कि एक महायुग में कौन ग्रह कितने बार पूर्वक्षितिज में उदय होता है। एक महायुग में ग्रह के जितने भगण होते हों उसको एक महायुग के नाक्षत्र भगण की संख्या से घटा दो; शेष जो संख्या होगी उतने ही बार वह ग्रह एक महायुग में पूर्व-क्षितिज में उदय होगा। मान लो कि यह जानना है कि सूर्य पूर्व-क्षितिज में एक महायुग में कितनी बार उदय होता है। २९वें श्लोक में बतलाया गया है कि सूर्य एक महायुग में ४३,२०,००० भगण करता है। इसको यदि महायुगीय नाक्षत्र भगण १,५८,२२,३७,८२८ में से घटा दिया जाय तो शेष १,५७,७९,१७,८२८ होता है। इतने ही बार सूर्य पूर्व क्षितिज में एक महायुग में उदय होता है। परन्तु १२वें श्लोक के विज्ञान-भाष्य में यह बतलाया गया है कि सूर्य के एक उदय से दूसरे उदय तक के समय को सावन दिन कहते हैं। इसलिए ३४वें श्लोक के अनुसार १ महायुग में १,५७,७९,१७,८२८ सावन दिन होते हैं।

इसी तरह और ग्रहों के उदय की संख्या भी जानी जा सकती है। इसकी उपपत्ति यह है:—यदि किसी दिन सूर्य किसी तारे के साथ उदय हो तो दूसरे दिन वह तारा सूर्य से कोई ३ मिनट ५६ सेकंड पहले उदय होता है। क्योंकि इतने समय में सूर्य कोई एक अंश पूर्व की ओर चला जाता है। तीसरे दिन वह तारा सूर्य से ३ मिनट ५६ सेकंड के दूने समय अर्थात् ७ मिनट ५२ सेकंड पहले उदय होगा, चौथे दिन उसके तिगुने समय पहले और १६वें दिन उसके १५गुने समय पहले अर्थात् ५९ मिनट वा १ मिनट कम १ घंटा पहले वह तारा उदय होगा। इस तरह पिछड़ते पिछड़ते ३६१वें दिन अर्थात् ३६० नाक्षत्र दिन बाद वह तारा सूर्य से २४ मिनट कम २४ घंटे पहले और ३६६ नाक्षत्र दिन बाद पूरे २४ घंटे अर्थात् १ दिन पहले उदय होगा जब कि सूर्य और वह तारा फिर साथ हो जावेंगे। इसलिए जितने समय में नक्षत्र ३६६ भगण करता है उतने समय में सूर्य १ बार कम उदय होता है और एक भगण पूरा करता है। इसलिए सूर्य एक भगण काल में (१ सौर वर्ष में) ३६६—१ बार उदय होता है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के उदय के बारे में समझना चाहिये।

भवन्ति शशिनो मासाः सूर्येन्दुभगणान्तरम्।
रविमासोनितास्ते तु शेषाः स्युरधिमासकाः ॥३५॥

अनुवाद—सूर्य और चन्द्रमा के महायुगीय भगणों का जो अंतर होता है

उतने ही चान्द्र मास एक महायुग में होते हैं। एक महायुग में जितने सौर मास होते हैं उनकी संख्या को महायुगीय चान्द्र मासों की संख्या से घटा देने पर शेष अधिमासों की संख्या होती है ॥३५॥

विज्ञान भाष्य—जिस समय सूर्य और चन्द्रमा की युति होती है उस समय को अमावस्या कहते हैं। इस समय चन्द्रमा और सूर्य बहुत पास होते हैं। एक अमावस्या से दूसरी अमावस्या तक के समय को चान्द्र-मास कहते हैं। इसलिए यदि यह जानना हो कि एक महायुग में कितने चान्द्र मास होते हैं तो पहले यह जानना चाहिये कि एक महायुग में सूर्य और चन्द्रमा की युति कितने बार होती है। इसके लिए सूर्य और चन्द्रमा के महायुगीय भगणों का अंतर निकाल लेना पर्याप्त है। क्योंकि यह बात सहज ही जानी जा सकती है कि यदि दो लड़के किसी गोल मैदान का चक्कर लगाने लगें और यदि एक लड़का घन्टे में ५ चक्कर लगाता हो और दूसरा ३ तो दोनों यदि एक ही स्थान से एक ही समय दौड़ना आरंभ करें तो घन्टे भर में दोनों लड़के ५—३=२ बार एक दूसरे से मिलेंगे। इसके लिए घड़ी की घण्टा और मिनट बतलाने वाली सुइयों की चाल का उदाहरण बहुत उपयुक्त है। बारह बजे दोनों सुइयाँ एक दूसरे से मिली रहती हैं अर्थात् दोनों की युति रहती है। इसके बाद दोनों चक्कर लगाना आरम्भ करती हैं और १ बज कर ५$\frac{५}{११}$ मिनट पर पहले पहल मिलती हैं। दूसरी बार वे २ बज कर १०$\frac{१०}{११}$ मिनट पर, तीसरी बार ३ बज कर १६$\frac{४}{११}$ मिनट पर, चौथी बार ४ बज कर २१$\frac{९}{११}$ मिनट पर, पांचवीं बार ५ बज कर २७$\frac{३}{११}$ मिनट पर, छठी बार ६ बज कर ३२$\frac{८}{११}$ मिनट पर, सतवीं बार ७ बज कर ३८$\frac{२}{११}$ मिनट घर, आठवीं बार ८ बज कर ४३$\frac{७}{११}$ मिनट पर, ९ वीं बार ९ बज कर ४९$\frac{१}{११}$ मिनट पर दसवीं बार १० बज कर ५४$\frac{६}{११}$ मिनट पर और ११ वीं बार ठीक बारह बजे मिलेंगी। इन ग्यारह युतियों के लिए मिनट वाली सुई को १२ चक्कर और घण्टे वाली सुई को १ चक्कर लगाना पड़ा। इसलिए युतियों की संख्या दोनों के चक्करों का अंतर (१२—१) हुई। इसी प्रकार महायुगीय चांद्र-मासों को संख्या

=महायुगीय चन्द्र-भगण—महायुगीय सूर्य-भगण

=५,७७,५३,३३६—४३,२०,०००

=५,३४,३३,३३६

अधिमास—मासों की गणना चान्द्र मास से और वर्षों की गणना सौर वर्ष से होती है। एक सौर वर्ष में १२ सौर मास तथा ३६५·२५८७५ मध्यम सावन दिन होते हैं परन्तु १२ चांद्रमास ३५४·३६७०५ मध्यम सावन दिन का होता है; इसलिए

१२ चान्द्रमासों का वर्ष सौर वर्ष से १०·८९१७० मध्यम सावन दिन छोटा होता है; इसलिए कोई तैंतीस महीने में यह अन्तर एक चान्द्रमास के समान हो जाता है। जिस सौर वर्ष में यह अंतर १ चांद्रमास के समान हो जाता है उस सौर वर्ष में १३ चांद्रमास होते हैं। तब एक चान्द्रमास अधिमास या मलमास के नाम से छोड़ दिया जाता है। यदि ऐसा न किया जाय तो चांद्र मास के अनुसार मनाये जानेवाले त्योहार, पर्व इत्यादि भिन्न-भिन्न ऋतुओं में मुसलमानी त्यौहारों की तरह पड़ने लगें। ऊपर के श्लोक में यह बतलाया गया है कि एक महायुग में जितने सौरमास होते हैं उनसे चांद्रमासों की संख्या जितनी अधिक हो उतने ही चांद्रमास अधिमास के नाम से छोड़ दिये जायँगे। इसलिए एक महायुग में अधिमासों की संख्या।

=महायुगीय चांद्रमास—महायुगीय सौरमास

=(५,३४,३३,३३६—४३,२०,०००)×१२

=१५,९३,३३६

सावनाहानि चान्द्रेभ्यो द्युभ्यः प्रोज्झ्य तिथिक्षयाः।
उदयादुदयं भानोर्भूमिसावनवासराः॥ ३६॥

अनुवाद—एक महायुग में जितनी चान्द्र तिथियाँ होती हैं उस संख्या में से महायुग के सावन दिनों की संख्या घटाने से उन तिथियों की संख्या निकल आती है जो क्षय होती है अर्थात् जिनकी गणना नहीं की जाती। सूर्य के एक उदय से दूसरे उदय के बीच के समय को भूमिसावन दिन कहते हैं॥३६॥

विज्ञान भाष्य—एक चांद्रमास में ३० तिथियाँ होती हैं इसलिए यदि महायुगीय चांद्रमासों की संख्या को ३० से गुणा कर दिया जाय तो एक महायुग में कितनी तिथियाँ होती हैं यह मालूम हो जाय। यह पहले ही बतलाया गया है कि एक महायुग में कितने सावन दिन होते हैं और एक सावन दिन में एक ही तिथि की गणना होती है, इसलिए सावन दिनों की संख्या से तिथियों की संख्या जितनी अधिक होती हैं उतनी तिथियों की गणना नहीं की जाती; इसलिए यह क्षय या अवम तिथियाँ कहलाती हैं।

इस श्लोक के उत्तरार्द्ध की व्याख्या कई बार की जा चुकी है। यहाँ केवल यह अधिक बतलाया गया है कि सावन दिन को भूमिसावन दिन भी कहते हैं।

वसुद्व्यष्टाद्रिरूपाङ्कसप्ताद्रितिथयो युगे।
चान्द्राः खाष्टखखव्योमखाग्निखर्तुनिशाकराः॥३७॥
षड्वह्नित्रिहुताशाङ्कतिथयश्चाधिमासकाः।
तिथिक्षया यमार्थाश्विद्व्यष्टव्योमशराश्विनः॥३८॥

खचतुस्कसमुद्राष्टकुपञ्च रविमासकाः ।
भवन्ति भोदया भानुभगणैरूनिताः क्हाः ॥३६॥

अनुवाद—(३७) एक महायुग में १,५७,७६,१७,८२८ सावन दिन; १,६०,३०,००,०८० चान्द्र दिन अर्थात् तिथियाँ; (३८) १५,६३,३३६ अधिमास; २,५०,८२,२५२ क्षय तिथियाँ तथा (३६) ५,१८,४०,००० सौर मास होते हैं। नक्षत्र के उदय में से सूर्य के भगण की संख्या घटाने से भूमिसावन दिन होते हैं ॥३७-३६॥

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकों में जो संख्याएँ दी गयी हैं वह इनसे पहले के तीन श्लोकों के उदाहरण हैं।

ऊपर जो महायुगीय अंक दिये गये हैं वह सब सिद्धान्तों में एक से नहीं हैं। थोड़ा बहुत अन्तर पाया जाता है। एक महायुग में सावन दिनों की संख्या भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों में जैसी मिलती है वह नीचे की सारिणी से सहज ही जानी जा सकती है :—

प्रचलित सूर्य सिद्धान्त के मत से १,५७,७६,१७,८२८
पंचसिद्धान्ति के सूर्य सिद्धान्तके मत से १,५७,७६,१७,८००
आर्यभटीय के मत से १,५७,७६,१७,५००
ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त, सिद्धान्त शिरोमणि के मत से १,५७,७६,१६,४५०
महासिद्धान्त के मत से १,५७,७६,१७,५४२

अधिमासोनरात्र्यर्क्षचान्द्रसावनवासराः ।
एते सहस्रगुणिताः कल्पे स्युर्भगणादयः ॥४०॥

अनुवाद—अधिमासों, अवम तिथियों, नाक्षत्र, चान्द्र और सावन दिनों तथा ग्रहों के भगणों की जो संख्याएँ (बतलायी गयी) हैं उनका एक हजार गुना कर देने से कल्प की संख्याएँ निकल आती हैं ॥ ४० ॥

विज्ञान भाष्य—१००० महायुगों का एक कल्प होता है इसलिए महायुगीय भगण इत्यादि की संख्याओं को १००० से गुणा कर देने पर कल्प की संख्याएँ जानी जा सकती हैं।

प्राग्गतेस्सूर्यमन्दस्य कल्पे सप्ताष्टवह्नयः ।
कौजस्य वेदखयमा बुधस्याष्टर्तुवह्नयः ॥४१॥
खखरन्ध्राणि जैवस्य शौक्रस्यार्थगुणासवः ।
गोऽग्नयश्शनिमंदस्य पातानामथ वामतः ॥४२॥

मनुदस्रास्तु कौजस्य बौधस्याष्टाष्टसागरा: ।
कृताद्रिचन्द्रा जैवस्य त्रिखाङ्काश्च भृगोस्तथा ।।४३।।
शनिपातस्य भगणा: कल्पे यमरसर्तव: ।
भगणा: पूर्वमेवाऽत्र प्रोक्ता: चन्द्रोच्चपातयो: ।।४४।।

अनुवाद—(४१) पूर्व की ओर चलते हुए एक कल्प में सूर्य का मन्दोच्च ३८७ भगण, मङ्गल का मन्दोच्च २०४ भगण, बुध का मन्दोच्च ३६८ भगण, (४२) वृहस्पति का मन्दोच्च ९०० भगण, शुक्र का मन्दोच्च ५३५ भगण और शनि का मन्दोच्च ३९ भगण करता है। पातों की गति पश्चिम की ओर को होती है। एक कल्प में मङ्गल का पात २१४ भगण, बुध का पात ४८८ भगण, वृहस्पति का पात १७४ भगण, शुक्र का पात ९०३ भगण और (४४) शनि का पात ६६२ भगण करता है। चन्द्रमा के उच्च और पात के भगणों की संख्या पहले (३३वें श्लोक में) बतलायी जा चुकी है।

विज्ञान भाष्य—ग्रहों के मन्दोच्चों और पातों की गति बहुत सूक्ष्म होती है। इनमें से कोई भी १ महायुग में १ पूरा चक्कर नहीं कर पाते, इसलिए इनकी संख्या कल्प के अनुसार दी गयी है।

मन्दोच्च और पात किसे कहते हैं इसका विवेचन चन्द्रमा के उच्च और पात के साथ किया गया है। यह संस्थाएँ कैसे जानी गयीं, इसका स्पष्ट प्रमाण कहीं नहीं मिलता; परंतु इसमें संदेह नहीं कि इसकी जानकारी बहुत काल के पर्यवेक्षण से की गयी होगी। कुछ पाश्चात्य विद्वान कहते हैं कि इसका ज्ञान भारतीय ज्योतिषियों को यूनानियों से हुआ होगा; परंतु यह उनका भ्रम है जैसा कि नीचे की सारिणी से जान पड़ेगा। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि इन भगणों की संख्या आजकल के सूक्ष्मयंत्रों से जाने गये अंकों से बहुत भिन्न है।

आधुनिक ग्रन्थों में इन मन्दोच्चों और पातों की वार्षिक गति दी हुई है; इसलिए सूर्य सिद्धान्त के कल्पीय भगणों से वार्षिक गति का मान निकाल कर तुलना की जा सकती है। वार्षिक गति इस प्रकार निकाली गयी :—कल्प में जितने भगण होते हैं उसको कल्प के सौर-वर्ष से भाग दे दिया गया तो भगण की एक भिन्न संख्या प्राप्त हुई। इसको ३६० से गुणा करने पर अंश, अंश को ६० से गुणा करने पर कला और कला को ६० से गुणा करने पर विकला में वार्षिक गति निकल आयी। जैसे सूर्य-मन्दोच्च एक कल्प में ३८७ भगण करता है तो एक वर्ष में वह

$$\frac{३८७ \times ३६० \times ६० \times ६०}{४३२००००००} \text{ विकला अर्थात् } \frac{११६१}{१००००} \text{ विकला अर्थात् } \cdot ११६१$$

विकला चलेगा।

इसी प्रकार अन्य ग्रहों के मन्दोच्चों तथा पातों की वार्षिक गति विकला में जानी जा सकती है।

इस सारिणी के जिन अंकों के पहले धन का चिह्न (+) है उससे यह प्रकट होता है कि गति पूर्व की ओर है और जिन अङ्कों के पहले ऋण का चिह्न (−) है उससे प्रकट होता है कि गति पश्चिम की ओर है।

दूसरे स्तम्भ में जो अंक दिये गये हैं वह सायन-मेष के विचार से दिये गये हैं अर्थात् उनसे यह प्रकट होता है कि सायन-मेष से (वसंत सम्पात से) ग्रहों के मन्दोच्चों और पातों का अन्तर प्रति वर्ष कितना होता जाता है।

परन्तु सायन-मेष चल है। यह प्रति वर्ष ५०·२६ विकला पच्छिम की ओर हटता जाता है; इसलिए यदि निरयन-मेष से जो स्थिर है मन्दोच्चों और पातों का वार्षिक अन्तर जानना हो तो दूसरे स्तम्भ के अंकों से ५०.२६ विकला घटा देना चाहिये। ऐसा करने से जो अन्वर आवेंगे वह निरयन-मेष से मन्दोच्चों और पातों के वार्षिक अन्तर होंगे। ऐसा करने से देखा जाता है कि शुक्र के मन्दोच्च की गति पश्चिम की ओर है अर्थात् शुक्र का मन्दोच्च तारों के मध्य पूर्व न जाकर पश्चिम की ओर खिसक रहा है। हमारे व्यावहारिक ज्योतिष ग्रन्थों में अयन चलन ६० विकला माना गया है। क्योंकि हमारा वर्षमान वास्तविक नाक्षत्र-वर्ष से ८॥ विकला अधिक है; इसलिए यदि वसंत सम्पात की वार्षिक गति ६० विकला मानी जाय और दूसरे स्तम्भ में जो अंक दिये गये हैं उनमें से ६० विकला घटायी जाय तो जो अन्तर आता है वही चौथे स्तम्भ में लिखा गया है। इस स्तम्भ में जो अंक आये हैं उनकी तुलना सूर्य सिद्धान्तीय अङ्कों से करनी चाहिये।

मन्दोच्चों और पातों की वार्षिक गति

ग्रह	आधुनिक सूक्ष्म* बेधों के अनुसार			
	सायन-मेष या वसंत संपात से	वास्तविक निरयन-मेष से	हमारे सिद्धान्तों के निरयन-मेष से	सूर्य सिद्धान्त के अनुसार
१	२	३	४	५
मन्दोच्च	विकला	विकला	विकला	विकला
रवि	+६१.५	+११.२४	+१.५	+०.११६१
मंगल	+६५.७	+१५.४६	+५.७	+०.०६१२

*Loomis की Practical Astronomy से लिया गया

भारतीय ज्योतिः शास्त्र पृष्ठ २०७

१	२	३	४	५
बुध	+५६.१	+५.८१	−३.६	+.११०४
गुरु	+५६.६	+६.६५	−३.१	+.२७
शुक्र	+४७.०	−३.२४	−१३.०	+.१६०५
शनि	+६६.६	+१६.३१	+६.६	+.०११७
मंगल का पात	+२५.०	−२५.२२	−३५.०	−०.०६४२
बुध ,,	+४०.२	−१०.०७	−१६.८	−.१४६४
गुरु ,,	+३४.३	−१५.६०	−२५.७	−.०५२२
शुक्र ,,	+२६.७	−२०.५०	−३०.३	−.२७०६
शनि ,,	+३०.७	−१६.५४	−२६.३	−.१६८६

इस सारिणी के ४थे और ५वें स्तम्भों में बहुत अन्तर है। परन्तु यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि ५वें स्तम्भ में जो कुछ लिखा गया है वह कोरी आँख से और स्थूल यंत्रों से जाना गया है।

यदि इन सिद्धान्तों के मानों की तुलना यूनानियों के मानों से की जाय तो जान पड़ेगा कि हमारे सिद्धान्तकार कितनी सूक्ष्म परीक्षा करते थे (देखिए ३५वें पृष्ठ की सारिणी)।

४थे और ७वें स्तम्भों के अंकों को मिलाने से जान पड़ेगा कि हमारे सिद्धान्तकार वास्तविक स्थिति से कितना निकट थे और टालमी कितनी दूर। केरोपन्त ने जो गणना की है वह आधुनिक मानों के अनुसार है, इसलिए इनकी गणना से मन्दोच्चों और पातों की वास्तविक स्थिति का पता लगता है। इस तुलना से यह भी प्रकट है कि हमारे सिद्धान्तकारों ने स्वतंत्र अनुभव से इन सब भगण-मानों को जाना था न कि यूनानियों या अन्य देशवालों से लिया था जैसा कि कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है।

षण्मनूनां च संपिण्ड्य कालं तत्सन्धिभिस्सह।
कल्पादिसन्धिना सार्धं वैवस्वतमनोस्तथा ॥४५॥
युगानां त्रिघनं यातं तथा कृतयुगं त्विदम्।
प्रोज्झ्य सृष्टेस्ततः कालं पूर्वोक्तं दिव्यसंख्यया ॥४६॥
सूर्याब्दसंख्यया ज्ञेयाः कृतस्याऽन्ते गता अमी।
खचतुष्कयमाद्रयग्निशरनन्दनिशाकराः ॥४७॥

अनुवाद—(४५) छः मनुओं, उनकी छः सन्धियों और कल्प की आदि संधि के काल को जोड़कर योगफल में वैवस्वत मनु के (४६) २७ युगों को तथा इस (अट्ठाईसवें) सत्ययुग को जोड़ दो और उसमें से सृष्टि के रचने में (२४वें श्लोक में)

१	२			३			४			५			६			७		
	मन्दोच्चों और पातों के स्थान									सम्वत् २०५ वि० में मन्दोच्चों और पातों के स्थान (सायन)								
	केरोपंत की गणना के अनुसार			सूर्य सिद्धान्त के अनुसार			अन्तर			केरोपंत की गणना से			टालमी की गणना से			अन्तर		
	राशि	अंश	कला	रा०	अं०	क०		अं०	क०	रा०	अं०	कला	रा०	अं०	क०		अं०	क०
रवि का उच्च	२	१७	७	२	१७	१५	+	०	८	२	११	५	२	५	३०	—	५	३५
मंगल ,,	४	८	११	४	१०	१	+	१	५०	४	१	३९	३	२५	३०	—	६	९
बुध ,,	७	२४	१	७	१०	२६	—	१३	३५	७	१८	३२	६	१०	०	—	३८	३२
गुरु ,,	५	२०	३८	५	२१	१६	+	०	३८	५	१५	७	५	११	०	—	४	७
शुक्र ,,	९	२१	३	२	१९	४९	—	२११	१४	९	१६	१८	१	२५	०	—	२३१	१८
शनि ,,	८	५	१२	७	२६	३७	—	८	३५	७	२८	४५	७	२३	०	—	५	४५
मंगल का पात	१	८	९	१	१०	५	+	१	५६	१	५	२९	०	२५	३०	—	९	५९
बुध ,,	१	०	१८	०	२०	४४	—	९	३४	०	२६	५	०	१०	०	—	१६	५
गुरु ,,	२	२५	३०	२	१९	४१	—	५	४९	२	२२	१	१	२१	०	—	३१	१
शुक्र ,,	२	३	४०	१	२९	४६	—	३	५४	२	०	३९	१	२५	०	—	५	३९
शनि ,,	३	१०	१३	३	१०	२५	+	०	१२	३	७	२८	६	३	०	+	८५	३२

भारतीय ज्योतिःशास्त्र पृ० २०५, २०६

वही (वर्तमान) सत्ययुग के अन्त तक सौर वर्षों में संख्या हुई जो १,९५,३७,२०,००० है ।।४५-४७।।

विज्ञान भाष्य—पिछले २२वें और २३वें श्लोकों में जो कुछ कहा गया है वही यहाँ फिर दुहराया गया है। इन श्लोकों के विज्ञान-भाष्य में कल्प के आरम्भ से वर्तमान महायुग के सत्ययुग के अन्त तक के सौर वर्षों की संख्या जानने की रीति बतलायी गयी है जो १,९७,०७,८४,००० होती है। इसमें से सृष्टि के रचने के १,७०,६४,००० सौर वर्ष घटा दिये जाँय तो शेष १,९५,३७,२०,००० होता है। इतने ही सौर वर्ष सृष्टि के आदि से सत्ययुग के अन्त तक बीते हैं।

अत ऊर्ध्वममी युक्ता गतकालाब्दसङ्ख्यया ।
मासीकृता युता मासैःमधु शुक्लादिभिर्गतैः ।।४८।।
पृथक्स्थास्तेऽधिमासघ्नाः सूर्यमासविभाजिताः ।
लब्धाधिमासकैर्युक्ता दिनीकृत्य दिनान्विताः ।।४९।।
द्विष्ठास्तिथिक्षयाभ्यस्ताश्चान्द्रवासरभाजिताः ।
लब्धोनरात्रिरहिता लङ्कायामार्धरात्रिकः ।।५०।।

अनुवाद—(४८) ऊपर बतलाये गये (सृष्टि के आदि से सत्ययुग के अंत तक के) सौर वर्षों में सत्ययुग के उपरान्त जितने सौर वर्ष बीते हों उनको जोड़ लो। योगफल इष्टकाल तक के सौर वर्षों की संख्या होगी। इसके मास बना लो अर्थात् १२ से गुणा कर दो। मासों की संख्या में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से इष्टकाल तक जितने मास बीते हों उनको भी जोड़ दो। (४९) इस संख्या को दो स्थानों पर रखो, एक को महायुग के अधिमासों की संख्या से गुणा कर महायुग के सौर मासों की संख्या से भाग दे दो, जो लब्धि आवे वही सृष्टि के आदि से इष्टकाल तक के अधिमासों की संख्या होगी। इस लब्धि को दूसरे स्थान में रखे हुए मासों में जोड़ दो। योगफल सृष्टि के आदि से इष्टकाल तक के चांद्र-मासों की संख्या है। इसको ३० से गुणा कर (चान्द्र) दिन अर्थात् तिथियाँ बना लो और इष्टकाल तक वर्तमान मास की जितनी तिथियाँ बीती हों उनको जोड़ लो तो सृष्टि के आदि से इष्टकाल तक जितनी तिथियाँ बीती हैं वह मालूम हो जायँगी। (५०) इन तिथियों की संख्या को भी दो स्थानों पर रखो। एक को महायुगीय क्षय-तिथियों की संख्या से गुण दो और गुणनफल को महायुगीय तिथियों की संख्या से भाग दे दो, जो लब्धि आवे वही सृष्टि के आदि से इष्टकाल तक की क्षय-तिथियों की संख्या हुई। इसको दूसरे स्थान में रखी हुई तिथियों की संख्या में से घटा दो, जो शेष हो उससे एक कम लङ्का की

विज्ञान भाष्य—जब यह जानना होता है कि किसी इष्ट समय ग्रहों के स्थान क्या हैं तब सबसे पहले यह जानना चाहिये कि सृष्टि के आदि से उस इष्ट समय तक कितने सावन दिन बीते। जब सावन दिनों की संख्या मालूम हो गयी तब त्रैराशिक के द्वारा ग्रहों का स्थान जान लेना सुगम होता है। क्योंकि सृष्टि के आदि में सब ग्रह एक साथ थे और एक महायुग में वह कितने भगण करते हैं तथा कितने सावन दिन होते हैं, यह भी बतला दिया गया है; इसलिए जब महायुगीय सावन दिनों में अमुक भगण होते हैं तब इष्टकाल तक के सावन दिनों में कितने भगण होंगे, यह जान लेने से ही ग्रह का स्थान निकल आता है। इष्टकाल तक के सावन दिनों की संख्या जिसे अहर्गण कहते हैं जानने की रीति ऊपर के तीन श्लोकों में बतलायी गई है।

उदाहरण—१९७९ विक्रमीय की वसंत पंचमी (माघ सुदी ५) तक सृष्टि से कितने दिन बीते ?

सृष्टि के आदि से सत्ययुग के अंत तक =१,९५,३७,२०,००० सौर वर्ष
त्रेता ,, ,, = १२,९६,००० सौर वर्ष
द्वापर ,, ,, = ८,६४,००० ,,
१९७९ वि० की चैत्र शुक्ल १ के आरम्भ तक = ५,०२३* ,,
इसलिए सृष्टि के आदि से १९७९ वि० के
चैत्र शुक्ल १ के आरम्भ तक = १,९५,५८,८५,०२३ वर्ष
=२३,४७,०६,२०,२७६ सौरमास*
चै० शु० १ से माघ शु० १ के आरंभ तक = १० चांद्रमास
इसलिए सृष्टि के आदि से
१९७९ के मा० शु० १ तक =२३,४७,०६,२०,२८६ मध्यम मास

जब एक महायुग में ५,१८,४०,००० सौर मास होते हैं तब १५,९३,३३६ अधिमास होते हैं; इसलिए २३,४७,०६,२०,२८६ मध्यम मासों में अधिमासों की संख्या हुई

$$\frac{२३,४७,०६,२०,२८६ \times १५,९३,३३६}{५,१८,४०,०००} = ७२,१३,८४,७२६ \text{ अधिमास}$$

इसलिए सृष्टि के आदि से
१९७९ वि० की माघ शु० १ तक हुए २४,१९,२०,०५,०१२ चांद्रमास
=७,२५,७६,०१,५०,३६० तिथियाँ
∴ माघ सुदी ५ तक हुईं ७,२५,७६,०१,५०,३६५ तिथियाँ

---

* १९७९ वि० में जिस समय मेष-संक्रान्ति लगेगी उस समय पूरे होंगे। इसलिए इन्हें मध्यम सौर वर्ष या मास कहना चाहिये।

परन्तु एक महायुग में ५३४३३३३६ चान्द्रमास तथा २,५०,८२,२५२ क्षय तिथियाँ होती हैं, इसलिए २४,१६,२०,०५,०१२ चान्द्र*मासों में क्षय तिथियों की

संख्या $=\frac{२४,१६,२०,०५,०१२ \times २,५०,८२,२५२}{५३४३३३३६}=$ ११,३५,६०,१८,७६१

∴ माघ सुदी ५, तक सृष्टि के आदि से

सावन दिनों की संख्या = ७,१४,४०,४१,३१,६०४

माघ सुदी ५ के पहले की अर्द्धरात्रि

तक के अहर्गण = ७,१४,४०,४१,३१,६०३

किसी समय तक के सावन दिनों की संख्या जानने का यह नियम बहुत कष्टप्रद है और तनिक सी भी भूल हो जाने से घंटों का परिश्रम व्यर्थ जाता है। इसलिए व्यवहार में इतने बड़े समय की गणना नहीं की जाती वरन् करण ग्रन्थ और सारणियाँ बनी हुई हैं जिनके द्वारा यह गणना सहज ही हो जाती है। आगे चलकर इस पुस्तक में भी सत्ययुग के अन्त से अहर्गण बनाने का उपदेश दिया गया है। यदि स्वतन्त्र गणना सुगम रीति से करना हो तो नीचे लिखी रीति काम दे सकती है :—

यह बतलाया जा चुका है कि एक महायुग में ४३,२०,००० सौर वर्ष तथा, १,५७,७६,१७,८२८ सावन दिन होते हैं।

इसलिए एक सौर वर्ष में $\frac{१,७५,७६,१७,८२८}{४३,२०,०००}$ सावन-दिन

अर्थात् ३६५·२५८७५६४८१५ सावन-दिन होते हैं। जिस समय तक के अहर्गण की संख्या जाननी हो वह जिस सम्वत् में हो उसकी मेष संक्रान्ति के दिन का अहर्गण निकाल लो। ऐसा करने के लिए एक वर्ष के सावन दिनों की संख्या को सृष्टि के आदि से इष्ट सम्वत् तक के सौर वर्षों से गुणा कर दो। उपर्युक्त उदाहरण में १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति के दिन सृष्टि के आदि से १,९५,५८,८५,०२३ सौर वर्ष बीते हैं; इसलिए इस सम्वत् के मध्यम मेष-संक्रान्ति के समय तक ३६५·२५८७५६४८१५ × १,९५,५८,८५,०२३ सावन दिन अर्थात् ७,१४,४०,४१,३१,३२१. ७७००२६०७४५ सावन दिन बीते। परन्तु स्पष्ट मेष-संक्रान्ति मध्यम संक्रान्ति से २.१७०६९४४ सावन दिन पहले ही हो जाती है। इसलिए यदि मध्यम मेष संक्रान्ति तक के अहर्गण में से २.१७०६९४४ सावन दिन घटा दिये जांय तो स्पष्ट मेष-संक्रान्ति के समय तक ७,१४,४०,४१,३१,३१९.५९९३-

---

*पुस्तक में चन्द्र मासों की जगह तिथियाँ कही गयी हैं जिससे गणना शुद्ध होती है; परन्तु गुणा भाग अधिक करना होता है इसलिए चान्द्र मास लिये गये हैं। इससे सम्भव है कि एक दिन की भूल पड़े, जो वार निकालने से शुद्ध हो सकती है।

३१६७४५ सावन दिन बीते। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि सृष्टि के आदि से इतने मध्यम सावन दिन बीतने पर १६७६ वि० की मेष संक्रान्ति लंका में हुई।

इसलिए जिस दिन मेष संक्रान्ति थी उस दिन की आधी रात तक के अहर्गण हुए ७,१४,४०,४१,३१,३२०। अब देखना चाहिये कि मेष की संक्रान्ति से कितने दिन पर बसंत पंचमी पड़ी।

इसके लिए पहले यह जानना चाहिये कि मेष संक्रान्ति के दिन कौन तिथि थी।

१ चान्द्रमास २६·५३०५८७६४६०७ सावन दिनों का होता है। इसलिए यदि मेष संक्रान्ति के अहर्गण को इतने सावन दिनों से भाग दे दिया जाय तो जो लब्धि आवेगी वह सृष्टि के आदि से मेष संक्रान्ति तक के बीते हुए चान्द्रमासों की संख्या होगी और जो शेष बचा है वह चालू चान्द्रमास के सावन दिन होंगे। इस शेष को यदि ३० से गुणा करके गुणनफल को चान्द्रमास के सावन दिनों से फिर भाग दिया जाय तो जो लब्धि आवेगी वह तिथियों की संख्या होगी।

ऐसा करने से मेष संक्रान्ति के समय तिथि की संख्या १६५२५७६ आती है, जो पूर्णिमान्त गणना से वैशाख बदी २ और अमान्त गणना से चैत बदी २ होती है।

अब यह जानना चाहिये कि वैशाख बदी २ से माघ सुदी ५ तक कितने सावन दिन बीते। इसलिए पहले यह देखना चाहिये कि इस समय में कितनी तिथियाँ बीतीं। वैशाख बदी ३ से माघ बदी २ तक ९ चान्द्रमास होते हैं, क्योंकि इस वर्ष कोई मलमास नहीं पड़ा, तथा माघ बदी ३ से माघ सुदी ५ के आरम्भ तक अर्थात् चौथ के अन्त तक १७ तिथियाँ होती हैं। इसलिए मेष संक्रान्ति से माघ सुदी ४ के अन्त तक ९ × ३० + १७ तिथियाँ अर्थात् २८७ तिथियाँ बीतीं।

परन्तु ३० तिथियाँ = २९·५३०५८७९४६०७ मध्यम सावन दिन; इसलिए २८७ तिथियाँ

$$= २८७ \times २९·५३०५८७९४६०७ \times \frac{१}{३०}$$
$$= २८२.५०९२२९१३५०७३६$$
$$= २८२.५१ \text{ सावन दिन स्थूल रूप से}$$

परन्तु मेष संक्रान्ति की अर्द्धरात्रि के अहर्गण = ७,१४,४०,४१,३१,३२०

इसलिए सृष्टि से माघ सुदी ५ तक के अहर्गण =

७,१४,४०,४१,३१,६०२.५१

अर्थात् माघ सुदी ५ की पहली अर्द्ध-रात्रि तक ७,१४,४०,४१,३१,६०३ सावन दिन बीते; जो पहली रीति से निकाले गये अहर्गण से मिलता है। इस गणना के लिए दशमलव के ग्यारहवें स्थान तक के अंकों को लेना पड़ता है क्योंकि गुणक (सृष्टि से

अब तक के सौर वर्षों की संख्या) अरबों में है। यदि त्रेता या कलियुग के आदि से अहर्गण निकालना हो जिसके लिए आगे आदेश है, तो चान्द्रमास और सौर वर्ष के सावन दिनों की संख्या सात दशमलव स्थानों तक लेना पर्याप्त होगा।

अब यह परीक्षा करना रह गया कि यह संख्या शुद्ध है या नहीं। इसके लिए केवल यह जाँचना पर्याप्त होगा कि सृष्टि से इतने दिनों के बाद कौन वार आरम्भ होगा। यदि वार ठीक निकल आवे या १ दिन का अन्तर पड़े तो समझना चाहिए कि अहर्गण ठीक है, नहीं तो अशुद्ध है। इसकी रीति आगे के श्लोक में दी हुई है।

सावनो द्युगणस्सूर्याद्दिनमासाब्दपास्ततः ।
सप्तभिः क्षयितश्शेषः सूर्याद्यो वासरेश्वरः ।।५१।।
मासाब्ददिनसंख्याप्तौ द्वित्रिघ्नौ रूपसंयुतौ ।
सप्तोद्धृतावशेषौ तु विज्ञेयौ मासवर्षपौ ।।५२।।

अनुवाद—(५१) सावन दिनों की जो संख्या हो उससे दिनपति, मासपति और वर्षपति सूर्य से गिनकर जानना चाहिये। इस संख्या को ७ से भाग दे दे जो शेष बचे वही सूर्य से वारों के क्रम से आरंभ होकर दिनपति है। (५२) यदि इस (सावन दिनों की) संख्या को क्रम से मास और वर्ष के दिनों की संख्याओं से भाग दे दें और भागफलों को क्रम से दो और तीन से गुणा करके, प्रत्येक गुणनफल में एक जोड़ दे और योगफलों को ७ से भाग दे दें तो जो शेष बचे वही सूर्य से वारों के क्रम से आरंभ हो कर क्रमानुसार मासपति और वर्षपति है ।।५१-५२।।

विज्ञान-भाष्य—वार (दिन) का नाम उस ग्रह के नाम पर रखा गया है जो वार के आरंभ में पहले घंटे (होरा) का स्वामी समझा गया है। जो ग्रह पहले घंटे का स्वामी होता है वही उस वार का भी स्वामी समझा जाता है। इसी तरह सावन* मास के आरंभ में जो वार पड़ता है उसी का स्वामी उस सावन मास का स्वामी समझा जाता है और सावन वर्ष के आरम्भ में जो वार पड़ता है उसी का स्वामी उस सावन वर्ष का स्वामी समझा जाता है। जैसे रविवार के पहले घंटे का स्वामी रवि, उस दिन का स्वामी रवि, जो सावन मास रविवार से आरंभ होता है उस मास का स्वामी रवि और जो सावन वर्ष रविवार से आरंभ होता है उस वर्ष का स्वामी भी रवि ही है।

---

*सावन को श्रावण न समझना चाहिये। ३० सावन दिनों का जो मास होता है वह सावन मास और १२ सावन महीनों का जो वर्ष होता है वह सावन वर्ष कहलाता है।

किस घंटे (होरा) का स्वामी कौन ग्रह है यह जानने के लिए वह क्रम समझ लेना चाहिये जिस क्रम से घंटे के स्वामी बदलते हैं। शनि ग्रह पृथ्वी से सब ग्रहों से अधिक दूर है, उससे निकट बृहस्पति है, बृहस्पति से निकट मंगल, मंगल से निकट सूर्य, सूर्य से निकट शुक्र, शुक्र से निकट बुध[1] और बुध से निकट चन्द्रमा है। इसी क्रम से होरा के स्वामी बदलते हैं। यदि पहले घंटे का स्वामी शनि है तो दूसरे घंटे का स्वामी बृहस्पति, तीसरे का स्वामी मंगल, चौथे का सूर्य, पांचवें का शुक्र, छठें का बुध, सातवें का चन्द्रमा, आठवें का फिर शनि, इत्यादि क्रमानुसार हैं। परन्तु जिस दिन पहले घंटे का स्वामी शनि होता है उस दिन का नाम शनिवार होना चाहिये। इसलिए शनिवार के दूसरे घंटे का स्वामी बृहस्पति, तीसरे घंटे का स्वामी मंगल इत्यादि हैं। इस प्रकार सात-सात घंटे के बाद स्वामियों का वही क्रम फिर आरंभ होता है। इसलिए शनिवार के २२वें घण्टे का स्वामी शनि, २३वें का बृहस्पति, २४वें का मंगल, और २४वें के बाद वाले घंटे का स्वामी सूर्य होना चाहिये। परन्तु यह २५वां घंटा अगले दिन का पहला घंटा है जिसका स्वामी सूर्य है इसलिए शनिवार के बाद रविवार होता है। रविवार के दूसरे घंटे का स्वामी शुक्र, तीसरे का बुध, चौथे का चन्द्रमा, इत्यादि क्रमानुसार चलते हुए ११वें, १८वें २५वें घंटों का स्वामी भी चन्द्रमा होता है। परन्तु २५वां घंटा अगले दिन का पहला घंटा है इसलिए इसी घंटे के स्वामी के नाम से अगला दिन चन्द्रवार पड़ा। इसी प्रकार और वारों का नामकरण[2] हुआ है।

अब यह स्पष्ट हो गया कि शनिवार के बाद रविवार और रविवार के बाद सोमवार और सोमवार के बाद मंगलवार क्यों होता है। ग्रहों के क्रम में शनि से रवि चौथा ग्रह है, रवि से चंद्रमा चौथा ग्रह है, चन्द्रमा से मंगल चौथा ग्रह है। इसलिए यह नियम हो गया है कि ग्रहों के क्रम को शनि से गिनते हुए प्रत्येक चौथा ग्रह अगले वार का स्वामी होता है।

---

१. पृथ्वी से बुध शुक्र की अपेक्षा अधिक दूर है परन्तु हमारे ज्योतिष ग्रन्थों में शुक्र ही अधिक दूर माना गया है। कारण इसका यह है कि जो ग्रह जितनी ही दूर है उतनी ही देर में वह भगण पूरा करता है। ऐसा विश्वास हमारे ज्योतिषियों का भी है परन्तु इन्होंने पृथ्वी से यह दूरी ली है और आधुनिक ज्योतिषियों ने सूर्य से।

२. वारों का यह क्रम प्रायः सभी देशों में पाया जाता है। परन्तु इनके नामकरण की उपपत्ति जैसी यहाँ की गयी है वैसी कहीं और भी है या नहीं यह खोजने के योग्य है।

मासपति—यदि किसी सावन मास का पहला दिन रविवार हो तो अगले सावन मास का पहला दिन रविवार से ३१वाँ दिन होगा क्योंकि सावन मास ३० दिन का होता है। परन्तु रविवार से ३१वां दिन पांचवें सप्ताह का तीसरा दिन मंगलवार होता है। इसलिए दूसरे सावन मास का स्वामी मंगल ग्रह हुआ। तीसरे सावन मास का पहला दिन मंगलवार से ३१वां हुआ अर्थात् मंगलवार से आरम्भ करके पांचवें सप्ताह का तीसरा दिन, वृहस्पतिवार हुआ। इसलिए तीसरे सावन मास का स्वामी वृहस्पति हुआ। इसी प्रकार चौथे सावन मास का स्वामी, वृहस्पति-वार से तीसरे दिन शनिवार का स्वामी शनि और पांचवें सावन मास का स्वामी शनिवार से तीसरे दिन सोमवार का स्वामी सोम तथा छठें सावन मास का स्वामी बुध और सातवें सावन मास का स्वामी शुक्र हुआ। आठवें सावन मास से फिर यह क्रम चलेगा। इसलिए वारों के क्रम से तीसरा वार आने वाले सावन मास का पहला दिन तथा उसका स्वामी उस सावन मास का स्वामी होता है। अब यदि ध्यान से देखा जाय तो जान पड़ेगा कि मासपतियों का क्रम ग्रहों के क्रम के अनुसार इस प्रकार है—रवि, मंगल, वृहस्पति, शनि, सोम, बुध और शुक्र; फिर रवि, मंगल, वृहस्पति शनि इत्यादि। यदि चन्द्रमा से यह चक्र आरंभ हो तो इनका क्रम वही रहेगा जिस क्रम से ये पृथ्वी से क्रमानुसार दूर समझे गये हैं।

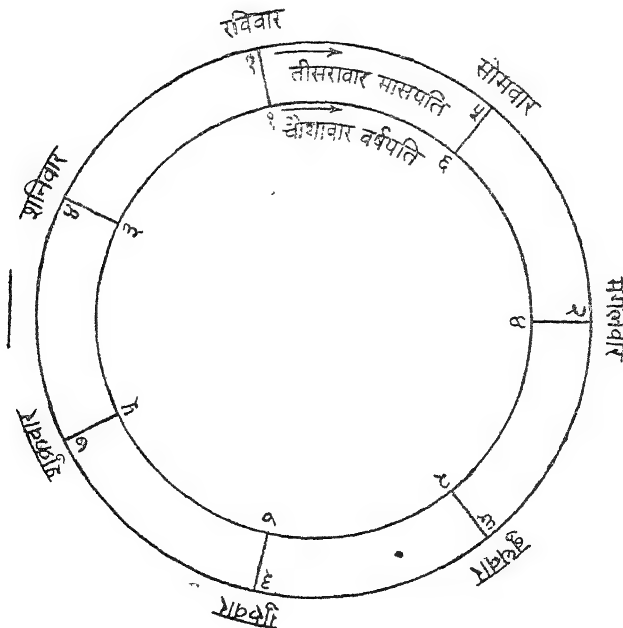
वर्षपति—सावन वर्ष का आरम्भ जिस दिन से होता है उसी दिन का स्वामी उस वर्ष का स्वामी समझा जाता है। यदि पहले सावन वर्ष का आरम्भ रविवार को हो तो दूसरे सावन वर्ष का आरम्भ रविवार से ३६१वें दिन होगा जो ५१ सप्ताह के बाद वाले सप्ताह का चौथा दिन अर्थात् बुधवार है इसलिए दूसरे सावन वर्ष का स्वामी बुध होगा। तीसरे सावन वर्ष का आरम्भ दूसरे सावन वर्ष से ३६१वें दिन होगा इसलिए यह बुधवार से चौथा दिन शनिवार होगा जिसका स्वामी शनि है इसलिए तीसरे सावन वर्ष का स्वामी शनि होगा। इसी प्रकार चौथे सावन वर्ष का स्वामी शनिवार से चौथे दिन मंगलवार का स्वामी मंगल है। पाँचवें सावन वर्ष का स्वामी, मंगलवार से चौथे दिन शुक्रवार का स्वामी शुक्र है। छठें सावन वर्ष का स्वामी शुक्रवार से चौथे दिन सोमवार का स्वामी सोम, सातवें सावन वर्ष का स्वामी सोमवार से चौथे दिन वृहस्पतिवार का स्वामी वृहस्पति तथा आठवें सावन वर्ष का स्वामी वृहस्पतिवार से चौथे दिन रविवार का स्वामी रवि फिर होगा। इस तरह आठवें सावन वर्ष से फिर वही क्रम आरम्भ होगा। इन स्वामियों का क्रम इस प्रकार हुआ रवि, बुध, शनि, मंगल, शुक्र, सोम, वृहस्पति; फिर रवि, बुध, शनि इत्यादि। इसलिए यदि वारों के अनुसार क्रम मिलाया जाय तो आने वाले सावन वर्षँ का

पहला दिन गत सावन वर्ष के पहले दिन से चौथा होगा। और यदि ग्रहों का क्रम मिलाया जाय तो शनि से आरम्भ करके प्रति तीसरा ग्रह वर्ष का स्वामी होता है। इन बातों को सूत्र रूप में भूगोलाध्याय के ७८वें और ७६वें श्लोकों में यों लिखा गया है :—

> मन्दादधःक्रमेण स्युश्चतुर्था दिवसाधिपाः।
> वर्षाधिपतयस्तद्वत्तृतीयाश्च प्रकीर्तिताः ॥ ७८ ॥
> ऊर्ध्वक्रमेण शशिनो मासानामधिपाः स्मृताः।
> होरेशाः सूर्यतनयादधोऽधः क्रमशस्तथा ॥ ७६ ॥
>
> सूर्य सिद्धान्त, भूगोलाध्याय

वर्षपति, मासपति, दिनपति और होरापति जानने की दोनों रीतियाँ दो चित्रों (चित्र ५ तथा ६) के द्वारा दिखलायी जाती हैं।

वारों के अनुसार क्रम



चित्र ५

वारों के नामों तथा बर्षपतियों और मासपतियों के सम्बन्ध का यह नियम जान लेने पर अब ५१वें और ५२वें श्लोकों की उपपत्ति सहज ही समझी जा सकती है।

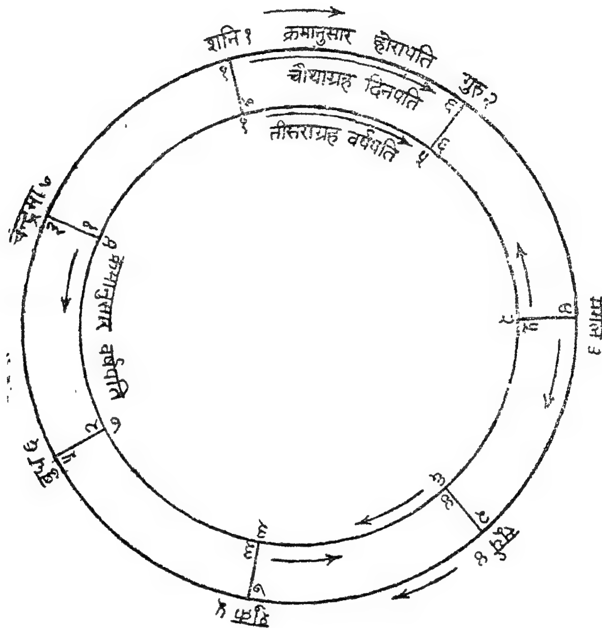
इष्टकाल तक जो अहर्गण (सावन दिन) आया हो उसको सात से भाग देने पर जो शेष बचे उतने ही दिन सप्ताह के बीत चुके हैं। सृष्टि का आरम्भ रविवार से हुआ इसलिए रविवार सप्ताह का पहला दिन है और शनिवार पिछला दिन अर्थात् सातवाँ दिन। इसलिए यदि शेष ५ बचे तो समझना चाहिए कि वृहस्पति का दिन है जिसकी मध्य रात्रि को वह अहर्गण पूरा होता है क्योंकि वृहस्पति सप्ताह का पाँचवाँ दिन है। जैसे पिछले उदाहरण में अहर्गण की जो संख्या ७,१४,४०,४१,३१,६०३ आयी है उसको सात से भाग देने पर शेष १ बचता है। इसलिए जिस दिन का अहर्गण निकाला गया है वह सप्ताह का पहला दिन रविवार है। परन्तु यह अहर्गण बसंत-पंचमी से पहले की अर्द्धरात्रि तक का है इसलिए बसंत-पंचमी को सोमवार होगा।

मासपति जानने के लिए इष्ट अहर्गण को ३० से भाग देना चाहिए जो लब्धि आवे वही सृष्टि के आदि से सावन मासों की संख्या हुई। इन सावन मासों को दो से गुणा करके १ जोड़ दो और सात से भाग दे दो, क्योंकि मासपतियों का क्रम वार के अनुसार तीसरे दिन बदलता है और सात मास बीतने पर फिर वही क्रम आरम्भ होता है। जो शेष बचे, सप्ताह के उसी दिन का स्वामी उस मास का स्वामी होता है जो चल रहा है। जैसे ऊपर के अहर्गण को ३० से भाग देने पर २३,८१,३४,७१,०५३ सावन मास और १३ सावन दिन होते हैं। इन सावन मासों की संख्या को २ से गुणा करके १ जोड़ने पर ४७,६२,६९,४२,१०७ होता है। इसको ७ से भाग देने पर शेष ३ बचता है। इसलिए चलते सावन मास का पहला दिन मंगलवार था। इसलिए इस मास का स्वामी मंगल है।

वर्षपति जानने के लिए इष्ट अहर्गण को ३६० से अथवा ऊपर निकाले हुए सावन मासों को १२ से भाग दे दो, जो लब्धि आवे उतने ही सावन वर्ष बीते हैं। इनको तीन से गुणा करके १ जोड़ दो और सात से भाग दे दो क्योंकि वर्षपतियों का क्रम वार के अनुसार चौथे दिन बदलता है और सात वर्ष के बाद फिर वही क्रम आरम्भ होता है। जो शेष बचे (सप्ताह के) उसी दिन का स्वामी चलते सावन वर्ष का स्वामी होता है क्योंकि सप्ताह का आरम्भ रविवार से होता है।

जैसे ऊपर के उदाहरण में अहर्गण को ३६० से भाग देने पर अथवा सावन मासों को १२ से भाग देने पर गत सावन वर्षों की संख्या १,९८,४४,५५,९२१ हुई।

इसको तीन से गुणा कर १ जोड़ने से ५,६५,३३,६७,७३४ हुआ। इसको ७ से भाग देने पर शेष १ बचता है। इसलिए चलते सावन वर्ष का आरंभ रविवार को हुआ और इस वर्ष का स्वामी रवि हुआ।



चित्र ६—पृथ्वी से ग्रहों की दूरी के अनुसार क्रम

यह तो हुई सूर्य सिद्धान्त के अनुसार वर्षपति निकालने की रीति। आजकल के सभी पंचांगों में वर्षपति (वर्षेश) उस दिन का स्वामी माना जाता है जिस दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा होती है और वर्ष का मंत्री उस दिन का स्वामी समझा जाता है जिस दिन मेष संक्रान्ति होती है। मेघेश उस दिन का स्वामी होता है जिस दिन आर्द्रा नक्षत्र लगता है, इत्यादि इसी विचार से वर्ष भर का फल निकाला जाता है। मकरंद सारिणी में सूर्य सिद्धान्त से भिन्न नियम यह है:—

चैत्र शुक्ल प्रतिपद्दिवसे यो वारः स राजा। मेष संक्रान्ति दिवसे यो वारः स मंत्री। कर्क संक्रान्ति दिवसे यो वारः स सत्याधिपः। तुला संक्रान्ति दिवसे (यो)

दिवसे यो वारः स मेघाधिपः । धनुः संक्रान्ति दिवसे यो वारः स पश्चिमधान्याधिपः* ॥

सावन वर्ष तथा सावन मास का व्यवहार आजकल कहीं नहीं है । इसलिए वर्षाधिप और मासाधिप निकालने का जो नियम सूर्य सिद्धान्त में दिया गया है वह किस काम आता है यह मैं नहीं जानता । यदि कोई सज्जन जानते हों तो कृपया सूचित करें । तेरहवें श्लोक से, जैसा कि मैंने उसकी टिप्पणी में लिखा है, यह ध्वनि निकलती है कि यथार्थ वर्ष सौर वर्ष ही है । फिर सावन वर्ष और सावन मास के अनुसार वर्षपति और मासपति निकालने की क्या आवश्यकता है ?

यथा स्वभगणाभ्यस्तो दिनराशिः कुवासरैः ।
विभाजितो मध्यगतो भगणादिर्ग्रहो भवेत् ॥५३॥
एवं स्वशीघ्रमन्दोच्चा ये प्रोक्ताः पूर्वयायिनः ।
विलोमगतयः पातास्तद्वच्चक्राद्विशोधिताः ॥५४॥

अनुवाद—(५३) जितने अहर्गण आवें उनसे किसी ग्रह के महायुगीय भगण को गुणा कर दो और गुणनफल को महायुगीय सावन दिनों से भाग दे दो । जो लब्धि आवेगी उतने ही भगण उस ग्रह के (सृष्टि के आदि से) मध्यम गति के अनुसार पूरे हुए हैं । जो शेष बचे उसको १२ से गुणा करके फिर (महायुगीय सावन दिनों से) भाग देने से उस राशि की संख्या आवेगी जितनी राशियां वह ग्रह वर्तमान भगण में पूरा कर चुका है । अब जो शेष बचे उसको ३० से गुणा करके महायुगीय सावन दिनों की संख्या से भाग देने पर उन अंशों की संख्या निकल आवेगी जितने अंश वह ग्रह वर्त्तमान राशि में पूरा कर चुका है इत्यादि । (५४) इसी प्रकार पहले कहे हुए पूर्व की ओर चलने वाले शीघ्रों और मन्दोच्चों के स्थान भी जाने जा सकते हैं । पातों की गति उलटी (पच्छिम की ओर) होती है, इसलिए पातों की जो राशि अंश कला विकला आवें उनको पूरे चक्र में से अर्थात् १२ राशि में से घटा देने पर, जो शेष बचे वही पातों के स्थान हैं ॥ ५३-५४ ॥

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकों में वह रीति बतलायी गयी है जिससे किसी इष्ट समय में ग्रहों के मध्यम स्थान जाने जाते हैं । इसका संक्षेप में अर्थ यह है कि जब एक महायुग में (महायुगीय सावन दिनों में) ग्रह ऊपर कहे हुए भगण करता है तब इष्ट समय तक के सावन दिनों में कितने भगण करेगा । इसलिए त्रैराशिक की रीति से इस नियम को यों प्रकट कर सकते हैं :—

महायुगीय सावन दिन : इष्ट अहर्गण :: महायुगीय भगणः इच्छित भगण

यदि 'स' को महायुगीय सावन दिन, 'अ' को इष्ट अहर्गण, 'भ' को महायुगीय भगण तथा 'भा' को अभीष्ट भगण माना जाय तो संक्षेप में इसको यों लिखेंगे :—

$$\text{भा} = \frac{\text{अ} \times \text{भ}}{\text{स}}$$

यह एक भिन्न है, जिसको सरल किया जाय तो जो पूर्णाङ्क आवेगा वह ग्रह के उन भगणों की संख्या है जो उस समय तक पूरे हो चुके हैं और शेष भिन्न को १२ से गुणा करके सरल करने पर जो पूर्णाङ्क आवेगा वह गत राशि तथा फिर जो भिन्न होगी उसको ३० से गुणा करके सरल करने पर वर्तमान राशि के अंश निकलेंगे। यदि कला विकला भी जानना हो तो ६० से गुणा करके सरल करते जाना होगा।

यह नियम सभी पूर्व चलने वाले ग्रहों, शीघ्रोच्चों और मन्दोच्चों के लिए लागू है। यदि किसी ग्रह के पातों का स्थान जानना हो तो ऊपर लिखी रीति से जो राशि, अंश, कला, विकला आवे उसे १२ राशियों में से घटा देना चाहिये क्योंकि पात की चाल उलटी होती है इसलिए वह उलटे क्रम से राशि चक्र पर चलेगा। यदि गणित से निकले कि अमुक पात 'भा' भगण पूरे करके २ राशि ३ अंश ५ कला पर है, तो इसे मेष के आदि विन्दु से उलटा गिनना चाहिये अर्थात् मीन, कुंभ, और मकर के अंतिम विंदु से ३ अंश ५ कला अर्थात् मकर के २६ अंश ५५ कला पर। इसलिए यदि १२ राशियों में २ राशि ३ अंश ५ कला घटाया जाय तो ९ राशि २६ अंश ५५ कला आवेगा जिसका अर्थ यह हुआ कि वह पात राशि चक्र की ९ राशियों के उपरान्त दसवीं राशि के २६ अंश ५५ कला पर है।

द्वादशघ्ना गुरोर्याता भगणा वर्तमानकैः।
राशिभिस्सहिताश्शुद्धाष्षष्ट्या स्युर्विजयादयः ॥५५॥

अनुवाद—वृहस्पति के गत भगणों को १२ से गुणा करके गुणनफल में वर्तमान भगण की जिस राशि में वृहस्पति हो उसकी क्रम संख्या को जोड़ दे, योगफल को ६० से भाग देने पर जो शेष बचे उसी क्रम संख्या का सम्वत्सर विजय से आरंभ होकर चल रहा है, ऐसा समझना चाहिये ॥ ५५ ॥

विज्ञान भाष्य—वृहस्पति मध्यम गति से जितने समय में एक राशि चलता है उसको सम्वत्सर कहते हैं। इसलिए वृहस्पति के एक भगण काल में (४३३२·३२०६ सावन दिनों में) बारह सम्वत्सर होते हैं और एक सम्वत्सर में ३६१·०२६७२ सावन दिन होते हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि सौर वर्ष की अपेक्षा संवत्सर ४·२३२०३

एक चक्र में ६० सम्वत्सर होते हैं जिनके नाम क्रम से यह हैं :—

१ विजय	२१ प्रमादी	४१ श्रीमुख
२ जय	२२ आनन्द	४२ भाव
३ मन्मथ	२३ राक्षस	४३ युवा
४ दुर्मुख	२४ अनल (नल)	४४ धाता
५ हेमलम्ब	२५ पिंगल	४५ ईश्वर
६ विलम्ब	२६ कालयुक्त	४६ बहुधान्य
७ विकारी	२७ सिद्धार्थी	४७ प्रमाथी
८ शार्वरी	२८ रौद्र	४८ विक्रम
९ प्लव	२९ दुर्मति	४९ वृष
१० शुभकृत	३० दुंदुभी	५० चित्रभानु
११ शोभन	३१ रुधिरोद्गारी	५१ सुभानु
१२ क्रोधी	३२ रक्ताक्ष	५२ तारण
१३ विश्वावसु	३३ क्रोधन	५३ पार्थिव
१४ पराभव	३४ क्षय	५४ व्यय
१५ प्लवंग	३५ प्रभव	५५ सर्वजित
१६ कीलक	३६ विभव	५६ सर्वधारी
१७ सौम्य	३७ शुक्ल	५७ विरोधी
१८ साधारण	३८ प्रमोद	५८ विकृति
१९ विरोधकृत	३९ प्रजापति	५९ खर
२० परिधावी	४० अंगिरा	६० नन्दन

वराहमिहिर ने वृहत्संहिता में[1] संवत्सर चक्र का आरंभ विजय से न मानकर ३५वें सम्वत्सर प्रभव से माना है। यही प्रथा आजकल भी प्रचलित है। यह प्रथा कब से आरंभ हुई इसकी खोज करना आवश्यक है। ६० संवत्सरों के चक्र में कई छोटे-छोटे विभाग हैं जिनका आरंभ भी प्रभव से ही होता है। इनकी चर्चा मानाध्याय नामक अंतिम अध्याय में की जायगी।

---

१. नवलकिशोर प्रेस से १८८४ ई० में प्रकाशित और पं० दुर्गाप्रसाद जी द्वारा अनुवादित पृष्ठ ६०—

आद्यं धनिष्ठांशमभिप्रपन्नो माघे यदायात्युदयं सुरेज्यः।

जब यह जानना हो कि किसी इष्ट समय में कौन संवत्सर चल रहा है तब सबसे पहले ५३वें श्लोक के अनुसार यह जानना चाहिये कि उस समय वृहस्पति का मध्यम स्थान क्या है। सृष्टि के आदि से अहर्गण निकाल कर मध्यम ग्रह जानने की क्रिया बहुत कठिन है, इसलिए यदि कलियुग के आदि से अहर्गण साधा जाय तो अधिक सुभीता होगा; क्योंकि इस समय से भी विजय सम्वत्सर का आरंभ हुआ है। जो लोग दशमलव भिन्न की रीति जानते हों उनको अहर्गण की जगह सौर वर्षों से काम लेने में और भी सुभीता होगा। इस प्रकार मेष-संक्रान्ति के समय वृहस्पति का जो मध्यम स्थान होगा वह निकल आवेगा। जैसे मान लीजिये कि यह जानना है कि सम्वत् १६८१ विक्रमीय मेष संक्रान्ति के समय कौन सम्वत्सर वर्तमान होगा और वह कितने दिन तक रहेगा ?

कलियुग के आरंभ से १६८१ वि० की मेष संक्रान्ति तक ५०२५ सौर वर्ष बीत चुकेंगे। उस समय तक वृहस्पति कितने भगण पूरा करके किस राशि पर रहेगा, यह जान लेने से सम्वत्सर का पता चल जायगा। एक महायुग अर्थात् ४३,२०,००० सौर वर्षों में वृहस्पति के ३,६४,२२० भगण होते हैं; इसलिए ५०२५ सौर वर्षों में

$$= \frac{३,६४,२२० \times ५०२५}{४३,२०,०००} \text{ भगण}$$

$$= \frac{३,६४,२२० \times ५०२५}{४३,२०,०००} \times १२ \text{ संबत्सर}$$

$$= ५०८३\cdot ६०४१६६६६ \text{ संवत्सर होते हैं।}$$

जिसका अर्थ यह हुआ कि १६८१ वि० की मेष संक्रान्ति के समय ५०८४वाँ सम्वत्सर चल रहा है, उसका ·६०४१६६६६ भाग बीत गया है और, ·०६५८३३३४ भाग रह गया है।

६० संवत्सरों का एक चक्र होता है इसलिए ५०८४ को ६० से भाग देने पर ८४ लब्धि आती है और ४४ शेष होता है जिसका अर्थ यह हुआ कि कलियुग से ६० सम्वत्सरों का चक्र ८४ बार हो चुका है ८५वें चक्र का ४४वाँ सम्वत्सर धाता चल रहा है और मेष संक्रान्ति के समय उसका ·०६५८३३···भाग बीतने को शेष है।

यदि यह जानना हो कि धाता सम्वत्सर १६८१ विक्रमीय में कितने दिन तक रहेगा तो इस शेष को एक सम्वत्सर के सावन दिनों से अर्थात् ३६१·०२६७२ से गुणा कर देना चाहिये। ऐसा करने से गुणनफल ३४·५६८४ सावन दिन आता है, इसलिए १६८१ को मध्यम मेष संक्रान्ति के समय से ३४·५६८४ सावन दिन बीतने

पर धाता का अंत और ईश्वर नामक सम्वत्सर का आरम्भ होगा। यह पहले बतलाया गया है कि स्पष्ट मेष संक्रान्ति मध्यम मेष संक्रान्ति से २·१७०७ सावन दिन पहले ही होती है; इसलिए स्पष्ट मेष संक्रान्ति से ३६·७६९१ सावन दिन पर अथवा ३६ दिन ४६ घड़ी ८ पल ४० विपल पर ईश्वर का प्रवेश होगा।

विस्तरेणैतदुदितं संक्षेपाद्व्यावहारिकम्।
मध्यमानयनं कार्यं ग्रहाणामिष्टतो युगात् ॥५६॥
अस्मिन् कृतयुगस्यान्ते सर्वे मध्यगता ग्रहा:।
विना तु पातमन्दोच्चान्मेषादौ तुल्यतामिता: ॥५७॥
मकरादौ शशाङ्कोच्चं तत्पातस्तु तुलादिग:।
निरंशत्वं गताश्चान्येनोक्तास्ते मन्द चारिण: ॥५८॥

अनुवाद—(५६) ग्रहों के मध्यम स्थान जानने की रीति अब तक विस्तार के साथ कही गयी है; परन्तु व्यवहार के लिए इष्ट युग से ही यह काम संक्षेप में करना चाहिये। (५७) इस सत्ययुग के अंत में पातों और मन्दोच्चों को छोड़कर सब ग्रहों के मध्यम स्थान मेष के आदि में समान थे अर्थात् सातों ग्रह मेष के आरम्भ स्थान पर पहुँचे हुए थे। (५) चन्द्रमा का उच्च मकर राशि के आदि में तथा उसका पात (राहु) तुला के आदि में थे। अन्य ग्रहों के पात और मन्दोच्च मन्दगति के कारण किसी पूरे अंश पर नहीं थे; इसलिए इनके बारे में कुछ नहीं कहा जाता है। (५६—५८)॥

विज्ञान भाष्य—इस अध्याय के ४५-५० श्लोकों में ग्रहों के मध्यम स्थान निकालने की जो रीति बतलायी गयी है वह गणित विस्तार के कारण व्यवहारोपयोगी नहीं है जैसा कि दिये हुए उदाहरणों से स्पष्ट है। इसलिए सृष्टि के आदि से सत्य-युग के अंत तक के वर्षों का अहर्गण निकालने की कोई आवश्यकता नहीं है। वर्तमान युग का आरम्भ जबसे हुआ है तभी से इष्टकाल तक का अहर्गण ४८वें श्लोक के उत्तरार्द्ध और ४९-५० श्लोकों के अनुसार जानकर ग्रहों के मध्यम स्थान जान लेने चाहिये।

जिस समय सूर्यांश पुरुष ने मय को सूर्य सिद्धान्त का उपदेश दिया है वह इसी अध्याय के दूसरे श्लोक के अनुसार सत्ययुग के अंत का समय है, इसलिए ५७वें श्लोक में त्रेता के आदि से अहर्गण बनाने का संकेत है और यह भी दिखलाया गया है कि इस समय सब ग्रहों के मध्यम स्थान मेष राशि के आदि में समान थे। इस नियम के अनुसार कलियुग में कलियुग के आदि से ही अहर्गण निकालने की रीति सुविधाजनक है जो आजकल प्रचलित भी है। जैसे त्रेता के आदि में सब ग्रहों के मध्यम स्थान के आदि में समान थे वैसे ही कलियुग के आदि में भी मेष राशि के आदि में

समान थे; क्योंकि त्रेता के आदि से कलियुग के आदि तक आधा महायुग होता है जितने समय में सब ग्रह पूरे-पूरे भगण करते हैं। हाँ चन्द्रमा का उच्च एक महायुग में विषम भगण करने के कारण मकर के आदि में न होकर कर्क के आदि में था, परन्तु पात तुला के ही आदि में था। यह मत सूर्यसिद्धान्त का है। भास्कराचार्य[1] के अनुसार कलियुग के आदि में सूर्य चन्द्रमा के सिवा अन्य ग्रहों के मध्यम स्थान यह थे :—

	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	चंद्रोच्च	राहु*
राशि	११	११	११	११	११	४	५
अंश	२९	२७	२९	२८	२८	५	३
कला	३	२४	२७	४२	४६	२९	१२
विकला	५०	२९	३६	१४	३४	४६	५८

यहाँ तक तो वह रीति बतलायी गयी है, जिससे ग्रहों का मध्यस्थान लंका या उज्जैन की आधी रात के समय का निकलता है। आगे के श्लोकों में लंका के पूरब पच्छिम के देशों में आधी रात के समय ग्रहों का मध्य स्थान जानने की रीति बतलायी जायगी।

योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु।
तद्वर्गतो दशगुणात्पदं भूपरिधिर्भवेत् ।। ५९ ।।

अनुवाद—पृथ्वी का व्यास ८०० के दूने १६०० योजन है; इसके वर्ग का १० गुना करके गुणनफल का वर्गमूल निकालने से जो आता है वह पृथ्वी की परिधि है ।। ५९ ।।

विज्ञान भाष्य—यदि पृथ्वी का व्यास 'व' मान लिया जाय तो इसकी परिधि $= \sqrt{व^२ \times १०} = व \times \sqrt{१०} = व \times ३·१६२३$, जिससे सिद्ध होता है कि परिधि व्यास का ३·१६३१ गुना होती है। आजकल यह सम्बन्ध ३·१४१६ दशमलव के चार स्थान तक शुद्ध समझा जाता है जो ३·१६२३ से बहुत भिन्न है। परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि सूर्यसिद्धान्तकार को व्यास और परिधि का ठीक-

---

१. सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ ३२-३३; कलकत्ते की १९१५ ई० की छपी।

* राहु की यह स्थिति कलकत्ते की छपी सिद्धान्त शिरोमणि में तथा म. म. पं० बापूदेव शास्त्री की संपादित सिद्धान्त शिरोमणि में लिखी है; परन्तु मेरी गणना से इसको ६ राशि २६ अंश ४७ कला २·४ वि० पर कलियुग के आरम्भ में होना चाहिये जो १२ राशियों में से ऊपर दी हुई स्थिति को घटाने से आती है।

ठीक सम्बन्ध मालूम नहीं था; क्योंकि दूसरे अध्याय में अर्द्धव्यास और परिधि का अनुपात ३४३८ : २१६०० माना गया है, जिससे परिधि व्यास का ३·१४१३६ गुना ठहरती है। इसलिए इस श्लोक में परिधि को व्यास का $\sqrt{१०}$, सुविधा के लिए, गणित की क्रिया संक्षेप करने के लिए, माना गया है; जैसे आजकल जब स्थूल रीति से काम लेना होता है तब कोई इसको $\frac{२२}{७}$ और कोई ३·१४ मानते हैं और जहाँ बहुत सूक्ष्म गणना करने की आवश्यकता पड़ती है वहाँ दशमलव के पांच-पांच सात-सात स्थानों तक इसको शुद्ध लेना पड़ता है।

भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों में इस सम्बन्ध का मान क्या लिया गया है यह नीचे के अवतरण से जान पड़ेगा।

	व्यास : परिधि		व्यास : परिधि
सूर्यसिद्धान्त, ब्रह्मगुप्त[1], द्वितीय आर्यभट[2]	१ : $\sqrt{१०}$	अर्थात्	१ : ३·१६२३
प्रथम आर्यभट[3]	२०००० : ६२८३२	,,	१ : ३·१४१६
द्वितीय आर्यभट[2], भास्कराचार्य[4]	२२ : ७	अर्थात्	१ : ३·१४२८
भास्कराचार्य[4]	१२५० : ३९२७	,,	१ : ३·१४१६
३४३८ कला को त्रिज्या मानने से, जो ब्राह्मस्फुट के सिवा सभी सिद्धान्तों में पाया जाता है।	६८७६ : २१६००	,,	१ : ३·१४१३६
आजकल के सूक्ष्म गणित से			१ : ३·१४१५९२७

भास्कराचार्य और द्वितीय आर्यभट ने दो प्रकार से व्यास और परिधि का संबंध बतलाया है, एक सूक्ष्म तथा दूसरा स्थूल और व्यवहारोपयोगी। आगे व्यास और परिधि के सम्बन्ध को π चिह्न से सूचित किया जायगा जैसी कि आज कल प्रथा है अर्थात् यदि व्यास १ है तो परिधि π है, जब कि π का मान व्यवहार के

१. ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त गोलाध्याय श्लोक १५।
२. महासिद्धान्त पाटीगणिताध्याय श्लोक ८८, ९२।
३. आर्यभटीय पृष्ठ २६ श्लोक १०, (ब्रह्मप्रेस इटावा का छपा)।
४. लीलावती पृष्ठ ५४ क्षेत्रव्यवहाराध्याय श्लोक ४०।

अनुसार $\frac{२२}{७}$, ३·१४, ३·१४२, ३·१४१६ इत्यादि जैसा आवश्यक हो लिया जा सकता है।

इस श्लोक में दूसरा शब्द 'योजन' बड़े महत्व का है। आजकल लोग योजन को साधारणतः चार कोस का समझते हैं परन्तु कोस का मान स्वयम् स्थिर नहीं है। किसी-किसी प्रान्त में कोस बहुत छोटा होता है और किसी प्रान्त में बहुत बड़ा। इसी प्रकार योजन का भी परिमाण स्थिर नहीं है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों में भूपरिधि या भूव्यास के मान भिन्न-भिन्न अंकों में दिये हुए हैं। नीचे लिखे अवतरणों से प्रकट होगा कि सिद्धान्तों में भूव्यास के मान क्या दिये हुए हैं:—

पंचसिद्धान्तिका के[1]	मत से	भूव्यास	१०१८$\frac{६}{१०}$	योजन
आर्यभट[2] और लल्ल	,,	,,	१०५०	,,
वर्तमान सूर्यसिद्धान्त	,,	,,	१६००	,,
सिद्धान्त शिरोमणि[3]	,,	,,	१५८१$\frac{१}{२४}$	,,
द्वितीय आर्यसिद्धान्त (महासिद्धान्त)			२१०६	,,
आधुनिक यूरोपीय मत से[4]				
विषुवद्वृत्तीय			७९२७	मील
ध्रुवीय			७९००	,,

ऊपर के अंकों से प्रकट है कि वराहमिहिर, आर्यभट तथा लल्ल के योजन प्रायः समान हैं और सूर्य सिद्धान्त तथा सिद्धान्तशिरोमणि के भी योजन प्रायः समान हैं; परन्तु पहले के तीन आचार्यों का योजन इन दोनों के योजन का प्रायः डेढ़ गुना है। इसलिए इन्हीं दो प्रकार के योजनों की तुलना वर्तमान मील से की जायगी। हमारे सिद्धान्तों में पृथ्वी को बिलकुल गोल माना गया है जिससे यह भेद नहीं रखा

---

१. डाक्टर थीबो और पं० सुधाकर द्विवेदी संपादित पंचसिद्धान्तिका पृष्ठ ३४ श्लोक १८ में भूपरिधि का मान ३२०० योजन दिया है जिसको ३·१४१६ से भाग देने पर १०१८·६ योजन पृथ्वी का व्यास हुआ।

२. आर्यभटीय पृष्ठ १०, प्रथम पाद का ५वाँ श्लोक।

३. गोलाध्याय पृष्ठ २०, भुवनकोश श्लोक ५२।

४. महासिद्धान्त पृष्ठ १६१, भुवनकोश श्लोक ३५।

५. Sir Robert Ball's Spherical Astronomy pp. 44.

गया कि विषुवद्वृत्तीय भूपरिधि ध्रुवीय भूपरिधि से भिन्न है। इसलिए तुलना के लिए ध्रुवीय भूपरिधि ही लेना उचित होगा क्योंकि आचार्यों ने इसी की नाप से भूपरिधि का परिमाण स्थिर किया था। इसलिए,

आर्यभट के मत से

१०५० योजन = ७६०० मील

$\therefore$ १ योजन = $\frac{७६००}{१०५०}$ मील

= ७·५२ मील

यदि १ योजन में चार कोस हों तो

१ कोस = $\frac{७.५२}{४}$ मील = १.८८ मील

सिद्धान्तशिरोमणि के मत से

१५८१ योजन = ७६०० मील

$\therefore$ १ योजन = $\frac{७६००}{१५८१}$ मील

= ५ मील

$\therefore$ १ कोस = $\frac{१}{४}$ योजन = १$\frac{१}{४}$ मील

आजकल १ कोस २ मील के समान समझा जाता है इसलिए आजकल का योजन आर्यभट के योजन से बहुत मिलता है। सिद्धान्तशिरोमणि वाला कोस आजकल के 'गऊ-कोस' (गो-कोस) के कदाचित् समान हो, जो किसी-किसी प्रान्त में अब तक प्रचलित है।

अब प्रश्न यह रह गया कि भूपरिधि नापी कैसे गयी। सूर्य सिद्धान्त में इस विषय पर कुछ नहीं लिखा गया है। भास्कराचार्य[1] कहते हैं कि उत्तर-दक्षिण-रेखा पर स्थित दो स्थानों की दूरी योजनों में नाप लो। उन दो स्थानों के अक्षांशों का भी अन्तर निकालो। फिर त्रैराशिक द्वारा यह जान लेना चाहिये कि जब इतने अक्षांशों में अन्तर होने से दो स्थानों की दूरी इतने योजन होती है तब ३६०° पर क्या होगी। इसकी उपपत्ति यह है :

चित्र ७ में एक ही उत्तर-दक्षिण-रेखा पर स्थित दो स्थानों (स, सा) का योजनात्मक अन्तर स सा नापना चाहिये। फिर दोनों के अक्षांशांतर स भ सा कोण को जानना चाहिये।

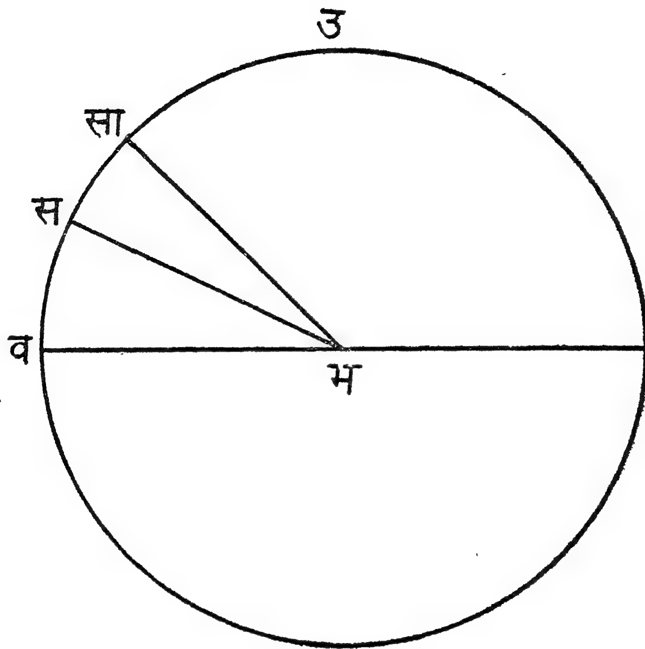
---

१. गोलाध्याय भुवनकोश, पृष्ठ १३ श्लोक १४—

पुरान्तरं चेदिदमुत्तरं स्यात् तदक्ष विश्लेष लवैस्तदाकिम्।
चक्रांशकैरित्यनुपातयुक्त्या युक्तं निरुक्तं परिधेः प्रमाणम्॥

अथवा गणिताध्याय, पृष्ठ ५६ श्लोक १—

याम्योदक पुरयोः पलान्तर हतं भूवेष्ठनं भांश हृत्।



चित्र ७

भ=पृथ्वी का केन्द्र ।
वभ=विषुवद्वृत्तीय त्रिज्या ।

उ=उत्तरी ध्रुव या सुमेरु । स, सा एक ही उत्तर-दक्षिण रेखा (meridian) के दो स्थान ।

स का अक्षांश = ∠व भ स ।
सा ,, = ∠व भ सा ।

दोनों के अक्षांशों का अन्तर = ∠स भ सा ।

फिर यह अनुपात करना चाहिए

∠स भ सा : ३६०° : : स सा : भूपरिधि

$$\therefore \text{भूपरिधि} = \frac{३६०^\circ \times \text{स सा}}{\angle \text{स भ सा}}$$

अक्षांश निकालने की रीति त्रिप्रश्नाध्याय नामक तीसरे अध्याय में कई प्रकार से बतलाई जायगी ।

भूपरिधि इसी रीति से आजकल भी नापी जाती है; केवल सूक्ष्मयंत्रों के कारण अब अधिक शुद्धतापूर्वक यह काम किया जाता है ।

लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तस्स्फुटो भूपरिधिः स्वकः ।
तेन देशान्तराभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता ॥६०॥
कलादि तत्फलं प्राच्यां ग्रहेभ्यः प्रविशोधयेत् ।
रेखाप्रतीची संस्थानां प्रक्षिपेत्तु स्वदेशजम् ॥६१॥

अनुवाद—(६०) भूपरिधि को (अपने स्थान की) लम्बज्या से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने पर अपने स्थान की स्फुट परिधि निकलती है। अपने स्थान के देशान्तर योजना को ग्रह की दैनिक गति से गुणा करके गुणनफल को इसी स्फुट परिधि से भाग देना चाहिये। (६१) (यदि दैनिक गति कला में ली गयी है तो) फल कला में आवेगा। यदि अपना स्थान लंका से पूरब में हो तो लंका की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यमग्रह में से इस फल को घटाना चाहिये और यदि अपना स्थान लंका से पच्छिम में हो तो जोड़ना चाहिये। ऐसा करने से अपने स्थान की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यम ग्रह (ग्रहों के मध्यम स्थान) निकल आते हैं ॥६०-६१॥

विज्ञान भाष्य—बीज-गणित के अनुसार इन श्लोकों को इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं :—

$$\text{स्फुट परिधि} = \frac{\text{भूपरिधि} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}} \qquad (1)$$

$$\left.\begin{matrix}\text{देशान्तर}\\ \text{फल}\end{matrix}\right\} = \frac{\text{देशान्तर योजन} \times \text{ग्रह की दैनिक गति (कला में)}}{\text{स्फुट परिधि}} \qquad (2)$$

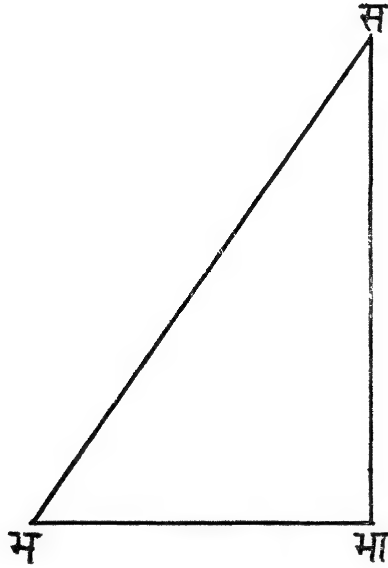
अपने स्थान की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यम ग्रह

$$= \text{लंका की अर्द्धरात्रि के मध्यम ग्रह} \pm \text{देशान्तर फल} \qquad (3)$$

यदि स्थान लंका से पूरब हो तो ऋणात्मक चिह्न और पच्छिम हो तो धनात्मक चिह्न लेना चाहिये।

इसकी उपपत्ति समझने के लिए पहले यह जानना चाहिये कि लम्बज्या, स्फुट परिधि, देशान्तर इत्यादि क्या हैं?

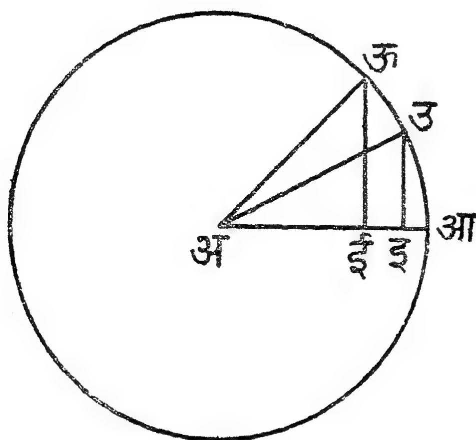
ज्या—यदि किसी समकोण त्रिभुज के किसी भुज की लम्बाई को उसके कर्ण की लम्बाई से भाग दे दिया जाय तो लब्धि उस भुज के सामने के कोण की ज्या कहलाती है। चित्र ८ में स भा भ एक समकोण त्रिभुज है; इसलिए इसके स भ भा कोण की ज्या $= \frac{\text{सभा}}{\text{सभ}}$ और भ स भा कोण की ज्या $= \frac{\text{भभा}}{\text{सभ}}$। समकोण त्रिभुज के



चित्र ८

कर्ण की लम्बाई किसी भुज की लम्बाई से अधिक होती है; इसलिए किसी भुज के सामने के कोण की ज्या एक से कम होगी इसलिए ज्या दशमलव भिन्न में लिखी जाती है। यह आजकल की प्रथा है। प्राचीन काल में जब कि दशमलव भिन्न का प्रचार नहीं था कोण की ज्या पूर्णाङ्कों में लिखी जाती थी।

किसी कोण की ज्या जानने के लिए हमारे सिद्धान्तों में ऐसा वृत्त लिया गया है, जिसकी त्रिज्या (अर्द्धव्यास) ३४३८ इकाइयां और परिधि २१६०० इकाइयां होती हैं, जिससे एक-एक इकाई एक-एक कला के समान होती है। क्योंकि परिधि एक चक्र के समान होती है जिसमें ३६० अंश अथवा ३६०×६०=२१६०० कलाएँ होती हैं। फिर केन्द्र से परिधि तक दो त्रिज्याएं ऐसी खींचते हैं जिनके बीच का कोण उस कोण के समान होता है जिसकी ज्या जानना है तथा त्रिज्या और परिधि के मिलन-विन्दु से दूसरी त्रिज्या पर लम्ब डालते हैं। इस लम्ब की लम्बाई जितनी इकाइयाँ (कलाएं) होती हैं उसी को उस कोण की ज्या कहते हैं। चित्र ९ में अ केन्द्र है; अ आ, अ उ तथा अ ऊ तीन त्रिज्याएं हैं जो अ से परिधि तक खींची गई हैं। उ या ऊ से उ इ या ऊ ई लम्ब अ आ पर डाले गये हैं। त्रिज्या की नाप ३४३८ इकाइयों में मानकर उ इ या ऊ ई को जो नाप इन्हीं इकाइयों में होगी वह उ अ इ कोण या



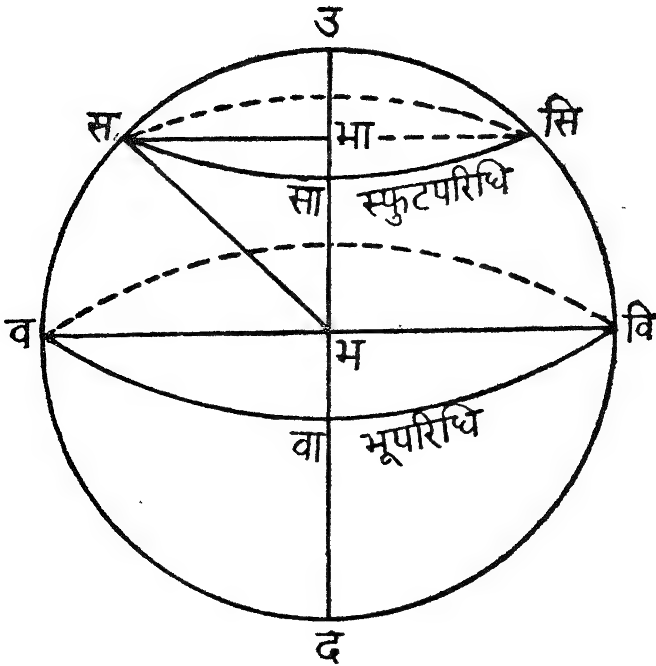
चित्र ९

ऊ अ ई कोण की ज्या कहलायेगी। जो लोग केवल आजकल की प्रथा से परिचित हैं उन्हें भ्रम हो सकता है; इसलिए उन्हें यह भेद अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। त्रिज्या का मान ३४३८ इसलिए लिया गया कि जब परिधि कलाओं में विभाजित की जाती है तब त्रिज्या का मान ३४३७$\frac{3}{4}$ कला आजकल की सूक्ष्म गणना से ठहरता है जिसका निकटतम पूर्णाङ्क ३४३८ है। आजकल के एक रेडियन* (radian) में जितनी कलाएँ होती हैं उतनी ही पूर्ण कलाओं के समान त्रिज्या का परिमाण माना गया है।

स्फुट परिधि—भूतल का वह वृत्त जो उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों से समान अन्तर पर दोनों के बीचों बीच होता हुआ भू पृष्ट को दो समान भागों में बाँटता है विषुवत् रेखा कहलाता है; विषुवत् रेखा के उत्तर वाले आधे भूगोल को उत्तर गोल और दक्षिण वाले को दक्षिण गोल कहते हैं। इस रेखा से आकाशीय ध्रुव (आकाश का वह विन्दु जो पृथ्वी के उत्तरी या दक्षिणी ध्रुव के ठीक ऊपर होता है, उत्तरी ध्रुव तारा उत्तरी ध्रुव से प्रायः १° दूर है) क्षितिज पर दिखाई देते हैं। यहाँ पर अक्षांश शून्य और लम्बांश ९०° होता है। इसलिए विषुवत् रेखा को निरक्षवृत्त भी कहते हैं। चित्र १० में व वा वि विषुवत् रेखा है। यदि किसी स्थान 'स' से निरक्षवृत्त के समानान्तर स सा सि वृत्त (Parallel of latitude) भूतल पर खींचा जाय तो इसके परिमाण को 'स' स्थान की स्फुट परिधि कहते हैं। विषुवत् रेखा से

---

* १ रेडियन=५७°·२९५८=३४:७·७४८ कला



चित्र १०

भ=पृथ्वी का केन्द्र ।

उ=पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव (सुमेरु) ।

द=पृथ्वी का दक्षिणी ध्रुव (कुमेरु) ।

व=विषुवत् रेखा का वह विन्दु जो स के ठीक दक्षिण है ।

स=अभीष्ट स्थान; उसवद स स्थान की उत्तर-दक्षिण रेखा ।

∠व भ स=स का अक्षांश ।

∠स भ उ=स का लम्बांश ।

उ द=पृथ्वी का अक्ष ।

स भ=स से पृथ्वी के अक्ष की दूरी

=स स्थान की लम्बज्या, सिद्धान्तीय पद्धति से

जैसे-जैसे उत्तर या दक्षिण जाइये तैसे-तैसे स्फुट परिधि कम होती जाती है यहाँ तक कि ध्रुवों पर स्फुट परिधि शून्य हो जाती है । इसी तरह अक्षांश बढ़ता जाता है और लम्बांश कम होता जाता है और ध्रुवों पर अक्षांश ९०° और लम्बांश शून्य हो जाता है । चित्र से यह भी प्रकट है कि 'स' स्थान की स्फुट परिधि स सा सि की

त्रिज्या 'स भा' है जो 'स' की लम्बज्या भी कहलाती है, क्योंकि स का लम्बांश $\angle$ स भ उ है जिसके सामने की भुज स भा है।

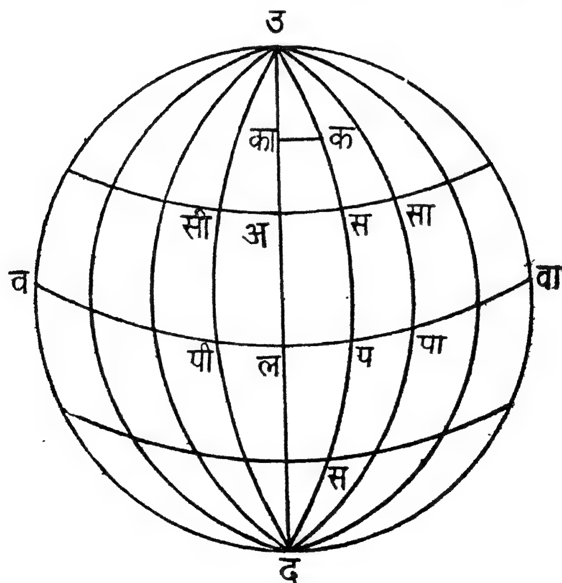
रेखागणित से यह सिद्ध है कि दो वृत्तों की परिधियों में वही अनुपात होता है जो उनकी त्रिज्याओं या व्यासों में होता है इसलिए,

व भ : स भा :: व वा वि : स सा सि

$\therefore$ स सा सि $= \frac{\text{व वा वि} \times \text{स भा}}{\text{व भ}} = \frac{\text{भू परिधि} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$, जब त्रिज्या ३४३८ हो और लम्बज्या का मान सिद्धान्तीय पद्धति के अनुसार कलाओं में हो जिसकी सारिणी दूसरे अध्याय में दी हुई।

यदि आजकल की प्रथा के अनुसार स्फुट परिधि निकालना हो तो स सा सि $=$ भूपरिधि $\times$ लम्बज्या (Sine of Colatitude) जबकि लम्बांश की ज्या दशमलव में दी हुई हो $\left(\text{क्योंकि इस रीति से लम्बज्या} = \frac{\text{स भा}}{\text{स भ}} = \frac{\text{स भा}}{\text{व भ}}\right)$

देशान्तर—चित्र ११ भूगोल के आधे गोले के पृष्ठ का चित्र है जिसमें उत्तर गोल के सी, अ, स, सा स्थानों के अक्षांश एक ही हैं इसलिए इन चारों स्थानों की



चित्र ११

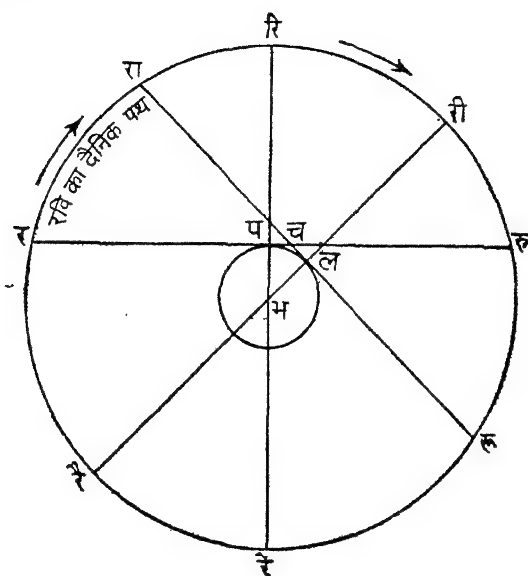
स्फुट परिधि भी एक ही है। इन स्थानों की उत्तर-दक्षिण-रेखा (Meridian) क्रम से उ सी पी द, उ अ ल द, उ स प द और उ सा पा द हैं। यदि उ अ ल द रेखा पर अ अवन्ती (उज्जैन) और ल लंका के स्थान हों तो इसको भारतवर्ष की मध्य रेखा (standard meridian) कहेंगे; जैसे आजकल ग्रीनविच से जाने वाली उत्तर-दक्षिण-रेखा यूरोप और अमेरिका वालों की भूमध्य रेखा कही जाती है। किसी स्थान की स्फुट परिधि का वह खंड जो उस स्थान की उत्तर-दक्षिण-रेखा और मध्य रेखा के बीच में पड़ जाता है उस स्थान का देशान्तर (योजनों में) (Difference of longitude in yojan) कहलाता है, जैसे स का देशान्तर स अ, सा का देशान्तर सा अ और सी का देशान्तर सीअ हुए। इसी तरह प का देशान्तर प ल, पा का देशान्तर पा ल और पी का देशान्तर पी ल हुए। चित्र से यह भी स्पष्ट है कि यद्यपि प, स एक ही उत्तर-दक्षिण रेखा पर है तथापि प, स के देशान्तर (योजनों में) समान नहीं है क्योंकि स की स्फुट परिधि प की स्फुट परिधि (भूपरिधि) से छोटी है। यदि इसी रेखा पर कोई स्थान क हो तो इसका देशान्तर क का (योजनों में) और भी छोटा होगा। ६०वें श्लोक में देशान्तर का शब्द इसी परिभाषा के अनुसार प्रयुक्त हुआ है। परन्तु यह परिभाषा सरल तथा व्यवहारोपयोगी नहीं है। आगे चलकर ६४वें श्लोक में देशान्तर नाड़ी की चर्चा है। यह भी देशान्तर की एक परिभाषा है जो सरल है; इसलिए इस जगह उसको भी समझा देना उचित होगा।

एक ही उत्तर-दक्षिण रेखा पर जितने स्थान हैं सब में जैसे क, स, प, ख स्थानों में मध्याह्न या अर्द्ध-रात्रि एक ही समय होती है। परन्तु जो स्थान इस रेखा से पूरब है वहां मध्याह्न या अर्द्धरात्रि पहले और जो स्थान पच्छिम हैं वहाँ पीछे होती है। स पर अ से (मध्य रेखा से) जितना पहले मध्याह्न होता है उतने ही समय को हम स का पूर्व देशान्तर काल (Time difference of longitude) कहते हैं। इसे हम समय की इकाइयों में प्रकट कर सकते हैं; यदि घड़ी पल में लिखें तो इसे देशान्तर घटिका या देशान्तर-नाड़ी कहेंगे और यदि घंटे मिनट में लिखें तो देशान्तर घंटा या मिनट कहेंगे। इस परिभाषा से हमको यह सुविधा होती है कि एक ही बात से हम क, स, प, ख सब का देशान्तर सहज ही प्रकट कर सकते हैं, जब कि योजनों में इनके देशान्तर भिन्न-भिन्न लिखने पड़ेंगे।

इसी प्रकार सी पर मध्य रेखा से जितना पीछे मध्याह्न होता है उस समय को सी का पच्छिम देशान्तर काल कहेंगे।

आगे पीछे मध्याह्न या मध्यरात्रि इसलिए होती है कि पृथ्वी २४ घंटे में या ६० घड़ी में एक बार अपने अक्ष पर पच्छिम से पूरब की ओर लट्टू की तरह घूम

लगाते हुए जान पड़ते हैं। आकाशीय पिंडों की इस प्रत्यक्ष गति को ही हमारे सिद्धान्तों में प्रवह-वायु-जनित गति कहा गया है। आगे सुविधा के लिए सूरज को ही कभी-कभी चक्कर लगाता हुआ लिखा जायगा, क्योंकि ऐसा मान लेने से हिसाब में कोई बाधा नहीं पहुँचती।



चित्र १२

चित्र १२ में भ पृथ्वी का केन्द्र और प, ल विषुवत् रेखा पर के दो स्थान हैं; प भ पृथ्वी का अर्द्धव्यास है जो चित्र को स्पष्ट करने के लिए बहुत बढ़ाकर खींचा गया है, यथार्थ में सूर्य की दूरी पृथ्वी के अर्द्धव्यास की कोई तेईस हजार गुनी है। सूर्य पृथ्वी के चारों ओर ६० घड़ी में र रा रि री…मार्ग से एक बार चक्कर लगा लेता है। विषुवत् रेखा को छूती हुए र प रु एक स्पर्श-रेखा है जो प की क्षितिज कहलाती है। जब सूर्य इसके ऊपर रहता है तब प स्थान से दिखाई पड़ता है। जब सूर्य क्षितिज से ऊपर 'र' विन्दु के पास आवेगा तब प निवासियों के लिए सूर्योदय होगा। प में जिस समय मध्याह्न होगा उस समय सूर्य रि पर रहेगा। जब वह रु पर आवेगा तब प-निवासियों का डूबता हुआ देख पड़ेगा और जब रे पर आवेगा तब प में मध्यरात्रि होगी। इसी प्रकार ल स्थान से सूर्य का उदय उस समय देख पड़ेगा जब वह रा' पर होगा. मध्याह्न उस समय होगा जब वह 'री' पर रहेगा, सूर्यास्त उस

समय होगा जब वह 'रू' पर रहेगा और अर्द्धरात्रि उस समय होगी जब वह 'रै' पर रहेगा।

चित्र से यह स्पष्ट है कि जिस समय 'प' पर सूर्योदय होगा उस समय से उतनी देर पीछे 'ल' पर सूर्योदय होगा जितनी देर में सूर्य 'र' से 'रा' तक जाता है। परन्तु र से रा तक जाने में उसको र च रा कोण अथवा प भ ल कोण घूमना पड़ता है क्योंकि परिधि की दो स्पर्श-रेखाओं के बीच का कोण स्पर्श-विन्दुओं से खींची गयी त्रिज्याओं के बीच के कोण के समान होता है। यह बात मध्याह्न काल या मध्यरात्रि की सूर्य की स्थितियों से और भी सरलतापूर्वक समझ में आयगी; क्योंकि यह बतलाया ही जा चुका है कि सूर्य के 'रि' पर आने से 'प' पर और 'री' पर आने से 'ल' पर मध्याह्न होता है इसलिए जितनी देर में सूर्य 'रि' से 'री' तक जाती है प की अपेक्षा उतनी ही देर पीछे ल पर मध्याह्न होगा। इसी समय को 'प' 'ल' के बीच का देशान्तर काल कहते हैं। प, ल के देशान्तर को प भ ल कोण से भी प्रकट कर सकते हैं और देशान्तर को अंश, कला विकला में भी लिख सकते हैं चाहे देशान्तर प्रकट करने की इकाई घड़ी पल में हो, चाहे अंश कला में, दोनों तरह से सुविधा होती है और जहाँ जिसकी आवश्यकता पड़ती है वहाँ वही लिखते हैं। यह स्पष्ट ही है कि ६० घड़ी में अथवा २४ घंटे में सूरज एक चक्कर अर्थात् ३६०° चलता है इसलिए एक घड़ी में ६° और १ घंटों में १५° चलेगा; इसलिए यदि दो स्थानों का देशान्तर एक अंश हो तो उन दोनों के मध्याह्न काल या मध्यरात्रि के समयों में १० पल अथवा ४ मिनट का अन्तर होगा। संक्षेप में यों लिखा जाता है कि दोनों का देशान्तर १°, १० पल अथवा ४ मिनट है। साधारणतः मध्य रेखा से देशान्तर नापने की परिपाटी है। जो स्थान मध्य रेखा से पूरब में है उनके देशान्तर के पहले 'पूर्व' और जो पच्छिम में हैं उनके देशान्तर के पहले 'पच्छिम' अवश्य लिख देना चाहिये, नहीं तो भ्रम होने का डर रहता है।

चित्र से यह भी सहज ही जाना जा सकता है कि यदि लंका (ल) की अर्द्ध रात्रि के समय का किसी ग्रह का मध्यम स्थान निकाला जाय तो वह 'प' स्थान की अर्द्ध रात्रि के समय का भी मध्यम स्थान नहीं होगा क्योंकि प लंका से पूरब है इसलिए वहाँ अर्द्ध रात्रि पहले ही हो जायगी और ग्रह सदा गतिमान होने के कारण लंका के मध्यम स्थान से कुछ पहले रहेगा। कितना पहले रहेगा, इसकी जानकारी त्रैराशिक द्वारा करनी चाहिये कि जब ६० घड़ी में ग्रह इतना चलता है तो 'प' की देशान्तर घड़ी में कितना चलेगा। जो आवे वह लंका की अर्द्ध रात्रि के मध्यम स्थान से घटा देना चाहिये। यदि स्थान मध्य रेखा से पच्छिम हो तो वहाँ मध्य रात्रि लंका की मध्य रात्रि से उस स्थान की देशान्तर घड़ी के समान पीछे होगी और ग्रह इतनी

देर में कुछ आगे बढ़ जायगा। इसलिए पच्छिम के स्थानों के लिए त्रैराशिक द्वारा जो कुछ आवे वह जोड़ना चाहिये।

देशान्तर को यदि योजन में न लिख कर घड़ी या अंश में लिखा जाय तो ६०वें श्लोक के नियम का सरल रूप यह होगा :—

६० घड़ी : देशान्तर घड़ी :: ग्रह की दैनिक गति : देशान्तर घड़ी में गति

$$\text{अर्थात् देशान्तर फल} = \frac{\text{देशान्तर घड़ी} \times \text{ग्रह की दैनिक गति}}{\text{६० घड़ी}} \qquad (४)$$

इस एक समीकरण से ६०वें श्लोक के नीचे दिये हुये पहले दो समीकरणों का काम निकल जायगा और सरलता भी होगी; क्योंकि उन समीकरणों के लिए देशान्तर घड़ी से ही देशान्तर योजन आगे के ६४-६५ श्लोकों के अनुसार बनाना पड़ता है। इसलिए सीधी ही क्रिया क्यों न की जाय ?

आगे के श्लोक में यह बतलाया गया है कि मध्यरेखा पर कौन-कौन नगर पड़ते हैं।

राक्षसालयदेवौकश्शैलयोर्मध्यसूत्रगा ।
रोहीताङ्कमवन्ती च यथा सन्निहितं सरः ॥६२॥

अनुवाद—(६२) राक्षसालय अर्थात् लंका और देवलोक अर्थात् सुमेरु पर्वत (उत्तरी ध्रुव) के बीच से गयी हुई रेखा पर जो देश हैं जैसे रोहीतक, अवन्ती, कुरुक्षेत्र इत्यादि (वे मध्य रेखा पर हैं) ॥६२॥

विज्ञान भाष्य—पिछले श्लोक के विज्ञान भाष्य में देशान्तर के सम्बन्ध में मध्य रेखा की चर्चा अच्छी तरह हुई है। यहाँ इतना कहना और आवश्यक है कि उज्जैन से होती हुई उत्तर-दक्षिण-रेखा विषुवत् रेखा से जिस स्थान पर मिलती है उसे ही लंका कहते हैं। ज्योतिष की यह लंका वही लंका है, जिसमें रावण रहता था अथवा अन्य कल्पित स्थान है और गणित की सुविधा के लिए मान लिया गया है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कुछ लोग[1] वर्तमान सिंहल द्वीप (सीलोन) को ही रावण की लंका और पोलन नरुआ को रावण की राजधानी कहते हैं और अनुमान करते हैं कि यह पौलस्त्य-नगर का अपभ्रंश है।

रोहीतक वर्तमान रोहतक है या इस नाम का कोई और स्थान था यह विचारणीय है; क्योंकि वर्तमान रोहतक का देशान्तर इंडियन क्रोनोलाजी पृ० १९० में १९२ सेकंड 'पूर्व' दिया हुआ है, जिससे जान पड़ता है कि रोहतक मध्य रेखा से

१. देखो श्रावण १९८० वि की माधुरी पृष्ठ ६-७।

८ पल पूरब[1] है। कुरुक्षेत्र का देशान्तर आजकल क्या माना जाता है यह जानने के लिए यहाँ कोई साधन नहीं है, इसलिए यह नहीं सिद्ध किया जा सकता कि कुरुक्षेत्र ठीक-ठीक मध्य रेखा पर ही है या इससे कुछ पूरब-पच्छिम हटा हुआ है।

आगे के तीन श्लोकों में यह बतलाया गया है कि चन्द्रग्रहण से देशान्तर घड़ी कैसे जानी जाती है और उससे देशान्तर से योजन कैसे निकाला जाता है :

अतीत्योन्मीलनादिन्दोः पश्चात्तद गणितागतात् ।
यदा भवेत्तदा प्राच्यां स्वस्थानं मध्यतो भवेत् ॥६३॥
अप्राप्य वा भवेत्पश्चात् एवं वाऽपि निमीलनात् ।
तयोरन्तरनाडीभिः हन्याद्भूपरिधिं स्फुटम् ॥६४॥
षष्ट्या विभज्य लब्धैस्तैर्योजनैः प्राक्तथापरे ।
स्वदेशपरिधिर्ज्ञेयः कुर्याद्देशान्तरं हि तैः ॥६५॥

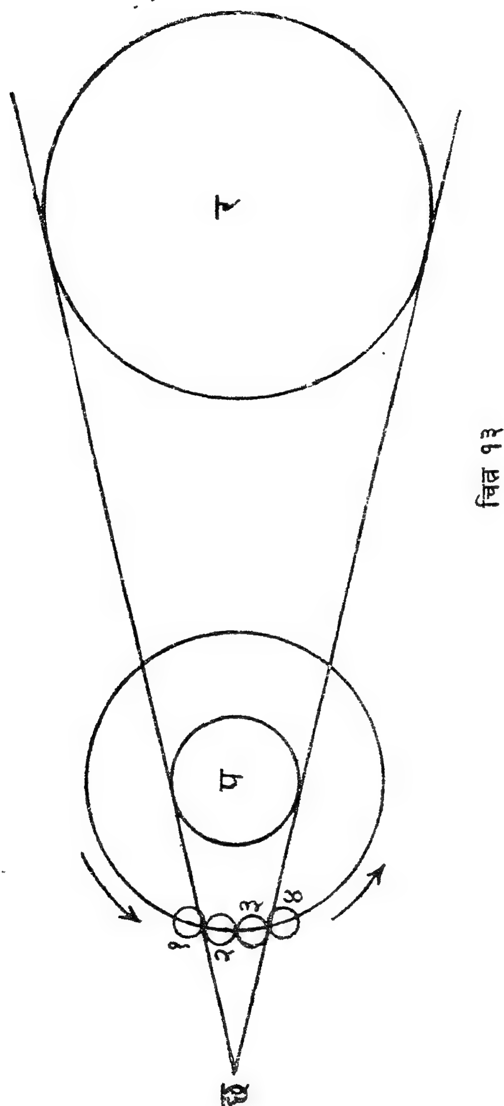
अनुवाद --(६३) मध्य रेखा पर (उज्जैन या लंका की उत्तर-दक्षिण रेखा पर) किस समय (मध्य रात्रि से कितनी घड़ी पीछे) पूर्ण ग्रसित चंद्रमा अंधकार से बाहर निकलने लगेगा, यह गणित से जान लेना चाहिये। फिर वेध करके देखना चाहिये कि अपने स्थान में किस समय (अपने यहाँ की मध्य रात्रि से कितनी घड़ी पीछे) पूर्णग्रसित चंद्रमा अंधकार से बाहर निकलने लगता है। यदि गणित-सिद्ध समय से दृक्-सिद्ध समय (यंत्र द्वारा वेध करके जाना हुआ समय) अधिक हो तो समझना चाहिये कि अपना स्थान मध्य रेखा से पूर्व है और (६४) यदि गणित-सिद्ध समय से दृक्-सिद्ध समय कम हो तो समझना चाहिये कि अपना स्थान मध्य रेखा से पच्छिम है। इसी प्रकार उस समय को भी देख कर यह बात जानी जा सकती है जिस समय चंद्रमा का पूर्ण विम्ब अंधकार में चला जाता है। गणित-सिद्ध और दृक्-सिद्ध कालों में जो अन्तर हो वही अपने यहाँ का देशान्तर काल या देशान्तर घड़ी कहलाता है (क्योंकि काल प्रायः घड़ियों में लिखा जाता है)। इस देशान्तर घड़ी को स्फुट परिधि से गुणा करके (६५) गुणनफल को साठ से भाग देने पर जो लब्धि आवे वही अपने स्थान का पूर्व देशान्तर योजन है (यदि स्थान पूर्व में हो) और पच्छिम देशान्तर योजन है (यदि स्थान पच्छिम में हो)। इसी देशान्तर योजना से (६०-६१ श्लोकों में बतलायी हुई रीति के अनुसार ग्रहों का) देशान्तर संस्कार करना चाहिये ॥६३-६५॥

---

१. शायद इसीलिए भास्कराचार्य ने रोहतक को मध्य रेखा पर नहीं लिखा है—

यल्लङ्कोज्जयिनीपु रोपरिकुरुक्षेत्रादि देशान् स्पृशत् ।
सूत्रं मेरुगतंबुधैर्निगदिता सामध्य रेखाभुवं ॥

गणिताध्याय पृष्ठ ५७



चित्र १३

विज्ञान भाष्य—निमीलन=(१) आंखों का बंद होना, (२) लुप्त होना, (३) चन्द्रमा के पूरे विम्ब का अंधकार में चला जाना। इसलिए निमीलन काल उस

समय को कहते हैं जिस समय खग्रास या सम्पूर्ण ग्रहण का आरंभ होता है। इसको सम्मीलन काल भी कहते हैं।

उन्मीलन=(१) आँखों का खोलना, (२) प्रकट होना, (३) पूर्ण ग्रसित चन्द्रमा का अंधकार से बाहर निकलना। इसलिए उन्मीलन काल उस समय को कहते हैं जिस समय चन्द्रमा का पूर्णग्रसित बिम्ब अंधकार से बाहर निकलने लगता है।

स्पर्श काल उस समय को कहते हैं जिस समय चन्द्रमा का बिम्ब अंधकार में घुसने लगता है अर्थात् जिस समय से यथार्थ ग्रहण का आरंभ होता है।

मोक्ष काल उस समय को कहते जिस समय चन्द्रमा का पूरा बिम्ब अंधकार के बाहर आ जाता है।

चित्र १३ में र रवि का केन्द्र, प पृथ्वी का केन्द्र और छ पृथ्वी की छाया की नोक है। चन्द्रकक्षा में चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है। जब चन्द्रमा का केन्द्र चन्द्रकक्षा के उस विन्दु पर पहुँचता है जहाँ १ लिखा हुआ है तब चन्द्र बिम्ब पृथ्वी-की छाया को स्पर्श करता है, इसलिए चन्द्रमा की यह स्थिति ग्रहण के समय स्पर्श काल की स्थिति है। इसी समय चन्द्र बिम्ब अंधकार में प्रवेश करता हुआ देख पड़ता है। जब चन्द्रमा उस स्थिति पर पहुँचता है जो २ अंक से सूचित किया गया है तब उसका पूरा बिम्ब अंधकार में हो जाता है। यह सम्मीलन काल अथवा निमीलन काल की स्थिति है। जब चन्द्रमा उस स्थिति पर पहुँचता है जो ३ अंक से प्रकट किया गया है तब चन्द्रमा अंधकार से बाहर निकलने को होता है। यही उन्मीलन काल की स्थिति है। और जब चन्द्रमा का पूरा बिम्ब अंधकार के बाहर निकल आता है जैसा कि ४ अंक से प्रकट किया गया है तब मोक्ष काल की स्थिति होती है।

इन चार घटनाओं में से कोई घटना आकाश में जिस समय होती है उसी समय[1] भूतल पर भी देख पड़ती है। परन्तु भूतल के सब स्थानों में सूर्योदय या मध्याह्न जिससे घड़ियाँ[2] सुगमतापूर्वक शुद्ध की जा सकती हैं, एक ही समय नहीं होता जैसा कि ६०-६१ श्लोकों के विज्ञान-भाष्य में देशान्तर की परिभाषा बतलाते हुए सिद्ध किया गया है, इसलिए भिन्न-भिन्न स्थानों की घड़ियों में किसी घटना के देखने का समय भिन्न होता है। मध्य रेखा से पूर्व के स्थानों की घड़ियाँ मध्य रेखा

---

१. यदि प्रकाश की गति का भी विचार किया जाय तो यह कहना अधिक शुद्ध होगा कि चन्द्रमा की कोई घटना भूतल पर सवा सेकंड पीछे देख पड़ती है।

२. समय जानने के यंत्र।

की घड़ी से देशान्तर काल के समान आगे रहती हैं क्योंकि यहाँ सूर्योदय पहले होता है। इसलिए यहाँ जिस समय ग्रहण देख पड़ेगा वह मध्य रेखा के समय से अधिक होगा और पच्छिम के स्थानों में कम। मध्य रेखा पर जिस समय ग्रहण देख पड़ता है वही गणित करने पर भी निकलता है। इसलिए गणित से यह जान कर कि मध्य रेखा पर कौन घटना कब देख पड़ेगी और अपने स्थान की घड़ी के अनुसार कब देख पड़ती है, यह सहज ही जाना जा सकता है कि इन दोनों स्थानों के स्थानीय कालों में क्या अन्तर है। यही अन्तर अपने स्थान का देशान्तर काल कहलाता है।

देशान्तर काल जानने के लिए उन्मीलन काल की स्थिति जानने की चर्चा पहले की गयी है। इसका कारण यह है कि उस समय चंद्रमा अंधकार से बाहर निकलने को होता है, भूतल पर भी अंधकार छाया रहता है इसलिए ज्यों ही चंद्र बिम्ब प्रकाश में आने लगता है त्यों ही स्पष्टतापूर्वक देख पड़ता है और समय जानने में बहुत अशुद्धि नहीं होती। सम्मीलन काल के समय चन्द्रमा किस समय अंधकार में पूरा प्रवेश करता है यह जानने में कुछ कठिनाई होती है इसलिए इससे देशान्तर काल निकालने में कुछ अशुद्धि हो सकती है। स्पर्श काल और मोक्ष काल के समय तो कई पल तक यह पता नहीं लग सकता है कि यथार्थ घटना किस समय हुई, इसलिए देशान्तर काल निकालने के लिए इनसे काम नहीं लिया जाता।

देशान्तर काल से देशान्तर योजन कैसे जाना जाता है यह ६०-६१ श्लोकों के विज्ञान भाष्य से समझना चाहिये। यह बात तो स्पष्ट है कि सूर्य ६० घड़ी में पृथ्वी की परिक्रमा कर लेता है जिसमे किसी स्थान की स्फुट परिधि के चारों ओर वह ६० घड़ी में घूम आता है, इसलिए किसी स्थान के देशान्तर काल में स्फुट परिधि का वह खंड पूरा होगा जो उस स्थान से मध्यरेखा का अन्तर है। त्रैराशिक द्वारा इसे यों प्रकट करते हैं :—

६० घड़ी : देशान्तर घड़ी :: स्फुट परिधि : देशान्तर योजन।

यहाँ देशान्तर जानने की कुछ अन्य रीतियों की चर्चा संक्षेप में करना आवश्यक है।

देशान्तर जानने की रीतियां :—एक रीति तो ऊपर लिखी जा चुकी है। यह बहुत पुरानी रीति है और जब आजकल की तरह सूक्ष्म यंत्रों का निर्माण नहीं हुआ था तब इससे बढ़कर कोई दूसरी रीति हो भी नहीं सकती थी। आजकल जितनी रीतियाँ प्रचलित हैं उनमें से अधिकांश इसी के रूपान्तर हैं, यदि कुछ अन्तर है तो यह कि आजकल ग्रहण इत्यादि आकाशीय घटनाओं के होने के समय का सूक्ष्म ज्ञान किया जा सकता है जिससे देशान्तर काल जहाँ तक संभव है बहुत सूक्ष्मतापूर्वक

है, इसका कारण यह है कि कोरी आँख से अथवा दूरवीक्षण यंत्र से यह ठीक-ठीक नहीं देखा जा सकता कि चन्द्र ग्रहण का उन्मीलन अथवा सम्मीलन किस क्षण से आरम्भ हो जाता है। यदि पास ही पास के दो दर्शक अपनी अपनी घड़ी लेकर यह देखने बैठें कि सम्मीलन किस समय आरम्भ होता है और चुपके से उस समय को लिख लें जिस समय प्रत्येक को सम्मीलन देख पड़े तो देखा जाता है कि उन दोनों के देखे हुए कालों में दो-[1]तीन मिनट का अन्तर होता है। शायद यही कारण है जिससे उज्जैन, कुरुक्षेत्र और रोहतक के देशान्तरों में दो तीन मिनट का अन्तर है यद्यपि यह ६२वें श्लोक में एक ही उत्तर-दक्षिण रेखा पर अर्थात् भूमध्य रेखा पर बतलाये गये हैं। नीचे ग्रीनविच से इन स्थानों के देशान्तरों की तुलना की जाती है :—

नगर	ग्रीनविच से देशान्तर		उज्जैन से देशान्तर (कोणात्मक)		उज्जैन से देशान्तर (कालात्मक)			
					घड़ी	पल	विपल	मिनट सेकंड
उज्जैन[2]	७५°४६′६″	पूर्व						
कुरुक्षेत्र[3]	७६°२०′	,,	०°३३′५४″	पूर्व	०	५	३९	(२ १५.६)
रोहतक	७६°३५′	,,	०°४८′५४″	,,	०	८	९	(३ १५.६)
काशी[4]	८३°३′४″	,,	७°१६′५८″	,,	१	१२	५०	(२९ ८)

इन अंकों से सिद्ध है कि चंद्रग्रहण से देशान्तर जानने की रीति में दो तीन मिनट का अन्तर हो सकता है।

दूसरी रीति—जिस प्रकार चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है और उसमें ग्रहण लगता है इसी प्रकार वृहस्पति के चारों ओर भी ४, ५ पिंड परिक्रमा करते हुए दूरवीक्षण यंत्र से देखे जाते हैं। यह वृहस्पति के चन्द्रमा कहलाते हैं। जब यह बृहस्पति की छाया में घुसते हैं तो इनमें भी ग्रहण लगता है। वृहस्पति के चन्द्रमा बहुत छोटे हैं और इनके परिक्रमण काल भी छोटे हैं इसलिए इनमें ग्रहण जल्दी-जल्दी लगते हैं। ग्रहण के कारण इनके छिपने और प्रकट होने का समय ग्रीनविच काल के अनुसार नाविक पंचांगों में (Nautical almanac) दिया रहता है। इसलिए यदि किसी स्थान में उसके स्थानीय काल के अनुसार वृहस्पति के चन्द्रमा के छिपने या प्रकट होने

१. Godfray's Treatise on Astronomy. Sixth edition, page 261.

२. Indian Chronology, page 60.

३. Imperial Gazetteer of India.

४. भारत भ्रमण (मकरंद सारिणी में काशी का देशान्तर ६९ पल दिया है जो ऊपर के मान से ४ पल कम है)।

का समय देखा जाय तो नाविक पंचांग में दिये हुए समय से जो अन्तर होता है वही उस स्थान का ग्रीनविच से देशान्तर है। परन्तु यह रीति भी ऊपर कही हुई रीति की तरह स्थूल है क्योंकि वृहस्पति के चंद्रमा के छिपने या प्रकट होने का क्षण निश्चित रूप से दूरवीक्षण से भी नहीं जाना जा सकता परन्तु इसमें उतनी अशुद्धि नहीं होती जितनी पहली रीति में होती है।

तीसरी रीति—टूटनेवाले तारों के प्रकट होने और लुप्त होने के क्षण को भिन्न-भिन्न स्थानों के स्थानीय कालों से तुलना करने पर देशान्तर सूक्ष्मतापूर्वक जाना जा सकता है यदि तारों के टूटने के समय का निश्चय पहले से हो सके और उनके पहचानने में कोई गड़बड़ न हो।

चौथी रीति : विद्युत द्वारा समाचार भेज कर देशान्तर जानना—यदि दो स्थानों का एक दूसरे से ऐसा सम्बन्ध हो कि एक स्थान से दूसरे स्थान को विद्युत् द्वारा समाचार भेजा जा सके तो इन दोनों स्थानों का देशान्तर सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि विद्युत् समाचार के पहुँचने में इतना कम समय लगता है कि उससे जो अशुद्धि हो सकती है वह नहीं के समान है।

मान लीजिए काशी से लखनऊ का देशान्तर जानना है। दोनों नगरों के दर्शकों को एक ही प्रकार की घड़ी रखनी चाहिये, जैसे यदि एक की घड़ी सावन काल बतलाती हो तो दूसरे की घड़ी भी सावन काल बतलाती हो। दोनों घड़ियों को अपने अपने यहाँ के स्थानीय काल से मिला लेना चाहिये जिससे प्रत्येक घड़ी अपने यहाँ का स्थानीय काल शुद्धतापूर्वक बतला सके। काशी लखनऊ से पूर्व है इसलिए काशी का स्थानीय काल लखनऊ के स्थानीय काल से आगे रहेगा और इन दोनों में जितना अन्तर होगा वही काशी से लखनऊ का देशान्तर है। जिस समय काशी की घड़ी में '$स_1$' समय हो उसी समय काशी से विद्युत् संकेत किया जाय। जिस समय यह संकेत लखनऊ पहुँचे उसी समय लखनऊ की घड़ी में समय देख लिया जाय। यदि इस घड़ी में '$स_2$' समय हो और यह मान लिया जाय कि लखनऊ में संकेत उसी क्षण पहुँचा है जिस क्षण काशी से भेजा गया है तो काशी से लखनऊ का देशान्तर '$द_1$' नीचे लिखे समीकरण से सिद्ध होगा :—

$$द_1 = स_1 - स_2$$

परन्तु इस समीकरण से देशान्तर का जो मान निकलेगा वह यथार्थ देशान्तर से कुछ कम होगा क्योंकि काशी से लखनऊ तक विद्युत् संकेत के पहुँचने में कुछ न कुछ समय अवश्य लगता है। यदि इस समय का मान 'य' हो और काशी से लखनऊ का यथार्थ देशान्तर 'द' हो तो पूर्वोक्त समीकरण का रूप यह होगा :—

$$द = (स_1 + य) - स_2 = द_1 + य \qquad (१)$$

क्योंकि जिस समय लखनऊ में समाचार पहुँचेगा उस समय काशी में '$स_1 + य$' समय होगा। 'य' का मान जानने के लिए लखनऊ से काशी को संकेत भेजकर दोनों के स्थानीय काल फिर जानना चाहिए। मान लीजिए लखनऊ से जिस समय संकेत भेजा गया उस समय लखनऊ की घड़ी में '$सा_2$' समय था और जिस समय संकेत काशी पहुँचा उस समय काशी की घड़ी में '$सा_1$' समय था, और यदि मान लिया जाय कि संकेत के पहुँचने में कुछ समय नहीं लगता तो इन दोनों का अन्तर $द_2$ लखनऊ का देशान्तर होगा जिसका रूप यह है :—

$$द_2 = सा_1 - सा_2$$

परन्तु $द_2$ का मान यथार्थ से कुछ अधिक होगा क्योंकि संकेत के पहुँचने में कुछ न कुछ समय अवश्य लगता है जो 'य' के समान फिर होगा इसलिए यथार्थ देशान्तर

$$द = सा_1 - (सा_2 + य) = (सा_1 - सा_2 - य) = द_2 - य \qquad (२)$$

(१) और (२) समीकरणों के समान पक्षों को जोड़ने से

$$२\,द = द_1 + द_2$$

$$अथवा\ द = \frac{द_1 + द_2}{२} \qquad (३)$$

जिसका अर्थ यह हुआ कि काशी से लखनऊ संकेत भेजने से जो देशान्तर काल आवे उसको उस देशान्तर काल में जोड़ दो जो लखनऊ से काशी उलटा संकेत भेजने से ज्ञात हो। फिर दोनों को जोड़कर आधा कर दो तो यथार्थ देशान्तर काल ज्ञात हो जायगा। देशान्तर जानने की और भी कई रीतियाँ हैं जो जहाज़वालों के काम की होती हैं और जिनमें नाविक पंचांग से अथवा ग्रीनविच से मिली हुई घड़ी से सहायता लेनी पड़ती है; इसलिए इस स्थान पर उनका वर्णन नहीं किया जाता है।

वारप्रवृत्तिः प्राग्देशे क्षपार्धेऽभ्यधिके भवेत् ।
स्वदेशान्तरनाडीभिः पश्चादूने विनिर्दिशेत् ॥६६॥

अनुवाद—(६६) जो स्थान मध्य रेखा से पूर्व दिशा में हैं वहाँ वार की प्रवृत्ति अर्थात् दिन का आरम्भ उस स्थान की अर्द्ध रात्रि से उतने समय पीछे होती है जितना उस स्थान का देशान्तर काल है। मध्य रेखा के पच्छिम के स्थान में उस स्थान की अर्द्धरात्रि से उतने समय पहले ही वार की प्रवृत्ति हो जाती है जितना इस स्थान का देशान्तर काल है।

विज्ञान भाष्य—इस नियम के अनुसार काशी में जो उज्जैन से अथवा भारतवर्ष की मध्य रेखा से ७३ पल पूर्व है, वार की प्रवृत्ति उस समय होती है जब

काशी में स्थानीय काल के अनुसार रात को १२ बजकर ७३ पल अर्थात् १२ बजकर २९ मिनट १२ सेकंड होता है, और बम्बई में जो उज्जैन से कोई २९ पल पच्छिम है वार की प्रवृत्ति १२ बजे रात से कोई २९ पल अथवा ११ मिनट ३६ सेकंड पहले ही हो जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस समय भारतवर्ष की मध्य रेखा पर अर्द्धरात्रि होती है उसी समय भारत के अन्य स्थानों में भी वार-प्रवृत्ति समझनी चाहिए। इसलिए ग्रहों का जो स्थान लंका या उज्जैन की अर्द्धरात्रि के समय गणित से सिद्ध होता है वह अन्य स्थानों में उस समय होता है जिस समय वहाँ वार-प्रवृत्ति होती है। इसीलिए यदि किसी स्थान की अर्द्धरात्रि के समय का ग्रह निकालना हो तो देशान्तर-फल घटाना या जोड़ना चाहिये।

यह मत सूर्य सिद्धान्त का है कि वार-प्रवृत्ति उज्जैन की अर्द्धरात्रि के समय सब स्थानों में होती है। ब्रह्मगुप्त,[1] भास्कराचार्य इत्यादि आचार्यों ने वार-प्रवृत्ति उस समय से माना है जिस समय लंका में सूर्योदय होता है क्योंकि इनके मत से सृष्टि का आरम्भ उस समय से हुआ जिस समय लंका में पहले पहल सूर्य देख पड़ा था और इसी समय पहले दिन का भी आरम्भ हुआ था। आजकल यही नियम साधारणतः प्रचलित भी है, हाँ वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी[3] अर्द्धरात्रि से ही वार की प्रवृत्ति मानते हैं और कम से कम धार्मिक कृत्यों के लिए दिन में वही तिथि मानते हैं जो पिछली आधी रात के समय वर्तमान रहती है, इसलिए इनकी एकादशी प्रायः द्वादशी के दिन होती है। अधिकांश पंचांगों में भी ग्रह स्पष्ट अर्द्धरात्रि के समय का ही दिया रहता है।

इन दोनों मतों में अर्द्ध रात्रि से वार-प्रवृत्ति का मानना अधिक सरल और व्यापक है। एक ही उत्तर-दक्षिण रेखा पर स्थित जितने स्थान हैं सब जगह अर्द्ध रात्रि या मध्याह्न सदा युगपद् होती है परन्तु सूर्योदय वर्ष में दो दिनों को छोड़कर कभी एकसाथ नहीं होता। सूर्योदय सूर्य की क्रान्ति और स्थानों के अक्षांश के

---

१. जगति तमोभूतेऽस्मिन् सृष्टचादौ भास्करादिभिः सृष्टैः।
यस्याद्दिनप्रवृत्तिर्दिनवारोऽर्कोदयात् तस्मात् ॥ ३३ ॥
ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त — मध्यमाधिकार।

२. लङ्कानगर्य्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैव वारे प्रथमं वभूव।
मधोःसितादेर्दिन मास वर्ष युगादिकानां युगपत् प्रवृत्तिः ॥१५॥
सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ ७

३. माधुरी, खंड २ संख्या ४ पृष्ठ ४३७।

अनुसार कुछ आगे पीछे होता है जिसकी व्याख्या तीसरे अध्याय में की जायगी। फिर पूरब पच्छिम के देशों में देशान्तर संस्कार के कारण भी सूर्योदय काल में बहुत अंतर पड़ जाता है। इन सब कारणों से वार-प्रवृत्ति कभी-कभी सूर्योदय के घंटे भर पीछे या पहले ही हो जाती है जो बहुत पेचदार है। परन्तु यदि आधी रात से वार-प्रवृत्ति मानी जाय तो सूर्य की क्रान्ति और स्थानों के अक्षांश के कारण कोई भेद नहीं पड़ सकता। हाँ देशान्तर संस्कार फिर भी करना पड़ेगा परन्तु इससे भी वार-प्रवृत्ति रात में ही हो जायगी जिससे कोई गड़बड़ नहीं हो सकता। लोक व्यवहार में भी किसी दिन की प्रातः, संध्या अथवा यात्रा सूर्योदय के पहले ही की जाती है जिससे जान पड़ता है कि साधारणतः सूर्योदय के दो तीन घड़ी पहले से ही दिन का आरम्भ मान लिया जाता है। इस विषय पर धर्म सिंधु[1], निर्णय सिंधु इत्यादि ग्रन्थों में बहुत चर्चा की गयी है।

आजकल यूरोपीय देशों में आधी रात से ही तारीख बदलती है तथा दिन का आरम्भ माना जाता है, इसीलिए अंगरेजी तारीखें भी आधी रात से ही बदलती हैं। इससे बहुत से लोग यह समझते हैं कि आधी रात से वार की प्रवृत्ति मानना अंग्रेजी मत है, परन्तु यह भूल है। हमारे यहाँ भी आधी रात से वार-प्रवृत्ति मानने का नियम है।

यहाँ तक तो यह बतलाया गया कि किसी स्थान की अर्द्ध रात्रि के समय किसी ग्रह का मध्यम स्थान क्या होता है और कैसे जाना जाता है। अगले श्लोक में यह बतलाया जा रहा है कि मध्य रात्रि के सिवा दिन के किसी अन्य समय में मध्यम ग्रह निकालना हो तो क्या करना चाहिये।

इष्टनाडीगुणा भुक्तिष्षष्ट्या भक्ता कलादिकः।
गते शोध्यो युते गम्ये ग्रहस्तात्कालिको भवेत् ॥६७॥

अनुवाद—(यदि मध्य रात्रि के सिवा किसी अन्य समय का मध्यम ग्रह जानना हो तो) इष्ट घड़ी को अर्थात् मध्य रात्रि से जितनी घड़ी पहले या पीछे का समय हो उस घड़ी को ग्रह की दैनिक मध्यम गति से (जो कलाओं में लिखना सुविधा-जनक होता है) गुणा करके गुणनफल को ६० से भाग दे दो। जो लब्धि आवे उसे अर्द्धरात्रि के मध्यम ग्रह में से घटा दो यदि इष्ट काल मध्य रात्रि से पहले ही बीत

---

१. सूर्योदयात् प्राक् घटिकात्रयं प्रातः संध्या, सूर्यास्तोत्तरं घटिकात्रयं सायं संध्या। धर्म सिंधु, प्रथम परिच्छेद पृष्ठ २ निर्णयसागर प्रेस का छपा (शक १८२६)

जाय और जोड़ दो यदि इष्ट काल मध्य रात्रि से पीछे आवे। ऐसा करने से ग्रह का तात्कालिक स्थान निकल आवेगा। ॥६७॥

विज्ञान भाष्य—यह स्पष्ट है कि ग्रह का मध्यम स्थान अर्द्ध रात्रि के समय जो कुछ होता है वह अन्य समय नहीं रहता क्योंकि ग्रह निरंतर चलते रहते हैं। इसलिए अर्द्ध रात्रि के पहले या पीछे किसी इष्ट समय में किसी ग्रह का मध्यम स्थान जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि उस समय में ग्रह कितना हट जायगा। यह बात त्रैराशिक से सहज ही जानी जा सकती है—

६० घड़ी : इष्ट घड़ी :: दैनिक गति : इष्ट घड़ी में गति

$$\therefore \text{इष्ट घड़ी में गति} = \frac{\text{इष्ट घड़ी} \times \text{दैनिक गति}}{\text{६० घड़ी}}$$

इसलिए अभीष्ट काल की ग्रह की स्थिति

$$= \text{अर्द्ध रात्रि की स्थिति} \pm \frac{\text{इष्ट घड़ी} + \text{दैनिक गति}}{\text{६० घड़ी}}$$

यदि इष्ट काल अर्द्धरात्रि के पहले हो तो ऋण का चिह्न रखना चाहिये और पीछे हो तो धन का चिह्न।

यह इतना स्पष्ट है कि उदाहरण देकर पुस्तक का आकार बढ़ाने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

भचक्रलिप्ताशीत्यंशैः परमं दक्षिणोत्तरम्।
विक्षिप्यते स्वपातेन स्वक्रान्त्यंशादनुष्णगुः ॥६८॥
तन्नवांशं द्विगुणितं जीवस्त्रिगुणितं कुजः।
बुधशुक्रार्कजाः पातैर्विक्षिप्यन्ते चतुर्गुणै ॥६९॥
एवं त्रिघनरन्ध्रार्करसार्कार्का दशाहताः।
चन्द्रादीनां क्रमादेषां मध्यविक्षेपलतिप्तिकाः ॥७०॥

अनुवाद—(६८) अपने पात के कारण चन्द्रमा अपने पासवाले क्रान्ति वृत्त के विन्दु से अधिक से अधिक २७० कला उत्तर या दक्षिण हट जाता है। (६९) इसका २/९ भाग बृहस्पति, ३/९ भाग अथवा १/३ भाग मंगल और ४/९ भाग बुध, शुक्र और शनि अपने अपने पातों के द्वारा हट जाते हैं। (७०) इस प्रकार चंद्रादि छः ग्रहों (चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, और शनि) के मध्यम विक्षेप २७०, ९०, १२०, ६०, १२०, १२० कलाएँ क्रम से हैं। ॥६८-७०॥

विज्ञान भाष्य—पिछले ३३ वें श्लोक के विज्ञान भाष्य में चंद्रमा के पात का वर्णन है। चित्र ४ में चंद्र कक्षा और क्रान्ति वृत्त एक दूसरे को काटते हुए

दिखलाये गये हैं। जिस समय चन्द्रमा अपने पात पर रहता है उस समय यह क्रान्ति वृत्त पर देख पड़ता है, अन्य समय यह क्रान्ति वृत्त से उत्तर या दक्षिण कुछ हटा हुआ देख पड़ता है। किस समय कितना हटा रहता है यह गणित से सहज ही जाना जा सकता है। जिस समय चंद्रमा पात से ९०° आगे या पीछे रहता है उस समय क्रान्ति वृत्त से परम अंतर पर होता है। चित्र ४ में यह परम अंतर चासा या चस से सूचित होता है। इसी को चंद्रमा का परम विक्षेप कहते हैं। इसी तरह अन्य ग्रह भी क्रान्ति वृत्त से उत्तर या दक्षिण हट जाते हैं जिनके मध्यम विक्षेप ६९-७० श्लोकों में दिये हुए हैं। ग्रहों के विक्षेप और पातों में बहुत घना सम्बन्ध है इसीलिए हमारे प्राचीन आचार्यों का विचार था कि पात ही ग्रहों को उत्तर या दक्षिण ढकेल देते हैं।

ग्रहों के परम विक्षेप सब आचार्यों के मत से एक से नहीं हैं। आजकल सूक्ष्म यंत्रों के द्वारा जो जानकारी हुई है वह हमारे किसी ग्रन्थ के मानों से नहीं मिलती। तुलना के लिए परम विक्षेपों की तालिका नीचे दी जाती है:—

	सूर्य सिद्धान्त	[1]ब्राह्म-स्फुट सिद्धान्त, सिद्धान्त शिरोमणि	[3]महा सिद्धान्त	[4]सिद्धान्त दर्पण	[5]टालमी	[6]आधुनिक
चंद्र	४°३०′	४°३०′	४°३०′	५°९′०″	५°०′	५°८′४२″
मंगल	१°३०′	१°५०′	१°४६′	१°५१′०″	१°०′	१°५१′१″
बुध	२°०′	२°३२′	२°१८′	२°४४′०″	७°०′	७°०′१०″
गुरु	१°०′	१°१६′	१°१४′	१°१८′०″	१°३०′	१°१८′४२″
शुक्र	२°०′	२°१६′	२°१०′	२°१८′०″	३°३०′	३°२३′३७″
शनि	२°०′	२°१०′	२°१०′	२°२९′०″	२°३०′	२°२९′३९″

१. ब्राह्म-स्फुट सिद्धान्त पृष्ठ ७३, ११२।

२. सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ १७५, २१२।

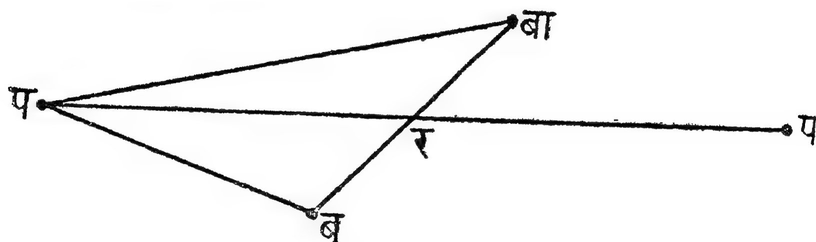
३. महासिद्धान्त स्पष्टाधिकार श्लोक ३९,

४. सिद्धान्त दर्पण पृष्ट ३१, श्लोक ३२-३३, योगेश चन्दराय द्वारा सम्पादित और कलकत्ते से १८९९ ई० में प्रकाशित।

५. भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ट ३२४

६. Sir Robert Ball's Spherical Astronomy, pp 491.

ऊपर की तालिका से देख पड़ेगा कि बुध और शुक्र के मध्य विक्षेपों के आँधुनिक मानों और सिद्धान्तों में दिये हुए मानों में बहुत अंतर है। इसका कारण यह है कि आधुनिक विक्षेप मान रविकेन्द्रगत (heliocentric) हैं अर्थात् वह हैं जो सूर्य के केन्द्र से देख पड़ते हैं और हमारे सिद्धान्तों के मान भूकेन्द्रगत (geocentric) हैं अर्थात् वह हैं जो पृथ्वी के केन्द्र से देखने पर जान पड़ते हैं। दर्शक के स्थानों की भिन्नता के कारण उन ग्रहों के विक्षेपों में बहुत अंतर नहीं पड़ता जो सूर्य से दूर हैं। परन्तु सूर्य के पास वाले ग्रह बुध और शुक्र के विक्षेपों में बहुत अंतर पड़ जाता है जो नीचे के उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा :—



चित्र—१४

दिये हुए चित्र १४ में र रवि का केन्द्र, प पृथ्वी का केन्द्र प र पा क्रान्तिवृत्त और ब र बा बुध कक्षा हैं। र से देखने पर बुध कक्षा क्रान्तिवृत्त से ब र प या बा र पा कोण बनाती है जो आधुनिक मत से ७°०′१०″ है। परन्तु पृथ्वी के केन्द्र प से देखने पर बुध कक्षा ब प र कोण बनाती हुई जान पड़ती है जिसका मान ब र प कोण से कहीं कम हैं क्योंकि प ब (बुध से पृथ्वी का माध्यम अंतर) यदि १ है तो ब र (सूर्य से बुध का माध्यम अंतर) केवल ·३८७१ है। त्रिकोणमिति से ब प र कोणिका मान सहज ही निकल सकता है क्योंकि किसी त्रिभुज सामने के कोण की ज्या से भाग देने पर लब्धि समान होती है। इसलिए—

$$\frac{\text{ज्या}\angle\text{बपर}}{\text{ब र}} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{बरप}}{\text{प ब}}$$

$$\text{अथवा ज्या}\angle\text{बपर} = \frac{\text{बर}}{\text{पब}} \times \text{ज्या}\angle\text{ब र प}$$

$$= \frac{\cdot ३८१७}{१} \times \text{ज्या } ७०^{\circ}{}'१०''$$

$$= .३८७१ \times .१२१६$$

$$= ०.०४७२$$

$$\therefore \angle\text{बपर} = २^{\circ}४२'$$

यह आधुनिक मत से बुध का भूकेन्द्रगत मध्यम विक्षेप है जो सिद्धान्त शिरोमणि के मध्यम विक्षेप से १०′ अधिक है। सिद्धान्त दर्पण के मान आधुनिक मत से बहुत मिलते हैं।

इसी प्रकार शुक्र का (रविकेन्द्रगत) मध्यम विक्षेप ३°२३′३७″ और सूर्य से मध्यम अंतर .७२३३ है जब कि पृथ्वी का १ है, इसलिए यदि चित्र १४ में ब, बा की जगह शु, शू रखकर शु शू को शुक्र की कक्षा मान ली जाय तो पहले की नांई सम्बन्ध यह होगा—

$$\text{ज्या} \angle \text{शुपर} = \frac{.७२३३}{१} \times \text{ज्या } ३^\circ २३' ३७''$$

$$= .७२३३ \times .०५९२$$

$$= .०४२८$$

$$\therefore \angle \text{शुपर} = २^\circ \cdot ७'$$

जो सिद्धान्त शिरोमणि के २°१६′ से ११′ अधिक और सिद्धान्त दर्पण के २°२८′ से केवल १′ कम है।

इससे प्रकट है कि हमारे पुराने आचार्यों के अनुसार बुध, शुक्र के मध्यम विक्षेप आधुनिक मानों से केवल १० या ११ कला कम हैं जो उस समय की स्थिति को देखते हुए बहुत सूक्ष्म हैं।

द्वितीय अध्याय

स्पष्टाधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

[१-११ श्लोक—शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात नामक काल की अदृश्य मूर्तियाँ ग्रहों की गति में कैसी भिन्नता उत्पन्न करती हैं। १२-१३ श्लोक—ग्रहों की आठ प्रकार की गतियों के नाम। १४ श्लोक—गणितसिद्ध और प्रत्यक्ष देखे हुए ग्रह के स्थानों की तुल्यता के लिए स्पष्टीकरण की आवश्यकता। १५-१६ श्लोक—समकोण के २४ खंडों की ज्या जानने की रीति। १७-२१ श्लोक—किस खंड की ज्या क्या होती है, इसकी सारिणी। २२वें श्लोक का परार्द्ध—उत्क्रम ज्या जानने की रीति। २३-२७ श्लोक—किस खंड की उत्क्रम ज्या क्या होती है, इसकी सारिणी। २८ श्लोक—परम विक्षेप की ज्या से क्रान्ति जानने का गुर। २९-३० श्लोक—मन्द केन्द्र से भुज ज्या और कोटि ज्या बनाना। ३१-३२ श्लोक—सारिणी में दिये हुए कोण खंडों के सिवा अन्य कोण की ज्या अनुपात से जानने की रीति। ३३ श्लोक—ज्या ज्ञात हो तो धनु या कोण कैसे जाना जाय? ३४-३५ श्लोक—सातों ग्रहों की मंद-परिधि के मान विषम और सम पदों में क्या होते हैं? ३६-३७ श्लोक—पाँच ग्रहों की शीघ्र परिधि के मान विषम और समपदों में क्या होते हैं। ३८ श्लोक—पद के बीच में किसी विन्दु पर मंद तथा शीघ्र परिधि का क्या परिमाण होता है। ३९ श्लोक—मन्द फल जानने का नियम। ४०-४१ का पूर्वार्द्ध—शीघ्रकर्ण जानने का नियम। ४१ श्लोक का उत्तरार्द्ध-४२ श्लोक—शीघ्र फल जानने की रीति। ४३-४४ श्लोक—ग्रहों का स्पष्ट स्थान जानने के लिए मंदफल और शीघ्रफल का संस्कार कैसे किया जाय। ४५ श्लोक—मेषादि केन्द्र में मंदफल या शीघ्र फल जोड़ना चाहिये और तुलादि केन्द्र में घटाना चाहिये। ४६ श्लोक—भुजान्तर संस्कार की आवश्यकता। ४७-४९ श्लोक—ग्रहों की मध्यगति से मन्द स्पष्टगति जानने की रीति। ५०-५१ श्लोक—मन्दस्पष्टगति से स्पष्ट गति जानने की रीति; वक्र गति कब होती हैं। ५२ श्लोक—वक्र गति का कारण। ५३-५४ श्लोक—भौमादि पांच ग्रह शीघ्रोच्च से कितनी दूरी पर वक्री होते हैं और कहाँ पहुँच कर वक्र गति को त्यागते हैं। ५५ श्लोक—शीघ्रपरिधि के भिन्न-भिन्न परिमाण के कारण वक्रगति भिन्न-भिन्न अंतर पर होती है। ५६-५७ श्लोक—ग्रहों का विक्षेप जानने का नियम। ५८ श्लोक—ग्रहों

की स्पष्ट क्रान्ति जानने का नियम। ५६ श्लोक—ग्रहों की अहोरात्रि का मान जानने का नियम। ६० श्लोक—द्युज्या जानने की रीति। ६१—क्षितिज्या और चर ज्या जानने की रीति। ६२-६३ श्लोक—चर ज्या के धनु से दिन और रात का परिमाण जानने का नियम। ६४ श्लोक—नक्षत्र और तिथि के मान तथा यह जानने की रीति कि ग्रह किस नक्षत्र में है। ६५ श्लोक—योग जानने की रीति। ६६ श्लोक—तिथि जानने की रीति। ६७ श्लोक—चार स्थिर कारणों के नाम और उनके समय। ६८ श्लोक—सात चर करण महीने में कितने फेरे करते हैं। ६९ श्लोक—आधी तिथि एक करण के समान होती है।]

मध्यमाधिकार नामक पहले अध्याय में मध्यम गति के अनुसार ग्रहों के स्थान जानने की रीति बतलायी गयी है। परन्तु इस रीति से ग्रह का जो स्थान मालूम होता है वह उससे बहुत भिन्न होता है जहाँ ग्रह प्रत्यक्ष देख पड़ता है। इस भिन्नता को मिटाने के लिए कुछ संस्कार करने की आवश्यकता पड़ती है। इस अध्याय में यह बतलाया गया है कि यह संस्कार कैसे किये जाते हैं। इन संस्कारों से ग्रहों का स्थान गणित से भी वही आता है जो स्पष्ट आकाश में देख पड़ता है। इसलिए इस अध्याय का नाम स्पष्टाधिकार रखा गया।

अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्तयो भगणाश्रिताः।
शीघ्रमन्दोच्चपाताख्या ग्रहाणां गतिहेतवः ।।१।।
तद्वातरश्मिभिर्नद्धास्तैस्सव्येतरपाणिभिः।
प्राक्पश्चादपकृष्यन्ते यथासन्नं स्वदिङ्मुखम् ।।२।।
प्रवहाख्यो मरुत्तांस्तु स्वोच्चाभिमुखमीरयेत्।
पूर्वापरापकृष्टास्ते गतीर्यान्ति पृथग्विधाः ।।३।।
ग्रहात्प्राग्भगणार्धस्थः प्राङ्मुखं कर्षति ग्रहम्।
उच्चसंज्ञोऽपरार्धस्थस्तद्वत्पश्चान्मुखं ग्रहम् ।।४।।
स्वोच्चापकृष्टा भगणात्प्राङ्मुखं यान्ति यद्ग्रहाः।
तत्तेषु धनमित्युक्तमृणं पश्चान्मुखेषु च ।।५।।

अनुवाद—(१) शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात नामक काल की मूर्तियां जो आंख से देखी नहीं जा सकतीं और जो स्वयम् क्रान्तिवृत्त पर चक्कर लगाती हैं ग्रहों की गति के कारण हैं। (२) यह मूर्तियां अपने दाहिने और बायें हाथों से यदि (ग्रहों से) पूरब हुईं तो पूरब की ओर और पच्छिम हुईं तो पच्छिम की ओर जैसी दूरी हो उसके अनुसार ग्रहों को जो उन (मूर्तियों) से वायु रूपी रस्सियों से बंधे हुए हैं अपनी ओर खींच लेती हैं। (३) प्रवह नामक वायु भी इन ग्रहों को इनके उच्चों की ओर ढकेल देती है। इसी कारण पूरब या पच्छिम की ओर खिंचे हुए ग्रहों की

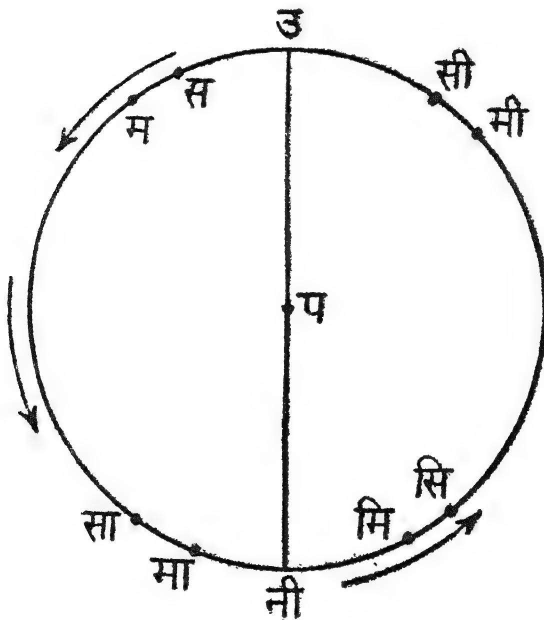
गतियों में भिन्नता हो जाती है। (४) यदि ग्रह का उच्च ग्रह से पूरब हो और ६ राशि या १८०° से अधिक दूर न हो तो वह ग्रह को मध्यम स्थान से पूरब की ओर खींच लेता है, परन्तु यदि १८०° से अधिक दूर हो तो (ग्रह से पच्छिम होने के कारण) वह ग्रह को पच्छिम की ओर खींच लेता है। (५) अपने-अपने उच्चों से खिंचे हुए ग्रह मध्यम स्थान से जितना पूरब की ओर बढ़े रहते हैं उतना (मध्यम स्थान में) जोड़ने से तथा जितना पच्छिम की ओर पिछड़े रहते हैं उतना (मध्यम स्थान में से) घटाने से स्पष्ट स्थान निकलता है। जोड़े जानेवाले संस्कारों को धन संस्कार तथा घटाये जाने वाले संस्कार को ऋण संस्कार कहते हैं ॥१-५॥

विज्ञान भाष्य—इन पांच तथा अगले ६—११ श्लोकों में हमारे आचार्यों की आकर्षण सम्बन्धी कल्पनाएँ हैं जिनसे सिद्ध होता है कि वह कितने सूक्ष्म निरूपण से काम लेते थे। वह देखते थे कि चक्कर लगाता हुआ ग्रह किसी समय ऐसे स्थान पर पहुँचता है जहाँ उसकी स्पष्ट गति अत्यन्त मंद पड़ जाती है। बस इसी को उन्होंने ग्रह के मन्दोच्च[1] का स्थान निश्चय किया था। मन्दोच्च का स्थान भी स्थिर नहीं है, वरन् अत्यन्त मंद गति से चल रहा है, इसलिए इसको भगणाश्रित अर्थात् राशिचक्र पर चलता हुआ माना है। राशिचक्र में ग्रहों की साधारण गति पच्छिम से पूर्व को होती है। जब ग्रह अपने मन्दोच्च पर पहुँचता है तब उसकी गति अत्यन्त मंद होने के कारण मध्यम गति से कम होती है। इसलिए जब ग्रह मन्दोच्च से आगे बढ़ता है तब दिन भर में मध्यम गति से जहाँ पहुँचना चाहिये वहाँ न पहुँच कर पीछे ही रह जाता है। इस प्रकार ग्रह के मध्यम तथा स्पष्ट स्थानों में अंतर पड़ जाता है। यह अंतर प्रतिदिन बढ़ता जाता है और जब ग्रह मन्दोच्च से ९०° आगे (पूर्व की ओर) बढ़ जाता है तब यह अंतर सबसे अधिक होता है। इसके बाद यह अंतर कम होने लगता है, परन्तु ग्रह मध्यम स्थान से पीछे ही रहता है जब तक कि वह मन्दोच्च से १८०° आगे नहीं बढ़ जाता। मन्दोच्च से १८०° पर ग्रह के मध्यम और स्पष्ट स्थान एक हो जाते हैं। इससे यह कल्पना करना स्वाभाविक है कि जब ग्रह मन्दोच्च से १८०° से कम अंतर पर पूर्व की ओर रहता है तब मन्दोच्च उसको मध्यम स्थान से कुछ पच्छिम की ओर जिधर वह है खींच लेता है। इसलिए मध्यम स्थान में ऋण संस्कार करने से ग्रह का स्पष्ट स्थान निकलता है। जैसे-जैसे ग्रह मन्दोच्च से दूर होता जाता है तैसे-तैसे स्पष्ट गति अधिक होती जाती है; इसलिए यह समझा गया कि आसन्नता के अनुसार मन्दोच्च का आकर्षण बढ़ता-घटता है।

---

१. मन्दोच्च, शीघ्रोच्च और पात की कुछ चर्चा 'विज्ञान' भाग १६ पृष्ठ १८७-१९१ में अथवा मध्यमाधिकार के २९-३३ श्लोकों के विज्ञान भाष्य में है।

जिस समय ग्रह मन्दोच्च से १८०° पर पहुँचता है उस समय उसकी गति अत्यन्त अधिक होती है। यही ग्रह का नीच स्थान है। इस विन्दु से जब ग्रह आगे बढ़ता है तब उसकी दैनिक स्पष्ट गति मध्यम गति से अधिक रहती है, इसलिए उसको मध्यम गति से जहाँ पहुँचना चाहिये उससे भी आगे बढ़ जाता है और प्रति दिन आगे बढ़ता जाता है। इसलिए ग्रह के मध्यम स्थान में धन संस्कार करने से स्पष्ट स्थान ज्ञात होता है। जब ग्रह मन्दोच्च से १८०° से आगे हो जाता है तब मन्दोच्च ग्रह से १८०° के भीतर पूर्व की ओर होता है। इसलिए यहाँ भी ग्रह मन्दोच्च की ओर खिंचा हुआ जान पड़ता है। इसी कारण यह कल्पना निश्चय हो गयी कि ग्रह को मन्दोच्च अपनी ओर अर्थात् पूरब में हुआ तो पूरब की ओर और पच्छिम में हुआ तो पच्छिम की ओर खींच लेता है।



चित्र १५

दिये हुए चित्र १५ में उ म नी मी सूर्य का मार्ग है। प पृथ्वी का केन्द्र है जो सूर्य मार्ग के केन्द्र पर नहीं है।

सुविधा के लिए किसी ग्रह को हम दो नामों से पुकारेंगे मध्यम ग्रह और स्पष्ट ग्रह, जिनका अंतर यह है—मध्यम ग्रह वह काल्पनिक ग्रह है जो मध्यम गति से राशि चक्र पर पृथ्वी-की परिक्रमा करता हुआ माना गया है और स्पष्ट ग्रह वह

ग्रह है जो पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ प्रत्यक्ष देखा जाता है। मध्यम ग्रह की गति सदैव समान होती है; परन्तु स्पष्ट ग्रह की गति घटती बढ़ती रहती है। प्रतिदिन की स्पष्ट गतियों का औसत निकालने से जो कुछ आता है वही मध्यम गति है। इसलिए यह स्पष्ट है कि स्पष्ट गति मध्यम गति से कभी कम होती है और कभी अधिक। जब ग्रह अपने मन्दोच्च पर रहता है तब उसकी स्पष्ट गति अत्यन्त मन्द होती है। इस जगह मध्यम और स्पष्ट ग्रह एकसाथ होते हैं। परन्तु इसके आगे मध्यम ग्रह स्पष्ट ग्रह से तीव्र होने के कारण आगे बढ़ जाता है और स्पष्ट ग्रह पीछे रह जाता है। चित्र में म, मा मध्यम सूर्य के स्थान और स, सा स्पष्ट सूर्य के स्थान हैं। इसलिए स या सा का स्थान जानने के लिए म या मा के स्थान में से घटाने की आवश्यकता होती है। जब मध्यम सूर्य नी पर पहुँचता है अर्थात् मन्दोच्च से १८०° आगे हो जाता है तब स्पष्ट सूर्य भी नी पर देख पड़ता है। इस जगह स्पष्ट सूर्य की गति अत्यन्त अधिक होती है और वह मध्यम सूर्य से बहुत तीव्र होता है इसलिए नी से आगे चलकर स्पष्ट सूर्य ही मध्यम सूर्य से आगे बढ़ा रहता है। सि, सी स्पष्ट सूर्य के और मि, मी मध्यम सूर्य के स्थान हैं। यहाँ भी स्पष्ट सूर्य उच्च की ओर हटा हुआ देख पड़ता है और मध्यम सूर्य से आगे है, इसलिए इसका स्थान जानने के लिए मध्यम सूर्य के स्थान में जोड़ने की आवश्यकता होती है।

सूर्य और चन्द्रमा के मध्यम और स्पष्ट स्थानों की भिन्नता का कारण तो इतनी ही कल्पना से समझाया जा सकता है परन्तु मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि इन पाँच ग्रहों के मध्यम और स्पष्ट स्थानों में और भी भिन्नता होती है। इसलिए मन्दोच्च की कल्पना के साथ शीघ्रोच्च की कल्पना भी की गयी। इसकी कल्पना कैसे हुई इसका अनुमान भास्कराचार्य जी के अनुसार यों हैं[1] :—

'जब शनि, गुरु और मंगल इन तीन ग्रहों से सूर्य आगे रहता है तब स्पष्ट ग्रह मध्यम ग्रह से आगे होते हैं अर्थात् सूर्य की ओर बढ़े देख हुए पड़ते हैं। परन्तु जब इनसे सूर्य पीछे रहता है तब स्पष्ट ग्रह मध्यम ग्रह से पीछे रहते हैं अर्थात् सूर्य की ओर पिछड़े हुए देख पड़ते हैं।' इसलिए विद्वानों ने यह कल्पना की कि इन तीनों ग्रहों के शीघ्रोच्च सूर्य के साथ रहते हैं। इसलिए यह अनुमान करना स्वाभाविक है कि इन ग्रहों को इनके शीघ्रोच्च भी जो सूर्य के समान या साथ रहते हैं खींचते हैं। यदि इस कल्पना को और बढ़ा दिया जाता तो सूर्य को ही शीघ्रोच्च अथवा इन ग्रहों का आकर्षक मान लेने में न्यूटन का सिद्धान्त ज्ञात हो जाता।

ऊपर मन्दोच्च और शीघ्रोच्च स्थानों की जो कल्पना की गयी है, उनकी ओर ग्रह कुछ खिच जाते हैं यह जानकर यह अनुमान होता ही है कि यह स्थान कुछ

१. सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ २०

विशेष शक्ति रखते हैं और अदृश्य भी हैं; इसलिए इनको विशेष शक्तिमान समझने के कारण अदृश्य देवमूर्तियाँ कहा गया है जो अदृश्य वायु रूपी रस्सी से ग्रहों को अपनी ओर खींचे रहते हैं और इनको प्रवह नामक वायु भी सहायता पहुँचाती है।

पात के बारे में पहले लिखा जा चुका है। वहाँ चन्द्रमा के पात के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है वही अन्य ग्रहों के पातों के लिए भी लागू है। जब ग्रह उत्तर पात पर आता है तब क्रान्ति वृत्ति पर देख पड़ता है। जब यहाँ से आगे बढ़ता है तब क्रान्तिवृत्ति से उत्तर हो जाता है। जब तक वह दक्खिन पात पर अर्थात् उत्तर पात से १८०° आगे नहीं पहुँच जाता तब तक क्रान्तिवृत्त से उत्तर ही रहता है। ऐसी दशा में उत्तर पात ग्रह से पच्छिम रहता है। इसीलिए आगे के ७वें श्लोक में यह बतलाया गया है कि ग्रह से १८०° तक पच्छिम में स्थित पात (उत्तर पात) ग्रह को उत्तर की ओर ढकेलता है और १८०° तक पूर्व में स्थिति पात उसको दक्खिन की ओर ढकेलता है। यह भी अदृश्य है और क्रान्ति वृत्त से ग्रह को उत्तर या दक्खिन की ओर ढकेलते हुए जान पड़ता है। इसलिए इसमें भी दैवीशक्ति मानी गयी है। परन्तु यथार्थ कारण यह है कि सूर्य और ग्रहों की कक्षाएं एक ही तल में नहीं हैं, जिससे प्रत्येक ग्रह की कक्षा सूर्य की कक्षा को दो विन्दुओं पर काटती हुई जान पड़ती है।

आगे के ९—११ श्लोकों में यह बतलाया गया है कि जिन ग्रहों का आकार बड़ा है वह भारी होने के कारण अपने मन्दोच्चों, शीघ्रोच्चों इत्यादि के द्वारा कम खिचते हैं और जो हलके हैं वह बहुत खिचते हैं। यह अनुमान सूक्ष्म निरूपण का फल है और आकर्षण सिद्धान्त के बिल्कुल अनुकूल है।

सूर्य सिद्धान्त के इन्हीं आठ श्लोकों के आधार पर कुछ विद्वान यह कहते हैं कि आकर्षण सिद्धान्त के आविष्कारक न्यूटन नहीं कहे जा सकते वरन् हमारे ही प्राचीन ज्योतिषाचार्य हैं। निष्पक्ष भाव से विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि हमारे पूज्य आचार्यों ने प्रत्यक्ष देखकर अपनी कल्पना और तर्क शक्ति से जितने अनुमान किये थे वह उस समय की दशा को देखते हुए परम सराहनीय हैं। उन्होंने यह अवश्य समझा था कि ग्रहों की गति की भिन्नता का कारण कोई शक्ति है, परन्तु यह नहीं ज्ञात हो सका था कि यह शक्ति किस प्रकार काम करती है, केवल पृथ्वी तथा ग्रहों के शीघ्रोच्चों, मन्दोच्चों और पातों में ही है अथवा जगत के सब पदार्थों में, और गणित की किस क्रिया द्वारा उपपत्ति बतलायी जा सकती है। आकर्षण सिद्धान्त के इस व्यापक नियम का आविष्कारक न्यूटन है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि ज्योतिष का अध्ययन-अध्यापन भारतवर्ष में उसी प्रकार चला आता जैसा भास्कराचार्य, गणेश दैवज्ञ इत्यादि के समय में था या जैसा यूरोप के फ्रांस, जर्मनी और इंगलैंड में कोपरनिकस, टाइकोब्राही, केपलर, न्यूटन इत्यादि के समय में १६वीं, १७वीं शताब्दी में

था तो संभव है कि आकर्षण सिद्धान्त हमारे आचार्यों को पहले ही उस रूप में प्रकट हो जाता जिस रूप में न्यूटन ने स्थिर किया है। हमारे यहाँ आकर्षण सम्बन्धी कल्पना कल्पना (hypothesis) के रूप में ही रह गयी और न्यूटन ने इसे सिद्धान्त (theory) के रूप में परिणत कर दिया।

इस जगह ग्रहों की भिन्न गतियों के कारण पर विचार करते हुए आकर्षण सम्बन्धी कल्पना की गई है इसलिए यह असंगत न होगा यदि ग्रहों की गति संबंधी कोपरनिकस, केपलर और न्यूटन के सिद्धान्त संक्षेप में बतला दिये जायं।

कोपरनिकस की कल्पना

१५८७ वि० (१५३० ई०) में कोपरनिकस ने जो ग्रन्थ लिखा उसमें दिखलाया कि यदि पृथ्वी तथा अन्य ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हुए मान लिये जायँ तो ग्रहों की प्रत्यक्ष टेढ़ी, सीधी गतियाँ सहज ही समझायी जा सकती हैं। इसी को कोपरनिकस की रीति कहते हैं।

केपलर के नियम

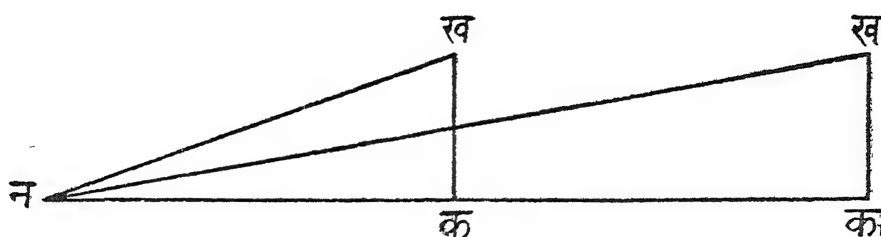
(१) जिस कक्षा में यह सूर्य की परिक्रमा करता है वह दीर्घवृत्त के आकार की होती है, जिसकी एक नाभि पर सूर्य का केन्द्र होता है।

(२) सूर्य और किसी ग्रह के केन्द्रों को मिलाने वाली रेखा समान काल में समान क्षेत्रफल बनाती हैं।

(३) दो ग्रहो के भगणकालों के वर्गों का परस्पर सम्बन्ध वही होता है जो सम्बन्ध सूर्य से उनकी मध्यम दूरियों के घनों का होता है।

अब संक्षेप में यह बतलाया जाता है कि केपलर ने किस गणना से यह नियम निकाले थे।

यह सब को अनुभव होगा कि जैसे-जैसे कोई वस्तु दूर होती जाती है वैसे-वैसे देख पड़ता है कि वह छोटो होती जाती है क्योंकि दूर हो जाने से उस वस्तु से जो कोण नेत्र पर बनता है वह छोटा होता जाता है। मान लो न नेत्र का स्थान है और क ख एक वस्तु है जो दूर होती जा रही है। जब वह क ख स्थान पर होगी तब न पर उससे क न ख कोण बनेगा और जब वह का खा स्थान पर पहुँच जायगी तब न पर उससे का न खा कोण बनेगा जो क न ख कोण से छोटा है। इसी कारण का खा स्थान पर वही वस्तु छोटी देख पड़ेगी, यद्यपि वस्तुतः उसके आकार में कोई भेद नहीं पड़ा। (देखो चित्र १६)।



चित्र १६

यदि सूर्य बिम्ब प्रतिदिन बेध करके देखा जाय तो प्रतिदिन वह एक ही आकार का नहीं देख पड़ता। जब सूर्य धनु राशि के कोई १९° पर होता है (३ जनवरी को) तब उसका बिम्ब सबसे बढ़ा देख पड़ता है। इस दिन इसके बिम्ब का मान ३२′३५·२″ होता है। इसी दिन इसकी दैनिक स्पष्ट गति भी तीव्रतम अर्थात् ६१′९·९″ होती है। इसके बाद शनैः-शनैः सूर्य बिम्ब छोटा होता जाता है और गति मंद होती जाती है। जब सूर्य मिथुन राशि के कोई १९° पर होता है अर्थात् पहले स्थान से १८०° बढ़ जाता है तब बिम्ब सबसे छोटा अर्थात् ३१′३०·७″ का होता है और दैनिक स्पष्ट गति मन्दतम अर्थात् ५७′११·५″ हो जाती है। बिम्ब के छोटा-बड़ा देख पड़ने का कारण यह तो नहीं है कि सूर्य का आकार ही वास्तव में छोटा-बड़ा हो जाता है वरन् यह है कि सूर्य की दूरी ही घटती-बढ़ती रहती है। यह मत हमारे सिद्धान्तों का भी है।[१]

यदि सूर्य बिम्ब के अर्द्धव्यास का मान स हो और पृथ्वी से सूर्य की निकटतम दूरी क हो तो सूर्य के अर्द्ध बिम्ब से जो कोण पृथ्वी पर बनेगा उसकी ज्या = स/क

परन्तु इस दिन सूर्य का बिम्ब ३२′३५·२″ होता है, इसलिए अर्द्धबिम्ब १६′१७·६″ होगा,

$$\text{इसलिए ज्या } १६'१७·६'' = \frac{स}{क}$$

परन्तु जब कोण बहुत छोटा होता है तब कोण और कोण की ज्या के मानों में कोई अन्तर नहीं होता जब कि कोण का मान Circular measure में हो या ज्या क मान भारतीय रीति से लिखा जाता हो![२]

---

१. सूर्यसिद्धान्त चन्द्र ग्रहणाधिकार श्लोक १ – ३

२. मध्यमाधिकार के ६० — ६१ श्लोकों का विज्ञान भाष्य देखो।

$\therefore \frac{स}{क} = १६'१७\cdot६'$ या $स = क \times १६'१७\cdot६''$

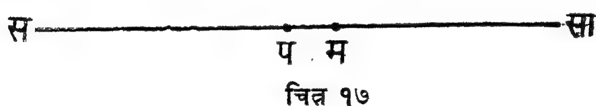
इसी प्रकार सूर्य का बिम्ब ३१'३०·७" अथवा बिम्बार्द्ध १५'४५·४" होता है तब यदि सूर्य की अत्यन्त अधिक दूरी 'का' हो तो

$\frac{स}{का} = १५'४५\cdot४''$ या $स = का \times १५'४५.४'$

$\therefore क \times १६'१७\cdot६'' = का \times १५'४५\cdot४''$

अथवा $\frac{क}{का} = \frac{१५'४५\cdot४''}{१६'१७\cdot६''}$ (१)

जिस स्थान पर सूर्य सबसे बड़ा देख पड़ता है उससे जब १८०° आगे जाता है तब सबसे छोटा देख पड़ता है। इसलिए ऊपर निकाली हुई क, का दूरियाँ एक रेखा में होनी हैं। इसलिए यदि दिये हुए चित्र १७ में प पृथ्वी का स्थान हो तो स और सा सूर्य के स्थान होंगे जब कि सूर्य क्रमानुसार सबसे बड़ा और सबसे छोटा देख पड़ता है अर्थात् जब प स = क और प सा = का



चित्र १७

समीकरण (१) का प्रत्येक पक्ष यदि १ में से घटा दिया जाय तो,

$१ - \frac{क}{का} = १ - \frac{१५'४५\cdot४''}{१६'१७\cdot६''}$

या $\frac{का - क}{का} = \frac{३२.२''}{१६'१७.६''}$ (२)

और यदि समीकरण (१) के प्रत्येक पक्ष में १ जोड़ दिया जाय तो,

$\frac{का + क}{का} = \frac{३२'३''}{१६'१७\cdot६''}$ (३)

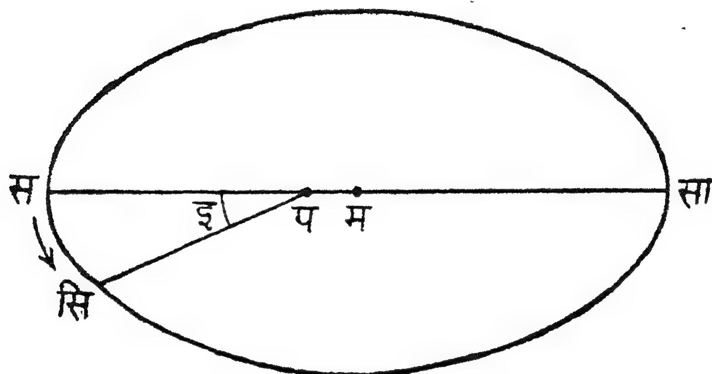
अब यदि समीकरण (२) को समीकरण (३) के समपक्षों से भाग देदें तो;

$\frac{का - क}{का + क} = \frac{३२\cdot२''}{३२'३''} = \frac{३२.२''}{१९२३''} = \frac{१}{६०}$ के लगभग

इस सम्बन्ध से प्रकट होता है कि प उस दीर्घवृत्त की नाभि है जिसका दीर्घ अक्ष स सा, केन्द्र स सा का मध्यविन्दु म और च्युति (eccentricity) $\frac{१}{६०}$ है; क्योंकि किसी दीर्घवृत्त के केन्द्र से उसकी नाभि तक जो दूरी होती है उसको दीर्घ

अक्ष के आधे से भाग देने पर च्युति का मान निकल आता है[१]। वहाँ का क केन्द्र से नाभि की दूरी का दूना और का+क दीर्घ अक्ष की लम्बाई है।

इस प्रकार यदि स सा दूरी को दीर्घ अक्ष, प को उसकी एक नाभि तथा $\frac{१}{६०}$ को च्युति मानकर दीर्घवृत्त खींचा जाय तो किसी कर्ण (Radius vector) प सि की दूरी जो स प रेखा के साथ इ कोण बनाता है इस गुर[२] से जाना जा सकता है—



चित्र १८

$$\text{प सि} = \frac{\text{म स}\ (१ - \text{च}^२)}{१ + \text{च} \times \text{कोज्या इ}}$$

जब कि च $= \frac{१}{६०} =$ '०१६७ और म स सूर्य और पृथ्वी का मध्यम अंतर स्थिर है।

इसलिए $\frac{१}{\text{प सि}}$ का मान १+च× कोज्या इ के मानानुसार बदलता है जिसको संक्षेप में यों लिखते हैं :—

$$\frac{१}{\text{क}} \propto १ + \text{च कोज्या इ}$$

जहाँ क सूर्य का पृथ्वी से अंतर (कर्ण या Radius vector) है। यह सम्बन्ध वेध से ठीक उतरता है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि सूर्य दीर्घवृत्त में चक्कर

---

१. आशुतोष मुखोपाध्याय की Geometry of Conics, Chapter, II. proposition III.

२. Loney's Elements of Coordinate Geometry, pp. 307 and 229 (1910 edition.)

लगाता है और पृथ्वी इस दीर्घवृत्त की नाभि पर है। इसकी जगह यह कहना अधिक शुद्ध है कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती हुई दीर्घवृत्त के आकार की कक्षा बनाती है और सूर्य केन्द्र इस कक्षा की नाभि पर रहता है।

इसका प्रमाण 'विज्ञान' भाग १२ पृष्ठ ७५-७६, १८८-१८९, २०३ से २०७ में दिया गया है। यही केपलर का पहला नियम है।

ऊपर बतलाया गया है कि सूर्य की तीव्रतम गति ६१′ १०″ और इसी समय इसका महत्तम बिम्ब ३२′ ३५″ होता है तथा मंदतम गति ५७′ १२″ और इसी समय न्यूनतम बिम्ब ३१′ ३१″ होता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि तीव्रतम और मन्दतम गतियों में जो अंतर होता है वह मध्यम गति का $\frac{३'५८''}{५९'११''}$, अथवा स्वल्पान्तर से $\frac{१}{१५}$ के समान है और स्पष्ट बिम्ब के महत्तम और न्यूनतम आकारों में जो अंतर होता है वह मध्यम बिम्ब का $\frac{१'४''}{३२'३''}$, अथवा स्वल्पान्तर से $\frac{१}{३०}$ के समान है। इसलिए स्पष्ट बिम्ब के परिवर्तन का सम्बन्ध $१ : १ + \frac{१}{३०}$ और स्पष्ट गति के परिवर्तन का सम्बन्ध $१ : १ + \frac{१}{१५}$ है।

परन्तु $१ + \frac{१}{१५} = (१ + \frac{१}{३०})^२$ स्वल्पान्तर से

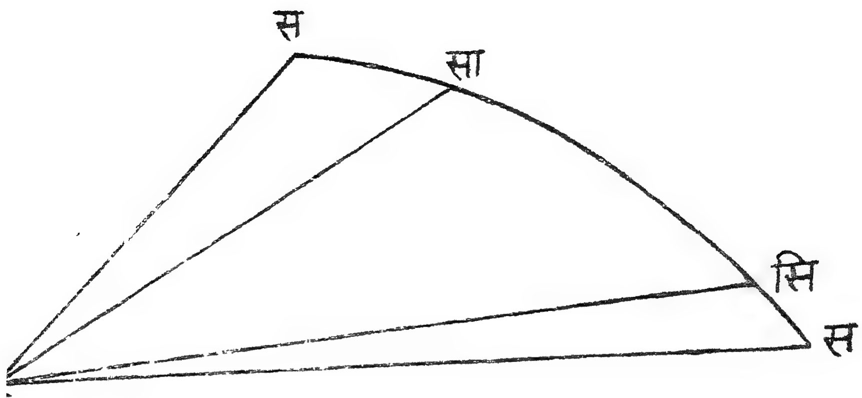
$\therefore$ गति के परिवर्तन का सम्बन्ध $१ : (१ + \frac{१}{३०})^2$ है।

चाहे जिस समय देखा जाय यही पाया जायगा कि किसी ग्रह का कोणीय वेग स्पष्ट व्यास के वर्ग के अनुसार बदलता है। परन्तु सूर्य की का स्पष्ट व्यास सूर्य दूरी के प्रतिलोम के अनुसार बदलता है, जैसा कि पिछले पृष्ठों में बतलाया जा चुका है। इसलिए कोणीय वेग स्पष्ट व्यास के वर्ग के अनुसार अथवा कर्ण के वर्ग के प्रतिलोम के अनुसार बदलता है। संक्षेप में

$$\text{कोणीय वेग} \propto (\text{स्पष्ट व्यास})^२$$

$$\text{या} \propto \left(\frac{१}{\text{कर्ण}}\right)^२$$

चित्र १६ में प पृथ्वी का स्थान है, स सूर्य का स्थान है और स प सि वह कोण है जो सूर्य १ दिन में चलता है। इसी प्रकार सा सूर्य का दूसरा स्थान है और सा प सी वह कोण है जो सूर्य १ दिन में चलता है। स, सि या सा, सी परस्पर बहुत पास हैं इसलिए प स और प सि के मानों में इतना कम अंतर है कि दोनों समान समझे जा सकते हैं। इसी तरह प सा और प सी समान समझे जा सकते हैं। ऐसी दशा में प स सि त्रिभुज उस बृत्त का एक खंड समझा जा सकता है, जिसका केन्द्र प है और त्रिज्या प स या प सि है। इसलिए



चित्र १९

$$\text{इस वृत्त खंड का क्षेत्रफल} = \angle \text{स प सि} \times \frac{(\text{पस})^2}{2}$$

$$= \text{स स्थान का कोणीय वेग} \times \frac{(\text{पस})^2}{2}$$

$$\text{और सा पसी का क्षेत्रफल} = \angle \text{सा प सी} \times \frac{(\text{पसा})^2}{2}$$

$$= \text{सा स्थान का कोणीय वेग} \times \frac{(\text{पसा})^2}{2}$$

परन्तु ऊपर बतलाया जा चुका है कि

$$\text{कोणीय वेग} \propto \frac{1}{(\text{कर्ण})^2} = \text{अ} \times \frac{1}{(\text{कर्ण})^2}$$ जब कि अ कोई अचल राशि है है।

$$\therefore \frac{\text{स प सि वृत्त खंड का क्षेत्रफल}}{\text{सा प सी वृत्त खंड का क्षेत्रफल}} = \frac{\text{स का कोणीय वेग} \times \frac{(\text{पस})^2}{2}}{\text{सा का कोणीय वेग} \times \frac{(\text{पसा})^2}{2}}$$

$$= \frac{\text{स का कोणीय वेग} \times (\text{पस})^2}{\text{सा का कोणीय वेग} \times (\text{पसा})^2}$$

$$=\frac{\text{स का कोणीय वेग} \times (\text{स का कर्ण})^2}{\text{सा का कोणीय वेग} \times (\text{सा का कर्ण})^2}$$

$$=\frac{\text{अ} \times \frac{1}{(\text{स का कर्ण})^2} \times (\text{स का कर्ण})^2}{\text{अ} \times \frac{1}{(\text{सा का कर्ण})^2} \times (\text{सा का कर्ण})^2}$$

$$=1$$

इससे सिद्ध हुआ कि स पा स और सा प सी दोनों वृत्त खंड समान हैं। यही केपलर का दूसरा नियम है।

केपलर के तीसरे नियम से सूर्य से सब ग्रहों की दूरियों का सम्बन्ध जाना जा सकता है। जैसे शुक्र और पृथ्वी के भगण काल क्रमशः २२४·७ दिन और ३६५·३ दिन हैं, इसलिए इनके भगण कालों के वर्गों का सम्बन्ध $=\frac{(365.3)^2}{(224.7)^2}=2.645$

परन्तु केपलर के तीसरे नियम के अनुसार

$$\frac{(\text{सूर्य से पृथ्वी की दूरी})^3}{(\text{सूर्य से शुक्र की दूरी})^3}=\frac{(365.3)^2}{(224.7)^2}=2.645$$

यदि सूर्य से पृथ्वी की दूरी १ मान ली जाय तो

$$\text{सूर्य से शुक्र की दूरी}=\left(\frac{1}{2.645}\right)^{\frac{1}{3}}$$

$$=(\cdot 378)^{\frac{1}{3}}$$

$$=\left(\frac{378}{1000}\right)^{\frac{1}{3}}=\tfrac{1}{10}(378)^{\frac{1}{3}}$$

$$=\tfrac{1}{10}\times(7^3+35)^{\frac{1}{3}}=\tfrac{1}{10}\times 7\left(1+\frac{5}{7^2}\right)^{\frac{1}{3}}$$

$$=\tfrac{7}{10}(1+\cdot 102)^{\frac{1}{3}}$$

$$=\tfrac{7}{10}\{1+\tfrac{1}{3}\times(.102)+\tfrac{1}{2}\times\tfrac{1}{3}(\tfrac{1}{3}-1)(.102)^2$$
$$+\tfrac{1}{|3}\times\tfrac{1}{3}\times(\tfrac{1}{3}-1)(\tfrac{1}{3}-2)(.102)^3+\cdots\}$$

$$=\tfrac{7}{10}(1+.034-.00116+.000066$$
—एक बहुत सूक्ष्म संख्या)

$$=\tfrac{7}{10}\times 1.0329=\frac{7.2303}{10}=.723$$

केपलर ने यह तीनों नियम ग्रहों के सूक्ष्म निरूपणों से सं० १६६४-१६७४ वि० (१६०८-१६१८ ई०) में बनाये थे। उसको इस बात का पता नहीं था कि किन शक्तियों से ग्रहों में इन नियमों के अनुसार गतियाँ होती हैं। कोई ७५ वर्ष तक इन नियमों की उपपत्ति नहीं बतलायी जा सकी। इसके पश्चात् न्यूटन ने यह सिद्ध किया कि विश्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण ही इन सब का कारण है। न्यूटन ने जिन तीन नियमों के आधार पर यह सिद्ध किया है वह गति के नियम कहलाते हैं, उसी के नाम से प्रसिद्ध हैं और यह हैं :—

पहला नियम—यदि कोई बाहरी शक्ति न लगायी जाय तो प्रत्येक वस्तु या तो अपनी अचल दशा में, या सीधी रेखा में समान गति से चलती हुई दशा में, रहना चाहती है।

दूसरा नियम—गति का परिवर्तन लगायी जाने वाली शक्ति के मानानुसार होता है और यह परिवर्तन उस सीधी रेखा की दिशा में होता है जिस दिशा में शक्ति लगायी जा रही हो।

तीसरा नियम—प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है, जो परिमाण में सदैव समान, परन्तु दिशा में विरुद्ध होती है अर्थात् प्रत्येक क्रिया के समान परन्तु उसके विरुद्ध दिशा में प्रतिक्रिया होती है।

यह नियम स्वयम्सिद्ध हैं। विशेष जानकारी के लिए गतिविज्ञान (Dynamics) के किसी ग्रन्थ को पढ़ना चाहिये।

केपलर के पहले और दूसरे नियमों से न्यूटन ने यह सिद्ध किया कि प्रत्येक ग्रह एक ऐसी शक्ति के कारण चल रहा है, जिसकी दिशा सूर्य की ओर है और जिसका परिमाण सूर्य से ग्रह की दूरी के वर्ग के विलोम मानानुसार होता है। केपलर के तीसरे नियम से न्यूटन ने यह सिद्ध किया कि एक ग्रह की गति की वृद्धि दूसरे ग्रह की गति की वृद्धि से क्या सम्बन्ध रखती है और इसीसे उसने विश्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त निकाला, जो यह है :—

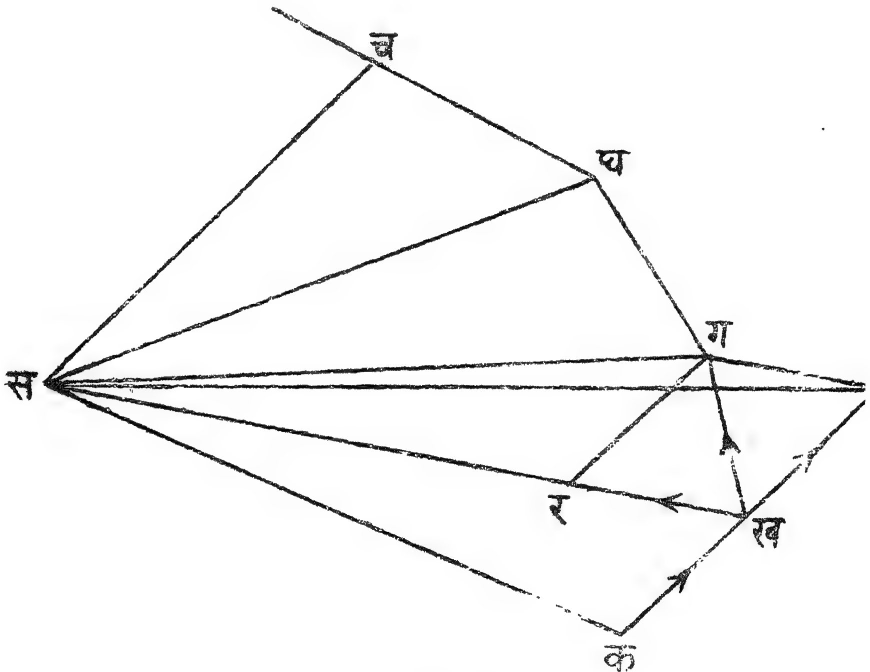
द्रव्य (matter) का प्रत्येक कण दूसरे कण को उस शक्ति से आकर्षित करता है, जो उन कणों की मात्राओं के गुणनफल के अनुसार तथा उन दोनों के बीच की दूरी के वर्ग के विलोम मानानुसार बदलती है।

अब यह सिद्ध करना है कि यदि किसी स्थिर बिन्दु से किसी गतिमान कण तक रेखा खींची जाय और वह समान काल में समान क्षेत्रफल बनावे तो वह कण जिस शक्ति से चल रहा है उसकी दिशा उसी स्थिर विन्दु की ओर है। यह बात चलनकलन (Differential Calculus) तथा गतिविज्ञान के आधार पर संक्षेप में

सिद्ध हो सकती है, जो पीछे दी जायगी। इस जगह साधारण गणित के ही आधार पर कुछ विस्तार के साथ सिद्ध की जाती है।[१]

मान लो कि 'स' एक स्थिर विन्दु है और किसी वस्तु का कोई कण स के चारों ओर घूमता हुआ क ख ग घ च बहुभुज क्षेत्र बना रहा है और क ख, ग घ, या घ च भुज समान काल में अथवा १ पल में चलता है। यह भी मान लो कि इन भुजों के मान भिन्न-भिन्न हैं और और जब तक कण किसी एक भुज पर रहता है तब तक उसकी गति एकरूप (uniform) रहती है। स क ख, स ख ग, स ग घ, स घ च त्रिभुजों के क्षेत्रफल भी समान समझ लेने चाहिये।

अब यह प्रत्यक्ष है कि समान काल में वह कण स के चारों ओर घूमता हुआ समान क्षेत्रफल बनाता है। गति के पहले नियम के अनुसार जब तक कण बहुभुज



चित्र २०

१. यह युक्ति Heroes of Science : Astronomers के पृष्ठ १७३—१७५ के आधार पर है।

क्षेत्र की कोई सीधी भुज बना रहा है तब तक उस पर कोई शक्ति काम नहीं कर रही है और वह अपनी प्राप्त शक्ति से सीधी रेखा में जा रहा है, परन्तु एक भुज से दूसरी भुज पर जैसे ही मुड़ने लगता है वैसे ही क्षण भर के लिए कुछ न कुछ शक्ति उस पर अवश्य लगनी चाहिये, जिससे वह अपनी पहले की सीधी चाल को बदल कर दूसरी सीधी चाल पर आ जाय।

जिस समय कण ख पर है उस समय की दशा पर ध्यान दो। यदि इस समय कोई शक्ति न लगे तो दूसरे पल में वह क ख की ही सीध में ख प राह पर जायगा और क ख प रेखा सीधी रेखा होगी तथा ख प और क ख समान होंगे क्योंकि गति में कोई अन्तर नहीं होगा। प को ग और स से मिला दो। स ख प त्रिभुज का आधार ख प है जो क ख के समान है और क ख की ही सीधी रेखा में है, इसलिए रेखा-गणित के अनुसार दोनों त्रिभुज स क ख और स ख प के क्षेत्रफल समान हैं। यह आरम्भ में ही मान लिया गया है कि स क ख, स ख ग इत्यादि त्रिभुजों के क्षेत्रफल समान हैं। इसलिए यह सिद्ध हो गया कि स ख प और स ख ग त्रिभुज भी परस्पर समान हैं जो एक ही आधार स ख पर हैं इसलिए रेखागणित के अनुसार यह दोनों त्रिभुज स ख और ग प समानान्तर रेखाओं के बीच में हैं अर्थात् ग प रेखा स ख के समानान्तर है। ख प के समानान्तर ग र रेखा खींचो जो स ख रेखा से र विन्दु पर मिले। तब ख प ग र समानान्तर चतुर्भुज क्षेत्र होगा। जिस समय कण ख पर था उस समय यदि कोई शक्ति न लगी होती तो वह बिन्दु प पर पहुँचता; परन्तु शक्ति लगने से वह ग पर पहुँचा, इसलिए प्रकट है कि ख पर कण की प्रथम गति ख प थी और शक्ति लगने के कारण वह ख ग में बदल गयी। इसलिए गतिविज्ञान के 'गति के समानान्तर चतुर्भुज-नियम' (parallelogram of velocities) के अनुसार लगी हुई शक्ति के कारण कण में ख प की गति के साथ ख र गति का संयोग हो गया, अर्थात् ख बिन्दु पर कण में जो गति ख प दिशा की ओर थी उसमें ख र की दिशा में ख र के समान ही दूसरी गति मिल गयी, जिससे वह कण ग विन्दु पर पहुँचा। इसलिए इस मिलने वाली शक्ति के कारण वह वस्तु स की ओर मुड़ी। इसी प्रकार यह सिद्ध हो सकता है कि बहुभुज क्षेत्र के कोण विन्दुओं ग, घ, च पर भी जो शक्ति लगती है वह स की दिशा में ही लगती है।

अब कल्पना करो कि यह बहुभुज क्षेत्र करोड़ों अत्यन्त छोटी-छोटी भुजों से बना है और स के चारों ओर घूमने वाला कण प्रत्येक छोटी-छोटी भुज को पल के करोड़वें भाग में चल कर पूरा करता है तो यह प्रकट है कि उस कण पर स की दिशा में करोड़ों बार शक्ति लगेगी। इसलिए यह सिद्ध है कि कण ने प्राय: वक्र (curved) मार्ग को स की ओर ले जाने वाली एक अनवच्छिन्न (continuous)

शक्ति के कारण पूरा किया। यदि कल्पना को और बढ़ा दिया जाय और बहुभुज क्षेत्र की भुज इतनी छोटी हो जायँ कि उनकी कोई सीमा ही न बँध सके और उनकी संख्या असंख्य हो तब भी यह तर्क लागू हो सकता है। इसलिए यह सिद्ध होता है कि यदि कोई कण किसी स्थिर विन्दु के चारों ओर ऐसे मार्ग पर चले कि उससे समान काल में समान क्षेत्रफल बने तो इस कण पर जो शक्ति निरन्तर लगी हुई है वह उस स्थिर बिन्दु की दिशा में है अर्थात् वह स्थिर बिन्दु उस कण को निरन्तर आकर्षित किये हुए है।

यदि स को सूर्य का केन्द्र मान लिया जाय और क, ख, ग इत्यादि को किसी ग्रह के स्थान, तो केपलर के दूसरे नियम से सिद्ध होता है कि सूर्य के चारों ओर घूमने वाले ग्रहों को उनकी थांभने के लिए जो शक्ति काम कर रही है वह सूर्य की ही आकर्षण शक्ति है। इसी प्रकार ग्रह भी अपने उपग्रहों को खींच रहे हैं।

दक्षिणोत्तरयोरेवं पातो राहु स्वरंहसा।
विक्षिपत्येष विक्षेपं चन्द्रादीनामपक्रमात् ॥६॥
उत्तराभिमुखं पातो विक्षिपत्यपरार्द्धगः।
ग्रहं प्राग्भगणार्द्धस्थो याम्यायामपकर्षति ॥७॥

अनुवाद—(६) चन्द्रमा आदि ग्रहों को इनके पात या राहु क्रान्तिवृत्त से विक्षेप के समान उत्तर या दक्षिण भी अपने वेग से हटा देते हैं। (७) जब पात ग्रह से पच्छिम परन्तु ६ राशि या १८०° से कम दूरी पर रहता है तब उसको क्रान्तिवृत्त से उत्तर हटा देता है और जब वह ग्रह से पूरब परन्तु ६ राशि से कम दूरी पर रहता है तब उसको क्रान्तिवृत्त से दक्षिण हटा देता है।

विज्ञान भाष्य—इन दोनों श्लोकों का साधारण अर्थ यह है कि ग्रह और उसके पात के स्थानों को देखकर समझना चाहिये कि ग्रह ठीक क्रान्तिवृत्त पर है अथवा उससे कुछ उत्तर या दक्खिन हटा हुआ है। यदि ग्रह और पात दोनों एक ही जगह हों तो समझना चाहिये कि ग्रह क्रान्तिवृत्त पर है। यदि ग्रह पात से आगे अर्थात् पूरब हो परन्तु १८०° से अधिक दूर न हो तो वह क्रान्तिवृत्त से उत्तर हटा हुआ होगा और यदि ग्रह पात से पीछे अर्थात् पच्छिम हो परन्तु १८०° से अधिक दूर न हो तो वह क्रान्तिवृत्त से दक्षिण हटा हुआ होगा। इसका कारण राहु का आकर्षण या अपकर्षण नहीं है वरन् यह है कि किसी ग्रह की कक्षा क्रान्तिवृत्त के समतल में नहीं है इसलिए ग्रह सदैव क्रान्तिवृत्त पर नहीं रहता। ग्रह की कक्षा और क्रान्तिवृत्त जिन दो विन्दुओं पर मिलते हुए जान पड़ते हैं उन्हीं को पात कहते हैं। जब ग्रह अपनी कक्षा में इन दो विन्दुओं पर रहता है तब क्रान्तिवृत्त पर देख पड़ता है अन्यथा क्रान्तिवृत्त

से उत्तर या दक्खिन ऊपर कहे हुए के अनुसार होता है। क्रान्तिवृत्त से उत्तर या दक्खिन ग्रह की जो दूरी होती है उसी को विक्षेप कहते हैं। यह उस वृत्त पर होता है जो क्रान्तिवृत्त से समकोण बनाता हुआ कदम्ब (क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव) से होकर जाता है।

बुधभार्गवयोः शीघ्रात्तद्वत्पातो यदास्थितः।
तच्छीघ्राकर्षणात्तौ तु विक्षेप्येते यथोक्तवत् ॥८॥

अनुवाद—(८) बुध और शुक्र के पात जब इनके शीघ्रोच्चों से उपर्युक्त (६, ७ श्लोकों में लिखे हुए) नियम के अनुसार होते हैं तब शीघ्रोच्चों में आकर्षण करके ग्रहों को क्रान्तिवृत्त से उत्तर या दक्खिन उसी प्रकार हटा देते हैं।

विज्ञान भाष्य—६, ७ श्लोकों में जो नियम बतलाया गया है वह केवल सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, गुरु और शनि के लिए लागू है। बुध और शुक्र दो ग्रहों के स्थान जानने के लिए यह देखना चाहिये कि इनके शीघ्रोच्च पातों से किधर और कितनी दूर है। यदि शीघ्रोच्च पात से पूरब परन्तु १८०° से कम दूर हो तो ग्रह क्रान्तिवृत्त से उत्तर होगा और पच्छिम परन्तु १८०° से कम दूर हो तो ग्रह क्रान्तिवृत्त से दक्षिण होगा।

महत्त्वान्मण्डलस्याऽर्कः स्वल्पमेवाऽपकृष्यते।
मण्डलाल्पतया चन्द्रस्ततो बह्वपकृष्यते ॥९॥
भौमादयोल्पमूर्तित्वाच्छीघ्रमन्दोच्चसंज्ञितैः।
दैवतैरपकृष्यन्ते सुदूरमतिवेगिताः ॥१०॥
अतो धनर्णं सुमहत्तेषां गतिवशाद्भवेत्।
आकृष्यमाणास्तैरेवं व्योम्नि यान्त्यनिलाहताः ॥११॥

अनुवाद—(९) सूर्य का मण्डल बहुत बड़ा है इसलिए वह अपने उच्च द्वारा बहुत कम खिचता है। चन्द्रमा का मण्डल छोटा है इसलिए यह बहुत खिचता है। (१०) मंगल आदि ग्रहों के मण्डल बहुत छोटे हैं इसलिए इनके शीघ्रोच्च मन्दोच्च देवता इनको बहुत दूर तक बड़े वेग से खींच ले जाते हैं। (११) इसलिए इनमें धन और ऋण संस्कार इनकी गति के कारण बहुत करना पड़ता है। इस प्रकार यह ग्रह अपने शीघ्रोच्च मन्दोच्च देवताओं से खिंचे हुए और प्रवह वायु का धक्का खाते हुए आकाश में चलते हैं।

विज्ञान भाष्य—हमारे आचार्यों ने यह देखा कि सूर्य की अपेक्षा चन्द्रमा अपने मध्यम स्थान से पूरब या पच्छिम अधिक रहता है और मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि इत्यादि तो अपने मध्यम स्थान से कहीं अधिक पूरब या पच्छिम देख पड़ते हैं

ग्रहों के नाम	विषुवद्वृत्तीय × अर्द्धव्यास			मात्रा (mass) जब कि पृथ्वी का १ माना जाय	मध्यम घनत्व जब पानी का १ माना जाय	गुरुत्वाकर्षण पृष्ठ पर जब कि पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण १ माना जाय
	कोणात्मक †	मीलों में	जब कि पृथ्वी का १ माना जाय			
सूर्य	१६′१″.१८	४,३२,८६०	१०६.२	३,२६,३६०	१.४०	२७.६१
बुध	३″.३४	१,५०४	०.३८०	०.०५५?	५.५६?	०.३८
शुक्र	८″.४०	३,७८३	०.६५५	०.८०७	५.१४	०.८६
पृथ्वी	८″.८०	३,६६३	१.०००	१.०००	५.५६	१.००
मंगल	४″.६८	२,१०८	०.५३२	०.१०८	३.६२	०.३८
गुरु	१′३७″.३६	४३,८५०	११.०६	३१४.५०	१.३७	२.५७
शनि	१′२४″.७५	३८,१७०	६.६३	६४.०७	०.६४	१.०१
वरुण*	३४″.२८	१५,४४०	३.६०	१४.४०	१.३५	०.६५
इन्द्र *	३६″.५६	१६,४७०	४.१५	१६.७२	१.२८	०.६७

† कोणात्मक अर्द्ध व्यास ग्रह के विम्बार्ध का कोणात्मक मान है जब कि द्रष्टा ग्रह से उतनी दूरी पर हो जो सूर्य से पृथ्वी की मध्यम दूरी है।

*यह नामकरण केतकरकी ज्योतिर्गणित के अनुसार है।

?जिस संख्या के सामने यह चिन्ह है उसका ठीक ठीक निश्चय अभी तक नहीं हो सका है।

× ग्रहों के आकार भी पूर्ण गोल नहीं हैं उनमें भी ध्रुवों पर कुछ चपटा है जैसी हमारी पृथ्वी है इसलिए उनमें भी विषुववृत्त होते हैं।

इसलिए उन्होंने इन ग्रहों के मण्डलों को चन्द्रमा से भी छोटा समझा जैसा कि यह प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं, और यह निश्चय किया कि इनके मण्डल बहुत छोटे हैं इसीलिए इनमें शीघ्रोच्चों और मन्दोच्चों के आकर्षण का प्रभाव बहुत पड़ता है।

परन्तु ग्रहों के मध्यम स्थान से कुछ पूरब या पच्छिम देख पड़ने के यथार्थ कारण हैं ग्रहों की कक्षाओं के आकार। ग्रहों की कक्षाएँ दीर्घवृत्त के आकार की हैं जिनकी च्युति (eccentricity) के परिमाण एक से नहीं हैं; इसीलिए मध्यम और स्पष्ट स्थानों में मुख्यत: अन्तर पड़ता है, ग्रहों के मण्डलों के आकार के कारण नहीं। इनके आकारों का ज्ञान पिछले पृष्ठ की सारिणी से स्पष्ट होगा जो राबर्ट बाल की 'स्फेरिकल एस्ट्रानोमी' पृष्ठ ४९२ से ली गयी है। चन्द्रमा का अर्द्धव्यास १०७६ मील है।

वक्रानुवक्रा कुटिला मन्दा मन्दतरा समा।
तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गति: ॥१२॥
तत्रातिशीघ्रा शीघ्राख्या मन्दा मन्दतरा समा।
ऋज्वीति पञ्चधाज्ञेया या वक्रा सानुवक्रगा ॥१३॥

अनुवाद—(१२) वक्र, अनुवक्र, कुटिल, मन्द मन्दर, सम, शीघ्रतर और शीघ्र नामक आठ प्रकार की गतियां ग्रहों में होती हैं। (१३) इनमें से अति शीघ्र शीघ्र, मन्द, मन्दतर और सम गतियाँ सीधी होती हैं अर्थात् जब ग्रह में यह गतियां होनी हैं तब वह राशि-चक्र में पच्छिम से पूरब को जाता हुआ देख पड़ता है और वक्र के साथ जो अनुवक्र और कुटिल गतियां हैं वह वक्र गति कहलाती हैं क्योंकि जब ग्रह में ऐसी गतियां होती हैं तब वह राशि-चक्र में पूरब से पच्छिम को उलटा जाता हुआ देख पड़ता है। जब ग्रह में सीधी गतियां होती हैं तब वह मार्गी और जब वक्र गतियाँ होती हैं तब वक्री कहलाता है।

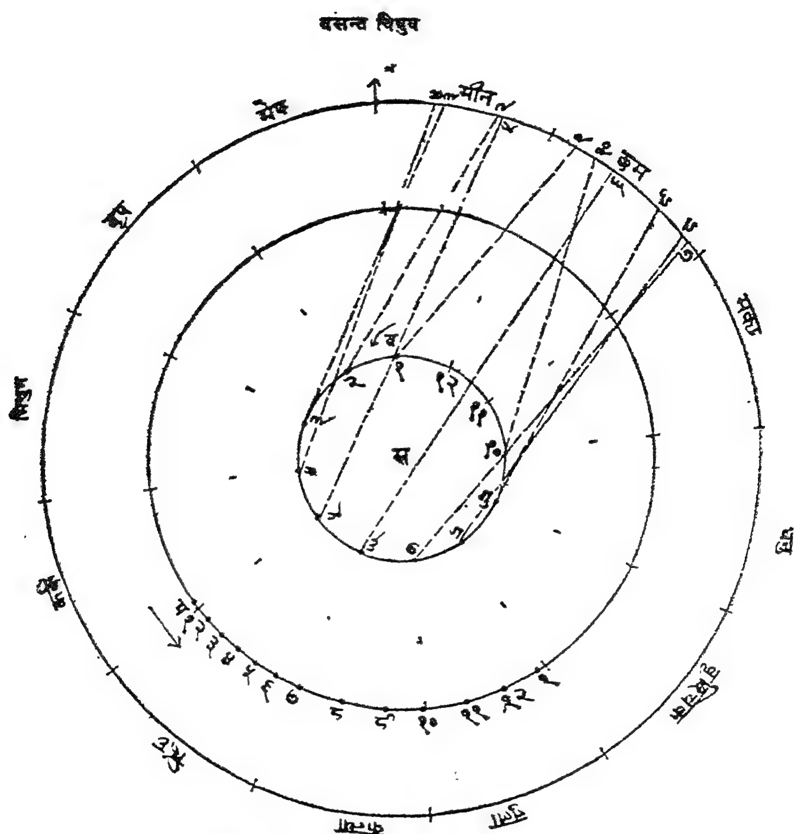
विज्ञान भाष्य—यह भिन्न-भिन्न गतियां ग्रह में कैसे हो जाती हैं इसका कारण हमारे सिद्धान्तों में कहीं नहीं बतलाया गया है, क्योंकि जब तक पृथ्वी अचल समझी जायगी तब तक इसका कारण अच्छी तरह नहीं समझाया जा सकता। हाँ यदि पृथ्वी को भी अन्य ग्रहों की भाँति सूर्य की परिक्रमा करती हुई मान लिया जाय जो कई प्रयोगों से सिद्ध भी हो गया है तो यह सहज ही समझा जा सकता है कि किसी ग्रहों में यह आठ गतियां कैसे देख पड़ती हैं; यद्यपि यथार्थ में ग्रह निरंतर पच्छिम से पूरब को जाता हुआ सूर्य की परिक्रमा कर रहा है। इस सम्बन्ध में मैंने 'विज्ञान' भाग १३ पृष्ठ २६४-२६९ पर जो लिखा था वही यहाँ उद्धृत करता हूँ।

यदि आप मैदान में एक झंडा गाड़ दें और झंडे से ४,७,१०,१५,५२,९५, १९२, और ३०७ फर्लांग के अन्तर पर एक एक घेरा दो तीन फुट ऊँचा करवा दें; प्रत्येक घेरे के पास एक एक घुडसवार नियुक्त कर दें; आप स्वयं झंडे के पास खड़े हो जायँ और घुड़सवारों को आज्ञा दे दें कि प्रत्येक घुड़सवार अपने अपने घेरे के पास इस तरह खड़ा हो जाय कि सब एक ही सीध में दिखाई पड़ें और तदनन्तर सब सवार एक साथ ही घेरे का इस वेग से चक्कर लगाने लगें कि सबसे पास वाला एक चक्कर ८८ सेकंड में, इससे कुछ दूरवाला २२५ सेकंड में, तीसरा ३६५ सेकंड में, चौथा ६८७ सेकंड में, पांचवां ४३३२ सेकंड में, छठा १०७५९ सेकंड में, सातवां ५१० मिनट में और आठवां १००३ मिनट में, चक्कर पूरा करने लगे, तो जिस प्रकार यह घुड़सवार सेकंडों में आपकी परिक्रमा करते हुए जान पड़ेंगे वैसे ही सौर-मंडल में ग्रह दिनों में सूर्य की परिक्रमा करते हुये दिखाई पड़ते हैं। अंतर केवल इतना होगा कि सवार एक धरातल में चक्कर लगावेंगे पर ग्रह कुछ उत्तर दक्खिन हट भी जाते हैं।

यदि आप झंडे के पास न खड़े होकर स्वयं झंडे से तीसरे घोड़े पर सवार होकर पहले कहे हुये वेग से चक्कर लगाने लगें तो आपको झंडे और घुड़सवार जैसे दिखाई पड़ेंगे वही दृश्य हम पृथ्वी निवासियों को ग्रहों के सूर्य का चक्कर लगाने में दिखाई पड़ता है। कभी यह जान पड़ता है कि ग्रह आगे बढ़ते जा रहे हैं और कभी जान पड़ता है कि कोई पीछे हो रहे हैं और कभी ठहरे हुये भी दिखाई पड़ते हैं।

ऊपर सवारों के उदाहरण से आपको विदित हो गया होगा कि यदि सवार तीसरे घोड़े पर बैठ कर झंडे की परिक्रमा करे तो बाहर और भीतर दोनों ओर वाले घोड़ों की गतियों में वही 'वक्रानुवक्रा कुटिला' तथा 'शीघ्रा शीघ्रतरा' गतियों की विलक्षणता दिखाई देती है, जैसे पृथ्वी रूपी घोड़े पर सवार पृथ्वी निवासियों को अन्य ग्रहों की गतियों में विलक्षणता दिखाई देती है। समझाने के लिये हमको दो उदाहरण लेने होंगे—एक ऐसे ग्रह का जो पृथ्वी और सूर्य के बीच में है और दूसरा ऐसे ग्रह का जो सूर्य और पृथ्वी के बाहर है। पहले के लिये बुध और दूसरे के लिये मंगल २१ तथा २३ चित्रों में लिये गये हैं।

चित्र २१ में सबसे बड़ा वृत्त राशि-चक्र है, जिस पर घूमता हुआ सूर्य एक वर्ष में एक चक्कर लगाता हुआ जान पड़ता है। जहाँ वसंत-विषुव लिखा हुआ है वहाँ जब सूर्य दिखलाई पड़ता है तब वसंत ऋतु का आरम्भ होता है और इस दिन दिन रात समान होते हैं। यहीं से आरम्भ करके राशिचक्र बारह भागों में बांटा गया है। इसलिये जिस-जिस भाग पर मेष वृष इत्यादि लिखा हुआ है उसे सायन मेष, सायन वृष समझना चाहिये। सायन मेष का आरम्भ २१, २२ मार्च को होता



चित्र २१—बुधकी मार्गी और वक्री तथा अन्य गतियां

है। सायन मेष से २३ और आगे निरयन मेष मास का आरम्भ होता है, यह १३, १४ अप्रैल को पड़ता है। सूर्य राशि चक्र में मेष से वृष, वृष से मिथुन इत्यादि राशियों में जाता हुआ जान पड़ता है।

राशि चक्र मे छोटा वृत्त भूकक्षा है। इसी पर पृथ्वी चलती हुई 'स' सूर्य की, जो केन्द्र में है, एक वर्ष में एक परिक्रमा कर लेती है। सूर्य निवासियों को पृथ्वी भी मेष से वृष, वृष से मिथुन, मिथुन से कर्क, कर्क से सिंह इत्यादि राशियों में भ्रमण करती दिखाई देती है। इसी के भ्रमण से हम लोगों को सूर्य भ्रमण करता हुआ जान पड़ता है। चित्र २१ में इसका भ्रमण प से आरम्भ होता हुआ दिखाया गया है और

२, ३, ४, इत्यादि बिन्दुओं पर घड़ी की सुइयां जिस दिशा में चलती हैं उसके प्रतिकूल दिशा में पृथ्वी जाती है। चलने की दिशा तीर की दिशा से जानी जा सकती है। पृथ्वी की दैनिक गति विषम होने से भूकक्षा के विन्दु असमान अंतर पर दिखाये गये हैं।

सबसे छोटा वृत्त बुध ग्रह की कक्षा है। मान लीजिये कि बुध $ब_1$ से चलना आरंभ करता है और अपनी कक्षा में २, ३, ४ इत्यादि विन्दुओं पर घड़ी की प्रतिकूल दिशा में तथा सूर्य निवासियों को मेष, वृष, मिथुन इत्यादि राशियों में जाता हुआ दिखाई देता है। चित्र में $ब_1$ वहाँ लिखा है जहाँ बुध उस समय है जब कि पृथ्वी $प_1$ पर है। जब बुध विन्दु २ पर जाता है तब पृथ्वी अपनी कक्षा में विन्दु २ पर जाती है। जब बुध अपनी कक्षा में विन्दु २ से विन्दु ३ पर जाता है तब पृथ्वी अपनी कक्षा में विन्दु २ में विन्दु ३ पर जाती है। इसी तरह और विन्दुओं के लिये भी समझना चाहिये, जैसे जब बुध अपनी कक्षा में विन्दु ७ पर होता है तब पृथ्वी अपनी कक्षा में विन्दु ७ पर रहती है, इत्यादि। यदि यह देखना हो कि पृथ्वी से बुध किस दिशा में राशि चक्र पर दिखाई देगा तो बुध और पृथ्वी उस समय जहाँ हों, उन विन्दुओं को मिलाकर राशि-चक्र तक ले जाइये। जहाँ यह रेखा पहुँचेगी वहीं बुध का स्थान होगा। चित्र की सरलता के लिये पृथ्वी और बुध को मिलानेवाली रेखाएँ नहीं दिखाई गई हैं परंतु बुध से राशि चक्र तक यह कटी रेखाओं से प्रकट की गयी हैं। जैसे जब पृथ्वी $प_1$ और बुध $ब_1$ विन्दुओं पर होते हैं तब $प_2$, $ब_1$ का मिलाने वाली रेखा राशि चक्र में १ विन्दु कर पहुँचती है अर्थात् पृथ्वी निवासियों को बुध राशि-चक्र के विन्दु १ पर अथवा कुंभ राशि के अन्त में दिखाई पड़ेगा। जब पृथ्वी $प_2$ पर पहुँचती है तब बुध $ब_2$ पर पहुँचता है और राशिचक्र में विन्दु २ पर अथवा मीन राशि में दिखाई देता है और $प_3$ (अर्थात् जब पृथ्वी अपनी कक्षा में विन्दु ३ पर होती है) से बुध $ब_3$ पर होने के कारण राशिचक्र में विन्दु ३ पर मीन के अन्त मे दिखाई देगा। जब बुध अपनी कक्षा में ४ पर होगा तब पृथ्वी भी अपनी कक्षा में ४ पर होगी और पृथ्वी निवासियों को बुध राशि-चक्र में विन्दु ४ पर अर्थात् ३ से कुछ ही आगे दिखाई पड़ेगा। जब बुध अपनी कक्षा में १ से २ तक आया तब पृथ्वी भी १ से २ पर अपनी कक्षा में आयी और हम लोगों को बुध राशि चक्र में कुंभ से मीन में जाता हुआ दिखाई पड़ा। जब बुध २ से ३ पर अपनी कक्षा में गया तब पृथ्वी भी २ से ३ पर अपनी कक्षा में गयी और यहाँ के निवासियों को बुध राशि चक्र में २ से ३ तक मीन राशि में आगे जाता हुआ दीख पड़ा। इस बार बुध राशि चक्र में उतना आगे नहीं बढ़ा जितना पहले बढ़ा था अर्थात् बुध की चाल

पहले से मन्द पड़ गयी। ३ से ४ तक पहुँचने में बुध राशि-चक्र बहुत ही कम आगे बढ़ा, इसलिये यदि यह कहा जाय कि बुध की चाल नहीं के समान है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। ऐसी दशा में बुध कुछ ठहरा हुआ जान पड़ता है। जब बुध अपनी कक्षा में ४ से ५ पर जायगा, पृथ्वी भी अपनी कक्षा में ४ से ५ पर आयगी और पृथ्वी निवासियों को बुध राशि-चक्र में उलटा ४ से ५ तक जाता हुआ दिखाई पड़ेगा अर्थात् बुध वक्री हो गया, ऐसा जान पड़ेगा। जब बुध ५ से ६ पर अपनी कक्षा में जायगा तब पृथ्वी भी अपनी कक्षा में ५ से ६ पर जायगी और हम लोगों को बुध राशि चक्र में ५से ६ तक उलटा मीन से कुम्भ राशि में जाता हुआ दिखाई पड़ेगा, परंतु चाल बहुत तीव्र हो जायगी। यहाँ भी बुध वक्री कहा जायगा, यद्यपि वह अपनी कक्षा में उसी क्रम से जा रहा है। जब बुध ६ से ७ तक जाता है, राशि चक्र में ६ से ७ तक उलटा जाता हुआ दिखाई पड़ता है। परन्तु अपनी कक्षा में ८ से ९ तक जाते-जाते यह राशि चक्र में ८ से ९ तक सीधा आता दिखाई देगा अर्थात् बुध की चाल मार्गी हो जायगी, परन्तु रहेगी बहुत मन्द। अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि यद्यपि सूर्य के विचार से बुध और पृथ्वी दोनों एक ही दिशा में जाते हुए दिखाई पड़ते हैं तथापि पृथ्वी निवासियों को बुध राशि चक्र में एक से ४ तक आगे बढ़ता हुआ जान पडता है और ४ से ७ तक पीछे हटता हुआ जान पड़ता है। जब आगे बढ़ता है तब मार्गी कहलाता है और पीछे हटता है तब वक्री हो जाता है। जब मार्गी रहता है तब भी इसकी चाल एक सी नहीं दीखती वरन् कभी बहुत शीघ्र बढ़ती हुई जान पड़ती है, कभी मन्द पड़ जाती है और कभी ठहरी सी जान पड़ती है। और जब वक्री होता है तब भी चाल द्रुत, द्रुततर, मंद, मंदतर तथा स्थिर सी जान पड़ती है।

यहाँ एक बात और जानने योग्य है। जब पृथ्वी प१ पर होती है और बुध ब१ पर तब सूर्य और पृथ्वी को मिलाने वाली रेखा मकर के अन्त पर पहुँचती है अर्थात् सूर्य मकर में दिखाई देता है, परन्तु बुध कुम्भ के अन्त में। इसलिए बुध सूर्य के पूरब रहता है और सूर्यास्त के बाद पच्छिम में दिखाई देता है। प२ से सूर्य कुम्भ राशि के आदि में दिखाई पड़ता है और बुध मीन के आदि में, प३ से सूर्य कुम्भ में कुछ और आगे बढ़ा हुआ जान पड़ता है, परन्तु बुध मीन के अन्त तक पहुँचा हुआ दिखाई पड़ता है और इसी के पास सूर्य और बुध का अन्तर सबसे अधिक होता है। ऐसी दशा में यदि पृथ्वी और बुध को मिलाने वाली रेखा बढ़ायी जाय तो वह बुध की कक्षा को स्पर्श करती हुई जायगी, और पृथ्वी और सूर्य को मिलाने वाली रेखा से जो कोण बनायेगी वह सबसे बड़ा होगा। इसी को सूर्य और बुध का महत्तम अन्तर (Greatest elongation) कहते हैं और यह अन्तर सूर्य के पूर्व की ओर होता है। महत्तम अन्तर के कुछ दिन पीछे ही बुध की गति वक्री हो जाती है और अन्तर

घटने लगता है और घटते-घटते बुध पृथ्वी और सूर्य के बीच में आ जाता है अर्थात् अन्तर शून्य हो जाता है। ऐसी दशा में बुध सूर्य के साथ उदय और अस्त होता है। इसी को बुध की भीतरी युति (Inferior conjunction) कहते हैं। जब सूर्य से बुध का अन्तर १२° के लगभग हो जाता है तब सूर्य के निकट होने से उसके प्रकाश के कारण कोरी आँख से बुध नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए कहा जाता है कि बुध का अस्त पच्छिम में हो जाता है क्योंकि बुध पच्छिम में ही दीखते-दीखते छिप जाता है। भीतरी युति के समय से कुछ पहले वक्री होने पर बुध दाहिने हाथ की ओर जाता है और सूर्य बायें हाथ की ओर, इसलिये सूर्य से बुध बहुत ही शीघ्र हटता है अर्थात् पच्छिम में अस्त होने के बाद थोड़े ही दिनों में वह सूर्य से पच्छिम चला आता है और सूर्योदय के पहले ही उदय होकर पूर्व में दिखाई देने लगता है, तब कहते हैं कि बुध का पूर्व में उदय हो गया। जब बुध १२° सूर्य से पच्छिम हो जाता है तब फिर दिखाई पड़ने लगता है। तभी उसका उदय मानते हैं, गति भी वक्री से कुछ ही दिनों में मार्गी होने लगती है।

इस प्रकार मार्गी होने के पीछे बुध क्रमशः सूर्य से दूर होता जाता है और जब वह अपनी कक्षा में विन्दु ७ और ८ के बीच में जाता है तब भी सूर्य से इसका अन्तर महत्तम हो जाता है। फिर बुध सूर्य के पास होता जाता है और डेढ़ महीने में सूर्य के इतना पास हो जाता है कि आँख से दिखाई नहीं पड़ता। सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार जब अन्तर १४° का रह जाता है तब अस्त होना मानते हैं। जब बुध और सूर्य का अन्तर शून्य हो जाता है तब दोनों एकसाथ क्षितिज के ऊपर आते हैं। ऐसी दशा में बुध और सूर्य की बाहरी युति (Superior conjunction) होती है। बाहरी युति के समय बुध मार्गी रहता है।

बाहरी युति के समय बुध और सूर्य दोनों बायीं ओर को जाते हुए दिखाई पड़ते हैं, इसलिये बुध को सूर्य से दूर होने में अधिक दिन लगते हैं अर्थात् जब बुध पूर्व में अस्त होता है तब पच्छिम के अस्त काल से अधिक काल तक अस्त रहता है और पच्छिम में देर में उदय होता है।

यह लिखा गया है कि पच्छिम में बुध तब अस्त होता है जब सूर्य और बुध का अन्तर १२° से कम हो जाता है और पूर्व में अस्त तब होता है जब दोनों का अन्तर १४° से कम हो जाता है। इसका कारण यह है कि भीतरी युति के समय बुध पृथ्वी से बहुत पास रहता है इसलिये उसका बिम्ब बड़ा दिखाई पड़ता है और जब तक सूर्य से १२° की दूरी तक नहीं हो जाता तब तक दिखाई पड़ता है। परन्तु बाहरी युति के समय बुध सूर्य से भी दूर हो जाता है इसलिये उसका बिम्ब छोटा

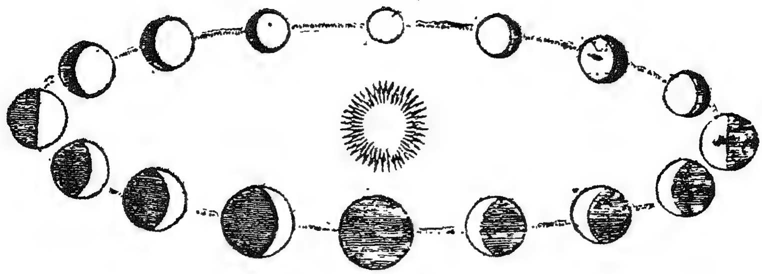
दिखाई पड़ता है और जब उसकी दूरी १४$^{\circ}$ रहती है तभी छिप जाता है। शुक्र भी भीतरी युति के समय सबसे बड़ा दीखता है और बाहरी युति के समय सबसे छोटा।

इससे सिद्ध हो गया होगा कि ग्रह अस्त होने के पीछे कहीं चले नहीं जाते वरन् सूर्य के इतने पास हो जाते हैं कि आंख से दिखाई नहीं पड़ते। हाँ दूरबीन से यह सूर्य के चाहे जितने पास हों दिखाई पड़ सकते हैं।

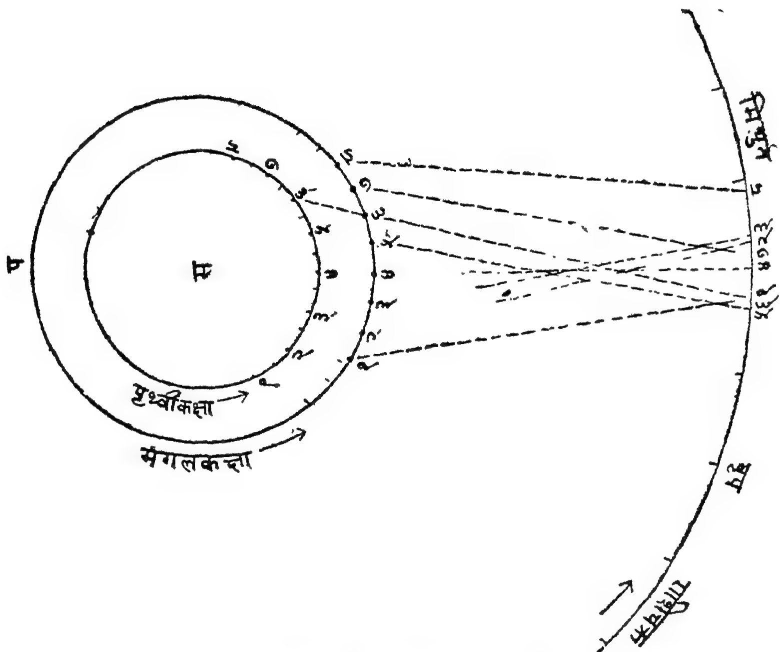
बुध और शुक्र दोनों ग्रहों की कक्षाएँ पृथ्वी की कक्षा के भीतर हैं इसलिए जो बात बुध के लिए कही गयी है वह शुक्र के लिए भी लागू है; अन्तर केवल इतना है कि शुक्र की कक्षा बुध की कक्षा से बड़ी है इसलिए भीतरी युति के समय शुक्र पृथ्वी से अत्यन्त निकट हो जाता है। दूरबीन से देखने पर बुध और शुक्र दोनों में उसी प्रकार कलायें दिखाई पड़ती हैं जैसी चन्द्रमा में बाहरी युति के समय दोनों ग्रह पूर्ण गोल दीखते हैं, क्योंकि उस समय पूरा प्रकाशित बिम्ब हमारे सामने रहता है। जब ग्रह कुछ बगल में हो जाता है तब पूरा प्रकाशित भाग हम लोगों को नहीं दीखता, दिन-दिन बिम्ब कुछ खंडित होता जाता है। परन्तु प्रकाश अधिक मिलता है, क्योंकि दूरी कम होती जाती है इसलिए खंडित ग्रह भी पास होने के कारण अधिक प्रकाश देता है। भीतरी युति के समय ग्रह का प्रकाशित भाग सूर्य की ओर होता है इसलिए हमको ग्रह से ज़रा भी प्रकाश नहीं मिलता और वह एक काले धब्बे की तरह दूरबीन में दिखाई पड़ता है। शुक्र की कलायें चित्र २२ में दिखाई गई हैं।

चित्र २३ में राशि-चक्र का केवल वह भाग दिखाया गया है जहाँ मंगल वक्री और फिर मार्गी होता हुआ जान पड़ता है। स सूर्य केन्द्र में है। पृथ्वी अपनी कक्षा में और मंगल अपनी कक्षा में सूर्य की परिक्रमा इस प्रकार करते हैं कि वह राशि चक्र में मेष से वृष, वृष से मिथुन में जाते हुये (सूर्य से) दिखाई देते हैं। सूर्य में स्थित मनुष्य को कोई ग्रह वक्री होते हुये नहीं दीख सकते; उसे सब ग्रह एक ही तरफ से परिक्रमा करते हुये देख पड़ते हैं। हाँ पृथ्वी निवासियों को मगल मार्गी, शीघ्रगामी, मन्दगामी, स्थिर तथा वक्री, मन्द गामी, फिर मार्गी दिखाई पड़ता है। मंगल की एक परिक्रमा ६८६ दिन में पूरी होती है इसलिए १०$^{\circ}$ की परिक्रमा वह $\frac{६८६ \times १०}{३६०}$ दिन वा १९ दिन में कर लेता है और इतने समय में पृथ्वी १९$^{\circ}$ के लगभग चलती है, क्योंकि पृथ्वी की एक परिक्रमा ३६५ दिन में पूरी होती है अर्थात् १ दिन में प्रायः १$^{\circ}$ परिक्रमा होती है।

मान लीजिये पृथ्वी अपनी कक्षा में विन्दु १ पर है और मंगल भी अपनी कक्षा में विन्दु १ पर है तब पृथ्वी निवासियों को मंगल राशि चक्र में १ विन्दु पर



चित्र २९—शुक्र की कलाएँ



चित्र २३'—मंगलकी भिन्न भिन्न गति

दिखाई देगा। जब पृथ्वी १९ दिन में अपनी कक्षा के विन्दु २ पर पहुँचती है, मंगल भी १०° चलकर अपनी कक्षा में विन्दु २ पर पहुँचेगा और हम लोगों को दिखाई पड़ेगा कि वह राशि चक्र में विन्दु २ पर है। जब पृथ्वी अगले १९ दिन में विन्दु ३

पर पहुँचेगी, मंगल भी विन्दु ३ पर अपनी कक्षा में पहुँचेगा और दिखाई पड़ेगा कि राशि चक्र में वह २ विन्दु के पास ही जरा सा आगे हटा है। यहाँ मंगल कुछ दिनों तक स्थिर सा जान पड़ेगा, क्योंकि १९ दिन के भीतर राशि चक्र में २ से ३ तक बहुत कम गया है। जब पृथ्वी और मंगल अपनी अपनी कक्षा में विन्दु ४ पर पहुँचेंगे तब मंगल राशि चक्र में विन्दु ४ पर अर्थात् पीछे हटा हुआ दिखाई पड़ेगा। इसी को कहते हैं कि मंगल वक्री है यद्यपि मंगल की चाल अपनी कक्षा में वैसी ही सीधी है। ४ विन्दु पर पृथ्वी, मंगल और सूर्य के बीच में हो जाती है, अर्थात् पृथ्वी के दाहिने सूर्य होता है और बायें मंगल। इस प्रकार सूर्य का अन्तर ६ राशि या १८०^{0} का हो जाता है। इसी स्थिति को कहते हैं कि मंगल सूर्य से षडभान्तर पर (In opposition) है। जब सूर्य अस्त होता है तभी मंगल पूर्व में उदय होता है और जब सूर्य उदय होता है तभी मंगल पच्छिम में अस्त होता है। इस स्थिति में मंगल पृथ्वी से अत्यन्त निकट होता है, इसलिए इसका बिम्ब बहुत बड़ा दिखाई पड़ता है और दूरबीन से देखने पर उसी समय मंगल ग्रह की बहुत सी बातें दिखाई देती हैं।

जब पृथ्वी और मंगल अपनी-अपनी कक्षा में ५ विन्दु पर होते हैं तब हम लोगों को मंगल राशि चक्र में ५ बिन्दु पर और पीछे हटा हुआ देख पड़ता है। दोनों ग्रह अपनी-अपनी कक्षा में जब ६ विन्दु पर आते हैं तब मंगल राशि चक्र में कुछ आगे खसका हुआ ६ विन्दु पर दिखाई देता है, यहाँ भी मंगल कुछ देर के लिए स्थिर सा जान पड़ता है, फिर आगे बढ़ता हुआ दिखाई पड़ता है।

जब पृथ्वी और मंगल के बीच में सूर्य होता है अर्थात् जब पृथ्वी ४ पर और मंगल 'म' पर होता है तब मंगल की दूरी पृथ्वी से अत्यन्त अधिक होती है। ऐसी स्थिति को 'मंगल की सूर्य से युति होती है', ऐसा कहते हैं। इस दशा में मंगल का बिम्ब बहुत छोटा दीखता है।

इन दोनों चित्रों से प्रकट है कि भूकक्षा के भीतरवाले ग्रह उस समय वक्री होते दिखाई देते हैं जब भीतरी युति होने को होती है और भीतरी युति के समय वह वक्री ही रहते हैं। परन्तु भू कक्षा के बाहर वाले ग्रह उस समय वक्री होते हैं जब वह सूर्य से ६ राशि अथवा १८०^{0} के लगभग दूरी पर होते हैं और जिस समय वह ठीक आमने सामने (In opposition) होते हैं, उस समय वक्री ही रहते हैं। भीतरी ग्रह (Inferior planets) प्रत्येक परिक्रमा की भीतरी और बाहरी दोनों युतियों के समय अस्त रहते हैं अर्थात् सूर्य के पास रहने के कारण सूर्य के प्रचण्ड प्रकाश में कोरी आँख से नहीं दिखाई देते हैं परन्तु बाहरी ग्रह (Superior planets) की एक परिक्रमा में केवल एक युति होती है, तभी यह अस्त हुए कहे जाते हैं।

इस प्रकार यह प्रकट है कि पृथ्वी को चलती हुई मान लेने से ग्रहों की विलक्षण गतियों का समझना बड़ा ही सहज है। यदि पृथ्वी अचला मानी जाय तो यह किसी प्रकार नहीं समझाया जा सकता कि ग्रहों की वक्री गति क्यों होती है।

तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहाः।
प्रयान्ति तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात् ॥१४॥

अनुवाद—(१४) इन इन गतियों के वश होकर ग्रह जिस प्रकार दृकतुल्यता को प्राप्त होते हैं अर्थात् वेध के स्थान में पहुँचकर प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं वही स्पष्ट करने के (उसी को गणित से जानने के) नियम आदर के साथ कहता हूँ।

विज्ञान भाष्य—यह श्लोक बड़े महत्व का है। इससे सिद्ध होता है कि हमारे पुराने आचार्य ग्रहों के स्पष्ट स्थान इसीलिए निकालते थे जिससे गणित और प्रत्यक्ष वेध में कोई अंतर न पड़े। इसके लिए स्पष्टाधिकार में सूक्ष्म से सूक्ष्म नियम बनाये गये। परन्तु जैसा कि मध्यमाधिकार के ९वें श्लोक के विज्ञान भाष्य में मैं बतला चुका हूँ कि चाहे यंत्र स्थूल हों चाहे सूक्ष्म, इनसे बेध करने में कुछ न कुछ प्रयोगात्मक अशुद्धि (Experimental error) रह ही जाती है इसलिए काल पाकर कुछ भेद पड़ जाता है, जिससे समय-समय पर संशोधन करना पड़ता है। इसी को 'बीज' संस्कार कहते हैं। उदाहरण के लिए मान लीजिये कि कोई घड़ी प्रति दिन एक सेकंड मंद होती हो तो ६० दिन में वह १ मिनट और १ वर्ष में ६ मिनट पीछे हो जायगी। परन्तु व्यवहार में यही कहा जायगा कि घड़ी बहुत शुद्ध है; क्योंकि ६० दिन में १ मिनट का अंतर या प्रतिदिन एक सेकंड का अंतर नहीं के समान है। यदि यह अंतर सदैव होता जाय और घड़ी में संशोधन न किया जाय तो कई वर्षों में इतना अंतर पड़ जायगा कि उसको भी नहीं के समान समझना असम्भव होगा और संशोधन करना ही पड़ेगा। जैसे घड़ी में प्रतिदिन १ सेकंड का अंतर कुछ काल में बड़ा भारी रूप धारण कर सकता है उसी प्रकार सूर्य चन्द्रमा इत्यादि ग्रहों के भगणकालों में १ पल का भी अंतर सैकड़ों वर्षों में बहुत बड़ा हो जाता है। इसीलिए बीज संस्कार करना पड़ता है। बीच-बीच में संशोधन करने की प्रथा हमारे प्राचीन आचार्यों को मान्य थी, जिनके अवतरण मैं नीचे दूँगा; परन्तु कुछ दिनों से इस विषय पर मतभेद हो गया है। एक पक्ष कहता है कि आर्ष ग्रन्थों पर किसी प्रकार की टीका टिप्पणी करने का अथवा संशोधन करने का अधिकार नहीं है, उनमें जो कुछ है उसको वैसा ही मानना चाहिये। दूसरा पक्ष कहता है कि संशोधन करना सर्वथा उचित है। नीचे दोनों पक्षों के तर्क मुझे जहाँ तक मिले हैं दिये जाते हैं :—

प्रयाग निवासी पंडित इन्द्रनारायण द्विवेदी ज्योतिष भूषण, इसी श्लोक के अनुवाद के साथ साथ यह टिप्पणी देते हैं—

"यहाँ अनेक लोग "दृक्तुल्यतः" से दृश्य गणना का अर्थ लगाते हैं; किन्तु यह उनका भ्रम है। पूर्वापर के देखने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि दृक्तुल्यतां का अर्थ यहाँ जिस गणना का वर्णन करते हैं उसके अनुसार अदृश्य दृष्टि से अपने स्पष्ट किये हुए स्थान पर दिखाई देना है अन्यथा इस गणना के अनुसार कभी भी दृश्य ग्रह सिद्ध नहीं हो सकते थे क्योंकि जितने संस्कार दृश्य ग्रहों के लिए आज निकाले गये हैं ये ही सदा होने चाहिये थे यह गोल विद्या के जानने वालों को ज्ञात ही है"[1]

इस अवतरण का भावार्थ कदाचित यह है कि ग्रहों का स्पष्ट स्थान निकालने के लिए जो नियम इस ग्रन्थ में बतलाये गये हैं उनके अनुसार ग्रहों का स्थान वही नहीं निकलता जो प्रत्यक्ष वेध से देखा जाता है। इसलिए दृक्तुल्यता का अर्थ प्रत्यक्ष वेध नहीं है वरन् वह अदृश्य वेध है जिसे ऋषियों ने अपने योगबल के द्वारा जाना था।

इस पक्ष के ज्योतिषाचार्य पं० गिरिजाप्रसाद जी द्विवेदी जो आजकल लखनऊ के नवल किशोर विद्यालय के प्रधानाध्यापक हैं अपने सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्याय के 'प्रभा भाषा भाष्य'[2] पृष्ठ ६, ७ में बहुत स्पष्ट शब्दों में यों लिखते हैं :—

"...दृष्टादृष्टभेदेन गणितस्य द्वैविध्यं तावच्चतुरस्रम्। तत्र 'अदृष्टफलसिद्ध्यर्थं यथार्काद्युक्तितः कुरु। गणितं यद्धि दृष्टार्थं तद्दृष्ट्युद्भवतः सदा'॥ तथा अदृष्टफल सिद्ध्यर्थं निर्वीजार्कोक्तमेवहि।' इति तत्वविवेकीय कमलाकरोक्त्या महर्षि दर्शित पथानुसारिण एवं स्फुटाः खेटाः फलादेशायोपयुज्यन्ते नतु सांप्रतिकोपलब्ध संस्कार संस्कृताः। निर्वीजार्कोक्तमित्युक्त्या तन्निरासात्। फलविषयेऽनार्षगणिताङ्गीकारे बहुत्र श्रौतस्मार्तकर्मानुष्टानसमयादिषु विप्लवः संजायते। तस्माद्धर्माभिमानिभिः सुधीभिः सकलं परीक्ष्य निष्कण्टकः पन्था अनुसरणीयः। तत्तत्संस्कारोत्पन्नाः खेटास्तु केवलं ग्रहणोदयास्तादि दृष्टगणितएवोपयुज्यन्ते। दृष्टगणिताभिमानिनोऽदृष्टगणितोन्मूलनाय बहुधा विवदन्ते। परमुभयो स्वीकारेणैव निर्वाहो नत्वन्यतरस्याङ्गीकारेणेत्यन्यत्र विस्तरः।

"दृष्ट और अदृष्ट के भेद से गणित दो प्रकार का है। दृष्ट जो आँखों से देखा जाय, जैसे ग्रहण, उदयास्त, युति और शृङ्गोन्नति आदि। और अदृष्ट जो देखने में न आवे, जैसे तिथियोग आदि। ग्रहण आदि के देखने से ही उसका फल होता है। और व्रत उपवास आदि का फल बिना देखे ही होता है। फल का आदेश केवल ऋषियों

---

१. प्रयाग के हिन्दी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित सूर्य सिद्धान्त पृष्ठ ३५।

२. लखनऊ से नवल किशोर प्रेस में १९११ ई० में प्रकाशित।

के अनुभवसिद्ध वाक्यों से होता है। जो कुछ ग्रहों की स्थिति के अनुसार फल लिखा उपलब्ध होगा, मनुष्य वही जान सकेगा। इस फल की कल्पना ऋषियों के सिवा कोई नहीं कर और जान सकता।

"आर्ष ग्रन्थों में जो ग्रह स्पष्ट बनाने की रीति है उसी रीति से स्पष्ट किये ग्रह फलादेश में उपयुक्त हैं। क्योंकि उन्हीं स्पष्ट ग्रहों के आधार पर श्रौत और स्मार्त कर्मों के समय बँटे हैं। इसलिए उसी गणित से जो तिथि आदि सिद्ध हों उन्हीं से धर्म व्यवस्था और उसका आचरण करना उचित है।

"सांप्रत में यूरोप के विद्वानों ने सूक्ष्म यन्त्र द्वारा बहुत से नवीन संस्कार निश्चित किये हैं और उनका ग्रहों में उपयोग लाकर सूक्ष्म-स्पष्ट ग्रह सिद्ध करते हैं। इस स्पष्ट विधि को लेकर अंग्रेजी गणित विद्या विशारद आजकल कई एक पञ्चाङ्गों में ग्रह स्पष्ट सिद्ध करके उनसे तिथि आदि का साधन करते हैं और उसी के अनुसार धर्म व्यवस्था करते हैं। परन्तु यह सर्वथा अनुचित और धर्म में बाधा डालना है। क्योंकि आर्ष गणित के अनुसार जब एकादशी आदि का उपवास आदि सिद्ध होगा उस काल में इस नवीन सूक्ष्म गणित से उसका सिद्ध होना असम्भव होगा। इस प्रकार ऋषियों के वचन में बाधा डालने से धर्म का विप्लव होगा। ऋषियों के वाक्य उन्हीं की रीति पर चलने से घट सकेंगे। इससे स्पष्ट है कि धर्म व्यवस्था के लिए ऋषिप्रोक्त गणित का ही आश्रय उचित है।

"नवीन वेधसिद्ध संस्कारों को ही प्राचीन ग्रन्थों में 'बीज' नाम से लिखा है। और वेध से प्राचीनों ने इसका साधन भी किया है। परन्तु इस बीज को ग्रहणादि दृष्टगणित के ठीक समय ज्ञान के लिए उपयुक्त किया है। अदृष्ट गणित में, आजकल की तरह नहीं घुसेड़ा। इसलिए आजकल के यूरोप के नये संस्कार केवल दृष्ट गणित में उपयुक्त हैं। उसमें इसका उपयोग लेने से कोई बाधा नहीं है। क्योंकि इसकी व्यवस्था ही इसी प्रकार से आचार्यों ने की है।

जैसा —'अदृष्ट फल सिद्धयर्थं निर्वीजाकेक्तिमेवहि।
गणितं यद्धि दृष्टार्थं तद्दृष्यु्द्भवतः सदा॥'

अर्थात् अदृष्ट गणित के लिए केवल निर्वीज, सूर्योक्ति, सूर्य सिद्धान्त के गणित का आश्रय करना चाहिये और दृष्ट गणित के लिए जिससे ठीक आकाश और गणित का संवाद हो उसी से सदा गणित करना चाहिये।

"इस प्रकार निष्पक्षपात और धर्मबुद्धि से यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक विचारशील पुरुषों को, दृष्ट और अदृष्ट गणित उक्त नियमों के अनुसार मानना

चाहिये। केवल दृष्टमात्र को ही चार्वाकों की तरह सर्वत्र मानना महा अनुचित और सत्य का अपलाप करना है।"

इस लम्बे अवतरण में प्रमाण के लिए संस्कृत का जो श्लोक दिया हुआ है वह आचार्य कमलाकर के सिद्धान्त-तत्वविवेक का है जो शक १५८० तथा विक्रमीय १७१५ में लिखा गया था। इस ग्रन्थ में आचार्य कमलाकरजी ने सूर्य सिद्धान्त का कहीं-कहीं अनुचित पक्ष किया है जिसका प्रमाण म० म० सुधाकर द्विवेदी के शब्दों में यह है :—

"अत्र यावच्छक्यं सूर्यसिद्धान्तमत मण्डनं भास्कर मुनीश्वरादीनां खडनं च कृतं ग्रन्थ कृता। बहुत्र परदूषणाभिलाषेणान्यथैव भास्कर कृतोदयान्तर कर्म्मादि खण्डनमस्य गोले गणितेचाद्वितीय पण्डितस्यानेक कल्पनाकुशलस्य न शोभते।"[1]

इस पक्ष में और भी कोई प्राचीन मत है या नहीं इसका मुझे ज्ञान नहीं। यदि कोई महानुभाव बतलाने की कृपा करेंगे तो मैं बड़ा अनुगृहीत हूँगा और धन्यवाद-पूर्वक स्वीकार करूँगा। इस पर यह भी जानने की अभिलाषा है कि आचार्य कमलाकरजी के इस नियमों को कि 'निर्वीजार्कोक्त' ग्रह स्पष्ट ही धर्म के कामों में व्यवहार करना चाहिये किसी ने स्वीकार भी किया है या नहीं क्योंकि इनके पहले से ही सैकड़ों वर्षों से मकरंद सारिणी और ग्रहलाघव इत्यादि ज्योतिष के करण ग्रन्थ हो पंचांगादि बनाने के लिए व्यवहार में आते हैं, जिनमें 'बीज संस्कार' किया गया है। इसके कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते हैं :—

(१) "ज्योतिष के करण ग्रन्थ कई हैं; परन्तु पठनपाठन में जितना ग्रहलाघव का प्रचार है उतना औरों का नहीं। उसके आधार पर कई देशों में पञ्चाङ्ग बनते हैं और उनके अनुसार सब लोग बेखटके श्रौत स्मार्त कर्म करते हैं। यह सौर पक्षीय करण ग्रन्थ है। यद्यपि इसमें ग्रन्थकर्ता ने आर्य पक्ष और ब्रह्मपक्ष का भी किसी अंश में आश्रयण किया है। इस समय ही नहीं बहुत प्राचीन काल से सौरपक्ष का ही प्राधान्य चला आता है। आर्य ब्रह्मपक्ष का गणित तो आचार्य बराह मिहिर (शक ४२७) के समय में ही गड़बड़ हो चुका था। कहीं-कहीं ब्रह्मपक्षीय पंचांग भी प्रचलित हैं। जैसे जोधपुर का चंड नामक ज्योतिषी का चलाया 'चंडू' पंचांग परन्तु अनार्षमूलक होने से मान्य नहीं है।"[2]

---

१. गणक तरंगिणी पृष्ठ ६८

२. उल्लिखित पं० गिरिजाप्रसाद द्विवेदी द्वारा १६८० वि० के कार्तिक की 'माधुरी' पृष्ठ ५०५ में लिखा गया।

मकरंद सारिणी में बीज संस्कार के विषय में यह अवतरण प्रमाण है।

(२) "...कलिगतस्य सहस्रांशों १००० शादि ४। ४२। ४६ शनि बीज धनं ॥ एतत्र्यंशे १। ३५। १५ सहितं जातं बुधोच्च धनं ६। १७। १ शनिबीज त्र्यंशेन रहितं जातं ३। ८। ३१ ऋणंगुरोः शनिबीजं शुक्रोच्च ऋणं ४। ४२। ४६ बीज संस्कृतं बुधोच्चं..."[1]

प्रसिद्ध ज्योतिषी शंकर बालकृष्ण दीक्षित अपने मराठी भारतीय ज्योतिः शास्त्र पृष्ठ १८४ तथा २५७ में लिखते हैं :—

(३) "मकरंदग्रथांत सूर्यसिद्धान्तोक्त ग्रहादिकांस बीज संस्कार आहे"...; "मकरंदकारानें सूर्यसिद्धांतास बीजसंस्कारदिलाआहे, त्या विषयीं पूर्वी लिहिलेंच आहे"

इन अवतरणों से सिद्ध है कि सैकड़ों वर्षों से मकरंदसारिणी अथवा ग्रहलाघव के अनुसार जितने पंचांग बनते हैं सबमें बीज संस्कार के अनुसार संशोधन रहता है। इसलिए कमलाकर जी की उक्ति व्यवहार में कभी नहीं मानी गयी, ऐसा मेरा विचार है।

कमलाकर जी ने आचार्य वशिष्ट के इस श्लोक को "इत्थं माण्डव्य संक्षेपा-दुक्तं शास्त्रमयोदितं। विस्रस्ती रविचन्द्राद्यैर्भविष्यति युगे युगे" के 'विस्रस्ती' पद को 'विस्तृती' कहकर श्लोक का अर्थ कुछ और कर दिया है परन्तु यह सर्वथा अवैज्ञानिक, भ्रमजनक तथा प्राचीन वैज्ञानिक पद्धति के विरुद्ध है और केवल अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिए लिखा गया है।

अब मैं दूसरे पक्ष के समर्थन में जो कुछ प्रायः डेढ़ हजार वर्षों से कहा गया है वह लिख रहा हूँ, जिससे सिद्ध होगा कि हमारे प्राचीन ज्योतिषी ज्योतिष के आर्ष ग्रन्थों को किस दृष्टि से देखते रहे हैं और इनको समय-समय पर संशोधन करने के पक्ष में कौन-कौन सी युक्तियाँ लिख गये हैं।

जिस समय सूर्यांश पुरुष मयासुर को सूर्य-सिद्धान्त का उपदेश देने लगे उस समय कहा था,

'शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः।
युगानां परिवर्तेन कालभेदोत्र केवलं ॥"

यह मध्यमाधिकार का ९वां श्लोक है; जिसकी व्याख्या की जा चुकी है।

फिर जब ऋषियों ने मयासुर से ज्योतिष का उपदेश ग्रहण किया था तब पहले मयासुर ने जो कुछ सूर्यांश पुरुष से सीखा था वह सब कह कर अन्त में बीजोप-नयनाध्याय का उपदेश २१ श्लोकों में दिया जिसका कारण यह बतलाया था,

---

१. मकरंद सारिणी पृष्ट ३९, बंबई की छपी।

"चक्रानुपातजोमध्यो मध्यवृतांशजः स्फुटः ।
कालेन दृक्समो न स्यात् ततो बीजक्रियोच्यते ।। ५ ।।
बीजं निःशेष सिद्धान्त रहस्य परमं स्फुटं ।
यात्रापाणिग्रहादीनां कार्याणां शुभसिद्धिदम् ।। २१ ।।"

अर्थात् काल पाकर दृक्तुल्यता नहीं होती है इसलिए बीज क्रिया की रीति बतलायी जाती है । बीज क्रिया से संस्कृत स्फुट ग्रहों से ही यात्रा विवाह तथा अन्य शुभ काम फलदायक होते हैं ।

परन्तु खेद है कि पहले पक्ष के पंडित इस अध्याय को क्षेपक मानते हैं । मेरी समझ में तो यह बात आती है कि सूर्यांश पुरुष ने जो कुछ कहा था उसके अनुसार यह अवश्य क्षेपक है क्योंकि यह मयासुर का बीज संस्कार है न कि सूर्यांश पुरुष का । परन्तु यदि यह मान लिया जाय कि मयासुर ने ऋषियों से जैसा कहा था वैसा ही ऋषियों का पाया हुआ सूर्य सिद्धान्त इस समय प्रचलित है तब इसको क्षेपक मानने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती । बात भी यथार्थ में यही है कि प्रचलित सूर्य सिद्धान्त वही है जिसका उपदेश मयासुर ने ऋषियों को दिया था । इसमें बीजो-पनयनाध्याय अंत में इसलिए कहा जिसमें यह स्पष्ट रहे कि मयासुर को सूर्यांश पुरुष से क्या उपदेश मिला था और मयासुर ने स्वयं अपने अनुभव से क्या बढ़ाया था ।

दृक्तुल्यता के सम्बन्ध में ब्रह्मगुप्त जी शक ५५०, संवत ६८५ वि०, में लिखते हैं :—

"प्रतिदिवस विसंवादाद् ग्रह तिथि करणर्क्ष दिवसमासानाम् । ग्रहणग्रह-योगादिषु पादं पादेन कः स्पृशति ।। ५७ ।।

तन्त्रभ्रन्शे प्रतिदिनमेवं विज्ञाय धीमता यत्नः ।
कार्यस्तस्मिन् यस्मिन् दृग्गणितैक्यं सदा भवति ।।

इन दोनों श्लोकों के तिलक में म० म० सुधाकर द्विवेदी जी लिखते हैं :—

"ग्रह-तिथि-करण-ऋक्ष-दिवस मासानां तथा ग्रहण-ग्रह योगादिषु च प्रतिदिवस विसंवादात् प्रत्यहं दृग्विरोधात् पादं करणाधमं कः पादेनापि स्पृशति अर्थाद्यथाऽङ्गेषु अधोवर्तित्वात् पादोऽधमस्तथा दृग्गणितयोरसाम्यात् पादमधमं यत् करणं तत् पादेनापि स्पर्शनर्हं 'प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्'-इतिन्यायात्"

"तन्त्रभ्रंशे सति तदीयतन्त्रगणनया दृग्विरोधे सति एवं पूर्वोक्तं प्रतिदिनं स्पष्टीकरणाद्यं वेधादिना विज्ञाय तस्मिन् तन्त्रे बीजादिना तथा यत्नः कार्यो यथा

दृग्गणितैक्यं भवति । एवं यस्मिन् तन्त्रे सदा दृग्गणितैक्यं भवति तदेव तन्त्रमादरणीय-मिति ।"[१]

ऊपर के अवतरण में ग्रह, युति इत्यादि के साथ साथ तिथि, करण, ऋक्ष (नक्षत्र) शब्द भी आये हैं; जिससे प्रकट है कि जिसको पंडित गिरिजाप्रसाद जी ने अदृष्ट कहा है उसके लिए भी दृग्गणितैक्य का विधान है और बीज संस्कार करने की आवश्यकता बतलायी गयी है । इसलिए दृक्तुल्यता के लिए संस्कार करना ब्रह्मगुप्त जी शास्त्र विरुद्ध या आर्ष वचनों के विरुद्ध नहीं समझते थे । जिसको इन्होंने शास्त्र विरुद्ध समझा था उसका बड़े जोरों से खण्डन किया है ।

प्रसिद्ध भास्कराचार्य जी शक १०७२ संवत् १२०७ वि० में लिखते हैं :—

"यात्रा विवाहोत्सवजातकादौ खेटैः स्फुटैरेव फलस्फुटत्वं । स्यात् प्रोच्यते तेन नभश्चराणां स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्य कृद्या ।"[२]

जिसका अर्थ यह है कि यात्रा विवाह उत्सव जातक इत्यादि कामों के लिए ग्रह स्पष्ट करने से अधिक फल होता है और ग्रह स्पष्ट करने की रीति वही शुद्ध है जिससे दृग्गणितैक्य हो ।

ऊपर इस बात का प्रमाण दिया गया है कि आजकल ग्रहलाघव कितना मान्य समझा जाता है । इसी ग्रहलाघव के कर्ता आचार्य गणेश दैवज्ञ के पिता आचार्य केशव ने प्राचीन ग्रन्थों में संशोधन करने के पक्ष में शक १४१८ संवत् १५५३ वि० में ग्रह-कौतुक नामक ग्रन्थ में यों लिखा है :—

"ब्राह्मार्यभट सौराद्येष्वपि ग्रहकरणेषु बुधशुक्रयोर्महदंतरं अंकतया दृश्यते । मंदे आकाशे नक्षत्र ग्रहयोगे उदयेऽस्ते च पंच भागा अधिकाः प्रत्यक्षमंतरं दृश्यते ।......एवं क्षेपेष्वंतरं वर्ष भोगेष्वपि अंतरमस्ति । एवं बहुकाले बह्वंतरं भविष्यति । यतो ब्राह्माद्ये-ष्वपि भगणानां सावनादीनां च बह्वतरं दृश्यते एवं बहुकाले बह्वंतरं भवत्येव ।...... एवं बह्वंतरं भविष्येः सुगणकैः नक्षत्रयोग ग्रहयोगोदयास्तादिभि वर्तमान घटनामवलोक्य न्यूनाधिक भगणाद्यैर्ग्रहगणितानि कार्याणि । यद्वा तत्काल क्षेपक वर्ष भोगान् प्रकल्प्य लघु करणानि कार्याणि ।......एवं मया परम फल स्थाने चन्द्र ग्रहण तिथ्यंताद् विलोमविधिना मध्यश्चंद्रोज्ञातः तत्र फल ह्रास वृद्ध्यभावात् । केन्द्रगोलादि स्थाने ग्रहण तिथ्यंताद्विलोम विधिना चंद्रोच्चमाकलितं । तत्र फलस्य परम ह्रास वृद्धित्वात् ।

---

१. तन्त्रपरीक्षाध्याय पृष्ट १६९-१७०, म० म० सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त ।

२. सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ ५६ ।

तत्र चंद्रः सूर्यपक्षात्पंचकलोनो दृष्टः । उच्चं ब्रह्मपक्षाश्रितं । सूर्यः सर्वपक्षेपीषदंनरः स सौरो गृहीतः । अन्ये ग्रहा नक्षत्र ग्रहयोगास्तोदयादिभिवर्तमानघटनामवलोक्य साधिताः । तत्रेदानीं भौमेज्यौ ब्राह्मपक्षाश्रितौ घटतः । ब्राह्मो बुधः । ब्राह्मार्यमध्य शुक्रः । शनि पक्षत्रयात्पंचभागाधिको दृष्टः । एवं वर्तमान घटनामवंलोक्य लघुकर्मणा ग्रह गणितं कृतं ।"[1]

इस लम्बे अवतरण से यह अच्छी तरह स्पष्ट होता है कि वर्तमान आकाशीय घटनाओं को किस प्रकार वेध द्वारा देखकर सूर्य चन्द्रमा इत्यादि ग्रहों के भगण कालों का संशोधन करना चाहिये । भविष्य के लिए भी ऐसा करने को आदेश किया गया है । इस अवतरण में सूर्य-सिद्धान्त का भी स्पष्ट उल्लेख है । पिता के इन्हीं वेधों और बीजों के आधार पर आचार्य गणेश दैवज्ञ ने 'ग्रहलाघव' बनाया जिसके मध्यमाधिकार के १६वें श्लोक में शक १४४२, संवत् १५७७ वि० में लिखा है ।

"सौरोर्कोऽपि विधूच्चमङ्क कलिकोनाब्जो गुरुस्त्वार्यजो, ऽसृग राहु च कर्ज ज्ञकेन्द्रकमयार्ये सेषुभागः शनिः । शौक्रं केन्द्रमजार्यमध्यगमिती मे यान्ति दृकतुल्यतां, सिद्धैस्तैरिहपर्व धर्म नय सत्कार्यादिकं त्वादिशेत् ॥"[2]

जिससे प्रकट है कि गणेश जी पर्व धर्म, उत्सव इत्यादि सभी शुभ काम दृग्गणितैक्य से ही निश्चय करने का आदेश करते हैं न कि 'निर्बीज' सूर्य-सिद्धान्त से ।

इसकी टीका में मल्लारि जी शक १५४५ संवत् १६८० वि० में लिखते हैं, "......इति तेभ्यः पक्षेभ्यः साधिता इमे ग्रहाः दृशितुल्यतां दृग्गणितैक्यं यान्ति...... इहा स्मिन् ग्रन्थे सिद्धैस्तैर्ग्रहैः पर्व धर्मनयसत्कार्यादिकमादिशेत् । पर्व ग्रहण धर्म्मौ यज्ञानुष्ठानैकादशी व्रतादिकम् । नयो नीतिः । राजनीति दण्डनीत्यादिकः । सत्कार्य शुभं कार्यंव्रतबन्ध विवाहादि । एभ्यो ग्रन्थेभ्य एतदुत्पन्न तिथ्यादेरेवादिशेत् अयं भावः । यतो यस्मिन् यस्मिन् काले यद्यद् दृग्गणितैक्यकृत्तदेवग्राह्यं घटमानत्वात ।"[3]

फिर मल्लारि जी कहते हैं, "अहर्गणात्साधितो यो ग्रहः स मध्यमो यतो यन्त्रवेधेनाकाशे विलोक्यमाने तावान् ग्रहो न दृष्टः किञ्चिदंतरं दृष्टं प्रत्यहं गतेर्विसदृशत्वात् । एवं प्रत्यहं ग्रहान् गोलेन चक्रयन्त्रेण वा विद्ध्वा अहर्गणोत्पन्न मध्यम ग्रह वेधित स्पष्टग्रहयोरन्तराणि साधितानि ।"[4]

---

१. मराठी भारतीय ज्योतिःशास्त्र पृष्ठ २५६ में उद्धृत ।

२. म० म० सुधाकर द्विवेदी सम्पादित ग्रहलाघव पृष्ठ ७० ।

३. वही, ग्रहलाघव पृष्ठ ७० ।

४. वही, ग्रहलाघव पृष्ठ ७२ ।

मल्लारि जी एक जगह और लिखते हैं "एवं ग्रहभगणभोगपर्यन्तं ग्रहगतीरानीय तासु मध्ये या परमाधिका गतिर्याच परमाल्पा तयोर्योगार्धं मध्यगतिरेवाङ्गी कृता। सा दुःसाध्या सूक्ष्माणां विकला कोट्यंशादीनामलक्ष्यत्वात्। सा स्थूला जाता सैवाङ्गीकृता। एवं कियत्यपि काले जाते वशिष्ठादिभिर्विलोक्यमाने गतेरन्तरं दृष्टम्। एवमन्यैरपि।..............अस्मिन्काले एतेदृग्गोचराः एवमग्रेऽपि भविष्यन्महागणकैर्नलिकाबन्धादिना ग्रहवेधं कृत्वाऽन्तराणि लक्षयित्वा ग्रहकरणानि कार्याणीत्यग्रे ग्रन्थ समाप्तावाचार्येणाप्युक्तमस्ति।"[1]

इस अवतरण में जिस तर्क से मल्लारि जी ने काम लिया है उसको सिद्ध करने के लिए वराह-मिहिर, वशिष्ट, सूर्यसिद्धान्त, ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त सभी के अवतरण दिये हैं जो इस जगह छोड़ दिये गये हैं, क्योंकि इनको मैंने पहले ही दे दिया है। दृक्तुल्यता के लिए वेध करके ही परीक्षा ली जा सकती है इसलिए गणित और वेध में जब समता हो तभी नियम शुद्ध कहा जा सकता है। मल्लारि जी की यह बात १६ आने पावरत्ती ठीक है कि वेध द्वारा प्राप्त हुई संख्याओं में कुछ न कुछ स्थूलता 'विकलाकोट्यंशादीनामलक्ष्यत्वात्' रह ही जाती है, जिसके लिए समय समय पर वर्तमान घटनाओं को देखकर संशोधन करना चाहिये।

अनेक लम्बे अवतरणों से पाठक ऊब गये होंगे, इसलिए मैं आचार्य गणेश दैवज्ञ की पुस्तक वृहत्तिथिचिंतामणि से अवतरण न दूँगा। यद्यपि इसमें संक्षेप में ब्रह्माचार्य, वशिष्ठ, कश्यप, मयासुर, आर्यभट, दुर्गसिंह मिहिर, ब्रह्मगुप्त, केशव, इत्यादि सब के अवलोकनों की चर्चा करते हुए बतलाया गया है कि इनमें अंतर क्यों पड़ गया और उनको नये ग्रन्थ के बनाने की उस समय क्यों आवश्यकता पड़ी तथा जब आगे आवश्यकता पड़ेगी तब कैसे संशोधन करना चाहिये। फिर भी अन्त का एक श्लोक दिये बिना रहा नहीं जाता जो यों है :—

> "कथमपि यदिदं चेद्भूरिकाले श्लथंस्यात्,
> मुहुरपि परिलक्ष्येन्दु ग्रहाद्यृक्षयोगम्॥
> सदमलगुरुतुल्यप्राप्तबुद्धिप्रकाशैः
> कथित सदुपपत्या शुद्धिकेन्द्रे प्रचाल्ये॥"[2]

इन अवतरणों को पढ़कर कौन ऐसा होगा जो न मानेगा कि हमारे पुराने आचार्य और वैज्ञानिक युक्तियुक्त तर्कों से यह आवश्यकता दिखला गये हैं कि दृग्गणि-

---

१. म० म० सुधाकर द्विवेदी सम्पादित ग्रहलाघव पृष्ठ ५५।

२. म० म० सुधाकर द्विवेदी सम्पादित गणकतरंगणी पृष्ठ ६३।

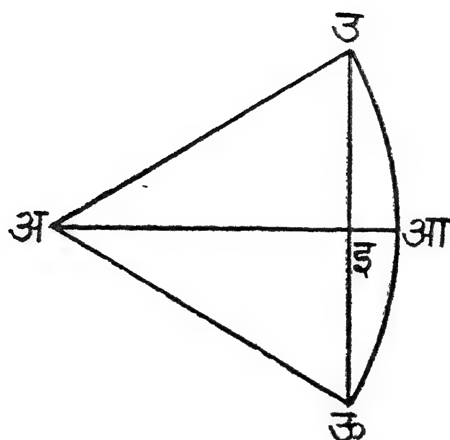
तैक्य के लिए समय-समय पर सिद्धान्त ग्रन्थों में भी संशोधन करने की आवश्यकता है और इसी संशोधन के साथ तिथि, योग, करण, नक्षत्र इत्यादि जानकर सभी लौकिक काम करने चाहिये ? आजकल का कोई "अंग्रेजी गणितविद्याविशारद" भी अपने पक्ष के समर्थन में पुराने आचार्य जो कुछ कह गये हैं उससे अधिक कहने की अवश्कता नहीं समझ सकता ।

राशिलिप्ताष्टमो भाग: प्रथमं ज्यार्धमुच्यते ।
तत्तद्विभक्त लब्धोनमिश्रितं तद् द्वितीयकम् ॥१५॥
आद्येनैवं क्रमात्पिण्डान्भक्त्वा लब्धोनितैर्युतैः ।
खण्डकैस्स्युश्चतुर्विंशज्ज्यार्धपिण्डाः क्रमादमी ॥१६॥

अनुवाद—(१५) एक राशि में जितनी कलाएँ होती हैं उसके आठवें भाग को पहली 'ज्या' कहते हैं । इसको इसी से भाग देकर लब्धि को इसी में घटाकर शेष को इसी में (पहली ज्या में) जोड़ देने से दूसरी ज्या निकल आती है । (१६) इसी प्रकार आदि से लेकर सब ज्याओं को पहली ज्या से भाग देकर भाग फलों को जोड़ कर, योगफल को पहली ज्या में से घटाकर शेप को अन्तिम ज्या में जोड़ दो तो जो योगफल मिलेगा वही अगली ज्या होगी । इस प्रकार क्रम से २४ ज्याओं के पिंड होंगे ।

विज्ञान भाष्य—ज्या किसको कहते हैं और इसका मान रेखागणित से कैसे निकाला जाता है इसका विवेचन मध्यमाधिकार के ६० वें श्लोक के विज्ञान भाष्य में किया गया है । उस श्लोक के नीचे जो दूसरा चित्र दिया गया है उसको देखना चाहिये । ऊपर १५ वें श्लोक में 'ज्या' के स्थान में 'ज्यार्ध' शब्द का प्रयोग हुआ है, इससे भ्रम में न पड़ना चाहिये । दोनों के अर्थ समान माने गये हैं । 'ज्या' के लिए 'ज्यार्ध' इसलिए कहा गया है कि किसी कोण उ अ आ को 'ज्या' जानने के लिए सबसे सरल रीति यह है कि एक ऐसा वृत्तखंड (Sector) उ अ ऊ बनाओ जिसका केन्द्रीय कोण अ अभीष्ट कोण का दूना हो, फिर इस वृत्तखंड की जीवा या ज्या उ ऊ खींच लो और उसका आधा कर दो । बस इसी जीवा का आधा (ज्यार्ध) उ इ अभीष्ट कोण की ज्या है । इसीलिए ज्यार्ध और ज्या समानार्थवाची हैं (चित्र २४) ।

इस श्लोक से यह भी पता चलता है कि आचार्य ने एक राशि के ८वें भाग अर्थात् ३$\frac{3}{4}$ अंश या २२५ कला के धनु (arc) और ज्या (line) में कोई अन्तर नहीं समझा है । इसके बाद ३$\frac{3}{4}$ अंश के दूने, तिगुने, चौगुने, इत्यादि अंशों की ज्याएँ कैसे ज्ञात की जाती हैं इसकी रीति बतलायी गयी है । संक्षेप में, बीजगणित की भाषा में रीति यों लिखी जा सकती है:—



चित्र २४

यदि प = ३$\frac{३}{४}$ अंश = २२५'

तो ज्या प = २२५'

$$\text{ज्या } ७\tfrac{१}{२} \text{ अंश} = \text{ज्या } २\,\text{प} = \text{ज्या प} + \text{ज्या प} - \frac{\text{ज्या प}}{\text{ज्या प}} = २२५' + २२५' - १'$$

$$= ४४९';$$

$$\text{ज्या } ११\tfrac{१}{४} \text{ अंश} = \text{ज्या } ३\,\text{प} = \text{ज्या } २\,\text{प} + \text{ज्या प} - \frac{\text{ज्या प} + \text{ज्या } २\,\text{प}}{\text{ज्या प}}$$

$$= ४४९' + २२५' - ३ = ६७१';$$

$$\text{ज्या } १५^\circ = \text{ज्या } ४\,\text{प} = \text{ज्या } ३\,\text{प} + \text{ज्या प} - \frac{\text{ज्या प} + \text{ज्या } २\,\text{प} + \text{ज्या } ३\,\text{प}}{\text{ज्या प}}$$

$$= ६७१' + २२५' - (१ + २ + ३) = ८९०';$$

इसी प्रकार ज्या (स + १) प

$$= \text{ज्या (स प)} + \text{ज्या प} - \frac{\text{ज्या प} + \text{ज्या } २\,\text{प} + \ldots \text{ज्या (सप)}}{\text{ज्या प}}$$

इसकी उपपत्ति महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्रीजी के अनुसार[१] यह है :—

कल्पना करो, ज्या प − ज्या० = $\text{त}_१$,

ज्या२प − ज्या प = $\text{त}_२$;

ज्या३प − ज्या २प = $\text{त}_३$;

---

१. देखो सूर्य सिद्धान्त का बापूदेवजी शास्त्री द्वारा अंग्रेजी अनुवाद

$$ज्या\ नप - ज्या\ (न-१)\ प = त_{न}$$

और $$ज्या\ (न+१)\ प - ज्या\ न\ प = त_{न+१}$$

तब, $त_{१} - त_{२} = २\ ज्या\ प - ज्या\ २\ प$

$= २\ ज्या\ प - २\ ज्या\ प\ कोज्या\ प$*

$= २\ ज्या\ प\ (१ - कोज्या\ प)$

$= २\ ज्या\ प \times उज्या\ प$ ×× (१)

$त_{२} - त_{३} = २\ ज्या\ २\ प - ज्या\ प - ज्या\ ३\ प$

$= २\ ज्या\ २\ प - ज्याप - (३\ ज्या\ प - ४\ ज्या^{३}\ प)$

$= २\ ज्या\ २\ प - ४\ ज्या\ प + ४\ ज्या^{३}\ प$

$= २\ ज्या\ २\ प - ४\ ज्या\ प\ (१ - ज्या^{२}\ प)$

$= २\ ज्या\ २\ प - ४\ ज्या\ प \times कोज्या^{२}\ प$

$= २\ ज्या\ २\ प - २\ ज्या\ प \times कोज्या\ प \times २\ कोज्या\ प$

$= २\ ज्या\ २\ प - २\ ज्या\ २\ प \times कोज्या\ प$

$= २\ ज्या\ २\ प\ (१ - कोज्या\ प)$

$= २\ ज्या\ २\ प \times उज्या\ प$ (२)

$त_{३} - त_{४} = २\ ज्या\ ३\ प - ज्या\ २\ प - ज्या\ ४\ प$

$= २\ ज्या\ ३\ प - (ज्या\ २\ प + ज्या\ ४\ प)$

$= २\ ज्या\ ३\ प - २\ ज्या\ ३\ प \times कोज्या\ प$ ×××

$= २\ ज्या\ ३\ प (१ - कोज्या\ प)$

$= २\ ज्या\ ३\ प \times उज्या\ प$ (३)

इसी प्रकार $त_{न} - त_{न+१} = २\ ज्या\ नप - ज्या\ (न-१)\ प - ज्या\ (न+१)\ प$

$= २\ ज्या\ नप - \{ज्या\ (न-१)\ प + ज्या\ (न+१)\ प\}$

$= २\ ज्या\ नप - २\ ज्या\ नप\ कोज्या\ प$

$= २\ ज्या\ नप\ (१ - कोज्या\ प)$

$= २\ ज्या\ नप \times उज्या\ प$ (न)

---

* कोज्या=कोटिज्या=cosine

×× उज्या=उत्क्रमज्या=versed sine=(1 − cosine)=१ − कोज्या

××× देखो Hall and Knight's Trigonometry page 113.

अब (१), (२), (३)⋯(न) समीकरणों के सम पक्षों को जोड़ने से

$त_{१} - त_{न+१}$ = २ उज्या प (ज्या प + ज्या २ प
+ ज्या ३ प + ⋯ ज्या नप)

परन्तु $त_{१} - त_{न+१}$ = ज्या प + ज्या नप − ज्या (न + १)प

∴ ज्या प + ज्या नप − ज्या (न + १)प = २ उज्या प
× (ज्या प + ज्या २ प + ⋯ ज्या नप)

∴ ज्या (न + १)प = ज्या नप + ज्या प − [illegible] उज्या प
(ज्या प + ज्या २ प + ⋯ ज्या नप)

यहाँ प = ३°४५′ = २२५′

∴ २ उज्या प = २ उज्या २२५′ = २ (१ − कोज्या २२५′)

$= २(१ - .९९७८) = २ \times .००२२ = \frac{४४}{१००००} = \frac{१}{२२७}$

$= \frac{१}{२२५}$ स्वल्पान्तर से

∴ ज्या (न + १)प = ज्या नप + ज्या प − $\frac{१}{२२५}$ ×
(ज्या प + ज्या २प + ⋯ ज्या नप)

तत्वाश्विनोङ्काब्धिवेदा रूपभूमिधरर्तवः ।
खाङ्काष्टौ पञ्चशून्येशा वाणभूमिगुणेन्दवः ॥१७॥
शून्यलोचनपञ्चैकाश्छिद्ररूपमुनीन्दवः ।
बियच्चन्द्रातिधृतयो गुणरन्ध्राम्बराश्विनः ॥१८॥
मुनिषड्यमनेत्राणि चन्द्राग्निकृतदस्रकाः ।
पञ्चाष्टविषयाक्षीणि कुञ्जराश्विनगाश्विनः ॥१९॥
रन्ध्रपञ्चाष्टकयमा वस्वद्रयङ्कयमास्तथा ।
कृताष्टशून्यज्वलना नगाद्रिशशिवह्नयः ॥२०॥
षट्पञ्चलोचनगुणाश्चन्द्रनेत्राग्निवह्नयः ।
यमाद्रिवह्निज्वलना रन्ध्रशून्यार्णवाग्नयः ॥२१॥
रूपाग्निसागरगुणा वसुत्रिकृतवह्नयः ।
प्रोज्झ्योत्क्रमेण व्यासार्धादुत्क्रमज्यार्धपिण्डकाः ॥२२॥

अनुवाद—(१७) २२५, ४४९, ६७१, ८९०, ११०५, १३१५; (१८) १५२०, १७१९, १९१०, २०९३; (१९) २२६७, २४३१, २५८५, २७२८; (२०) २८५९,

२९७८, ३०८४, ३१७७; (२१) ३२५६, ३३२१, ३३७२, ३४०९; (२२) ३४३१, ३४३८ कलाएं क्रम से $३\frac{३}{४}$ अंश, $७\frac{१}{२}$ अंश, $११\frac{१}{४}$ अंश, १५ अंश इत्यादि एक समकोण के २४ पिंडों की ज्याएं हैं। यदि इनको उलटे क्रम से (उत्क्रम से) एक त्रिज्या की कलाओं से अर्थात् २४३८ से घटा दो तो एक समकोण के २४ पिंडों की क्रम से उत्क्रम ज्याएं ज्ञात हो जायंगी। इनके मान भी आगे के पाँच श्लोकों मे दिये हुए हैं।

विज्ञान भाष्य- इस सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती है। अगले पांच श्लोकों के बाद इन ज्याओं और उत्क्रम ज्याओं के मानों की तुलना आजकल की रीति से निकाले हुए मानों से की जायगी।

उत्क्रम ज्या के मान जानने के लिए जो नियम लिखा गया है वह बहुत ही सरल और मौलिक है। यदि ३४३८ में से अंतिम संख्या ३४३८ घटायी जाय तो शून्य बचेगा जो शून्य अंश की उत्क्रम ज्या है और यदि ३४३१ घटाया जाय तो ७ बचेगा जो २२५ कला की उत्क्रम ज्या है। इसको रेखागणित के आधार पर इस प्रकार जान सकते हैं—चित्र २४ में यदि उ अ आ २२५′ कला का कोण हो तो उ आ का मान २२५′, उ इ का २२५′ (स्वल्पान्तर से), अ इ का ३४३१′ और इ आ का ७′ है। यही इ आ का मान उ अ इ कोण की उत्क्रम ज्या है। इसी प्रकार अन्य पिण्डों की ज्याएं और उत्क्रम ज्याएं जानी जा सकती हैं।

मुनयो रन्ध्रयमला रसषट्का मुनीश्वराः।
द्व्यष्टैका रूपषड्दस्राः सागरेषुहुताशनाः ॥२३॥
खर्तुवेदा नवाद्र्यर्था दिङ्नागास्त्र्यर्थकुञ्जराः।
नगाम्बरवियच्चन्द्रा रूपभूधरशङ्कराः ॥२४॥
शरार्णवहुताशैका भुजङ्गाक्षिशरेन्दवः।
नवरूपमहीध्रैका गजैकाङ्कनिशाकराः ॥२५॥
गुणाश्विरूपनेत्राणि पावकाग्निगुणाश्विनः।
वस्वर्णवार्थयमलास्तुरगर्तुनगाश्विनः ॥२६॥
रन्ध्राष्टनवनेत्राणि पावकैकयमाग्नयः।
अष्टाग्निसागरगुणा उत्क्रमज्यार्धपिण्डकाः ॥२७॥

अनुवाद—(२३) ७, २९, ६६, ११७, १८२, २६१, ३५४; (२४) ४६०, ५७९, ७१०, ८५३, १००७, ११७१; (२५) १३४५, १५२८, १७१९, १९१८; (२६) २१२३, २३३३, २५४८, २७६७; (२७) २९८९, ३२१३, और ३४३८ कलाएँ क्रम से उत्क्रम ज्याओं के पिंड हैं।

नीचे एक सारिणी दी जाती है जिसमें ऊपर के ग्यारह श्लोकों का सार है :—

पिंडों का क्रम	धनु अथवा कोण	भारतीय रीति से ज्या के मान जब त्रिज्या =३४३८	आजकल की रीति से ज्या के मान जब त्रिज्या =३४३८	आजकल की रीति से ज्या के मान जब त्रिज्या =१	भारतीय रीति से उत्क्रम ज्या के मान जब त्रिज्या =३४३८	आजकल की रीति से उत्क्रम ज्या के मान जब त्रिज्या =१
१	२	३	४	५	६	७
१	३°४५′	२२५	२२४.८५	.०६५४	७	.००२२
२	७°३०′	४४९	४४८.९५	.१३०५	२९	.००८६
३	११°१५′	६७१	६७०.७२	.१९५१	६६	.०१९२
४	१५°	८९०	८८९.८२	.२५८८	११७	.०३४१
५	१८°४५′	११०५	११०५.०१	.३२१४	१८२	.०५३१
६	२२°३०′	१३१५	१३१५.०५	.३८२७	२६१	.०७६१
७	२६°१५′	१५२०	१५२०.५८	.४४२३	३५४	.१०३१
८	३०°१५′	१७१९	१७१९.००	.५०००	४६०	.१३४०
९	३३°४५′	१९१०	१९१०.०५	.५५५५	५७९	.१६८५
१०	३७°३०′	२०९३	२०९३.०५	.६०८८	७१०	.२०६६

* देखिये चित्र १८ पृष्ठ १६६ 'विज्ञान' भाग १८ संख्या ५

१	२	३	४	५	६	७
११	४१°१५′	२२६७	२२६७.०२	·६५६४	८५३	·२४८१
१२	४५°०	२४३१	२४३१·०१	·७०७१	१००७	·२६२६
१३	४८°४५′	२५८५	२५८४·७०८	·७५१६	११७१	·३४०६
१४	५२°३०′	२७२८	२७२७·५५	·७६३४	१३४५	·३६१२
१५	५६°१५′	२८५६	२८५८·५५	·८३१५	१५२८	·४४४५
१६	६०°०	२६७८	२६७७·२१	·८६६०	१७१६	·५०००
१७	६३°४५′	३०८४	३०८३·४५	·८६६६	१६१८	५५७७
१८	६७°३०′	३१७७	३१७६·३७	·६२३६	२१२३	·६१७३
१९	७१°१५′	३२५६	३२५५·७५	·६४६६	२३३३	·६७८६
२०	७५°०	३३२१	३३२०·८५	·६६५६	२५४८	·७४१२
२१	७८°४५′	३३७२	३३७१·६५	·६८०८	२७६७	·८०४६
२२	८२°३०′	३४०६	३४०८·७५	·६६१४	२६८६	·८६६५
२३	८६°१५′	३४३१	३४३०·८५	·६६७८	३२१३	·६३४६
२४	९०°०′	३४३८	३४३८·००	१·००००	३४३८	१.००००

विज्ञान भाष्य—सूर्य सिद्धान्त में त्रिकोणमिति के इतने ही सम्बन्ध (ratios) दिये हुए हैं। इनसे कोटिज्या (cosine) जानने के लिए यह नियम व्यवहार में लाया गया है कि यदि किसी कोण की ज्या दी हुई हो तो उस कोण को ९०° में से घटाने पर जो कोण होता है उसकी कोटिज्या का मान भी वही होता है अर्थात् किसी कोण की ज्या उसके पूरक कोण की कोटिज्या के समान होती है। किसी कोण की स्पर्श रेखा (tangent) का मान आजकल की तरह नहीं दिया मिलता है, परन्तु इसका व्यवहार अप्रत्यक्ष रूप से कोण की ज्या को उसकी कोटिज्या से भाग देकर किया गया है।

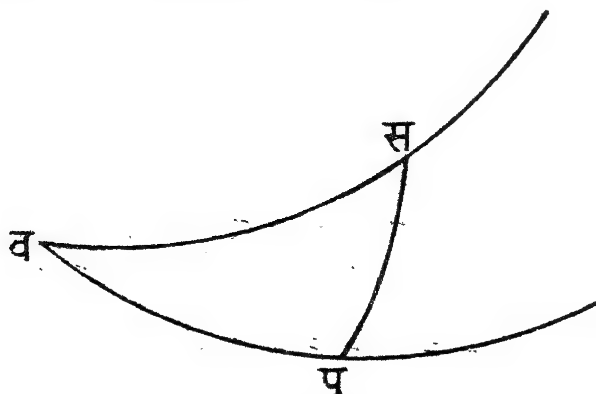
यदि कोण का मान ऐसा है कि ऊपर दिये हुए पिंडों के बीच में पड़ता है तो उसकी ज्या, कोटिज्या या उत्क्रमज्या त्रैराशिक (proportional parts) से जानने की विधि अगले ३१-३४ श्लोकों में बतलायी गयी है। इसी प्रकार यदि ज्या का मान ज्ञात हो तो उससे धनु (कोण) निकालने की रीति भी इन्हीं श्लोकों में है।

भास्कराचार्य जी ने ज्या, कोटिज्या जानने की रीति और सूक्ष्म रीति से बतलायी है।

ज्या के पर्याय क्रमज्या, भुजज्या, बाहुज्या, अर्द्धज्या इत्यादि तथा कोटिज्या के लम्बज्या भी प्रयोग किये गये हैं।

परमापक्रमज्या तु सप्तरन्ध्रगुणेन्दवः।
तद्गुणा ज्या त्रिजीवाप्ता तच्चापं क्रान्तिरिष्यते ॥२८॥

अनुवाद—(२८) परम क्रान्ति ज्या का मान १३९७ कला है। इसको (भोगांश की) ज्या से गुणा करके, फल को त्रिज्या से भाग देने पर जो आवे वह जिस धनु (कोण) की ज्या हो वही क्रान्ति का मान होता है।



चित्र २५

विज्ञान भाष्य—इस श्लोक में दिखलाया गया है कि 'ज्या' का व्यवहार किस प्रकार किया जाता है। साथ ही साथ यह नियम भी बतलाया गया है कि किसी समकोण गोलीय त्रिभुज (Right angled Spherical triangle) के भुजों और कोणों में परस्पर सम्बन्ध क्या होता है। परमक्रान्ति ज्या का मान १३९७ कला बतलाया गया है; जिससे जान पड़ता है कि परमक्रान्ति का मान २४° है; क्योंकि २४° का ज्या का मान ही उपर्युक्त रीति से १३९७ कला होता है; यद्यपि शुद्ध गणना से वह २३°५८′३१″ की ज्या है।

दिये हुए चित्र २५ में व वसंत-संपात व स क्रान्तिवृत्त का खंड और व प विषुवद्वृत्त का खंड है। स प ध्रुवप्रोत वृत्त का खंड है अर्थात् उस वृत्त का खंड है जो ध्रुव से होकर जाता है और विषुवद्वृत्त के विन्दु प पर समकोण बनाता है। स व प कोण क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त के बीच का कोण (obliquity of the ecliptic) है जो उपर्युक्त श्लोक के अनुसार २४° है। वसंत संपात से स की दूरी व स क्रान्तिवृत्त के 'स' विन्दु का भोगांश और विषुवद् वृत्त से स की दूरी जबकि स प व कोण समकोण हो, अर्थात् स प, स विन्दु की क्रान्ति कहलाती है। इसी को अपक्रम भी कहते हैं। दिये हुए नियम के अनुसार,

$$\text{ज्या (व स)} \times \frac{१३९७}{३४३८} = \text{ज्या (सप)}$$

$$\text{अथवा ज्या (व स)} \times \frac{\text{ज्या (स व प)}}{\text{त्रिज्या}} = \text{ज्या (सप)}$$

यदि त्रिज्या को ३४३८ की जगह १ मान लिया जाय, जैसी कि आजकल की प्रथा है तो १३९७ कला की जगह ·४०६७ रखना होगा। इससे गुणा भाग में कुछ सरलता हो जायगी और तब इस सूत्र का रूप केवल यह होगा।

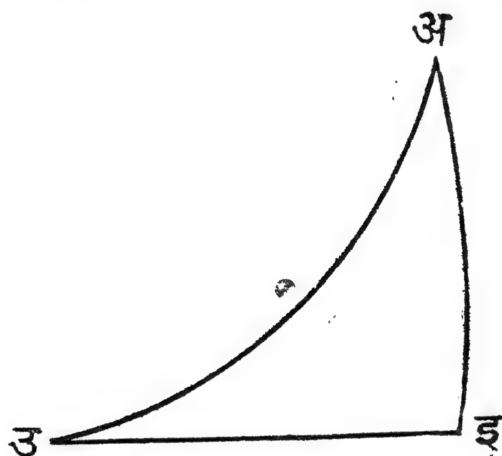
$$\text{ज्या (व स)} \times \text{ज्या (स व प)} = \text{ज्या (सप)}$$

यही कुछ भेद के साथ आजकल नेपियर के एक नियम से प्रसिद्ध है, जिसे नेपियर* नामक गणितज्ञ ने एडिनबरा से १६१४ ई० अथवा १६७१ वि० में अपने ग्रन्थ 'मिरिफिसी लागेरिथमोरम कैनोनिस डेसक्रिपशिओ' (Mirifici Logarithmorum Canonis Descriptio) में प्रकाशित किया था। नेपियर के नियम याद रखने के लिए यह युक्ति है:—

---

*देखो टाडहंटर और लेथेम की गोलीय त्रिभुज (Spherical Trigonometry) १९११ की छपी पृष्ठ ५०

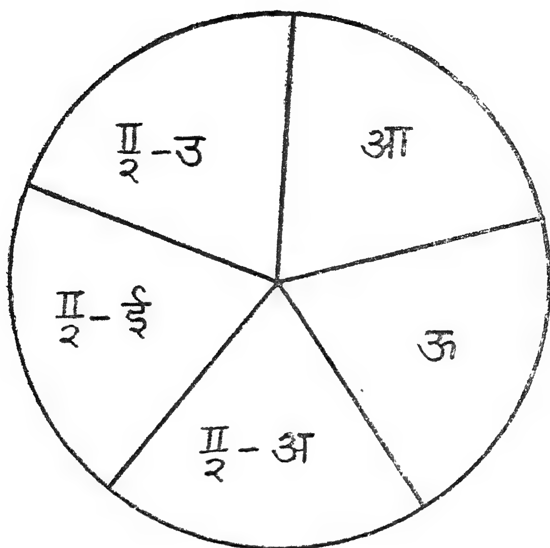
किसी समकोण गोलीय त्रिभुज के समकोण को छोड़कर, समकोण बनाने वाली दो भुजों, कर्ण के पूरक, तथा अन्य दो कोणों के पूरकों को त्रिभुज के गोल खंड (circular parts) कहते हैं। इस प्रकार किसी समकोण गोलीय त्रिभुज के ५ गोल खंड होते हैं। यह पाँचों खंड एक वृत्त के चारों ओर उसी क्रम से रखे जाते हैं जिस क्रम से रखे जाते हैं। जिस क्रम से यह त्रिभुज में रहते हैं। मान लो अ इ उ एक



चित्र २६

गोलीय त्रिभुज है। अ, इ, उ, वह विन्दु हैं जिन पर त्रिभुज की भुजें इ अ, उ अ; अ इ, उ इ; और अ उ, इ उ मिलती हैं। उ अ इ, अ इ उ और अ उ इ कोणों को संक्षेप में अ, इ, उ अक्षरों से प्रकट करते हैं। इसी तरह अ कोण के सामने वाले भुज इ उ को 'आ' से, इ कोण के सामने वाले भुज अ उ को ई से और उ कोण के सामने वाले भुज अ इ को ऊ से प्रकट करते हैं। साधारण नियम यह है कि त्रिभुज के कोणों को ह्रस्व स्वरों से और उनके सामने के भुजों का उसी प्रकार के दीर्घ स्वरों से प्रकट किया जाता है। गोलीय त्रिभुज के भुजों को भी कोणात्मक मानों से ही नापते हैं। यदि इ समकोण हो तो यह त्रिभुज समकोण गोलीय त्रिभुज कहा जाता है। तब इसके सामने के भुज ई को कर्ण कहते हैं। [देखिये चित्र २६]

नेपियर के नियम में समकोण गोलीय त्रिभुज के समकोण को छोड़कर इसके पास वाले दो भुज आ, ऊ, अ कोण का पूरक $\frac{\pi}{२}$ — अ, ई कर्ण का पूरक $\frac{\pi}{२}$ — ई, उ कोण का पूरक $\frac{\pi}{२}$ — उ, गोलीय खंडों को चित्र द्वारा इस प्रकार लिखते हैं [देखिये चित्र २७]



चित्र २७

इन पाँचों में से किसी एक को चुन लो और उसका नाम मध्य खंड रख लो। जिसको मध्य खंड माना उसके बगल के दो खंडों को आसन्न खंड कहो; शेष जो दो खंड रह जाते हैं उनको सन्मुख खंड कहो। अब नेपियर के नियमों को इस प्रकार लिख सकते हैं :—

(१) मध्य खंड की ज्या = आसन्न खंडों की स्पर्श रेखाओं का गुणनफल।

(२) मध्य खंड की ज्या = संमुख खंडों की कोटिज्याओं का गुणनफल।

यही दूसरा नियम उपर्युक्त श्लोक में नेपियर से कम से कम एक हजार वर्ष पहले प्रयोग किया गया है।

> ग्रहं संशोध्य मन्दोच्चात् तथा शीघ्राद्विशोध्य च।
> शेषं केन्द्रं पदैस्तस्माद् भुज ज्या कोटिरेव च ॥२९॥
> गताद्भुजज्या विषमे गम्यात्कोटिः पदे भवेत्।
> समे तु गम्याद्बाहुज्या कोटिज्या तु गताद् भवेत् ॥३०॥

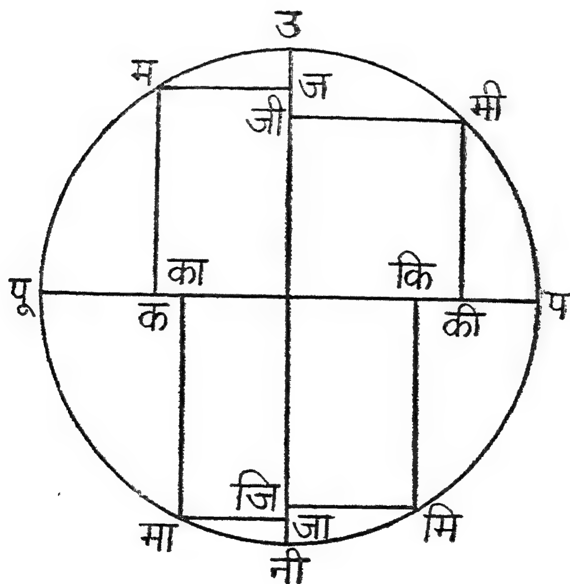
अनुवाद—(२९) किसी ग्रह के मन्दोच्च और शीघ्रोच्च के स्थानों में से उसके मध्यम स्थान को घटा देने से जो शेष होते हैं उन्हें क्रम से मन्द केन्द्र और शीघ्र केन्द्र कहते हैं। इनसे पद बनावे और पद जानकर भुज ज्या और

कोटिज्या बनावे। (३०) विषम पद में जो भाग गत रहता है उसकी ज्या को भुज ज्या और जो भाग गम्य होता है उसकी ज्या को कोटिज्या कहते हैं, परन्तु समपद में गम्य भाग की ज्या को भुजज्या और गत भाग की ज्या को कोटि ज्या कहते हैं।

विज्ञान भाष्य—इसी अध्याय के चौथे और पाँचवें श्लोकों में बतलाया गया है कि १८०° तक पूर्व में स्थित मन्दोच्च या शीघ्रोच्च अपने ग्रह का मध्यम स्थान से अपनी ओर अर्थात् पूर्व की ओर आसन्नता के अनुसार खींच लेता है, जिससे मध्यम ग्रह में धन संस्कार करने से स्पष्ट ग्रह का स्थान जाना जा सकता है, इत्यादि। ऊपर के २९वें श्लोक में यह बतलाया गया है कि मन्दोच्च या शीघ्रोच्च से मध्यम ग्रह की दूरी कैसे निकालनी चाहिये। किसी परिधि के दो बिन्दुओं का अन्तर दो प्रकार से प्रकट किया जा सकता है। यदि चित्र १५ में उ से तीर की दिशा मे चलते हुए म, मा, मि और मी विन्दुओं के अन्तर नापे जायँ तो यह क्रम से उम; उमा, उमि, और उमी होंगे। परन्तु यदि उ से उलटी दिशा में चलकर इन विन्दुओं के अन्तर नापे जायँ तो उ से म का अन्तर ३६०°—उम, मा का अन्तर ३६०°—उमा, मि का अन्तर ३६०°—उमि और मी का अन्तर ३६०°—उमी होंगे। चित्र मे जो दिशा तीर के अग्र से सूचित होती है उसे संस्कृत ग्रन्थों में अनुलोम या अपसव्य दिशा कहते हैं, आजकल इसको 'धनात्मक' या 'घड़ी की विरुद्ध दिशा' कहते हैं। विषुवत् रेखा से उत्तर में रहने वाले मनुष्यों को सूर्य, चन्द्रमा और ग्रह इत्यादि अपनी कक्षा में इसी दिशा में चलते हुए देख पड़ते हैं। इसके प्रतिकूल दिशा को संस्कृत में विलोम, प्रतिलोम, सव्य तथा आजकल 'ऋणात्मक' या 'घड़ी की दिशा' कहते हैं। पृथ्वी की दैनिक गति के कारण सूर्य, चन्द्रमा, तारे, इत्यादि उत्तर गोल में रहने वाले मनुष्यों को इसी दिशा में चलते हुए जान पड़ते हैं। सूर्य सिद्धान्त में शीघ्रोचच या मन्दोच्च से ग्रहों का अन्तर जिसे क्रम से शीघ्र केन्द्र या मन्द केन्द्र कहते हैं विलोम या ऋणात्मक दिशा में ही नाप कर जानने की रीति बतलायी गयी है। इसीलिए कहा गया है कि शीघ्रोच्च या मन्दोच्च में से मध्यम ग्रह को घटाना चाहिये। परन्तु ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य इत्यादि कई अन्य आचार्यों ने मन्दोच्च से मध्यम ग्रह का अन्तर अनुलोम दिशा में और शीघ्रोच्च से मध्यम ग्रह का अन्तर विलोम दिशा में नापने को लिखा है। इसका कारण यह है कि मध्यम ग्रह मन्दोच्च से तीव्रगामी होने के कारण अनुलोम दिशा में ही आगे बढ़ता है और शीघ्रोच्च मध्यम ग्रह से तीव्रगामी होने के कारण अनुलोम दिशा में बढ़ता है; इसलिए मध्यम ग्रह शीघ्रोच्च से विलोम दिशा में जाता है। चाहे जिस तरह मन्द केन्द्र या शीघ्र केन्द्र नापा जाय दोनों का अर्थ एक ही होता है। भास्कराचार्य की रीति स्वाभाविक है और सूर्य सिद्धान्त की कुछ भ्रमजनक।

जब ग्रह का मन्द केन्द्र और शीघ्र केन्द्र मालूम हो गया तब यह जानने की आवश्यकता पड़ती है कि इनकी ज्या और कोटिज्या क्या हैं, क्योंकि इनकी आगे आवश्यकता पड़ती है। जो लोग आजकल की त्रिकोणमिति से परिचित हैं वह सीधे ही जान सकते हैं क्योंकि उनको मालूम है कि शून्य से ३६०° तक कोज्या, कोटि ज्या इत्यादि कैसे जानी जा सकती हैं। परन्तु प्राचीन काल में शून्य से ३६०° तक के किसी कोण की ज्या निकालने के लिए पहले यह देखते थे कि वह किस पद (quadrant) में है। यदि मन्द केन्द्र या शीघ्र केन्द्र शून्य और ९०° के भीतर हो तो विषम पद में, ९०° के ऊपर परन्तु १८०° से कम हो तो समपद में, १८०° से ऊपर और २७०° से कम हो तो विषम पद में और २७०° से अधिक हो तो समपद में होता है। संक्षेप में पहले और तीसरे पदों को विषम पद तथा दूसरे और चौथे पदों को समपद कहते हैं।

यह जानने के लिए कि ग्रह किस पद में है, मन्द केन्द्र या शीघ्र केन्द्र को ९०° से भाग देना चाहिये। यदि लब्धि शून्य या २ आवे तो विषम पद और यदि १ या ३ आवे तो समपद समझना चाहिये। जो शेष बचे वही गत भाग कहलाता है। इस शेष को ९०° में घटा देने से जो आता है उसे गम्य भाग कहते हैं। विषम पद हो



चित्र २८

तो गत भाग की और सम पद तो तो गम्य भाग की ज्या निकाले। इसी को भुजज्या कहते हैं। परन्तु विषम पद हो तो गम्य भाग की और सम पद हो तो गत भाग की ज्या को कोटि ज्या कहते हैं।

यह बात चित्र २८ से सुगमतापूर्वक समझ में आ सकती है। दिया हुआ वृत्त किसी ग्रह का कक्षा वृत्त है। 'उ' शीघ्रोच्च या मन्दोच्च का स्थान है। मी, मि, मा, म किसी ग्रह के मध्यम स्थान हैं। इसलिए विलोम दिशा मे चलते हुए उमी, उमि, उमा और उम ग्रह के मन्द केन्द्र हुए जो क्रम से पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे पदों में अथवा विषम, सम, विषम और सम पदों में है। पहले पद में उ मी गत है और मी प गम्य है; इसलिए उ मी की ज्या अर्थात् मी जी को भुज ज्या और मी प की ज्या अर्थात् मी की को कोटि ज्या कहते हैं। दूसरे पद में प मि गत है और मि नी गम्य, इसलिए प मि की ज्या अर्थात् मि कि को कोटि ज्या और मि नी की ज्या अर्थात् मि जि को भुज ज्या कहेंगे। तीसरे पद में 'नी मा' गत और 'मा पू' गम्य है इसलिए नी मा की ज्या अर्थात् मा जा को भुज ज्या और मा पू की ज्या अर्थात् माका को कोटि ज्या कहेंगे। इसी प्रकार चौथे पद में पू म गत है और म उ गम्य, इसलिए पू म की ज्या 'म क' को कोटि ज्या और म उ की ज्या 'म ज' को भुज ज्या कहते हैं।

इसको संक्षेप में यों कहना चाहिये कि उच्च से जो रेखा मध्य विन्दु पर होती हुई खींची जाती है उस रेखा मे अर्थात् नीचोच्च रेखा से मध्यम ग्रह के अन्तर को भुज ज्या कहते हैं। इस रेखा से समकोण बनाती हुई जो रेखा मध्य विन्दु पर होती हुई जाती है उससे मध्यम ग्रह का जो अन्तर होता है उसे कोटि ज्या कहते हैं। यदि त्रिज्या ३४३८ इकाइयों के समान हो तो इन्हीं इकाइयों में मी जी, मा जा और म ज की जो नाप होंगी उन्हें भुज ज्या और मी की मि कि, मा का, और म क की जो नाप होंगी उन्हें कोटि ज्या कहेंगे।

आगे के दो श्लोकों में यह बतलाया गया है कि किसी अंश की ज्या कैसे निकालनी चाहिये।

लिप्तास्तत्वयमैर्भक्ता लब्धा ज्यापिण्डकं गताः।
गतगम्यान्तराभ्यस्तं विभजेत्तत्वलोचनैः ॥३१॥
तदवाप्तफलं योज्यं ज्यापिण्डे गतसंज्ञिते।
स्यात्क्रमज्याविधिरयं उत्क्रमज्यास्वपि स्मृतः ॥३२॥

अनुवाद—(३१) जिस अंश की ज्या जानना हो उसकी कला बना कर २२५ से भाग दे दे, जो लब्धि आवे वही गत ज्या पिण्ड है; जो शेष बचे उसे गत ज्यापिण्ड

और गम्य (अगले) ज्यापिण्ड की ज्याओं के अंतर से गुणा कर दे और गुणनफल को २२५ से भाग दे दे। (३२) जो लब्धि आवे उसे गत ज्यापिंड की ज्या में जोड़ देने से जो आवेगा वही इष्ट अंश की ज्या होगी। इसी प्रकार उत्क्रम ज्या भी निकालनी चाहिये।

विज्ञान भाष्य—इस अध्याय के १५-२२ श्लोकों में २४ ज्यापिंडों की ज्याएं बतला दी गयी हैं। इनके अतिरिक्त यदि किसी बीच वाले कोण की ज्या जानना हो तो ३१-३२ श्लोकों से जानना चाहिये। मान लो ६६° की ज्या जानना है। पहले यह देखना चाहिये कि ६६° किस पिंड में है। २२५′ कला या ३°४५′ या ३$\frac{३}{४}$ अंश के अन्तर पर पिंड बाँधे गये हैं, इसलिए ६६° की कला बनाकर २२५ से भाग देना चाहिये अथवा ६६° को ३$\frac{३}{४}$ से भाग देना चाहिये। श्लोक में कला बनाने की ही रीति बतलायी गयी है, इसलिये

६६°=६६×६०′=३९६०′

३९६०′÷२२५=१७$\frac{१३५}{२२५}$

इसलिए गत पिंड १७ और गम्य पिंड १८ है।

१८ वें पिंड की ज्या=३१७७′

१७ वें पिंड की ज्या=३०८४′

∵ गत गम्यान्तर=९३′

अब त्रैराशिक से यह जानना चाहिये कि जब गत और गम्य पिंडों का अंतर २२५ होता है तब इनकी ज्याओं में ९३′ का अंतर होता है, इसलिए जब गत पिंड से इष्ट अंश १३५′ अधिक है तो गत पिंड की ज्या से इष्ट अंश की ज्या में क्या अंतर होगा। अर्थात्

२२५ : १३५ : : ९३ : अभीष्ट अंतर

$$\therefore \text{अभीष्ट अंतर} = \frac{१३५ \times ९३}{२२५} = \frac{३ \times ९३}{५}$$

$$= \frac{२७९}{५}$$

=५६′ स्वल्पान्तर से।

इसी को गतपिंड की ज्या में अर्थात् ३०८४′ में जोड़ देने से ३१४०′ हुई। यही ६६° की ज्या है।

यदि कोण का मान पूर्ण अंशों में हो तो बिना कला बनाये ही ज्या बनाने में सुभीता होगा, जैसे उपर्युक्त उदाहरण में ६६° की ज्या यों निकाली जा सकती है :—

$६६^\circ \div ३\frac{३}{४} = २२ \times \frac{४}{५} = \frac{८८}{५} = १७\frac{३}{५}$

१७ वें और १८ वें पिंडों की ज्याओं का अन्तर

$= ९३'$

$\therefore ९३ \times \frac{३}{५} = \frac{२७९}{५} = ५६'$

१७ वें पिंड की ज्या = ३०८४

$\therefore ६६^\circ$ की ज्या = ३१४०

अगले श्लोक में यह बतलाया गया है कि यदि ज्या दी हुई हो तो कोण कैसे जाना जा सकता है।

ज्यां प्रोज्झ्यान्यत्तत्वयमैर्हत्वा तद्विवरोद्धृतम् ।
सङ्ख्यातत्वाश्विसंवर्गे संयोज्य धनुरुच्यते ॥३३॥

अनुवाद—(३३) यदि यह जानना हो कि दी हुई ज्या किस अंश (धनु) की है तो पहले देखो कि २४ पिंडों की ज्याओं में से सबसे बड़ी कौन है जो दी हुई ज्या में से घटाई जा सकती है। इसी को घटाकर जो शेष आवे उसको २२५ से गुणा करो और गुणनफल को गत और गम्य ज्याओं के अंतर से भाग दे दो, जो लब्धि आवे उसे उस गुणनफल में जोड़ दो जो उस पिंड को २२५ से गुणा करने पर आता है जिस पिंड की ज्या घटायी गयी है।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोक में ज्या ज्ञात हो तो कोण जानने की रीति बतलायी गयी है। यह एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी। मान लो किसी कोण की ज्या ३१४०′ है, अब यह जानना है कि कोण क्या है।

१७—२२ श्लोकों के अनुसार १७वें पिंड की ज्या ३०८४′ और १८वें पिंड की ज्या ३१७७′ है। इसलिए ३१४०′ में से ३०८४′ घटाया तो शेष बचा ५६′। गत, गम्य पिंडों की ज्याओं का अंतर ९३′ है,

$९३' : ५६' :: २२५' :$ इष्ट कला

$\therefore$ इष्टकला $= \frac{५६ \times २२५}{९३} = \frac{४२००}{३१} = १३५'$ स्वल्पान्तर से

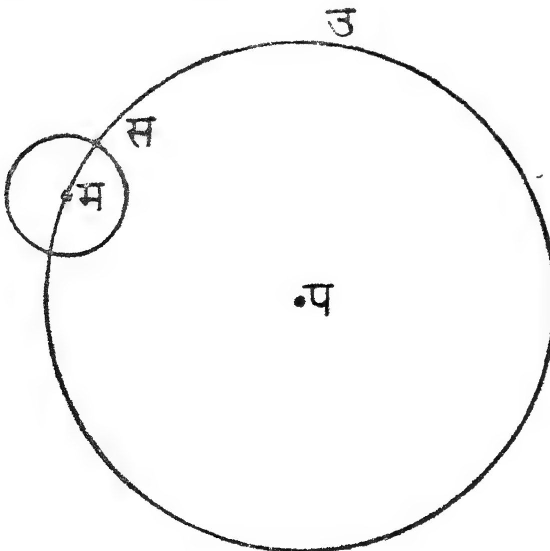
१७वें पिंड की कला = $१७ \times २२५ =$ ३८२५′

$\therefore$ दोनों का योगफल = ३९६०′

$\therefore$ जिस कोण की ज्या ३१४०′ है वह ३९६०′ अथवा ६६° है।

रवेर्मन्दपरिध्यंशा मानवश्शीतगो रदाः ।
युग्मान्ते विषमान्ते च नखलिप्तोनितास्तयोः ॥३४॥
युग्मान्तेऽर्थाद्रयः खाग्निः सुरास्सूर्या नवार्णवाः ।
ओजे द्व्यगा वसुयमा रदा रुद्रा गजाब्धयः ॥३५॥
कुजादीनां ततश्शीघ्रा युग्मान्तेऽर्थाग्निदस्रकाः ।
गुणाग्निचन्द्राः खागाश्च द्विरसाक्षीणि गोऽग्नयः ॥३६॥
ओजान्ते द्वित्रिकयमाः द्विविश्वे यमपर्वताः ।
खर्तुदस्रा वियद्वेदाश्शीघ्रकर्मणि कीर्तिताः ॥३७॥

अनुवाद—(३४) सम पदों के अंत में सूर्य की मंद परिधि १४° और चन्द्रमा की ३२° होती है। विषम पदों के अंत में प्रत्येक की मंद परिधि २० कला कम होती है। (३५) मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि की मन्द परिधियाँ समपदों के अन्त में क्रम से ७५°, ३०°, ३३°, १२° और ४९° तथा विषम पदों के अंत में क्रम से ७२°, २८°, ३२°, ११°, और ४८° होती हैं। (३६) इन पाँच ग्रहों की शीघ्र परिधियाँ समपादों के अन्त में क्रम से २३५°, १३३°, ७०°, २६२°, और ३९° तथा (३७) विषमपदों के अंत में २३२°, १३२°, ७२°, २६०° और ४०° होती हैं जो शीघ्र कर्म के लिए कही गयी हैं।



चित्र २९

विज्ञान भाष्य—मन्दोच्च के कारण ग्रह के मध्यम और स्पष्ट स्थानों में जो अंतर होता है वह मन्द फल और मन्द फल और शीघ्रोच्च के कारण मध्यम और स्पष्ट स्थानों में जो अन्तर होता है वह शीघ्र फल कहलाता है। यह मन्दोच्च या शीघ्रोच्च की दूरी के अनुसार घटता बढ़ता है। मध्यम और स्पष्ट ग्रहों में जो सबसे अधिक अंतर होता है वह मन्दोच्च के कारण हुआ तो परम मन्द फल और शीघ्रोच्च के कारण हुआ तो परम शीघ्र फल कहलाता है। यह वेध से अर्थात् नलिका यंत्र द्वारा देखने से जाना जाता है। परम मन्द फल की ज्या को अर्द्धव्यास मानकर जो परिधि खींची जाती है उसे मन्दपरिधि कहते हैं। इसी तरह परम शीघ्र फल की ज्या को अर्द्धव्यास मानकर जो परिधि खींची जाती है उसे शीघ्र परिधि या चला परिधि भी कहते हैं। यदि एक वृत्त खींचकर उसके मध्य में पृथ्वी मान ली जाय और परिधि पर मध्यम ग्रह भ्रमण करता हुआ माना जाय तो परिधि को ग्रह का कक्षावृत्त या कक्षामण्डल कहते हैं। यदि इस कक्षावृत्त के ३६० समान भाग किये जायँ तो ऐसे १४ भागों के समान सूर्य की मंद परिधि का विस्तार, समपदों के अंत में होगा। ऐसे ही अन्य ग्रहों की मन्द और शीघ्र परिधियों के परिमाण के बारे में समझना चाहिये। इसे यों भी लिख सकते हैं कि सूर्य की मन्द परिधि कक्षावृत्त का $\frac{१४}{३६०}$ होती है। चित्र २६ में यदि प पृथ्वी का स्थान, उ म स किसी ग्रह का कक्षावृत्त तथा म और स उसके मध्यम और स्पष्ट स्थान हों जबकि मस का मान परम हो तो मस धनु को ग्रह का परम मन्द फल तथा इसकी ज्या को जो मस के बीच की रेखात्मक दूरी है परम मन्द फल ज्या कहते हैं। मस को अर्द्धव्यास और म को मध्य मानकर जो छोटी परिधि खींची गयी है वह मन्द परिधि है। यदि कक्षा वृत्त का विस्तार ३६० भाग माना जाय तो ऐसे जितने भाग के समान मंदपरिधि का विस्तार होता है उतने ही अंश की वह परिधि कहलाती है। इसी प्रकार शीघ्र परिधि की लम्बाई के बारे में समझना चाहिये। यह परिमाण भी भिन्न भिन्न आचार्यों के मत से भिन्न-भिन्न हैं। इसका कारण यह है कि परम मंद फल का मान सर्वदा एकसा नहीं रहता, शनैः शनैः बदलता जा रहा है। सूर्य का परम मन्द फल एक हजार वर्ष में ३ कला घटता जा रहा है। इस समय सूर्य का परम मंद फल १°५५′ है। सूर्य सिद्धान्त में सूर्य का परम मंद फल २°१३′४१″ है। इसमें वेध की स्थूलता के कारण भी अशुद्धि है।

ओजयुग्मान्तरगुणा भुजज्या त्रिज्ययोद्धृता ।
युग्मे वृत्ते धनर्णं स्यादोजादूनाधिके स्फुटम् ॥३८॥

अनुवाद—(३८) विषम और समपदों के अंत की मन्द या शीघ्रपरिधियों के अंतर को मंद केन्द्र या शीघ्रकेन्द्र की भुज ज्या से गुणा करके त्रिज्या से भाग दे दो।

यदि मन्दकेन्द्र या शीघ्र केन्द्र समपद में हो और विषम पद के अंत की मन्द या शीघ्र परिधि से समपद के अंत की मंद या शीघ्र परिधि कम हो तो उस लब्धि को समपदान्त परिधि में जोड़ दो तो इष्ट केन्द्र की स्फुट मंद या शीघ्र परिधि होगी। परन्तु यदि विषमपद के अंत की परिधि से अधिक हो तो उस लब्धि को सम पदान्त परिधि में घटा देने से स्फुट परिधि निकल आवेगी।

विज्ञान-भाष्य—सूर्य सिद्धान्त का मत है कि मन्द परिधि या शीघ्र परिधि का मान मन्दकेन्द्र या शीघ्रकेन्द्र की भुज ज्या के अनुसार बदलता रहता है। किस जगह इसका परिमाण क्या है यह त्रैराशिक से निकालना चाहिए क्योंकि यह दिया हुआ कि सम और विषम पदों के अंत में इसके मान क्या हैं। बीच के किसी स्थान के मान को जानने के लिए यह तर्क करना चाहिए कि जब त्रिज्या (भुज ज्या का परम मान) के अंतर पर परिधियों का अंतर दिया हुआ है तो इष्ट केन्द्र की भुज ज्या के अंतर पर कितना होगा। इस नियम को संक्षेप में यों लिख सकते हैं—

$$\text{स्फुट मंद परिधि} = \text{मंद परिधि} \pm \text{विषम और सम पदों के अंत की परिधियों का अंतर} \times \frac{\text{इष्ट केन्द्र की भुज ज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

जैसे सूर्य की समपदान्त मन्द परिधि ८४०′, विषम और समपदान्तों के मंद परिधियों का अन्तर २०′ है, इसलिए यदि अभीष्ट मन्द केन्द्र 'अ' हो तो स्फुट मन्द परिधि होगी

$$८४०' - २०' \times \frac{\text{अ की भुज ज्या}}{३४३८'}$$

क्योंकि समपदान्त मन्द परिधि अधिक है।

इसी तरह अन्य ग्रहों की स्फुट मन्द परिधि तथा शीघ्र परिधि निकालनी चाहिए।

तद्गुणे भुजकोटिज्ये भगणांश विभाजिते।
तद्भुजज्याफलधनुः मान्दं लिप्तादिकं फलम् ॥३९॥

अनुवाद—(३९) स्फुट मन्द परिधि को क्रम से भुज ज्या और कोटि ज्या से गुणा करके ३६० से (यदि स्फुट मन्द परिधि अंशों में हो) या २१६०० से (यदि स्फुट मन्द परिधि कलाओं में हो) भाग दे दो। लब्धि क्रम से भुजफल और कोटिफल (कलाओं में) होंगी। भुजफल जिस धनु (कोण) की ज्या होगी उसे ही मन्द फल कहते हैं।

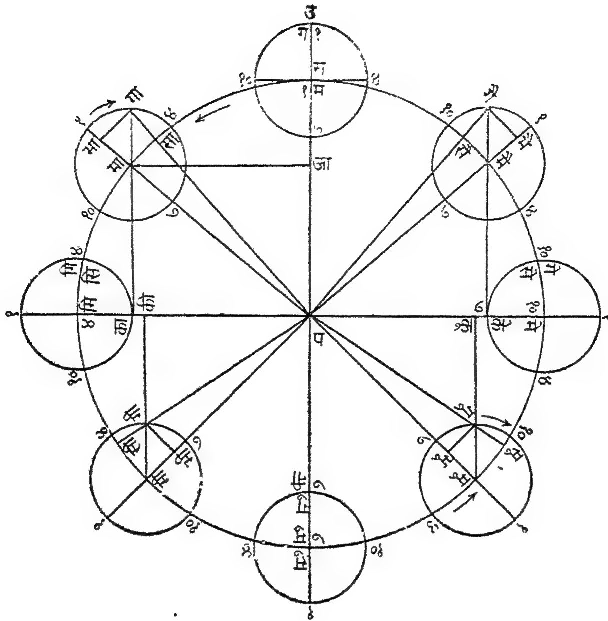
विज्ञान भाष्य—इस नियम को संक्षेप में यों लिख सकते हैं:—

$$\text{भुज फल} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि} \times \text{भुज ज्या}}{३६०}$$

$$\text{कोटि फल} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि} \times \text{कोटि ज्या}}{३६०}$$

भुज फल जिस अंश (धनु) की ज्या हो वही मन्द फल कहलाता है। उपर्युक्त समीकरणों में ३६० उसी समय होगा जब कि मन्द परिधि अंशों में हो। यदि मन्द परिधि कलाओं में हो तो ३६० की जगह २१६०० रखना होगा।

इसकी उपपत्ति यों है:—ग्रह के मध्य और स्पष्ट स्थानों का अंतर क्या होता है यह जानने के लिए हमारे आचार्यों ने यह कल्पना की थी कि मध्यम ग्रह तो सदैव समान गति से अनुलोम दिशा में पृथ्वी की परिक्रमा करता रहता है और स्पष्ट ग्रह मन्द परिधि पर जिसके मध्य में मध्यम ग्रह रहता है, विलोम दिशा में इस प्रकार चल रहा है कि जितने समय में मध्यम ग्रह अपनी कक्षा में (कक्षावृत्त में) पूरा चक्कर कर लेता है, उतने ही समय में स्पष्ट ग्रह मन्द परिधि पर अपना चक्कर कर लेता है। मन्द परिधि पर चक्कर लगाते हुए स्पष्ट ग्रह कक्षावृत्त में जहाँ देख पड़ता है उसी विन्दु को स्पष्ट ग्रह का स्थान कहते हैं। यह बात चित्र ३० से भली भाँति समझ में आ जायगी। इसमें प पृथ्वी का केन्द्र है। प को केन्द्र मान कर पम त्रिज्या से जो बड़ा वृत्त खींचा गया है वह कक्षावृत्त कहलाता है। इसी कक्षावृत्त पर मध्यम ग्रह अनुलोम दिशा में मध्यम गति से भ्रमण करता हुआ माना गया है। म, मा, मि, मी, मु, मू, मे, मै, मध्यम ग्रह के आठ स्थान हैं म वह स्थान है जहाँ मध्यम और स्पष्ट ग्रहों का अंतर शून्य होता है। अर्थात् इसी दिशा में ग्रह का मन्दोच्च होता है। कक्षा वृत्त में इसी जगह १ लिखा हुआ है और स भी लिखा हुआ है जिससे प्रकट होता है कि यहीं मध्यम और स्पष्ट ग्रह एकसाथ होते हैं और इसी जगह से आरम्भ करके कक्षावृत्त अनुलोम दिशा में तीन-तीन राशि के अंतर पर चार पदों में बाँटा गया है। इसीलिए पहले पद के अंत में ४, दूसरे पद के अंत में ७ और तीसरे पद के अंत में १० के अंक लिखे गये हैं। म; मा, मि, इत्यादि मध्यम ग्रह के स्थानों को मध्यम मानकर ग्रह की मन्द परिधि के मानानुसार जो छोटे-छोटे वृत्त खींचे गये हैं वही स्फुट मन्द परिधि है। चित्र को स्पष्ट करने के लिए स्फुट मन्द परिधि और कक्षा वृत्त के विस्तार उसी अनुपात में नहीं दिखाये गये हैं, जिस अनुपात में यह प्रत्यक्ष देखे जाते हैं अथवा ग्रन्थों में दिये है। मंद परिधि कुछ बढ़ाकर खींची गयी है। सूर्य सिद्धान्त के अनुसार इस स्फुट मन्द परिधियों के मान भी सर्वत्र समान नहीं होते। प म, प मा, प मि इत्यादि रेखाएँ मंद परिधि के दूर वाले विन्दु पर जहाँ पहुँचती है वहाँ भी मंद परिधि पर १ के अंक लिखे हुए हैं। यहाँ से आरंभ करके मंद परिधि

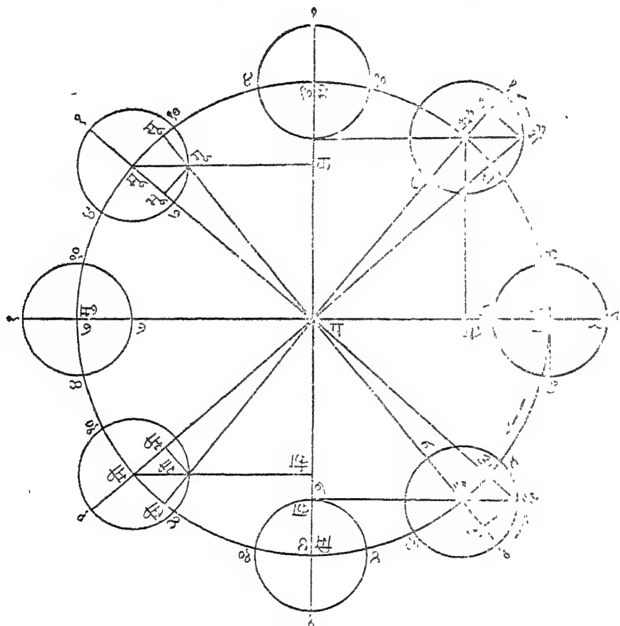


चित्र ३०

पर तीन तीन राशि या नब्बे नब्बे अंश के अंतर पर विलोम दिशा में ४, ७, १० के अंक लिखे गये हैं। जिस समय मध्यम ग्रह म पर होता है उस समय स्पष्ट ग्रह मंद परिधि के उस विन्दु पर रहता है जहाँ १ लिखा हुआ है। यही ग्रह के मन्दोच्च का स्थान है; इसलिए वहाँ उ भी लिखा हुआ है। जितने समय में मध्यम ग्रह कक्षावृत्त पर म से मा तक जाता है उतने समय में स्पष्ट ग्रह मंद परिधि पर १ से गा तक जाता है; क्योंकि मध्यम ग्रह का कक्षावृत्त पर और स्पष्ट ग्रह का मंद वृत्त (मंद परिधि को मंद वृत्त भी कहते हैं) पर कोणीय वेग समान होता है, इसलिए मागा रेखा पम रेखा के जिसको नीचोच्च रेखा कहते हैं समानान्तर होती है। गा और प को मिलाने वाली रेखा को मंदकर्ण कहते हैं। यही पृथ्वी के मध्य से स्पष्ट ग्रह की दूरी होती है। यह मंदकर्ण कक्षा वृत्त को सा विन्दु पर काटता है, इसलिए स्पष्ट ग्रह कक्षावृत्त में सा विन्दु पर ही देख पड़ता है। इसी विन्दु को स्पष्ट ग्रह का स्थान कहते हैं। सामा धनु अथवा सा प मा कोण को मंद फल कहते हैं। म मा धनु अथवा म प मा कोण को मन्द केन्द्र, म सा धनु अथवा म प सा को स्पष्ट केन्द्र कहते हैं; इसलिए स्पष्ट केन्द्र और मन्द केन्द्र का अंतर मंद फल कहलाता है। मा से नीचोच्च

रेखा प म पर मा जा लम्ब है यही म मा मन्द केन्द्र की भुज ज्या है। मा से मा का लम्ब को ममा की कोटि ज्या कहते हैं। यह उस रेखा पर लम्ब है जो प म से समकोण बनाती हुई प बिन्दु पर खींची गयी है। गा से प मा पर जो लम्ब गा भा डाला गया है उसे भुजफल और मा भा को कोटिफल कहते हैं।

इसी प्रकार जब मध्यम ग्रह मि, मी, मु, मू, इत्यादि कक्षावृत्त के विन्दुओं पर रहता है तब स्पष्ट ग्रह क्रम से गि, गी, गु, गू, इत्यादि मन्द वृत्त के विन्दुओं पर रहता है। ऐसी दशा में स्पष्ट ग्रह कक्षा वृत्त के सि, सी, सु, सू, विन्दुओं पर देख



चित्र ३१

पड़ता है। इन विन्दुओं पर भी भुज ज्या, कोटि ज्या, भुजफल, कोटि फल, इत्यादि के लिए वैसा ही समझना चाहिये जैसा पहले कहा गया है।

जब मन्द केन्द्र तीन राशि या ९०° के समान होता है तब मध्यम ग्रह मि पर होता है। ऐसी दशा में स्पष्ट ग्रह मध्यम ग्रह से परम अंतर मि सि पर होता है। यही परम मंद फल कहलाता है। जब मन्द केन्द्र ६ राशि या १८०° के समान होता है तब मध्यम ग्रह मु पर और स्पष्ट ग्रह गु पर होता है; इसलिए स्पष्ट ग्रह कक्षावृत्त के सु विन्दु पर देख पड़ता है। इस जगह मन्द फल शून्य तथा मन्द कर्ण पर गु सब

छोटा होता है। जब ग्रह गु पर होता है, तब पृथ्वी से अत्यन्त निकट होता है। इसी स्थान को ग्रह का नीच कहते हैं।

जब मंद केन्द्र ९ राशि या २७०° के समान होता है तब मध्यम ग्रह मे पर और स्पष्ट ग्रह गे पर होते हैं। इस जगह भी मध्यम और स्पष्ट ग्रहों का अंतर परम होता है। चित्र में, मे से परम मन्द फल है।

सूर्य सिद्धान्त के अनुसार मन्द केन्द्र विलोम दिशा में नापा जाता है; इसलिए इस पद्धति के अनुसार कक्षावृत्त और मंद वृत्त पर १,४,७,१० के अंक इस प्रकार लिखे जाने चाहिये जैसे ३१ चित्र हैं। इससे शीघ्र केन्द्र के सम्बन्ध की सब बातें भी जानी जा सकती हैं। इसीलिए सूर्य सिद्धान्त में दोनों को एक ही चित्र द्वारा समझाया गया है। परन्तु इससे समझने में कुछ कठिनता पड़ती है। भास्कराचार्य ने इस चित्र को केवल शीघ्र-केन्द्र और इसी के सम्बन्ध की सब बातें जैसे शीघ्रफल शीघ्रकर्ण इत्यादि को जानने के लिए प्रयोग किया है। दो चित्रों से भ्रम नहीं होता। इन दो चित्रों की सहायता से ३९, ४०, ४१, ४२ और ४५वें श्लोकों की उपपत्ति सहज ही समझ में आ सकती है।

३९वें श्लोक में बतलाया गया है कि

$$\text{भुजफल} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि} \times \text{भुज ज्या}}{360}$$

$$\text{और कोटि फल} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि} \times \text{कोटि ज्या}}{360}$$

क्योंकि जब मध्यम ग्रह मा पर रहता है तब माजा भुज ज्या, मा का कोटि ज्या, गाभा भुजफल और भामा कोटिफल कहलाते हैं। ऊपर यह समझाया गया है कि $\angle$गामाभा $=$ $\angle$मापजा

और $\angle$गाभामा $=$ $\angle$माजाप, क्योंकि दोनों समकोण हैं।

इसलिए $\triangle$ गा भा मा और $\triangle$ मा जा प सजातीय (Similar) हैं।

$\therefore$ गाभा : गामा :: माजा : माप

$$\therefore \frac{\text{गाभा}}{\text{गामा}} = \frac{\text{माजा}}{\text{माप}}$$

$$\text{अथवा } \frac{\text{गाभा}}{\text{माजा}} = \frac{\text{गामा}}{\text{माप}}$$

परन्तु गा मा स्फुट मंद परिधि की त्रिज्या है और माप कक्षावृत्त की त्रिज्या है, और दो वृत्तों की त्रिज्याओं में परस्पर वही सम्बन्ध होता है जो उनकी परिधियों में होता है, इसलिए

$$\frac{\text{गामा}}{\text{माप}} = \frac{\text{मन्द परिधि (स्फुट)}}{\text{कक्षावृत्त}}$$

$$\frac{\text{गाभा}}{\text{माजा}} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि}}{\text{कक्षावृत्त}}$$

अथवा $$\frac{\text{भुजफल}}{\text{भुज ज्या}} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि}}{\text{कक्षावृत्त}}$$

या $$\text{भुजफल} = \frac{\text{भुज ज्या} \times \text{स्फुट मन्द परिधि}}{\text{कक्षावृत्त}} \qquad (१)$$

यदि स्फुट परिधि अंशों में हो तो कक्षावृत्त का मान ३६० होगा और यदि कलाओं में हो तो कक्षावृत्त का मान २१६०० होगा।

इसी तरह भामा : गामा :: पजा : माप

$$\therefore \frac{\text{भामा}}{\text{गामा}} = \frac{\text{पजा}}{\text{माप}}$$

अथवा $$\frac{\text{भामा}}{\text{पजा}} = \frac{\text{गामा}}{\text{माप}} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि}}{\text{कक्षावृत्त}}$$

वा $$\frac{\text{कोटि फल}}{\text{कोटि ज्या}} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि}}{\text{कक्षावृत्त}}$$

या $$\text{कोटि फल} = \frac{\text{कोटि ज्या} \times \text{स्फुट मन्द परिधि}}{\text{कक्षावृत्त}} \qquad (२)$$

इस प्रकार ३९वें श्लोक के नियम की उपपत्ति सिद्ध हो गयी। इस प्रकार जो भुजफल निकलता है वह जिस कोण की ज्या होता है उस कोण को मन्दफल कहते हैं। चित्र ३० में गाभा भुजफल का कोण गापभा है, इसलिए गापभा कोण ही मंद फल है। इस कोण का मान भारतीय रीति से जानने के लिए त्रैराशिक से पहले यह जानना चाहिये कि सामा जीवा का मान क्या है। △ पभागा और △पमासा सजातीय हैं।

इसलिए $$\frac{\text{सामा}}{\text{साप}} = \frac{\text{गाभा}}{\text{गाप}}$$

अथवा $$\text{सामा} = \frac{\text{साप} \times \text{गाभा}}{\text{गाप}}$$

$$= \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{भुजफल}}{\text{मंद कर्ण}} \qquad (३)$$

इस समीकरण से जो कुछ आवे वह सामा मन्द फल की ज्या है, जिससे ज्याओं की सारिणी से मन्द फल जाना जा सकता है। परन्तु श्लोक में गाभा के धनु

को मन्द फल मान लिया गया है और समीकरण (३) की आवश्यकता नहीं बतलायी गयी है, इसका कारण यह है कि किसी ग्रह की मन्द परिधि का मान इतना कम होता है कि मन्द कर्ण गाप और त्रिज्या सा प में बहुत कम अन्तर होता है जिसके कारण स्थूल रूप से भुजफल के धनु को ही मन्द फल मान लिया गया है। यदि सूक्ष्म गणना करना चाहें तो समीकरण (३) में जो कुछ बतलाया गया है वह संस्कार भी करना होगा; जैसा कि अगले ४०-४२ श्लोकों में शीघ्रफल के लिए नियम है; क्योंकि शीघ्र परिधि के बड़े होने से शीघ्र कर्ण और त्रिज्या का अन्तर बहुत अधिक होता है; जिससे शीघ्र भुजफल और शीघ्रफल के मानों में बहुत अन्तर होता है। इसलिए ३९वें श्लोक के अनुसार शीघ्र भुजफल को ही शीघ्रफल मान लेने में बहुत अशुद्धि रह जाती है।

शैघ्रं कोटिफलं केन्द्रे मकरादौ धनं स्मृतम्।
संशोध्यं तु त्रिजीवातः कर्क्यादौ कोटिजं फलम् ॥४०॥
तद्बाहुफलवर्गैक्यान्मूलं कर्णश्चलाभिधः।
त्रिज्याऽभ्यस्तं भुजफलं चलकर्णविभाजितम् ॥४१॥
लब्धस्य चापं लिप्तादिफलं शैघ्रमिदं स्मृतम्।
एतदादौ कुजादीनां चतुर्थे चैव कर्मणि ॥४२॥

अनुवाद—(४०) यदि शीघ्र केन्द्र ९ राशि (२७०°) के ऊपर और ३ राशि (९०°) के भीतर हो तो कोटि फल को त्रिज्या में जोड़े, परन्तु यदि शीघ्र केन्द्र ३ राशि के ऊपर और ९ राशि के भीतर हो तो कोटिफल को त्रिज्या में से घटावे; (४१) जो कुछ आवे उसका वर्ग करके भुजफल के वर्ग में जोड़ दे और योगफल का वर्गमूल निकाले, जो आवे वही शीघ्रकर्ण या चलकर्ण होता है। त्रिज्या को भुजफल से गुणा करके चलकर्ण से भाग दे दे, (४२) लब्धि जिस धनु (कोण) की ज्या होगी वही शीघ्रफल कहलाता है। यह शीघ्रफल मंगल आदि पांच ग्रहों के पहले और चौथे संस्कार के लिए काम में आता है।

विज्ञान भाष्य—३९वें श्लोक के विज्ञान भाष्य के अन्त में जिस समीकरण (३) की चर्चा है वह शीघ्रफल जानने के लिए बड़ा आवश्यक है। शीघ्रफल के लिए इस समीकरण का रूप यह होगा :—

$$\text{सामा} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{भुजफल}}{\text{शीघ्रकर्ण}}$$

इसमें जो भुजफल आया है वह तो ३९वें श्लोक से ही जाना जा सकता है, त्रिज्या का मान पहले से नियत है, केवल शीघ्रकर्ण का मान जानना रह गया जिसका नियम ४०वें और ४१वें श्लोक के पूर्वार्द्ध में बतलाया गया है। चित्र ३१ से प्रकट है कि गाप, गीप, गूप और गैप चलकर्ण है। इनमें से

$$\text{गाप} = \sqrt{(\text{भाप})^2 + (\text{गाभा})^2}$$
$$= \sqrt{(\text{भामा} + \text{माप})^2 + (\text{गा भा})^2}$$
$$= \sqrt{(\text{कोटिफल} + \text{त्रिज्या})^2 + (\text{भुजफल})^2}$$

इसी तरह $\text{गैप} = \sqrt{(\text{भैमै} + \text{मैप})^2 + (\text{गैभै})^2}$
$$= \sqrt{(\text{कोटिफल} + \text{त्रिज्या})^2 + (\text{भुजफल})^2}$$

परन्तु $\text{गीप} = \sqrt{(\text{भीप})^2 + (\text{गी भी})^2}$
$$= \sqrt{(\text{मीप} - \text{मी भी})^2 + (\text{गी भी})^2}$$
$$= \sqrt{(\text{त्रिज्या} - \text{कोटिफल})^2 + (\text{भुजफल})^2}$$

और $\text{गूप} = \sqrt{(\text{मूप} - \text{मू भू})^2 + (\text{गू भू})^2}$
$$= \sqrt{(\text{त्रिज्या} - \text{कोटिफल})^2 + (\text{भुजफल})^2}$$

इस प्रकार यह प्रकट है कि यदि शीघ्र केन्द्र पहले और चौथे पदों में अर्थात् ३ राशि के भीतर और ९ राशि के ऊपर हो तो त्रिज्या में कोटिफल को जोड़ना चाहिये परन्तु यदि शीघ्र केन्द्र दूसरे और तीसरे पदों में अर्थात् ३ राशि से ऊपर और ९ राशि के भीतर हो तो त्रिज्या में कोटिफल को घटाना चाहिये, फिर जो कुछ आवे उसके वर्ग को भुजफल के वर्ग में जोड़कर वर्गमूल निकालना चाहिये तो चलकर्ण ज्ञात हो जायगा। इन चारों समीकरणों को एक समीकरण में यों लिखा जा सकता है :—

$$\text{चलकर्ण} = \sqrt{(\text{त्रिज्या} \pm \text{कोटिफल})^2 + (\text{भुजफल})^2}$$

इसमें धनात्मक चिह्न तब प्रयोग करना चाहिये जब शीघ्र केन्द्र पहले और चौथे पदों में हो और ऋणात्मक चिह्न उस समय प्रयोग करना चाहिये जब शीघ्र केन्द्र दूसरे और तीसरे पदों में हो।

कर्क चौथी राशि है और मकर १०वीं, इसलिए 'कर्कादौ' का अर्थ है चौथी राशि से ९वीं राशि और 'मकरादौ' का अर्थ है १०वीं राशि से ३री राशि तक। मकरादि और कर्कादि शब्दों से यह भ्रम हो सकता है कि जब ग्रह इन राशियों में हो तो उपर्युक्त धन या ऋण चिह्न प्रयोग करना चाहिये। इसलिए मैंने अनुवाद में राशि की जगह पदों का व्यवहार किया है जो मेरी समझ में अधिक स्पष्ट है।

जब चलकर्ण ज्ञात हो गया तब शीघ्रफल जानने के लिए ३९वें श्लोक के समीकरण (३) का रूप यह होगा :—

$$\text{सामा} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{शीघ्र भुजफल}}{\text{चलकर्ण}}$$

सामा जिस धनु (कोण) की ज्या है वही शीघ्रफल कहलाता है।

४२वें श्लोक के उत्तरार्द्ध में यह बतलाया गया है कि शीघ्रफल की आवश्यकता केवल मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि पांच ग्रहों के स्पष्ट स्थान जानने के लिए पड़ती है, सूर्य और चन्द्रमा के लिए नहीं। सूर्य और चन्द्रमा के स्पष्ट स्थान तो केवल मंद फल के संस्कार से आ जाते हैं जैसा कि अगले (४३वें) श्लोक में बतलाया गया है।

यदि ३९-४१ श्लोकों को बीजगणित के अनुसार एक ही समीकरण से प्रकट करना चाहें तो उसका रूप यह होगा :—

$$\text{चलकर्ण} = \left\{ \left(३४३८ \pm \frac{\text{शीघ्र स्फुट परिधि} \times \text{कोटि ज्या}}{२१६००} \right)^{२} + \left(\frac{\text{शीघ्र स्फुट परिधि} \times \text{भुजज्या}}{२१६००} \right)^{२} \right\}^{\frac{१}{२}}$$

इसमें शीघ्र केन्द्र की ज्या और कोटि ज्या भारतीय रीति से निकाल कर उपर्युक्त ग्रह के 'भुज ज्या' और 'कोटि ज्या' के लिए लिखना चाहिये। शीघ्र स्फुट परिधि ३८वें श्लोक के अनुसार जानना चाहिये और इसे कलाओं में लिखना चाहिये।

मान्दं कर्मैकमर्केन्द्वोर्भौमादीनामथोच्यते ।
शैघ्रं मान्दं पुनर्मान्दं शैघ्रं चत्वार्यनुक्रमात् ॥४३॥

अनुवाद—(४३) सूर्य और चन्द्रमा मन्द फल के केवल एक संस्कार से स्पष्ट होते हैं; परन्तु मंगल आदि पाँच ग्रहों में शीघ्र फल का एक संस्कार करने के पीछे मंद फल के दो बार संस्कार करने पड़ते हैं जिसके पीछे चौथी बार फिर शीघ्र फल का संस्कार करना होता है।

विज्ञान भाष्य—हमारे प्राचीन आचार्यों ने चंद्रमा का स्पष्ट स्थान जानने के लिए केवल मंद फल का संस्कार करने की रीति बतायी है। परन्तु इससे वास्तव में चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान नहीं निकलता। चन्द्रमा इतना छोटा पिंड है कि इस पर सभी ग्रहों का प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण इसकी गति में बहुत सी भिन्नताएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसलिए आजकल छोटे-छोटे कोई ४० संस्कार करने से चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान शुद्धतापूर्वक जाना जा सकता है। इन चालीस संस्कारों में पाँच संस्कार बहुत बड़े हैं जो अवश्य करने चाहियें। इनकी चर्चा संक्षेप में आगे उस स्थान पर की जायगी जहाँ आजकल की पद्धति से ग्रहों के स्पष्ट स्थान जानने की रीति बतलायी जायगी।

मंगल आदि पाँच ग्रहों के स्पष्ट स्थान जानने के लिए जिन चार संस्कारों की चर्चा इस श्लोक में है उनकी रीति अगले ४४वें श्लोक में बतलायी गयी है।

मध्ये शीघ्रफलस्यार्धं मान्दमर्धफलं तथा ।
मध्यग्रहे मन्दफलं सकलं शैघ्रमेव च ॥४४॥

अनुवाद—(४४) मध्यम ग्रह को शीघ्रोच्च में से घटा कर शीघ्र केन्द्र और इससे शीघ्रफल निकाले । इस शीघ्रफल का आधा मध्यम ग्रह में जोड़े (यदि शीघ्र केन्द्र ६ राशि से कम हो) और घटावे (यदि शीघ्र केन्द्र ६ राशि से अधिक हो); जोड़ने या घटाने से जो आता है वही प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह कहलाता है । इस प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह को मन्दोच्च में से घटावे, शेष को मन्द केन्द्र समझ कर, मंद फल बनावे । इस मंद फल का आधा, प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह में जोड़ने या घटाने से जो आता है वही द्वितीय संस्कार युक्त मध्यम ग्रह है । दूसरे संस्कार युक्त मध्यम ग्रह को मन्दोच्च में से फिर घटावे और शेष को दूसरा मन्द केन्द्र मान कर दूसरा मंद फल बनावे । इस मंद फल को मध्यम ग्रह में जोड़ने या घटाने से जो आता है वही मन्द स्पष्ट ग्रह कहलाता है । मन्द स्पष्ट ग्रह को शीघ्रोच्च में से घटाकर शीघ्र केन्द्र और शीघ्रफल बनावे और इस शीघ्रफल को मन्द स्पष्ट ग्रह में जोड़ने या घटाने से जो कुछ आवे वही स्पष्ट ग्रह कहलाता है ।

विज्ञान भाष्य—इस नियम को बीज-गणित की रीति से यों लिख सकते हैं :—

शीघ्रोच्च—मध्यम-ग्रह=शीघ्र केन्द्र, जिसका शीघ्रफल पहला शीघ्रफल कहलाता है ।

पहला संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

$$= \text{मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{शीघ्रफल (पहला)}}{२}$$

मन्दोच्च—पहला संस्कार युक्त मध्यम ग्रह=संस्कृत मन्द केन्द्र जिसका मन्दफल प्रथम संस्कृत मन्दफल है ।

दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

$$= \text{पहला संस्कार युक्त मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{मन्दफल (प्रथम संस्कृत)}}{२}$$

$$= \text{मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{(पहला) शीघ्रफल}}{२} \pm \frac{\text{(पहला) मन्दफल}}{२}$$

मन्दोच्च—दूसरा संस्कारयुक्त मध्यम ग्रह=दूसरा संस्कृत मन्द केन्द्र जिसका मन्दफल दूसरा संस्कृत मन्दफल है ।

मन्द स्पष्ट ग्रह = मध्यम ग्रह ± दूसरा (संस्कृत) मन्द फल ।

शीघ्रोच्च − मन्द स्पष्ट ग्रह = दूसरा शीघ्र केन्द्र जिसका शीघ्रफल दूसरा शीघ्रफल है ।

स्पष्ट ग्रह = मन्द स्पष्ट ग्रह ± दूसरा शीघ्र फल
= मध्यम ग्रह ± दूसरा मन्द फल
± दूसरा शीघ्र फल

यह तो सूर्य सिद्धान्त के शब्दों में स्पष्ट ग्रह जानने की रीति हुई । परन्तु व्यवहार में इससे बहुत झंझट करना पड़ता है, इसलिए इसी के सहारे सरल नियम इस प्रकार बनाया जा सकता है ।

नीचे लिखी परिभाषाएं याद रखनी चाहिये :--

१ ली परिभाषा मन्दोच्च − मध्यम ग्रह = मन्द केन्द्र

२ री ,, शीघ्रोच्च − मध्यम ग्रह = शीघ्र केन्द्र

शीघ्र केन्द्र से जो शीघ्र फल निकलता है वह पहला शीघ्र फल है । (१)

$$\text{प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह} = \text{मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२} \qquad (२)$$

प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र

$$= \text{मन्दोच्च} - \text{प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह}$$

$$= \text{मन्दोच्च} - (\text{मध्यम ग्रह}) \pm \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२}\Big)$$

$$= (\text{मन्दोच्च} - \text{मध्यम ग्रह}) \pm \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२}\Big)$$

$$= \text{मन्द केन्द्र} \pm \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२} \qquad (३)$$

इससे प्रकट है कि प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र जानने के लिए समीकरण (२) की आवश्यकता नहीं, वरन् मन्द केन्द्र में पहले शीघ्रफल का आधा चिह्न उलट कर (बीजगणित के अनुसार*) जोड़ देने से ही काम चल जायगा । इससे जो मन्दफल बनाया जायगा वही पहला मन्दफल या प्रथम संस्कृत मन्दफल होगा ।

---

*बीजगणित के अनुसार जोड़ने का अर्थ यह है कि यदि एक संख्या धनात्मक हो और दूसरी ऋणात्मक तो ऋणात्मक संख्या को धनात्मक संख्या से घटाने पर जो कुछ आता है वह भी ऋणात्मक और धनात्मक संख्याओं का योगफल ही कहलाता है, यद्यपि अंकगणित में इस योगफल को दोनों का अन्तर ही कहेंगे ।

दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

$$= \text{पहला संस्कार युक्त मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{पहला मन्द फल}}{२}$$

$$= \text{मध्यम ग्रह}$$

$$\pm \frac{\text{पहला शीघ्र फल}}{२} \pm \frac{\text{पहला मन्द फल}}{२} \qquad (४)$$

दूसरा संस्कृत मन्द केन्द्र

$$= \text{मन्दोच्च} - \text{दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह}$$

$$= \text{मन्दोच्च} \; \Big(\text{मध्यम ग्रह}$$

$$\pm \frac{\text{पहला शीघ्र फल}}{२} \pm \frac{\text{पहला मन्द फल}}{२}\Big)$$

$$= (\text{मन्दोच्च} - \text{मध्यम ग्रह})$$

$$\mp \frac{\text{पहला शीघ्र फल}}{२} \mp \frac{\text{पहला मन्द फल}}{२}$$

$$= \left(\text{मन्द केन्द्र} \pm \frac{\text{पहला शीघ्र फल}}{२}\right) \pm \frac{\text{पहला मन्द फल}}{२}$$

$$= \text{प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र} \mp \frac{\text{पहला मन्द फल}}{२} \qquad (५)$$

जिससे सिद्ध हुआ कि दूसरा संस्कृत मन्द केन्द्र जानने के लिए प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र में पहले मन्द फल का आधा चिह्न उलट कर जोड़ दो। इसलिए समीकरण (४) की भी आवश्यकता नहीं है। दूसरे संस्कृत मन्द केन्द्र से जो मन्द फल बनाया जायगा वही दूसरा मन्द फल है।

$$\text{मन्द स्पष्ट ग्रह} = \text{मध्यम ग्रह} \pm \text{दूसरा मन्द फल} \qquad (६)$$

$$\text{दूसरा शीघ्र केन्द्र} = \text{शीघ्रोच्च} - \text{मन्द स्पष्ट ग्रह}$$

$$= \text{शीघ्रोच्च} - (\text{मध्यम ग्रह} \pm \text{दूसरा मन्द फल})$$

$$= (\text{शीघ्रोच्च} - \text{मध्यम ग्रह}) \pm \text{दूसरा मन्द फल}$$

$$= \text{शीघ्र केन्द्र} \pm \text{दूसरा मन्द फल} \qquad (७)$$

इससे सिद्ध हुआ कि दूसरा शीघ्र केन्द्र जानने के लिए, शीघ्र केन्द्र में दूसरा मन्द फल चिह्न उलट कर जोड़ दो। इसलिए समीकरण (६) की भी आवश्यकता नहीं है। दूसरे शीघ्र केन्द्र से जो शीघ्र फल बनेगा वही दूसरा शीघ्र फल है।

स्पष्ट ग्रह = मन्द स्पष्ट ग्रह ± दूसरा शीघ्रफल

= मध्यम ग्रह ± दूसरा मन्द फल

± दूसरा शीघ्रफल (८)

जिससे सिद्ध होता है कि मध्यम ग्रह में दूसरे मन्द फल को और दूसरे शीघ्र फल को बीज गणित के अनुसार जोड़ दो अर्थात् जो धनात्मक हो उसको जोड़ो और जो ऋणात्मक हो उसको घटाओ। दूसरा मन्द फल और दूसरा शीघ्र फल समीकरण (५) और (७) से जानना चाहिए।

संक्षेप में नियम यह हुआ :—

(१) शीघ्रफल का आधा चिह्न उलट कर मन्द केन्द्रों में (बीजगणित के अनुसार) जोड़ दो तो प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र आ जावेगा। इसी का मन्द फल प्रथम संस्कृत मन्द फल या पहला मन्द फल है।

(२) प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्रों में पहले मन्द फल का आधा चिह्न उलट कर जोड़ दो तो दूसरा संस्कृत मन्द केन्द्र आ जावेगा। इसी का मन्द फल दूसरा संस्कृत मन्द फल या दूसरा मन्द फल है।

(३) शीघ्र केन्द्र में दूसरा मंद फल चिह्न उलट कर जोड़ दो तो संस्कृत शीघ्र केन्द्र आवेगा, जिसका शीघ्रफल दूसरा शीघ्रफल है।

(४) मध्यम ग्रह में दूसरा मंद फल और दूसरा शीघ्रफल बिना चिह्न उलटे जोड़ दो तो स्पष्ट ग्रह आ जावेगा।

सूर्य-सिद्धान्त में स्पष्ट ग्रह जानने का यही नियम है। अन्य आचार्यों ने इससे कुछ भिन्न रीति से काम लिया है, जिनकी तुलना करने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। ऐसे पेंचदार नियम केवल इसलिए बनाए गये थे कि स्पष्ट ग्रह का स्थान ठीक-ठीक ज्ञात हो जाय। इसलिए जिस-जिस नवीन संस्कार से स्पष्ट ग्रह का स्थान प्रायः ठीक-ठीक जाना जा सकता था वह सब काम में लाये जाते थे। इसी लिए आचार्यों के मतों में भिन्नता है। केवल इतने ही नियमों से यथार्थ स्थान नहीं जाना जा सकता है; इसकी परीक्षा आजकल कोई भी कर सकता है; इसलिए मेरा विचार है कि जिन-जिन संस्कारों से यह बात ठीक हो सकती है उनका प्रयोग करना अत्यन्त आवश्यक है। इसी दृष्टि से मैं उन नवीन रीतियों को भी विज्ञान भाष्य में लिखूंगा जिनसे वेध और गणित में समानता आ सकती है। परन्तु पहले कुछ उदाहरण दे देना चाहिये, जिनसे यह सहज ही जाना जा सके कि इन नियमों से स्पष्ट ग्रह कैसे जाना जा सकता है। इसके लिए मैं सूर्य, बुध और गुरु तीन ग्रहों के उदाहरण दूंगा।

उदाहरण १—१९७९ वि० की वसंत पंचमी की अर्द्ध रात्रि को उज्जैन में सूर्य, बुध और गुरु के स्पष्ट स्थान क्या थे ?

पहले इनके मन्दोच्च के स्थान जानना है—

सृष्टि के आरंभ से १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति तक १,९५,५८,८५,०२३ सौर वर्ष बीते (देखो मध्यामाधिकार) एक कल्प में सूर्य के मन्दोच्च के ३८७ भगण होते हैं; इसलिए १९७९ वि० की मेष संक्राति तक

$$\frac{\text{१,९५,५८,८५,०२३} \times \text{३८७}}{\text{४,३२००,००,०००}} = \frac{\text{१,९५,५८,८५,०२३} \times \text{४३}}{\text{४८,००,००,०००}}$$

$$= \frac{\text{८४१०.३०५५९८९}}{\text{४८}}$$

$$= \text{१७५ भगण २ राशि १७ अंश १७}'\text{३१}''.\text{१७०३}$$

अर्थात् १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति के दिन सूर्य के मन्दोच्च का स्थान था $\text{२}^{\text{रा}}\text{१७}^{\circ}\text{१७}'\text{३१}''.\text{१७०३}$। मन्दोच्च की गति इतनी कम (सूर्य सिद्धान्त के अनुसार) होती है कि मन्दोच्च का यह स्थान कई वर्ष तक यही माना जा सकता है।

$$= \frac{\text{१,९५,५८,८५,०२३} \times \text{३६८}}{\text{४३२} \times \text{१०}^{\text{७}}} \text{ भगण}$$

$$= \frac{\text{४४९८.५३५५५२९}}{\text{२७}} \text{ भगण}$$

$$= \text{१६६}^{\text{भ}}\ \text{७}^{\text{रा}}\ \text{१०}^{\circ}\text{२८}'\text{२६.}''\text{५४}$$

∴ १९७९ वि० में बुध के मन्दोच्च का स्थान $\text{७}^{\text{रा}}\text{१०}^{\circ}\text{२८}'$ $\text{२६.}''\text{५४}$ है।

इस समय गुरु के मन्दोच्च का स्थान

$$= \frac{\text{१,९५,५८,८५,०२३} \times \text{९००}}{\text{४३२} \times \text{१०}^{\text{७}}} \text{ भगण}$$

$$= \frac{\text{१९५५८.८५०२३}}{\text{४८}} \text{ भगण}$$

$$= \text{४०७}^{\text{भ}}\text{५}^{\text{रा}}\text{२१}^{\circ}\text{२२}'\text{३६.}''\text{२१}$$

∴ १९७९ वि० में गुरु के मन्दोच्च का स्थान $\text{५}^{\text{रा}}\text{२१}^{\circ}\text{२२}'$ $\text{३६.}''\text{२१}$ है।

इन ग्रहों के मध्यम स्थान जानने के लिए कलियुग के आदि से अहर्गण निकाल कर गणना करनी चाहिये, जैसा कि मध्यमाधिकार के ५६वें श्लोक में बतलाया गया है।

कलियुग के आदि से १९७९ वि० की वसंत पंचमी की अर्द्ध रात्रि तक के अहर्गण (मध्यमाधिकार के अनुसार निकाला तो) १८,३४,९७७ हुए।

जब एक महायुगीय सावन दिन में अर्थात् १५७,७९,१७,८२८ सावन दिन में सूर्य के ४३,२०,००० भगण होते हैं तब १८,३४,९७७ सावन दिन में भगण

$$=\frac{१८,३४,९७७ \times ४३२ \times १०^४}{१५७७९१७८२८}$$

$$=५०२३^{भ} ९^{रा} ८^{\circ} १२' ९''$$

∴ सूर्य का मध्यम स्थान $=९^{रा} ८^{\circ} १२' ९''$

इसी तरह गुरु का मध्यम स्थान

$$=\frac{१८३४९७७ \times ३६४२२०}{१५७७९१७८२८}$$

$$=४२३^{भ} ६^{रा} १९^{\circ} ५२' ३७''$$

$$=६^{रा} १९^{\circ} ५२' ३७''$$

और बुध के शीघ्रोच्च का स्थान

$$=\frac{१८,३४,९७७ \times १,७९,३७,०६०}{१,५७,७९,१७,८२८}$$

$$=२०८५९^{भ} २^{रा} ९^{\circ} २९' १७''$$

$$=२^{रा} ९^{\circ} २९' १७''$$

अब पहले सूर्य का स्पष्ट स्थान जानना चाहिये :—इस अध्याय के श्लोक २९ के अनुसार, सूर्य का मन्द केन्द्र

=सूर्य के मन्दोच्च का स्थान — सूर्य का मध्यम स्थान

$$=२^{रा} १७^{\circ} १७' ३१'' - ९^{रा} ८^{\circ} १२' ९''$$

$$=५^{रा} ९^{\circ} ५' २२''$$

$$=१५९^{\circ} ५' २२''$$

यहाँ २ राशि ९ राशि से कम है इसलिए २ में १२ राशि (१ भगण) जोड़कर योगफल में से ९ राशि घटायी गयी है। ऐसी ही क्रिया जहाँ कहीं आवश्यकता पड़े करनी चाहिये।

मन्द केन्द्र ३ राशि से अधिक और ६ राशि से कम है इसलिए दूसरे पद में है और गत भाग ६९°५′२२″ तथा गम्य भाग (९०° में से गत भाग घटाने पर) २०°५४′३८″ है। इसलिए ३० वें श्लोक के अनुसार गम्य की ज्या अर्थात् २०°५४′३८″ की ज्या भुजज्या होगी और ६९°५′२२″ की ज्या कोटि ज्या होगी।

२०°५४′३८″ = २०°५५′ स्वल्पान्तर से
= २० × ६० + ५५ कला
= १२५५′

३१वें श्लोक के अनुसार १२५५′ को २२५ से भाग देने पर गत पिंड ५ और ६ठें पिंड में १३०′ आया।

५वें पिंड की ज्या = ११०५′
६ठें " " = १३१५′
दोनों ज्याओं का अन्तर २१०′

अब २२५ : १३०′ : : २१० : अभीष्ट

∴ अभीष्ट ज्या का अन्तर = $\frac{१३० \times २१०}{२२५}$

= $\frac{३६४}{३}$

= १२१′

इसलिए ३२वें श्लोक के अनुसार जब १२१′ को ५वें पिंड की ज्या अर्थात् ११०५′ में जोड़ा तो आया १२२६′; यही स्पष्ट भुजज्या है।

३४वें श्लोक के अनुसार सूर्य की मन्द परिधि समपद के अन्त में १४° और विषम पद के अन्त में २०′ कम होती है, इसलिए जब भुजज्या १२२६′ होगी तब ३८वें श्लोक के अनुसार मंद परिधि $\frac{२०′ \times १२२६′}{३४३८′}$ अर्थात् स्वल्पान्तर से ७′ कम होगी,

∴ स्फुट मन्द परिधि = १४° — ७
= १४ × ६० — ७ कला
= ८३३′

इसलिए ३९वें श्लोक के अनुसार,

भुजफल = $\frac{८३३ \times १२२६}{२१६००}$ कला

= $\frac{१०२१२५८}{२१६००}$

= ४७′ स्वल्पान्तर से

इसी भुजफल को मन्दफल मान लिया जाता है। यदि और सूक्ष्म गणना करनी हो तो ४०—४२ श्लोकों की क्रिया भी करनी चाहिये जैसा कि ३९वें श्लोक के विज्ञान भाष्य के स्पष्टीकरण (३) में दिखलाया गया है। परन्तु ऐसा करने में गणित बहुत करना पड़ता है और अन्तर बहुत कम होता है, इसलिए मन्द फल के लिए ४०—४२ श्लोकों की क्रिया करने की आवश्यकता नहीं है।

यही मन्द फल सूर्य के मध्यम स्थान में जोड़ना चाहिये क्योंकि मंद केन्द्र पहले दो पदों में है, जैसा कि ९वें और आगे आने वाले ४५वें श्लोकों में बतलाया गया है। इसलिए सूर्य का स्पष्ट स्थान उज्जैन में वसंत पंचमी की मध्यम अर्द्धरात्रि को

९^रा ८° १२′ ९″ + ४७′ अर्थात् ९^रा ८° ५९′ ९″ होगा।

गुरु का स्पष्ट स्थान जानने के लिए—

गुरु का मन्द केन्द्र = गुरु का मन्दोच्च — गुरु का मध्यम स्थान

= ५^रा २१° २५′ ३६″ — ६^रा १९° ५२′ ३७″

= ११^रा १° ३३′ स्वल्पान्तर से

गुरु का शीघ्र केन्द्र = गुरु का शीघ्रोच्च — गुरु का मध्यम स्थान

= सूर्य का मध्यम स्थान — गुरु का मध्यम स्थान

= ९^रा ८° १२′ ९″ — ६^रा १९° ५२′ ३७″

= २^रा १८° १९′ ३२″

= २^रा १८° २०′ स्वल्पान्तर से

= ७८° २०′

शीघ्र केन्द्र ३ राशियों से कम है इसलिए विषम पद में है; इसलिए ७८° २०′ की ज्या शीघ्र भुजज्या और ११° ४०′ की ज्या शीघ्र कोटिज्या हुई।

७८° २०′ = ७८ × ६० + २० कला

= ४७०० कला

$\frac{४७००}{२२५}$ = २० पिंड + २०० कला

२० वें पिंड की ज्या = ३३२१′

२१ वें पिंड की ज्या = ३३७२′

दोनों की ज्याओं का अन्तर = ५१′

२२५ : २०० :: ५१ : अभीष्ट अन्तर

$\therefore$ अभीष्ट अन्तर $= \frac{२०० \times ५१}{२२५} = \frac{१३६}{३} = ४५'$

$\therefore$ शीघ्र भुजज्या $= ३३२१' + ४५' = ३३६६'$

$११^\circ ४०' = ११ \times ६० + ४० = ७००'$

$\frac{७००}{२२५} = ३$ पिंड $+ २५'$

३रे पिंड की ज्या $= ६७१'$

४थे पिंड की ज्या $= ८९०'$

दोनों का अन्तर $= २१९$

२२५ : २५ : : २१९ : अभीष्ट अंतर

$\therefore$ अभीष्ट अन्तर $= \frac{२५ \times २१९}{२२५} = २४'$

$\therefore$ शीघ्र कोटिज्या $= ६७१' + २४' = ६९५'$। गुरु की शीघ्र परिधि विषम पदान्त में ७२° और सम पदान्त में ७०° है, इसलिए दोनों का अंतर २° है और ३८वें श्लोक के अनुसार

स्फुट शीघ्र परिधि $= ७०^\circ + \frac{२^\circ \times ३३६६}{३४३८}$

$= ७०^\circ + २^\circ$ स्वल्पान्तर से

$= ७२^\circ$

$\therefore$ शीघ्र भुजफल $= \frac{७२ \times ३३६६}{३६०}$ [श्लोक ३९]

$= ६७३'$

और शीघ्र कोटिफल $= \frac{७२ \times ६९५}{३६०}$

$= १३९'$

शीघ्र केन्द्र पहले पद में है इसलिए शीघ्र कोटिफल ४०वें श्लोक के अनुसार त्रिज्या में जोड़ना चाहिये, इसलिए शीघ्रकर्ण

$= \sqrt{(३४३८ + १३९)^२ + ६७३^२}$ [श्लोक ४१ उत्तरार्ध]

$= \sqrt{३५७७^२ + ६७३^२}$

$= \sqrt{१,२७,९४,९२९ + ४,५२,९२९}$

$= \sqrt{१,३२,४७,८५८}$

$= ३६४०'$ स्वल्पान्तर से

शीघ्रफल $= \frac{३४३८ \times ६७३}{३६४०}$ कला [श्लोक ४१ का उत्तरार्द्ध, ४२ का पूर्वार्द्ध]

$= ६३६$ कला

यह पहला शीघ्रफल हुआ। यह धनात्मक है, क्योंकि शीघ्र केन्द्र पहले पद में हैं। यदि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार आगे की क्रियाएं करनी हों तो ४४वें श्लोक के अनुवाद में जो कुछ लिखा गया है उसके अनुसार करना चाहिये। परन्तु यह बहुत लम्बी रीति है इसलिए इस श्लोक के विज्ञान भाष्य के अंत में जो संक्षिप्त नियम लिखे गये हैं उन्हीं के अनुसार क्रिया करता हूँ :—

नियम (१) के अनुसार $+६३६'$ का आधा, चिह्न उलटने से $-३१८'$ अर्थात् $-५°१८'$ हुआ। इसको गुरु के मंद केन्द्र $११^{रा}१°३०'$ में बीजगणित के अनुसार जोड़ा तो आया $१०^{रा}२६°१२'$। यही प्रथम संस्कृत मंद केन्द्र हुआ। इसका मन्द फल प्रथम संस्कृत मंद फल हुआ।

$१०^{रा}२६°१२'$ नव राशि से अधिक है इसलिए चौथे पद में है, जिसका $१^{रा}२६°१२'$ अर्थात् $५६°१२'$ गत और $३३°४८'$ गम्य है।

$३३°४८' = ३३ \times ६० + ४८$ कला

$= २०२८$ कला

$= ९$ पिंड $+ ३'$

९ वें पिंड की ज्या $= १९१०'$

१० वें " " $= २०९३'$

$\therefore$ दोनों ज्याओं का अंतर $= १८३'$

२२५ ; ३′ : : १८३′ : अभीष्ट अंतर

$\therefore$ अभीष्ट अंतर $= \frac{३ \times १८३}{२२५} = २'$

$\therefore$ मंद भुजज्या $= १९१०' + २' = १९१२'$

वृहस्पति की मन्द परिधियों का अंतर १° है इसलिये ३८ वें श्लोक के अनुसार,

मन्द स्फुट परिधि $= ३३° - \frac{१° \times १९१२}{३४३८}$

$= ३३° - ३३'$

$= १९४७'$

$\therefore$ प्रथम संस्कृत मंद फल $= \frac{१६४७ \times १६१२}{२१६००}$ [श्लोक ३६]

$= १७२'$

यह ऋणात्मक है, क्योंकि मंद केन्द्र चौथे पद में है; इसका आधा, चिह्न उलटने से $+ ८६'$ होगा। नियम (२) के अनुसार,

दूसरा संस्कृत मंदकेन्द्र $= १०^{रा} २६° १२' + ८६'$

$= १०^{रा} २७° ३८'$

इसका मंदफल दूसरा संस्कृत मंदफल होगा।

अब $१०^{रा} २७° ३८'$ चौथे पद में हैं, जिसका $९^{रा} २७° ३८'$ गत और $१^{रा} २° २२'$ गम्य है।

$१^{रा} २° २२' = ३२° २२' = ३२ \times ६० + २२$ कला

$= १६४२' = ८$ पिंड $+ १४२'$

८ वें पिंड की ज्या $= १७१६$

९ वें पिंड की ज्या $= १६१०$

अंतर $= १६१'$

$२२५' : १४२' :: १६१ :$ अभीष्ट अंतर

$\therefore$ अभीष्ट अंतर $= \frac{१४२ \times १६१}{२२५} = १२१'$

$\therefore$ मन्द भुजज्या $= १७१६ + १२१ = १८४०'$

$\therefore$ मन्द स्फुट परिधि $= ३३° - \frac{१° \times १८४०}{३४३८}$

$= ३३° - ३२'$

$= १९४८'$

$\therefore$ दूसरा संस्कृत मन्द फल $= \frac{१९४८ \times १८४०}{२१६००}$

$= १६६' = २° ४६'$ (१)

यह भी ऋणात्मक है। इसलिए इसका चिह्न उलट कर, नियम (३) के अनुसार शीघ्रकेन्द्र में जोड़ देने से संस्कृत शीघ्रकेन्द्र आवेगा।

इसलिए संस्कृत शीघ्रकेन्द्र $= ७८° २०' + २° ४६'$

$= ८१° ६'$

यह प्रथम पद में है, इसलिए इसकी ज्या शीघ्र-भुजज्या और ८°५४′ की ज्या शीघ्र-कोटिज्या होगी

८१°९′ = ८१ × ६० + ९ कला

= ४८६९ कला

= २१ पिंड १४१′

२१ वें पिंड की ज्या = ३३७२′

२२ वें पिंड की ज्या = ३४०९′

दोनों का अंतर = ३७′

२२५ : १४१ : : ३७ : अभीष्ट अंतर

$$\therefore \text{अभीष्ट अंतर} = \frac{१४१ \times ३७}{२२५} = २३'$$

∴ शीघ्र भुजज्या = ३३७२′ + २३′

= ३३९५′

८°५४′ = ८ × ६० + ५४ कला

= ५३४ कला = २ पिंड ८४′

२रे पिंड की ज्या = ४४९

३रे पिंड की ज्या = ६७१

अंतर = २२२′

∴ २२५ : ८४ : : २२२ : अभीष्ट अन्तर

$$\therefore \text{अभीष्ट अन्तर} = \frac{८४ \times २२२}{२२५} = ८३'$$

∴ शीघ्र कोटिज्या = ४४९ + ८३′

= ५३२′

गुरु की शीघ्र परिधि विषम पदान्त में ७२° है, इसलिए पहले की तरह इस बार भी स्फुट शीघ्र परिधि ७२° ही होगी।

$$\therefore \text{शीघ्र भुज फल} = \frac{७२ \times ३३९५}{३६०} \text{ कला}$$

= ६७९′

$$\text{और शीघ्र कोटिफल} = \frac{७२ \times ५३२}{३६०}$$

= १०६′

यह शीघ्र कोटिफल त्रिज्या में जोड़ा जायगा।

इसलिए, शीघ्र कर्ण$=\sqrt{(३४३८+१०६)^२+६७९^२}$

$=\sqrt{३५४४^२+६७९^२}$

$=३६०८'$

$\therefore$ दूसरा शीघ्रफल$=\dfrac{३४३८\times६७९}{३६०८}$ [श्लोक ४१, ४२]

$=$ ६४७ कला

$=+१०^\circ ४७'$ (२)

$\therefore$ नियम (४) के अनुसार,

स्पष्ट गुरु$=$मध्यम गुरु$+$दूसरा मंद फल$+$दूसरा शीघ्रफल।

$=६^{रा}१९^\circ५२'३७''-२^\circ४६'+१०^\circ४७'$

$=६^{रा}२७^\circ५३'३७''$

इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो गया होगा कि प्रत्येक ग्रह को स्पष्ट करने के लिए दो बार शीघ्रफल और दो बार मन्द फल निकालना पड़ता है और प्रत्येक के लिए भुजज्या, कोटिज्या, स्फुट-परिधि भुजफल, कोटिफल शीघ्रकर्ण तथा शीघ्रफल निकालना होता है। यदि शून्य से ९०° तक के एक एक अंश या आधे-आधे अंश को ज्या और कोटिज्या की सारिणी दी हुई हो तो भुजज्या और कोटिज्या सारिणी देखकर जानी जा सकती है। यह सारिणी सब ग्रहों के लिए काम में आ सकती है। इसी प्रकार प्रत्येक ग्रह के मन्द फल और शीघ्रफल की भी सारिणी बनायी जा सकती है जिससे स्पष्ट करने की लम्बी क्रिया बहुत संक्षिप्त हो जायगी और गुणा भाग करने का भी झंझट मिट जायगा। व्यवहार में ऐसा होता भी है। आजकल मकरंद सारिणी अधिक काम में आती है।

इसी प्रकार बुध का भी स्पष्ट स्थान जाना जा सकता है। मध्यम बुध का स्थान वही होता है, जो सूर्य का। शीघ्रोच्च का स्थान जानना होता है। और बातें सब उसी प्रकार करनी पड़ती हैं जैसी गुरु के लिए की गयी हैं। उदाहरण देकर पुस्तक का आकार बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

अजादिकेन्द्रे सर्वेषां मान्दे शैघ्रे च कर्मणि।
धनं ग्रहाणां लिप्तादि तुलादावृणमेव च ॥४५॥

अनुवाद—(४५) जब शीघ्र केन्द्र या मन्द केन्द्र ६ राशि से कम हो तो शीघ्रफल या मन्दफल धनात्मक होता है, इसलिए सब कामों में जोड़ा जाता है और जब शीघ्र केन्द्र या मन्द केन्द्र ६ राशि से अधिक होता है तब घटाया जाता है।

विज्ञान भाष्य—अज या मेष पहली राशि का नाम है इसलिए अजादि केन्द्र का अर्थ है पहली राशि से ६ राशि तक का केन्द्र और तुलादि केन्द्र का अर्थ है सातवीं राशि से १२वीं राशि तक का केन्द्र जैसा कि ४०वें श्लोक में कर्कादि और मकरादि के लिए समझाया गया है। जोड़ने और घटाने का कारण ५वें श्लोक के विज्ञान भाष्य में तथा और कई स्थानों में बतलाया गया है (देखो चित्र १५)।

अर्कबाहुफलाभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता।
भचक्रकलिकाभिस्तु लिप्ताः कार्या ग्रहेऽर्कवत् ॥४६॥

अनुवाद—(४६) सूर्य के भुजफल (मंदफल) को ग्रह की दैनिक स्पष्टगति से गुणा करके गुणनफल को १२ राशि की कलाओं से अर्थात् २१६०० कलाओं से भाग देने पर जो आवे उसको ग्रह के स्पष्ट में जोड़ो (यदि सूर्य का मन्दफल धनात्मक हो) और घटाओ (यदि सूर्य का मन्दफल ऋणात्मक हो) ऐसा करने से स्पष्ट अर्द्धरात्रि काल का ग्रह स्पष्ट होगा।

विज्ञान भाष्य—जिस समय मध्यम सूर्य यामोत्तर वृत्त पर आता है उस समय मध्यम मध्यान्ह और जिस समय स्पष्ट सूर्य यामोत्तर वृत्त पर आता है उस समय स्पष्ट मध्यान्ह होता है। इसी प्रकार जिस समय मध्यम सूर्य पाताल में (यामोत्तर वृत्त के उस भाग में जो क्षितिज के नीचे होता है) होता है उस समय मध्यम अर्द्धरात्रि और जिस समय स्पष्ट सूर्य पाताल में होता है उस समय स्पष्ट अर्द्धरात्रि होती है। इससे यह प्रकट है कि स्पष्ट सूर्य मध्यम सूर्य से जितना पहले या पीछे पाताल में आवेगा उतना ही पहले या पीछे स्पष्ट अर्द्धरात्रि होगी। परन्तु स्पष्ट और मध्यम सूर्य के अन्तर को मन्दफल कहते हैं; इसलिए जितने समय में मन्दफल के समान क्रान्तिवृत्त का खंड यामोत्तर उल्लंघन करेगा उतने ही समय आगे या पीछे स्पष्ट अर्द्धरात्रि होगी।

इतने समय में ग्रह जितना चलेगा उतना जान कर मध्यम अर्द्धरात्रि कालिक स्पष्ट ग्रह में जोडने या घटाने से स्पष्ट अर्द्धरात्रि कालिक स्पष्ट ग्रह होगा। सूक्ष्म गणना करने के लिए पहले यह जानना चाहिये कि मन्दफल के समान क्रान्तिवृत्त का खंड यामोत्तरवृत्त का उल्लंघन कितनी देर में करेगा परन्तु ऐसा न करने से भी अशुद्धि बहुत कम होती है। इसलिए संक्षेप में इतना ही करना बस है कि जितने समय में पूरा भूचक्र यामोत्तर वृत्त का उल्लंघन करता है उतने समय में ग्रह अपनी दैनिक गति के समान आगे बढ़ता है इसलिए जितने समय में मन्द फल के समान क्रान्तिवृत यामोत्तर बृत्त का उल्लंघन करता है उतने समय में ग्रह की गति क्या होगी।

इस सम्बन्ध में कुछ विशेष चर्चा आगे की जायगी जब 'काल समीकरण' पर लिखा जायगा ।

मध्ये शीघ्रफलस्यार्धं मान्दमर्धफलं तथा ।
मध्यग्रहे पुनर्मान्दं सकलं शैघ्रमेव च ॥४७॥
ग्रहभुक्तेः फलं कार्यं ग्रहवन्मन्दकर्मणि ।
कर्क्यादौ तद्धनं तत्र मकरादावृणं स्मृतम् ॥४८॥
दोर्ज्यान्तरगुणा भुक्तिस्तत्वनेत्रोद्धृता पुनः ।
स्वमन्दपरिधिक्षुण्णा भगणांशोद्धृता कलाः ॥४९॥

अनुवाद—(४७) चन्द्रमा की मध्यम दैनिक गति से इसके मंदोच्च की दैनिक गति घटा कर आगे (४८-४९ श्लोकों में) बतलायी जाने वाली क्रिया से चन्द्रमा का मंदगति फल निकाल कर दैनिक मध्यम गति में घटाने या जोड़ने से चन्द्रमा की स्पष्ट दैनिक गति निकलती है । (४८) अन्य ग्रहों की मध्यम दैनिक गति से ही मंदगति फल ग्रह के मंदफल जानने की क्रिया की तरह जानना चाहिए जिसकी रीति यह है—मध्यम दैनिक गति को गत और गम्य भुजज्याओं के अन्तर से गुणा करके गुणनफल को २२५ से भाग दे दो; (४९) लब्धि को मन्द परिधि से गुणा करके भगणांश से (यदि मन्द परिधि अंशों में हो तो ३६० से और यदि कलाओं में हो तो २१६०० से) भाग दे दो, लब्धि कलाओं में होगी । यदि मन्द केन्द्र दूसरे और तीसरे पदों में (कर्कादि पदों में) हो तो जोड़ो और पहले या चौथे पदों में (मकरादि पदों में) हो तो घटाओ । ऐसा करने से सूर्य और चंद्रमा की स्पष्ट दैनिक गति तथा अन्य ग्रहों की मन्द दैनिक गति ज्ञात होती है ।

विज्ञान भाष्य—किसी ग्रह की मध्यम दैनिक गति में से उसके मन्दोच्च की दैनिक गति घटा देने से उसके मन्द केन्द्र की दैनिक गति ज्ञात होती है । इसे ही ग्रह की केन्द्र गति कहते हैं । परन्तु चन्द्रमा के सिवा अन्य ग्रहों के मन्दोच्च की गति इतनी कम होती है कि उसे छोड़ देने से कोई अशुद्धि नहीं हो सकती इसलिए अन्य ग्रहों की मध्यम दैनिक गति ही केन्द्र गति समझ ली गयी है, केवल चन्द्रमा के लिए केन्द्र गति जानने का विधान है । जैसे मध्यम ग्रह में मन्द फल का संस्कार देने से मन्द स्पष्ट ग्रह निकलता है वैसे ही मध्यम दैनिक गति में गति के मन्द फल अथवा मन्द गति फल का संस्कार देने से मन्द स्पष्ट गति ज्ञात होती है । सूर्य चन्द्रमा के लिए यही स्पष्ट दैनिक गति हो जाती है । अन्य ग्रहों के लिए अगले ५०—५२ श्लोकों में बतलायी जाने वाली क्रिया भी करनी चाहिए । इस नियम की उत्पत्ति यों है :—

एक दिन में स्पष्ट ग्रह जितना चलता है वही ग्रह की स्पष्ट दैनिक गति है । इसलिए स्पष्ट दैनिक गति जानने के लिए केवल यह जान लेना पर्याप्त है कि किसी

दिन के आरम्भ और अन्त में स्पष्ट ग्रह के स्थान क्या थे; इन्हीं का अन्तर स्पष्ट दैनिक गति है। परन्तु दिन के आरम्भ और अन्त में स्पष्ट ग्रहों के स्थान जानने में बहुत गुणा भाग करना पड़ेगा इसलिए उपर्युक्त सरल क्रिया भी हो सकती है जिसकी उपपत्ति यह है :—

दैनिक स्पष्ट गति

=(दिन के) अन्त का स्पष्ट ग्रह—(दिन के) आरम्भ का स्पष्ट ग्रह

=(अन्त का मध्यम ग्रह±अन्त का मन्द फल)—(आरम्भ का मध्यम ग्रह±आरम्भ का मन्द फल)

=(अन्त का मध्यम ग्रह—आरम्भ का मध्यम ग्रह)±(अन्त का मन्द फल —आरम्भ का मन्द फल)

=मध्यम दैनिक गति±(अन्त का मन्द फल—आरम्भ का मन्द फल) (१)

परन्तु (दिन के) अन्त का मन्द फल

$$=\frac{\text{मन्द परिधि} \times \text{अन्त के केन्द्र की भुजज्या}}{३६०} \text{ का धनु [श्लोक ३६]}$$

और (दिन के) आरम्भ का मन्द फल

$$=\frac{\text{मन्द परिधि} \times \text{आरम्भ के केन्द्र की भुजज्या}}{३६०} \text{ का धनु}$$

इसलिए इन दोनों का अन्तर (स्थूल रीति से)

$$=\frac{\text{मन्द परिधि}}{३६०}\left\{\text{अन्त के केन्द्र की भुजज्या} - \text{आरम्भ के केन्द्र की भुजज्या}\right\} \quad (२)$$

परन्तु (दिन के) अन्त के केन्द्र की भुजज्या=(दिन के आरम्भ का केन्द्र+केन्द्र की दैनिक गति) की भुजज्या

=दिन के आरम्भ के केन्द्र की भुजज्या

$$+\frac{\text{गत और गम्य पिंडों की ज्याओं का अन्तर} \times \text{दैनिक केन्द्र गति}}{२२५}$$

[श्लोक ३१-३२]

इसको समीकरण (२) में उत्थापन करने से तथा समान धन और ऋण पदों को छोड़ देने से,

अन्त का मन्द फल – आरम्भ का मन्द फल

$$=\frac{\text{मन्द परिधि}}{३६०} \times \frac{\text{गत और गम्य पिंडों का ज्याओं का अन्तर} \times \text{दैनिक गति}}{२२५} \quad (३)$$

यही समीकरण (३), ४८वें श्लोक के उत्तरार्द्ध और ४९वें श्लोक के पूर्वार्द्ध का रूप है, जिसमें 'गत और गम्य पिंडों की ज्याओं के अन्तर' की जगह संक्षेप में 'दोर्ज्यान्तर' कहा गया है।

समीकरण (३) को समीकरण (१) में उत्थापन करने से

$$\text{दैनिक स्पष्ट गति} = \text{मध्यम दैनिक गति} \pm \frac{\text{मन्द परिधि}}{३६०} \times \frac{\text{गत तथा गम्य ज्या पिण्डों का अन्तर} \times \text{मध्यम दैनिक गति}}{२२५} \quad (४)$$

कर्कादि केन्द्र में धन और मकरादि में ऋण करने का कारण यह है कि जब मंद केन्द्र ३ राशि से अधिक और ९ राशि से कम होता है तब स्पष्ट दैनिक गति मध्यम दैनिक गति से अधिक अन्यथा कम होती है। (देखो चित्र २९ और ३०)। मध्यम ग्रह जितने समय में मि से मु अथवा मु से मे तक पहुँचता है उतने समय में स्पष्ट ग्रह सि से सु अथवा सु से 'से' तक पहुँचता है अर्थात् समान काल में स्पष्ट ग्रह मध्यम ग्रह से अधिक जाता है; इसलिए स्पष्ट ग्रह की दैनिक गति भी मध्यम ग्रह की दैनिक गति से अधिक होगी। इत्यादि।

मन्दस्फुटीकृतां भुक्तिं प्रोज्झ्य शीघ्रोच्चभुक्तितः।
तच्छेषं विवरेणाऽथ हन्यात्त्रिज्यान्त्यकर्णयोः ॥५०॥
चलकर्णहृतं भुक्तौ कर्णे त्रिज्याऽधिके धनम्।
ऋणमूनेऽधिकात्प्रोज्झ्यं भुक्तिं वक्रगतिर्भवेत् ॥५१॥

अनुवाद—(५०-५१) मन्द स्पष्ट दैनिक गति को शीघ्रोच्च की दैनिक गति से घटाकर शेष को त्रिज्या और शीघ्र कर्ण के अन्तर से गुणा कर दो, गुणनफल को शीघ्र कर्ण से भाग दे दो, लब्धि को मन्द स्पष्ट गति में जोड़ दो यदि त्रिज्या से कर्ण अधिक हो और यदि कम हो तो घटा दो। यदि लब्धि ऋणात्मक हो और मन्द स्पष्ट गति से अधिक हो तो शेष भी ऋणात्मक होगा। यह दैनिक वक्रगति होगी।

विज्ञान भाष्य—इस नियम को बीजगणित के अनुसार यों लिख सकते हैं :—

$$\text{स्पष्ट दैनिक गति} = \text{मन्द स्पष्ट गति} \pm \frac{(\text{शीघ्रोच्च} - \text{मन्द स्पष्ट गति})\ (\text{शीघ्र कर्ण} \sim \text{त्रिज्या})^{*}}{\text{शीघ्र कर्ण}} \quad (५)$$

*यह चिह्न ∼ अन्तर प्रकट करने का चिह्न है। जिन दो संख्याओं के बीच में यह चिह्न हो उनमें से जो बड़ी हो उसमें से छोटी संख्या को घटाना चाहिये।

उदाहरण—सूर्य और गुरु की स्पष्ट दैनिक गति (१९७९ वि० की वसंत पंचमी की अर्द्धरात्रि को) निकालना।

सूर्य की मध्यम दैनिक गति ५९′८″ है। इसलिए समीकरण (४) के अनुसार [देखो उदा० १] सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति

$$=५९'८'' \pm \frac{८३३}{११६००} \times \frac{२१०}{२२५} \times ५९'८''$$

(यहाँ मन्द केन्द्र दूसरे पद में है इसलिए धन चिह्न लेने से)

$$=५९'८'' + \frac{८३३}{२१६००} \times \frac{२१०}{२२५} \times ५९'८''$$

$$=५९'८'' + २'७''.७$$

$$=६१'१६''$$ स्वल्पान्तर से

गुरु की मध्यम दैनिक गति

$$=४'५९''$$

गुरु की मन्द स्पष्ट गति

$$=४'\ ५९'' \pm \frac{१९४८}{२१६००} \times \frac{१९१}{२२५} \times ४'\ ५९''$$

यहाँ मंद केन्द्र चौथे पद में है इसलिए ऋण चिह्न लेना चाहिए।

∴ गुरु की मंद स्पष्ट गति

$$=४'५९'' - \frac{१९४८}{२१६००} \times \frac{१९१}{२२५} \times ५'$$

$$=४'५९'' - २५''$$

$$=४'३४''$$

गुरु के शीघ्रोच्च की गति = सूर्य की मध्यम गति = ५९′८″। शीघ्र कर्ण = ३६०८

इसलिए इन सब मानों को समीकरण (५) में उत्थापन करने से और धनात्मक चिह्न लेने से क्योंकि शीघ्रकर्ण त्रिज्या से अधिक है,

गुरु की स्पष्ट गति

$$=४'३४'' + \frac{(५९'८'' - ४'३४'')(३६०८ - ३४३८)}{३६०८}$$

$$=४'३४'' + \frac{५४'३४'' \times १७०}{३६०८}$$

$$=४'३४'' + २'३४''$$

$$=७'८''$$

दूरस्थिताच्च शीघ्रोच्चाद् ग्रहशिथिलरश्मिभिः ।
सव्येतराकृष्टतनुर्भवेद्वक्रगतिस्तदा ॥५२॥
कृतर्तुचन्द्रैर्वेदेन्द्रैः शून्यत्र्येकैर्गुणाष्टिभिः ।
शररुद्रैश्चतुर्थांश केन्द्रांशैर्भूसुतादयः ॥५३॥
भवन्ति वक्रिणस्तैस्तैः स्वैस्वैश्चक्राद्विशोधितैः ।
अवशिष्टांशतुल्यैः स्वैः केन्द्रैरुज्झन्ति वक्रताम् ॥५४॥
महत्वाच्छीघ्रपरिधेः सप्तमे भृगुभूसुतौ ।
अष्टमे जीवशशिजौ नवमे तु शनैश्चरः ॥५५॥

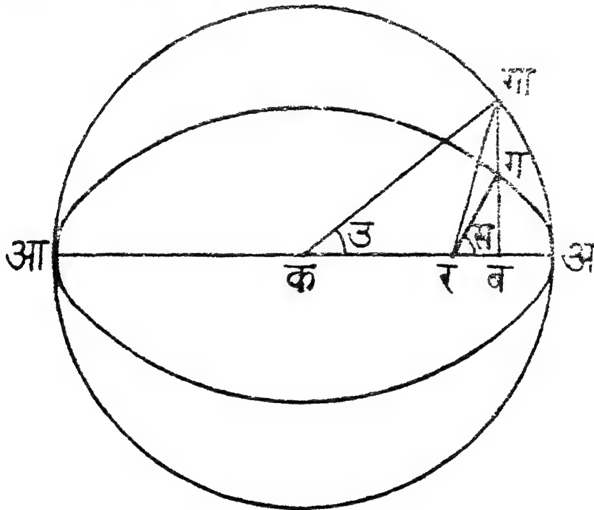
अनुवाद—(५२) जब ग्रह अपने शीघ्रोच्च से दूर (तीन राशि से अधिक अंतर पर) हो जाता है तब शीघ्रोच्च जिन रश्मियों से उसको खींचता है वह ढीली पड़ जाती हैं। इस कारण ग्रह विलोम दिशा में खिंच जाता है और गति वक्र हो जाती है अर्थात् उलटी जाती है। (५३) जब मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि के अंतिम शीघ्रकेन्द्र (जिससे दूसरा शीघ्रफल निकाला जाता है) क्रम से १६४, १४४, १३०, १६३, और ११५ अंश होते हैं (५४) तब इनकी वक्रगति का आरम्भ होता है और जब शीघ्र केन्द्र क्रम से वह होते हैं जो उपर्युक्त शीघ्र केन्द्रों को ३६०° से घटाने पर आते हैं (अर्थात् १९६ २१६, २३०, १९७ और २४५ अंश) तब वक्र गति का अंत होता है अर्थात् तब ग्रह फिर मार्गी होते हैं। (५५) शीघ्र परिधि के बड़ी होने से शुक्र और मङ्गल की वक्र गति उसी समय रुक जाती है जब शीघ्र केन्द्र सातवीं राशि में होता है, बुध और गुरु की उस समय जब शीघ्र केन्द्र आठवीं राशि में होता है और शनि की उस समय जब शीघ्र केन्द्र ९ वीं राशि में होता है।

विज्ञान भाष्य—ग्रहों की वक्र गति का यथार्थ कारण १२-१३ श्लोकों के विज्ञान भाष्य में विस्तार के साथ बतलाया गया है। यहाँ इतना और बतलाया गया है कि वक्र गति का आरम्भ और अन्त कब होता है और गणित से कैसे जाना जा सकता है। शीघ्र केन्द्र के जो अङ्क ऊपर दिये गये हैं वह मध्यम मान के अनुसार हैं इसलिए यथार्थ में कुछ भिन्नता देख पड़ती है। ५५वें श्लोक में यह बतलाया गया है कि शीघ्र परिधि के विस्तार के अनुसार जब शीघ्र केन्द्र सातवीं, आठवीं या नवीं राशि में होता है तब वक्र गति का अन्त होता है। यह बात चित्र ३० के देखने से स्पष्ट हो जाती है। स्पष्ट ग्रह शीघ्र परिधि पर भ्रमण करते हुए ऐसे दो स्थानों पर पहुँचता है जहाँ शीघ्र कर्ण शीघ्र परिधि को स्पर्श करता है। ऐसी दशा में शीघ्र कर्ण, शीघ्र वृत्त की त्रिज्या और कक्षा वृत्त की त्रिज्या, इन तीन रेखाओं से समकोण त्रिभुज बन जाता है। इस त्रिभुज का वह कोण जो शीघ्र वृत्त के मध्य विन्दु पर बनता है शीघ्र

परिधि की त्रिज्या के अनुसार छोटा बड़ा होता है। इसी तरह वक्र गति के आरम्भ और अन्त के लिए भी शीघ्र केन्द्र का मान घटता बढ़ता है।

यहाँ तक तो भारतीय रीति से ग्रहों के स्पष्ट स्थान जानने की रीति बतलायी गयी। भास्कराचार्य तथा अन्य कई आचार्यों ने एक और रीति भी बतलायी है जिससे ग्रहों का स्पष्ट स्थान ठीक इसी प्रकार निकलता है परन्तु वह विस्तार के भय से नहीं लिखी गयी है। अब संक्षेप में यह बतलाया जायगा कि नवीन पद्धति के अनुसार पाश्चात्य देशों के ज्योतिषी ग्रहों के स्पष्ट स्थान कैसे निकालते हैं।

केपलर के नियम के अनुसार किसी ग्रह का स्पष्ट स्थान जानने के लिए पहले यह देखना पड़ता है कि ग्रह अपने कक्षा-वृत्त में जो दीर्घवृत्त के आकार का होता है और जिसकी नाभि पर सूर्य स्वयम् होता है, कहाँ है। फिर यह जानना पड़ता है कि उस समय वह ग्रह पृथ्वी से कहाँ देख पड़ेगा।



चित्र ३२

मान लो अ ग आ किसी ग्रह का दीर्घवृत्तकार कक्षावृत्त है और र, ग्रह के आकर्षक रवि का स्थान है जो दीर्घवृत्त की नाभि पर है। जिस समय ग्रह सूर्य से निकटतम अंतर पर अर्थात् अ पर हो उसी समय से ग्रह के भगण काल का आरम्भ माना जाय और उस समय से 'द' दिन के अन्तर पर ग्रह ग स्थान पर देख पड़े तो अ र ग कोण ग्रह का मंद केन्द्र कहलाता है जिसे आगे स अक्षर से सूचित किया जायगा।

क को केन्द्र मानकर क अ या क आ त्रिज्या से जो वृत्त खींचा जाता है वह दीर्घवृत्त को अ, आ विन्दुओं पर स्पर्श करता है। ऐसे वृत्त को दीर्घवृत्त का सहायक वृत्त (Auxiliary circle) कहते हैं। यदि ग से दीर्घअक्ष पर ग ब लम्ब गिराया जाय तो यह बढ़ाने पर सहायक वृत्त को गा विन्दु पर काटेगा। यदि गा को सामान्य केन्द्र क से मिलाया जाय तो अ क गा कोण को ग का उत्केन्द्र (eccentric anomaly) कहते हैं। उत्केन्द्र को उ अक्षर से सूचित किया जायगा। स और उ चापीय मानों में नापे जाते हैं। यदि ग्रह की दैनिक मध्यम गति 'भ' चापीय मान में हो तो $\frac{२\pi}{भ}$ दिन ग्रह का भगण काल होगा क्योंकि एक भ चक्र कोणात्मक मान में ३६०° और चापीय मान में २π होता है। यदि ग्रह की दैनिक गति सदैव 'भ' के समान होती तो द दिन पीछे अ से ग्रह का अंतर द×भ होता। द×भ को मध्यम मन्द केन्द्र कहते हैं जिसे आगे 'म' से सूचित किया जायगा। यदि ग्रह का कोणीय वेग स्थिर होता तो मध्यम मन्द केन्द्र ही स्पष्ट केन्द्र भी होता।

दीर्घवृत्त के गुणों के आधार पर मध्यम मन्द केन्द्र और उत्केन्द्र तथा स्पष्ट मन्द केन्द्र और उत्केन्द्र के सम्बन्ध इस प्रकार जाने जा सकते हैं :—

केपलर के दूसरे नियम के अनुसार,

$$\frac{\text{क्षेत्रफल अ र ग}}{\text{दीर्घवृत्त का क्षेत्रफल}} = \frac{\text{द}}{\text{भगण काल}}$$

$$= \frac{\text{द}}{\frac{२\pi}{\text{भ}}}$$

$$= \frac{\text{द} \times \text{भ}}{२\pi}$$

$$\text{परन्तु } \frac{\text{*क्षेत्रफल अ र ग}}{\text{क्षेत्रफल अ र गा}} = \frac{\text{थ}}{\text{त}}$$

$$= \frac{\pi \text{त. थ}}{\pi \text{त. त}}$$

$$= \frac{\text{दीर्घवृत्त का क्षेत्रफल}}{\text{सहायक वृत्त का क्षेत्रफल}}$$

यहाँ त, थ क्रमानुसार दीर्घवृत्त के दीर्घ और लघु अक्ष हैं।

$$\therefore \frac{\text{क्षेत्रफल अ र ग}}{\text{दीर्घवृत्त का क्षेत्रफल}} = \frac{\text{क्षेत्रफल अ र गा*}}{\text{सहायक वृत्त का क्षेत्रफल}}$$

---

*देखो Askwith's Pure Geometry, pp. 205.; 206.

$$= \frac{\text{क्षेत्रफल अ र गा}}{\pi त^2}$$

परन्तु अ र गा का क्षेत्रफल = क्षेत्रफल अ क गा − क्षेत्रफल र क गा

$$= \frac{त^2}{2}उ - \frac{बगा \times कर}{2}$$

$$= \frac{त.^2 उ}{2} - \frac{त.ज्याउ \times त.च}{2}$$

$$= \frac{त^2}{2}(उ - च \text{ ज्या } उ)$$

यहाँ च दीर्घ वृत्त की केन्द्र-च्युति (eccentricity) है।

पहले सिद्ध किया गया है कि

$$\frac{\text{क्षेत्रफल अ र ग}}{\text{दीर्घवृत्त का क्षेत्रफल}} = \frac{द. भ}{2\pi}$$

$$\therefore \frac{द. भ}{2\pi} = \frac{\frac{त^2}{2}(उ - च \text{ ज्या } उ)}{\pi त^2}$$

या $भ. द = उ - च \text{ ज्या } उ$ (१)

यह समीकरण मध्यम मन्द केन्द्र और उत्केन्द्र का सम्बन्ध प्रकट करता है।

स्पष्ट केन्द्र और उत्केन्द्र का सम्बन्ध स्थापित करना :—

दीर्घवृत्त का ध्रुवीय समीकरण (Polar equation) है,

$$रग = \frac{त\ (1 - च^2)}{1 + च \text{ कोज्या } स}$$ जहाँ रग, र नाभि से ग ग्रह का अन्तर है। परन्तु दीर्घवृत्त की परिभाषा के अनुसार,

रग = च × नियामक रेखा (directrix) से ग का अन्तर

= च × ब से नियामक रेखा का अन्तर

= च × (केन्द्र से नियामक रेखा का अन्तर − केन्द्र से ब का अन्तर)

$$= च \times \left(\frac{त}{च} - बक\right)$$

$$= च \times \left(\frac{त}{च} - त \text{ कोज्या } उ\right)$$

$$= त - च \times त \text{ कोज्या } उ$$

$\therefore$ कर्ण $=$ त (१ − च कोज्या उ) (२)

$$\therefore \frac{त\,(१-च^२)}{१+च\ कोज्या\ स} = त\,(१-च\ कोज्या\ उ)$$

अर्थात् $$\frac{१-च^२}{१+च\ कोज्या\ स} = १-च\ कोज्या\ उ$$

वा $$१+च\ कोज्या\ स = \frac{१-च^२}{१-च\ कोज्या\ उ}$$

वा $$च\ कोज्या\ स = \frac{१-च^२}{१-च\ कोज्या\ उ} - १$$

$$= \frac{च\,(कोज्या\ उ-च)}{१-च\ कोज्या\ उ}$$

$$\therefore कोज्या\ स = \frac{कोज्या\ उ-च}{१-च\ कोज्या\ उ}$$

$$\therefore १-कोज्या\ स = १-\frac{कोज्या\ उ-च}{१-च\ कोज्या\ उ}$$

$$= \frac{१-च\ कोज्या\ उ+कोज्या\ उ+च}{१-च\ कोज्या\ उ}$$

और $$१+कोज्या\ स = \frac{१-च\ कोज्या\ उ+कोज्या\ उ-च}{१-च\ कोज्या\ उ}$$

$$\therefore \frac{१-कोज्या\ स}{१+कोज्या\ स} = \frac{१-च\ कोज्या\ उ-कोज्या\ उ+च}{१-च\ कोज्या\ उ+कोज्या\ उ-च}$$

$$= \frac{(१-कोज्या\ उ)\,(१+च)}{(१+कोज्या\ उ)\,(१-च)}$$

$$= \frac{१+च}{१-च} \times \frac{१-कोज्या\ उ}{१+कोज्या\ उ}$$

$$\therefore {}^{*}स्परे^२\frac{स}{२} = \frac{१+च}{१-च} \times स्परे^२\ \frac{उ}{२}$$

अथवा $$स्परे\ \frac{स}{२} = \sqrt{\frac{१+च}{१-च}} \times स्परे\ \frac{उ}{२} \qquad (३)$$

यह समीकरण स्पष्ट मंद केन्द्र और उत्केन्द्र के सम्बन्ध प्रकट करता है।

---

* किसी कोण की ज्या को उसकी कोटिज्या से भाग देने पर जो कुछ आता है वह उस कोण की स्पर्श रेखा कहलाता है। संक्षेप में किसी कोण म की स्पर्श रेखा को स्परे म लिखते हैं।

समीकरण (१), (२) और (३) से उ के किसी मान को जान कर स्पष्ट मन्द केन्द्र, मन्द कर्ण और द के मान जान सकते हैं। परन्तु व्यवहार में इससे सरलता नहीं होती। यदि मध्यम मन्द केन्द्र का मान जान कर स्पष्ट मन्द केन्द्र और कर्ण का मान जाना जा सके तो अधिक उपयोगी होता है। इसके लिए समीकरण (३) को त्रिकोणमिति की रीति से फैलाना पड़ता है जो यों किया जाता है :—

लोनी की त्रिकोणमिति भाग २ अथवा टाडहंटर की त्रिकोणमिति या म. म. सुधाकर द्विवेदी के चलन कलन पृष्ट ४२ से यह स्पष्ट है कि

$$\text{स्परे}\frac{\text{स}}{\text{२}}=\frac{\text{इ}^{\frac{\text{स}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}-\text{इ}^{-\frac{\text{स}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}}{\text{इ}^{\frac{\text{स}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}+\text{इ}^{-\frac{\text{स}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}}\times\frac{\text{१}}{\sqrt{-\text{१}}},$$

यहाँ इ नेपिएरियन लघुरिक्थ का आधार है, जिसका मान बीजगणित के अनुसार है

$\text{१}+\text{१}+\frac{\text{१}}{\underline{|\text{२}}}+\frac{\text{१}}{\underline{|\text{३}}}+\frac{\text{१}}{\underline{|\text{४}}}+\cdots$ इत्यादि जब कि $\underline{|\text{४}}$ का अर्थ है ४×३×२×१, $\underline{|\text{३}}$ का अर्थ है ३×२×१, $\underline{|\text{११}}$ का अर्थ है ११×१०×९×...२×१।

$$\text{इसी प्रकार स्परे}\frac{\text{उ}}{\text{२}}=\frac{\text{इ}^{\frac{\text{उ}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}-\text{इ}^{-\frac{\text{उ}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}}{\text{इ}^{\frac{\text{उ}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}+\text{इ}^{-\frac{\text{उ}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}}\times\frac{\text{१}}{\sqrt{-\text{१}}}$$

∴ समीकरण (३) का रूप होगा,

$$\frac{\text{इ}^{\frac{\text{स}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}-\text{इ}^{\frac{-\text{स}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}}{\text{इ}^{\frac{\text{स}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}+\text{इ}^{\frac{-\text{स}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}}=\sqrt{\frac{\text{१}+\text{च}}{\text{१}-\text{च}}}\times\frac{\text{इ}^{\frac{\text{उ}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}-\text{इ}^{-\frac{\text{उ}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}}{\text{इ}^{\frac{\text{उ}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}+\text{इ}^{-\frac{\text{उ}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}}$$

अथवा

$$\frac{इ^{स\sqrt{-१}} - १}{इ^{स\sqrt{-१}} + १} = \sqrt{\frac{१+च}{१-च}} \times \frac{इ^{उ\sqrt{-१}} - १}{इ^{उ\sqrt{-१}} + १} \qquad (क)$$

समीकरण (क) के प्रत्येक पक्ष में १ जोड़ा जाय तो

$$\frac{२इ^{स\sqrt{-१}}}{इ^{स\sqrt{-१}} + १} =$$

$$\frac{\sqrt{१+च}\left(इ^{उ\sqrt{-१}} - १\right) + \sqrt{१-च}\left(इ^{उ\sqrt{-१}} + १\right)}{\sqrt{१-च}\left(इ^{उ\sqrt{-१}} + १\right)} \qquad (ख)$$

और यदि समीकरण (क) का प्रत्येक पक्ष १ में से घटाया जाय तो

$$\frac{२}{इ^{स\sqrt{-१}} + १}$$

$$= \frac{\sqrt{१-च}(इ^{उ\sqrt{-१}} + १) - \sqrt{१+च}(इ^{उ\sqrt{-१}} - १)}{\sqrt{१-च}(इ^{उ\sqrt{-१}} + १)} \qquad (ग)$$

समीकरण (ख) के बायें पक्ष को समीकरण (ग) के बायें पक्ष से तथा (ख) के दाहने पक्ष को (ग) के दाहिने पक्ष से भाग देने से

$$इ^{स\sqrt{-१}} = \frac{\sqrt{१+च}(इ^{उ\sqrt{-१}} - १) + १}{\sqrt{१-च}(इ^{उ\sqrt{-१}} + १) - १} \qquad \frac{इ^{उ\sqrt{-१}} + १)}{(इ^{उ\sqrt{-१}} - १)}$$

$$= \frac{इ^{उ\sqrt{-१}}(\sqrt{१-च} + \sqrt{१+च}) + \sqrt{१-च} - \sqrt{१+च}}{-इ^{उ\sqrt{-१}}(\sqrt{१+च} - \sqrt{१-च}) + \sqrt{१-च} + \sqrt{१+च}}$$

$$= \frac{इ^{उ\sqrt{-१}} - \dfrac{\sqrt{१+च} - \sqrt{१-च}}{\sqrt{१+च} + \sqrt{१-च}}}{१ - इ^{उ\sqrt{-१}} \times \dfrac{\sqrt{१+च} - \sqrt{१-च}}{\sqrt{१+च} + \sqrt{१-च}}}$$

यदि $\frac{\sqrt{१+च}-\sqrt{१-च}}{\sqrt{१+च}+\sqrt{१-च}}$ के स्थान पर प रखा जाय

तो इस समीकरण का रूप होगा

$$इ^{स\sqrt{-१}}=\frac{इ^{उ\sqrt{-१}}-प}{१-इ^{उ\sqrt{-१}}\times प}$$

$$१-\frac{प}{}$$

$$=\frac{इ^{उ\sqrt{-१}}}{१-प\times इ^{उ\sqrt{-१}}}\times इ^{उ\sqrt{-१}}$$

$$=इ^{उ\sqrt{-१}}\times\frac{१-पइ^{-उ\sqrt{-१}}}{१-पइ^{उ\sqrt{-१}}}$$

प्रत्येक पक्ष का लघुरिक्त (logarithm) लेने से,

$$लरि\ इ^{स\sqrt{-१}}=लरि\ इ^{उ\sqrt{-१}}+$$

$$लरि\left(१-प\,इ^{-उ\sqrt{-१}}\right)-लरि\left(१-प\,इ^{उ\sqrt{-१}}\right) \qquad (घ)$$

परन्तु $लरि\left(१-प\,इ^{उ\sqrt{-१}}\right)=-प\,इ^{उ\sqrt{-१}}-$

$$\frac{\left(प\,इ^{उ\sqrt{-१}}\right)^{२}}{२}-\frac{\left(प\,इ^{उ\sqrt{-१}}\right)^{३}}{३}-\frac{\left(प\,इ^{उ\sqrt{-१}}\right)^{४}}{४}-\cdots\cdots$$

और $लरि\left(१-प\,इ^{-उ\sqrt{-१}}\right)=-प\,इ^{-उ\sqrt{-१}}-$

$$\frac{\left(प\,इ^{-उ\sqrt{-१}}\right)^{२}}{२}-\frac{\left(प\,इ^{-उ\sqrt{-१}}\right)^{३}}{३}-\cdots\cdots\cdots$$

पहले को दूसरे में से घटाने पर,

$$प\left(इ^{उ\sqrt{-१}}-इ^{-उ\sqrt{-१}}\right)+\frac{प^{२}}{२}\times$$

$$\left(इ^{२\sqrt{-१}\,उ}-इ^{-२\sqrt{-१}\,उ}\right)+\frac{प^{३}}{३}$$

$$\left(इ^{३\sqrt{-१}\,उ}-इ^{-३\sqrt{-१}\,उ}\right)+\cdots\cdots$$

∴ समीकरण (घ) का रूप होगा,

$$स\sqrt{-१}=उ\sqrt{-१}+प\left(इ^{उ\sqrt{-१}}-इ^{-उ\sqrt{-१}}\right)$$

$$+\frac{प^२}{२}\left(इ^{२\sqrt{-१}\,उ}-इ^{-२\sqrt{-१}\,उ}\right)$$

$$+\frac{प^३}{३}\left(इ^{३\sqrt{-१}\,उ}-इ^{-३\sqrt{-१}\,उ}\right)+\cdots\cdots$$

अथवा $$स=उ+प\times\frac{इ^{उ\sqrt{-१}}-इ^{-उ\sqrt{-१}}}{\sqrt{-१}}$$

$$+\frac{प^२}{२}\times\frac{इ^{२उ\sqrt{-१}}-इ^{-२उ\sqrt{-१}}}{\sqrt{-१}}$$

$$+\frac{प^३}{३}\times\frac{इ^{३उ\sqrt{१}}-इ^{-३उ\sqrt{-१}}}{\sqrt{-१}}+\cdots\cdots$$

परन्तु $$\frac{इ^{३\sqrt{-१}}-इ^{-उ\sqrt{-१}}}{२\sqrt{-१}}=ज्या\ उ,$$

$$\frac{इ^{२उ\sqrt{-१}}-इ^{-२\,उ\sqrt{-१}}}{२\sqrt{-१}}=ज्या\ २\ उ,\ इत्यादि$$

इसलिये $$स=उ+प\times २ज्याउ+\frac{प^२}{२}\times २\ ज्या\ उ\ २\ उ$$

$$+\frac{प^३}{३}\times २ज्या३उ+\cdots\cdots$$

अथवा $$स=उ+२\Big(पज्याउ+\frac{प^२}{२}ज्या\ २उ+\frac{प^३}{६}ज्या३उ$$

$$+\frac{प^४}{४}ज्या४उ+\cdots\cdots\Big)\ (च)$$

यदि समीकरण (च) में उ, ज्या उ, ज्या २ उ, इत्यादि के स्थान पर इनके मान ऐसे रखे जायँ जिनमें उ न रहे वरन भ, द रहे जो समीकरण (१) से सम्भव है तो ऐसा समीकरण मिल जायगा जिसमें केवल स, भ और द रहेंगे और जो व्यवहार के लिए बहुत ही उपयोगी होगा। परन्तु उ, ज्या उ, ज्या २ उ इत्यादि के मान भ और द में रूप में तभी ज्ञात हो सकते हैं जब लैग्रेंज के सिद्धान्त (Lagrange's Theorem) के अनुसार उ, ज्या उ, ज्या २ उ इत्यादि का विस्तार किया जाय। इसलिए संक्षेप में पहले यह बतलाना चाहिये कि लैग्रेंज का सिद्धान्त क्या है। यह सिद्धान्त म० म० सुधाकर द्विवेदी के चलन कलन पृष्ठ १०७, ११० में तथा विलियमसन के 'डिफ़रेंशल कैलकुलस' पृष्ठ १५१—१५३ में दिया हुआ है। इस सिद्धान्त का रूप यह है :—

यदि र=ह+य. फ (र) ऐसा समीकरण हो जिसमें ह और य स्वतंत्र राशि हों और फ (र) ऐसा फलन (function) हों जो र के मान पर आश्रित हो तो र का कोई अन्य फलन

$$फि (र) = फि (ह) + य. फ (ह). फि' (ह)$$
$$+ \frac{य^२}{\lfloor २} \cdot \frac{ता}{ताह} \left\{ [फ(ह)]^२ फि' (ह) \right\}$$
$$+ \frac{य^३}{\lfloor ३} \cdot \frac{ता^२}{ता ह^२} \left\{ [फ(ह)]^३ फि'(ह) \right\} + \ldots\ldots$$
$$+ \frac{यन}{\lfloor न} \cdot \frac{ता^{न—१}}{ता(ह)^{न—१}} \left\{ [फ(ह)]^न फि'(ह) \right\} + \ldots$$

यहाँ फि' (ह), फि (ह) का पहला तात्कालिक सम्बन्ध $\frac{dy}{dx}$ है, तथा $\frac{ता}{ताह}$, $\frac{ता^२}{ताह^२}$, $\frac{ता^३}{ताह^३}$ इत्यादि आगे कोष्ठों में लिखे हुए पदों के पहले, दूसरे, तीसरे तात्कालिक सम्बन्ध हैं।

समीकरण (१) का रूप है,

भ.द=उ—च ज्या उ

या उ =भ.द + च ज्या उ

=म+च ज्या उ, जहाँ म=भद।

जो उसी रूप में है जिस रूप में

र=ह+य. फ (र)

जहाँ र, ह और य क्रमानुसार उ, म और च के समान हैं।

यदि फि (उ)=उ तो फि (म)=म और फि′ (म)=१

$$\therefore \text{उ} = \text{म} + \text{च. ज्याम. १} + \frac{\text{च}^{२}}{\underline{|२}} \frac{\text{ता}}{\text{ताम}} \left\{ [\text{ज्याम}]^{२}_{.१} \right\}$$

$$+ \frac{\text{च}^{३}}{\underline{|३}} \cdot \frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}} \left\{ (\text{ज्याम})^{३} \right\} + \frac{\text{च}^{४}.}{\underline{|४}} \frac{\text{ता}^{३}}{\text{ताम}^{३}} \left\{ [\text{ज्याम}]^{४}.\ १ \right\}$$

$$+ \frac{\text{च}^{५}}{\underline{|५}} \frac{\text{ता}^{४}}{\text{ताप}^{४}} \left\{ [\text{ज्याम}]^{५}_{.१} \right\} + \frac{\text{च}^{६}}{\underline{|६}.} \frac{\text{ता}^{५}}{\text{ताम}^{५}} \left\{ [\text{ज्याम}]^{६}\ .१ \right\} + \ldots \text{ इत्यादि}$$

लोनी की त्रिकोणमिति भाग २ के अनुसार ज्या म के किसी घात (ज्या म)न का विस्तार यदि न सम है तो यह होगा :—

$$\text{ज्या}^{\text{न}}\text{म} = \frac{१}{२^{\text{न}-१} \times (-१)^{\frac{\text{न}}{२}}} \left\{ \text{कोज्या नम} - \text{नकोज्या } (\text{न}-२)\text{म} \right.$$

$$+ \frac{\text{न}(\text{न}-१)}{\underline{|२}} \text{कोज्या } (\text{न}-४)\text{ म} - \frac{\text{न}(\text{न}-१)\ (\text{न}-२)}{\underline{|३}} \text{कोज्या } (\text{न}-६)\text{म}$$

$$\left. + \ldots\ldots \text{इत्यादि} \right\}$$

यदि न विषम हो तो,

$$\text{ज्या}^{\text{न}}\text{म} = \frac{१}{२^{\text{न}-१}\ (-१)^{\frac{\text{न}-१}{२}}} \left\{ \text{ज्यानम} - \text{नज्या } (\text{न}-२)\text{म} \right.$$

$$+ \frac{\text{न}\ (\text{न}-१)}{\underline{|२}} \text{ ज्या } (\text{न}-४)\text{ म} - \frac{\text{न}\ (\text{न}-१)\ (\text{न}-२)}{\underline{|३}}$$

$$\left. \text{ज्या } (\text{न}-६)\text{ म} + \ldots\ldots\ldots\ldots \text{इत्यादि} \right\}$$

$$\therefore \frac{\text{ता}}{\text{ताम}} \left\{ [\text{ज्या म}]^{२} \right\} = \frac{\text{ता}}{\text{ताम}} \left(\frac{१ - \text{कोज्या२म}}{२} \right) = \text{ज्या२म},$$

$$\frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{३}} \left(\text{ज्या}^{३}\text{म} \right) = \frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}} \left(\frac{३\text{ज्याम} - \text{ज्या३म}}{४} \right)$$

$$= \frac{६\text{ज्या३म} - ३\text{ज्याम}}{४}$$

$$= \frac{३}{४} (३\text{ज्या३म} - \text{ज्याम})$$

$$\frac{ता^3}{ताम^3}(ज्या^४ म) =$$

$$\frac{ता^3}{ताम^3}\left\{\frac{१}{२^3(-१)^२}\right.$$

$$\left.\times\left(कोज्या४म - ४कोज्या२म + \frac{२\times३}{|२}\times१\right)\right\}$$

$$= \frac{१}{२}(४^३ज्या४म - ४\times२^३ज्या२म)$$

$$= ४(२ज्या४म - ज्या२म)$$

$$\frac{ता^४}{ताम^४}(ज्या^५ ५) = \frac{ता^४}{ताम^४}\left\{\frac{१}{२^४(-१)^२}\right.$$

$$\left.\times\left(ज्या५म - ५ज्या३म + \frac{५\times४}{|२}ज्याम\right)\right\}$$

$$= \frac{१}{२^४}(५^४ज्याम५म - ५\times३^४ज्या३म + १०ज्याम)$$

$$\frac{ता^५}{ताम^५}(ज्या^५ ५) = \frac{ता^५}{ताम^५}\left\{\frac{१}{२^५(-१)^३}(कोज्या\ ६\ म\right.$$

$$\left. - ६\ कोज्या\ ४म + \frac{६\times५}{|२}कोज्या\ २\ म - \frac{६\times५\times४}{|३}\times\frac{१}{२})\right\}$$

$$= \frac{१}{२^५}(६^५\ ज्या\ ६म - ६\times४^५\ ज्या\ ४\ म + १५\times२^५\ ज्या\ २\ म)$$

$$\therefore उ = म + चज्याम + \frac{च^२}{२}ज्या\ २\ म + \frac{च^३}{|३}\times\frac{३}{४}(३\ ज्या३म - ज्याम$$

$$+ \frac{च^४}{|४}\times४(२\ ज्या\ ४\ म - ज्या\ २\ म) + \frac{च^५}{|५}\times\frac{१}{२^४}$$

$$\times(५^४\ ज्या\ ५\ म - ५\times३^४\ ज्या\ ३\ म + १०\ ज्या\ म)$$

$$+ \frac{च^६}{|६}\times\frac{१}{२^५}(६^५\ ज्या\ ६\ म - ६\times४^५\ ज्या\ ४\ म +$$

$$१५\times२^५\ ज्या\ २\ म) + \ldots\ldots\ldots$$

यदि ज्या म, ज्या २ म इत्यादि अलग करके एकत्र कर दिये जायँ तो

$$उ = म + \left(च - \frac{१}{८}च^३ + \frac{१}{१९२}च^५\right)ज्या\ म + \left(\frac{च^२}{२} - \frac{च^४}{६} + \frac{च^६}{४८}\right)$$

$$ज्या\ २म + \left(\frac{३च^3}{८} - \frac{२७च^५}{१२८}\right)ज्या\ ३\ म$$

$$+\left(\frac{च^4}{३}-\frac{४च^6}{१५}\right)ज्या\ ४\ म+\frac{१२५च^5}{३८४}ज्या\ ५\ म+\ldots\ldots$$

इस समीकरण में ज्या ६ म तथा इसके आगे की ज्याओं के गुणक और वे पद जिनमें च के छठें घात के आगे की संख्या वर्तमान है छोड़ दिये गये क्योंकि इनके मान नहीं के समान हैं।

समीकरण (१) को इस प्रकार भी लिख सकते हैं :—

$$च\ ज्या\ उ = उ - म$$

$$तब \quad ज्या\ उ = \frac{उ-म}{च}$$

जिसका यह अर्थ हुआ कि यदि उ के विस्तार में से म घटाया जाय और शेष को च से भाग दे दिया जाय तो ज्या उ का विस्तार हो जायगा। इसलिए

$$ज्या\ उ = \left(१-\frac{१}{८}च^2+\frac{१}{१९२}च^4\right)ज्या\ म$$
$$+\left(\frac{च}{२}-\frac{च^3}{६}+\frac{च^5}{४८}\right)ज्या\ २\ म$$
$$+\left(\frac{३}{८}च^2-\frac{२७}{१२८}च^4\right)ज्या\ ३\ म$$
$$+\left(\frac{च^3}{३}-\frac{४}{१५}च^5\right)ज्या\ ४\ म+\frac{१२५}{३८४}च^4\ ज्या\ ५\ म+\ldots$$

यदि फि (उ)=ज्या २ उ तो फि (म)=ज्या२म और फि′(म)= २ कोज्या २ म,

इसलिए लैग्रेंज के सिद्धान्त के अनुसार

$$ज्या\ २\ उ = ज्या\ २\ म + च\ ज्या\ म \times २\ कोज्या\ २\ म$$
$$+\frac{च^2}{\lfloor २}\frac{ता}{ताम}(ज्या^2\ म\times २\ कोज्या २म)$$
$$+\frac{च^3}{\lfloor ३}\frac{ता^2}{ताम^2}(ज्या^3\ म\times २\ कोज्या\ २\ म)$$
$$+\frac{च^4}{\lfloor ४}\frac{ता^3}{ताम^3}(ज्या^4\ म\times २\ कोज्या\ २\ म)$$
$$+\frac{च^5}{\lfloor ५}\frac{ता^4}{ताम^4}(ज्या^5\ म\times २\ कोज्या\ २\ म)+\ldots$$

जिसमें ज्या म × २ कोज्या २ म = ज्या ३ म — ज्या म,

$$\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}(\text{ज्या}^{२}\ \text{म} \times २\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म}$$

$$=\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\left(\frac{१-\text{कोज्या}\ २\ \text{म}}{२} \times २\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म}\right)$$

$$=\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}(\text{कोज्या}\ २\ \text{म}-\text{कोज्या}^{२}\ २\ \text{म})$$

$$=\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\left(\text{कोज्या}\ २\ \text{म} - \frac{१+\text{कोज्या}\ ४\ \text{म}}{२}\right)$$

$$= २\ \text{ज्या}\ ४\ \text{म} - २\ \text{ज्या}\ २\ \text{म},$$

$$\frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}}(\text{ज्या}^{3}\ \text{म} \times २\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म})$$

$$=\frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}}\left(\frac{३\ \text{ज्या}\ \text{म}-\text{ज्या}\ ३\ \text{म}}{४} \times २\ \text{कोज्या}\ २\text{म}\right)$$

$$=\frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}}\left(\frac{३\ \text{ज्या}\ \text{म}\ \ \text{कोज्या}\ २\ \text{म}-\text{ज्या}३\text{म}\ \ \text{कोज्या}\ \ २\text{म}}{२}\right)$$

$$=\frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}}\left\{\frac{३}{४}(\text{ज्या}\ ३\ \text{म}-\text{ज्या}\ \text{म})-\frac{१}{४}(\text{ज्या}\ ५\ \text{म}+\text{ज्या}\ \text{म})\right\}$$

$$=\frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}}\left\{\frac{१}{४}(३\ \text{ज्या}\ ३\ \text{म}-४\ \text{ज्या}\ \text{म}-\text{ज्या}\ ५\ \text{म})\right\}$$

$$=\frac{१}{४}(-३^{२}\ \text{ज्या}\ ३\ \text{म}+४\ \text{ज्या}\ \text{म}+५^{२}\ \text{ज्या}\ ५\ \text{म}),$$

$$\frac{\text{ता}^{3}}{\text{ताम}^{3}}(\text{ज्या}^{४}\ \text{म} \times २\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म})$$

$$=\frac{\text{ता}^{3}}{\text{ताम}^{3}}\left\{\frac{१}{८}(\text{कोज्या}\ ४\ \text{म}-४\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म}+३)\ २\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म}\right\}$$

$$=\frac{\text{ता}^{3}}{\text{ताम}^{3}}\left\{\frac{१}{८}(२\ \text{कोज्या}\ ४\ \text{म}\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म}-४.२\ \text{कोज्या}^{२}\ २\ \text{म} + ६\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म})\right\}$$

$$=\frac{\text{ता}^{3}}{\text{ताम}^{3}}\left\{\frac{१}{८}(\text{कोज्या}\ ६\ \text{म}+\text{कोज्या}\ २\ \text{म})-\frac{४}{८}(१+\text{कोज्या}\ ४\ \text{म})+\frac{६}{८}\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म}\right\}$$

$$=\frac{\text{ता}^{3}}{\text{ताम}^{3}}\left\{\frac{१}{८}(\text{कोज्या}\ ६\ \text{म}-४\ \text{कोज्या}\ ४\ \text{म}+७\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म}-४)\right\}$$

$=\frac{१}{८}$ (६^3 ज्या ६ म $-$ ४^४ ज्या ४ म $+$ ७ $\times$ २^3 ज्या २म)

$\therefore$ ज्या २ उ $=$ ज्या २म $+$ च(ज्या ३म $-$ ज्याम)

$$+\frac{च^2}{२}\text{ (२ ज्या ४ म - २ ज्या २ म)}$$

$$+\frac{च^3}{|३}\times\frac{१}{४}\text{ (२५ ज्या ५ म } - \text{ २७ ज्या ३म } + \text{ ४ ज्याम)}$$

$$+\frac{च^४}{|४}\times\frac{१}{८}\text{(२१६ ज्या ६ म } - \text{ २५६ ज्या ४ म}$$

$$+\text{ ५६ ज्या २ म)} + \ldots\ldots\ldots\ldots$$

$$=\left(-च+\frac{च^3}{६}\right)\text{ज्या म}+\left(१-च^2+\frac{७च^४}{२४}\right)\text{ज्या २ म}$$

$$+\left(च-\frac{९च^3}{८}\right)\text{ ज्या ३ म}+\left(च^2-\frac{४च^४}{३}\right)\text{ज्या ४ म}$$

$$+\frac{२५\,च^3}{२४}\text{ज्या ५ म} + \ldots\ldots\ldots$$

यदि फि (उ) $=$ ज्या३ उ तो फि (म) $=$ ज्या ३ म और फि$'$(म) $=$ ३ कोज्या ३ म, इसलिए लैग्रेंज के सिद्धान्त के अनुसार,

ज्या ३ उ $=$ ज्या ३ म $+$ च ज्या म $\times$ ३ कोज्या ३ म

$$+\frac{च^2}{|२}\;\frac{ता}{ताम}\text{ \{ज्या}^2\text{ म} \times \text{ ३ कोज्या ३ म\}}$$

$$+\frac{च^3}{|३}\;\frac{ता^2}{ताम^2}\text{\{ज्या}^3\text{ म} \times \text{ ३ कोज्या ३ म\}} + \ldots\ldots$$

$$=\text{ज्या ३ म} + \frac{३}{२}\text{च (ज्या ४ म} - \text{ज्या २ म)} + \frac{च^2}{२}\times\frac{३}{४}$$

$$\text{(५ ज्या ५ म - ६ ज्या ३ म} + \text{ज्या म)}$$

$$+\frac{च^3}{६}\times\frac{३}{८}\text{(३६ ज्या ६ म} - \text{ ४८ ज्या ४ म} + \text{ १२ ज्या २ म)} + \ldots$$

$$=\frac{३च^2}{८}\text{ज्या म}-\left(\frac{३च}{२}-\frac{३च^3}{४}\right)\text{ज्या २ म}$$

$$+\left(१-\frac{९च^2}{४}\right)\text{ ज्या ३ म}$$

$$+\left(\frac{३च}{२}-३च^{3}\right) ज्या\ ४\ म+\frac{१५च^{2}}{८} ज्या\ ५\ म$$

$$+\frac{९च^{3}}{४} ज्या\ ६\ म+\ldots\ldots$$

इसी तरह, ज्या ४ उ$=$ज्या ४ म$+$च ज्या म$\times$४ कोज्या ४ म

$$+\frac{च^{2}}{२}\frac{ता}{ताम}\{ज्या^{2}\ म\times ४\ कोज्या\ ४\ म\}$$

$$= ज्या\ ४\ म+२\ च\ (ज्या\ ५\ म-ज्या\ ३\ म)$$

$$+\frac{च^{2}}{२}(६\ ज्या\ म\ ६\ म-८\ ज्या\ ४\ म+२\ ज्या\ २\ म)$$

$$=च^{2}\ ज्या\ २\ म-२\ च\ ज्या\ ३\ म$$

$$+(१-४च^{2})\ ज्या\ ४\ म+२\ च\ ज्या\ ५\ म+\ldots\ldots$$

और ज्या ५ उ$=$ज्या ५ म$+\frac{५}{२}$ च (ज्या ६ म$-$ज्या ४ म)$+\ldots\ldots$

$$=-\frac{५च}{२} ज्या\ ४\ म+ज्या\ ५म+\frac{५च}{२} ज्या\ ६\ म+\ldots$$

इस प्रकार समीकरण (च) के उ, ज्या उ, ज्या २ उ इत्यादि के मान तो आ गये परन्तु इसके प, प^{२}, प^{3} इत्यादि के मान जानना रह गये। यहाँ प

$$\frac{\sqrt{१+च}-\sqrt{१-च}}{\sqrt{१+च}+\sqrt{१-च}}$$ के लिए रखा गया है।

इसके किसी घात का विस्तार लैग्रेंज के सिद्धान्त के अनुसार जाना जा सकता है। परन्तु पांच छः घात तक के विस्तार जिनमें च^{७} से अधिक अंक लाने की आवश्यकता नहीं है द्वियुक्पद सिद्धान्त (Binomial Theorem) से भी जाने जा सकते हैं जो यहाँ दिखलाये जाते हैं :—

$$प=\frac{\sqrt{१+च}-\sqrt{१-च}}{\sqrt{१+च}+\sqrt{१-च}}$$

$$=\frac{१-\sqrt{१-च^{2}}}{च}$$

$$=\frac{१}{च}(१-\sqrt{१-च^{2}})$$

$$=\frac{१}{च}\left\{१-(१-च^{2})^{\frac{१}{२}}\right\}$$

$$=\frac{१}{च}\left(\frac{च^२}{२}+\frac{च^४}{८}+\frac{च^३}{१६}+\ldots\ldots\right)$$

$$=\frac{च}{२}+\frac{च^३}{८}+\frac{च^५}{१६}+\ldots\ldots$$

$$प^२=\left(\frac{च}{२}+\frac{च^३}{८}+\frac{च^५}{१६}\right)^२$$

$$=\frac{च^२}{४}+\frac{च^४}{८}+\frac{५च^६}{६४}+\ldots\ldots$$

$$प^३=\left(\frac{च}{२}+\frac{च^३}{८}+\frac{च^५}{१६}\right)\left(\frac{च^२}{४}+\frac{च^४}{८}+\frac{५च^६}{६४}\right)$$

$$=\frac{च^३}{८}+\frac{३च^५}{३२}+\frac{९च^७}{१२८}+\ldots\ldots$$

$$प^४=\left(\frac{च^२}{४}+\frac{च^४}{८}+\frac{५}{६४}च^६\right)^२$$

$$=\frac{च^४}{१६}+\frac{च^६}{१६}+\ldots\ldots$$

$$=प^५\left(\frac{च^४}{१६}+\frac{च^६}{१६}\right)\left(\frac{च}{२}+\frac{च^३}{८}+\frac{च^५}{१६}\right)$$

$$=\frac{च^५}{३२}+\ldots\ldots\ldots$$

अब समीकरण (च) में प, $प^२$, $प^३$ इत्यादि तथा उ, ज्या उ, ज्या २ उ इत्यादि के विस्तृत मान उत्थापन किये जायं तो इसका रूप यह होगा :—

$$स=म+\left(च-\frac{च^३}{८}+\frac{च^५}{१९२}\right)ज्याम+\left(\frac{च^२}{२}-\frac{च^५}{६}+\frac{च^६}{४८}\right)ज्या२म$$

$$+\left(\frac{३च^३}{८}-\frac{२७च^५}{१२८}\right)ज्या\ ३\ म$$

$$+\left(\frac{च^४}{३}-\frac{४च^६}{१५}\right)ज्या४\ म+\frac{१२५च^५}{३८४}ज्या\ ५\ म\ +$$

$$+२\left\{\left(\frac{च}{२}+\frac{च^५}{१६}\right)\left[\left(१-\frac{च^२}{८}+\frac{च^४}{१९२}\right)ज्या\ म\right.\right.$$

$$+\left(\frac{च}{२}-\frac{च^२}{६}+\frac{च^५}{४८}\right)ज्या\ २\ म$$

$$+\left(\frac{३च^२}{८}-\frac{२७च^५}{११८}\right) ज्या\ ३\ म+\left(\frac{च^३}{३}-\frac{४च^५}{१५}\right)\times ज्या\ ४\ म$$

$$+\frac{१२५च^५}{३८४} ज्या\ ५\ म+\cdots\cdots]$$

$$+\frac{१}{२}\left(\frac{च^२}{४}+\frac{च^४}{८}+\frac{५च^६}{६४}\right)\left[\left(-च+\frac{च^३}{६}\right) ज्या\ म\right.$$

$$+\left(१-च^२+\frac{७च^४}{२४}\right) ज्या\ २\ म$$

$$+\left(च-\frac{९च^३}{८}\right) ज्या\ ३\ म+\left(च^२-\frac{४च^५}{३}\right)\times ज्या\ ४\ म$$

$$\left.+\frac{२५च^३}{२५}\ ज्या\ ५\ म+\cdots\cdots\right]$$

$$+\frac{१}{२}\left(\frac{च^३}{८}+\frac{३च^५}{३२}\right)\left[\frac{३च^२}{८} ज्या\ म-\left(\frac{३च}{२}-\frac{३च^३}{४}\right)\times ज्या\ २\ म\right.$$

$$+\left(१-\frac{९च^२}{४}\right) ज्या\ ३\ म+\left(\frac{३च}{२}-३च^३\right)\times ज्या\ ४\ म$$

$$\left.+\frac{१५च^२}{८} ज्या\ ५म+\frac{९च^३}{४}\ ज्या\ ६\ म+\cdots\cdots\right]$$

$$+\frac{१}{४}\left(\frac{च^४}{१६}+\frac{च^६}{१६}\right)\left[च^२\ ज्या\ २\ म-२\ च\ ज्या\ ३\ म\right.$$

$$\left.+(१-४च^२)\ ज्या\ ४\ म+२\ च\ ज्या\ ५\ म\ \right]$$

$$\left.+\frac{१}{५}\times\frac{च^५}{३२}\left[-\frac{५च}{२}\ ज्या\ ४\ म+ज्या\ ५\ म+\frac{५च}{२}\ ज्या\ ६\ म\right]\right\}$$

स के इस मान में ज्या ६ म के आगे के पद तथा वह सब पद जिनके गुणक $च^६$ या उससे अधिक हैं छोड़ दिये गये हैं क्योंकि इससे कोई विशेष अशुद्धि नहीं हो सकती। इस मान को सरल करने पर ऐसे पद भी मिलेंगे जिनके गुणक $च^६$ से अधिक हैं। इनको भी छोड़ देने तथा ज्या म, ज्या २ म इत्यादि के गुणक एकत्र करने पर

$$स=म+\left(२च-\frac{१}{४}च^३+\frac{५}{९६}च^५\right) ज्या\ म$$

$$+\left(\frac{५}{४}च^२-\frac{११}{२४}च^४+\frac{१७}{१९२}च^६\right) ज्या\ २\ म$$

$$+\left(\frac{१३}{१२}च^{३}-\frac{४३}{६४}च^{५}\right) \text{ज्या ३ म}$$

$$+\left(\frac{१०३}{९६}च^{४}-\frac{४५१}{४८०}च^{६}\right)\text{ज्या ४ म} + \frac{१०९७}{९६०}च^{५}\text{ज्या ५म} \qquad (छ)$$

मध्यम और स्पष्ट ग्रह का सम्बन्ध प्रकट करने के लिए यही प्रधान समीकरण है। इससे यह जाना जाता है कि यदि द्रष्टा सूर्य के मध्यम में हो तो किसी ग्रह के मध्यम और स्पष्ट स्थान अपने अपने कक्षावृत्त में किस समय क्या होते हैं। जिस ग्रह की केन्द्र च्युति च के स्थान में रखी जायगी उसी ग्रह के मध्यम और स्पष्ट स्थानों का सम्बन्ध समीकरण (छ) से जाना जा सकता है। व्यवहार में सुविधा के लिए ज्या म, ज्या २म इत्यादि के गुणकों को च का यथार्थ मान रखकर सरल सरके एक संख्या में प्रकट किया जा सकता है। जैसे गुरु की केन्द्र च्युति* ०.०४८२५४ है, इसलिए

$$च=०.०४८२५४$$
$$च^{२}=०.००२३२८४$$
$$च^{३}=०.०००११२४$$
$$च^{४}=०.००००५४$$

$च^{५}$, $च^{६}$ के मान जानने की आवश्यकता नहीं क्योंकि दशमलव के छठे स्थान में यदि ५ का अंक हो और वह छोड़ दिया जाय तो १ विकला की अशुद्धि हो सकती है। इसलिए,

$$स=म+(.०९६५०८ - .००००२८१)\text{ ज्या म}$$
$$+(.००२९१०६ - .०००००२५)\text{ ज्या २म}$$
$$+.०००१२१८\text{ ज्या ३म}+.००००५८\text{ ज्या४म}$$

अथवा $स=म+.०९६४७९९\text{ ज्या म}+.००२९०८१\text{ ज्या २म}$
$$+.०००१२१८\text{ज्या ३म} +.००००५८\text{ज्या ४म} \qquad (ज)$$

यह समीकरण सूर्य केन्द्रगत गुरु का स्पष्ट स्थान जानने के लिए पर्याप्त है। यदि म, २ म, ३ म इत्यादि की ज्याएँ भारतीय रीति से कला या विकला में प्रयोग की जायँ तो समीकरण (ज) के दाहिने पक्ष में म के अतिरिक्त जो कुछ आवेगा वह

*केन्द्र च्युति कई कारणों से स्थिर नहीं रहती वरन् अत्यंत मंदगति से बदलती रहती है, इसलिए भिन्न-भिन्न काल में इसका मान कुछ भिन्न होता है। यह केन्द्र च्युति संवत् १९५६ वि० के अंत की है।

कला या विकला में होगा और सूर्य के मध्य से यही गुरु का मंदफल होगा। यदि ज्याओं को आजकल की रीति से भिन्न में प्रकट किया जाय तो सरल करने पर म के अतिरिक्त जो संख्या दशमलव भिन्न में आवेगी वह रेडियन में होगी जिसकी कला या विकला बनाने के लिए ३४३७.७५ या २०६२६५ से गुणा करना होगा। दोनों रीतियों से फल एक ही होगा।

गुरु के लिए जिस तरह समीकरण (ज) प्राप्त किया गया है उसी तरह प्रत्येक ग्रह के लिए उसकी केन्द्र च्युति को समीकरण (छ) में उत्थापन करने से एक सरल सूत्र प्राप्त हो सकता है। प्रत्येक ग्रह की केन्द्र च्युति तथा अन्य आवश्यक बातें आगे एक सारणी में दे दी जायेंगी।

सूर्य के मध्य से ग्रह की दूरी किस समय क्या होती है यह जानने के लिए एक समीकरण है जो समीकरण (२) अर्थात् कर्ण = त(१ – च कोज्या उ) से लैग्रेंज सिद्धान्त के अनुसार १ – च कोज्या उ का मान जान लेने से आ जाता है। लैग्रेंज सिद्धान्त के अनुसार,

$$१ - \text{च कोज्या उ} = (१ - \text{च कोज्या म}) + \text{च ज्या म}\,\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}$$

$$(१ - \text{च कोज्या म}) + \frac{\text{च}^२}{\underline{|२}}\cdot\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\left\{\text{ज्या}^२\,\text{म} \times \text{च ज्या म}\right\}$$

$$+ \frac{\text{च}^3}{\underline{|३}}\cdot\frac{\text{ता}^२}{\text{ताम}^२}\left\{\text{ज्या}^3\,\text{म} \times \text{च ज्या म}\right\}$$

$$= १ - \text{च कोज्या म} + \frac{\text{च}^२}{२} - \frac{\text{च}^२}{२}\text{कोज्या २ म}$$

$$+ \frac{३}{८}\text{च}^3\,\text{कोज्या म} - \frac{३}{८}\text{च}^3\,\text{कोज्या ३ म} - \frac{\text{च}^४}{३} \times \text{कोज्या ४ म}$$

$$+ \frac{\text{च}^४}{३}\text{कोज्या २ म} + \ldots\ldots\ldots\ldots$$

$$= \left(१ + \frac{\text{च}^२}{२}\right) - \text{च}\left(१ - \frac{३}{८}\text{च}^२\right)\text{कोज्या म} - \frac{\text{च}^२}{२}$$

$$\left(१ - \frac{२}{३}\text{च}^२\right)\text{कोज्या २ म}$$

$$- \frac{३}{८}\text{च}^3\,\text{कोज्या ३ म} + \ldots\ldots\ldots$$

$$\therefore \text{ कर्ण} = \text{त}\left\{\left(१+\frac{\text{च}^२}{२}\right) - \text{च}\left(१-\frac{३}{८}\text{च}^२\right)\text{कोज्या म} - \frac{\text{च}^२}{२}\left(१-\frac{२}{३}\text{च}^२\right)\text{कोज्या २ म} - \frac{३}{८}\text{च}^३\text{ कोज्या ३ म}\right\} \quad (\text{झ})$$

गुरु के कर्ण के लिए समीकरण (झ) का रूप होगा,

५२०२.८{(१+.००११६४२)—(.०४८२५४—.०००४२१)
कोज्या म—(.००११६४२—.००००१८) कोज्या २ म
—.०००४२१ कोज्या ३ म}

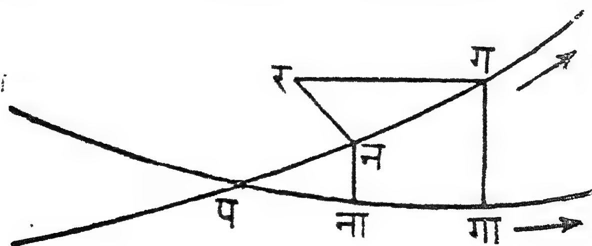
अथवा ५२०२.८(१.००११६४२—.०४८२११६ कोज्या म
—.००११६२४ कोज्या २ म—.०००४२१ कोज्या ३ म)

अथवा ५२०८.८६—२५१.०६ कोज्या म—६.०५
कोज्या २ म—.२२ कोज्या ३ म

५२०२.८ सूर्य से गुरु का मध्यम कर्ण है जब कि पृथ्वी का मध्यम कर्ण १००० समझा जाय। इसी तरह अन्य ग्रहों के कर्ण जानने का सूत्र सरल हो सकता है।

समीकरण (छ) से ग्रह का जो स्पष्ट केन्द्र आता है वह उसके नीच (Perihelion) से कक्षावृत्त में ग्रह की दूरी होता है। यदि ग्रह का कक्षावृत्त पृथ्वी के कक्षावृत्त अर्थात् क्रान्तिवृत्त के ही धरातल में होता तो यही क्रान्तिवृत्त में भी ग्रह की दूरी होता। परन्तु प्रत्येक ग्रह के कक्षावृत्त का धरातल क्रान्तिवृत्त के धरातल से कुछ कोण बनाता है जिसे ग्रह का परम शर कहते हैं और जिसकी चर्चा पहले अध्याय में अंतिम तीन चार श्लोकों में की गयी है इसलिए कक्षावृत्तीय स्पष्ट केन्द्र में कुछ संस्कार करने से क्रान्तिवृत्तीय स्पष्ट केन्द्र आता है।

मान लो प ग ग्रह का कक्षावृत्त और प गा क्रान्तिवृत्त है, प ग्रह का उत्तर-पात है, र सूर्य का मध्य है तथा न ग्रह का नीच (Perihelion) हैं। ग ग्रह का स्पष्ट



चित्र ३३

स्थान और ग गा क्रान्तिवृत्त पर लम्ब है अर्थात् गा ग वृत्त क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव पर जाता है। तब <न र ग कक्षावृत्तीय स्पष्ट केन्द्र तथा र ग की दूरी ग्रह का स्पष्ट कर्ण हैं जो (छ) और (झ) समीकरणों के अनुसार जाने जाते हैं। न से न ना लम्ब भी क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव पर जाता है। क्रान्तिवृत्त में ना और गा विन्दुओं के बीच की जो दूरी है वही ग का क्रान्तिवृत्तीय स्पष्ट केन्द्र कहलाती है। नेपियर के नियमों के अनुसार प ना और प गा दूरियों को सहज ही जान सकते हैं। फिर दोनों का अन्तर जान लेने से ना गा दूरी (क्रातिवृत्तीय स्पष्ट केन्द्र) जानी जा सकती है। परन्तु व्यवहार में सरलता उस समय होती है जिस समय केवल यह जानना रहता है कि प न या प ग में क्या घटाया बढ़ाया जाय कि प ना और प गा का मान निकल आवे। जितना घटाने या बढ़ाने से, पात से ग्रह की क्रान्तिवृत्तीय दूरी निकलती है उसको परिणति सकते हैं। इसलिए यह जानना चाहिये कि परिणति कैसे निकालते हैं। परिभाषा के अनुसार

नीच परिणति=प न—प ना

ग्रह परिणति=प ग—प गा

ग गा को ग्रह का इष्टकालिक शर, <ग प गा को ग्रहका परम शर, प ग को पात से ग्रह की दूरी या विपात ग्रह कहते हैं। <ग गा प समकोण है इसलिए ग प गा गोलीय समकोण त्रिभुज है और नेपियर के नियमों के अनुसार,

(१) ज्या (९०°—प ग) = कोज्या (ग गा)×कोज्या प गा

(२) ज्या (ग गा)=कोज्या (९०°—ग प गा)×कोज्या (९०°—पग)

(३) स्परे (ग गा)=ज्या (प गा)×स्परे (ग प गा)

(४) स्परे (प गा)=कोज्या (ग प गा) स्परे (प ग)

ज्या (प ग—प गा)=ज्या (प ग) कोज्या (प गा)

—कोज्या (प ग) ज्या (प गा) (ट)

पहले चार सूत्रों से कोज्या (प गा) और ज्या (प गा) के मान परम शर, इष्टकालिक शर और विपात ग्रह में स्थापित करना चाहिए। सूत्र (३) से

$$\text{ज्या (प गा)} = \frac{\text{स्परे (ग गा)}}{\text{स्परे (ग प गा)}}$$

$$\text{सूत्र (४) से, } \frac{\text{ज्या (प गा)}}{\text{कोज्या (प गा)}} = \text{कोज्या (ग पगा) स्परे (प ग)}$$

$$\therefore \text{कोज्या (प गा)} = \frac{\text{ज्या (प गा)}}{\text{कोज्या (ग प गा)} \times \text{स्परे (प ग)}}$$

$$= \frac{\text{स्परे (ग गा)}}{\text{स्परे (ग प गा)}} \times \frac{१ \times \text{कोज्या (प ग)}}{\text{कोज्या (ग प गा)} \times \text{ज्या (प ग)}}$$

$$= \frac{\text{स्परे (ग गा)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} \times \frac{\text{कोज्या (प ग)}}{\text{ज्या (प ग)}}$$

ज्या (प गा) और कोज्या (प गा) के मानों को समीकरण (ट) में उत्थापन करने से,

$$\text{ज्या (प ग} - \text{प गा)} = \text{ज्या (प ग)} \times \frac{\text{स्परे (ग गा)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} \times \frac{\text{कोज्या (प ग)}}{\text{ज्या (प ग)}} - \text{कोज्या (प ग)} \times \frac{\text{स्परे (ग गा)}}{\text{स्परे (ग प गा)}}$$

$$= \frac{\text{स्परे (ग गा)} \times \text{कोज्या (प ग)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} - \frac{\text{कोज्या (प ग)} \times \text{स्परे (ग गा)}}{\text{स्परे (ग प गा)}}$$

$$= \frac{\text{स्परे (ग गा) कोज्या (प ग)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} \left\{ १ - \text{कोज्या (ग प गा)} \right\}$$

$$= \frac{\text{ज्या (ग गा)}}{\text{कोज्या (ग गा)}} \times \frac{\text{कोज्या (प ग)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} \times \text{उत्क्रम ज्या (ग प गा)}$$

परन्तु सूत्र (२) से, $\frac{\text{ज्या (ग गा)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} = \text{ज्या (प ग)}$

$$\therefore \text{ज्या (प ग} - \text{प गा)} = \frac{\text{ज्या (प ग) कोज्या (प ग)}}{\text{कोज्या (ग गा)}} \times \text{उत्क्रम ज्या (ग प गा)}$$

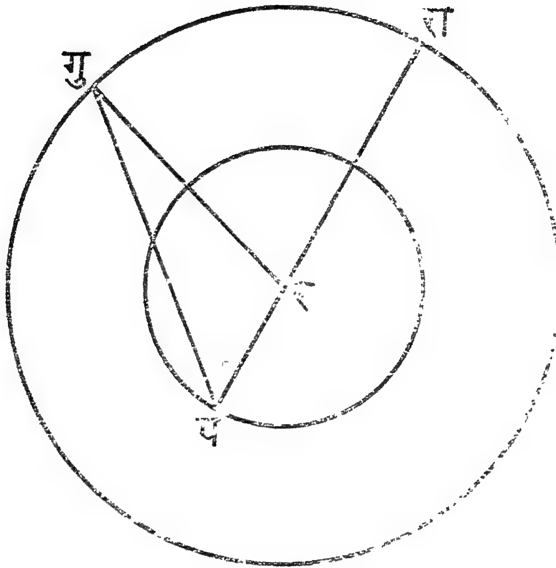
बुध को छोड़ कर सब ग्रहों का परम शर ३°.४ से अधिक नहीं है इसलिए इनका इष्टकालिक शर और भी छोटा होगा; जिससे यह मान लेने में कोई अशुद्धि नहीं है कि कोज्या (ग गा) एक के समान है। ऐसी दशा में,

$$\text{ज्या (प ग} - \text{प गा)} = \text{ज्या (प ग) कोज्या (प ग)} \times \text{उत्क्रम ज्या (ग प गा)}$$
$$= \tfrac{1}{2} \text{ ज्या २ (प ग) उत्क्रम ज्या (ग प गा)}$$

अर्थात् $\text{ज्या (परिणति)} = \tfrac{1}{2} \text{ परम शरोत्क्रम ज्या} \times \text{ज्या २ (विपातग्रह)}$ (ठ)

इस समीकरण से ग्रह और उसके नीच दोनों की परिणित जानकर क्रान्ति-वृत्तीय स्पष्ट केन्द्र जाना जा सकता है।

अब यह जानना रह गया कि पृथ्वी के मध्य से ग्रह किस दिशा में और कितनी दूर देख पड़ता है। यह तो स्वयंसिद्ध है कि पृथ्वी से किसी ग्रह की दिशा और दूरी जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि पृथ्वी स्वयं कहाँ है।



चित्र ३४

यह समीकरण (छ) से ही जाना जाता है क्योंकि इसी की कक्षा के धरातल में तो अन्य ग्रहों की परिणति करनी पड़ती है। जब पृथ्वी का स्थान निश्चित हो गया तब सूर्य का स्थान सहज ही जाना जा सकता है; क्योंकि सूर्य से पृथ्वी जिस दिशा में देख पड़ती है उससे १८०° पर पृथ्वी से सूर्य दीखेगा। इसलिए पृथ्वी के स्पष्ट केन्द्र में १८०° जोड़ने या घटाने से सूर्य का स्थान निकल आता है। ग्रह के क्रान्तिवृत्तीय स्पष्ट केन्द्र से सूर्य का स्थान घटा देने पर शीघ्र-केन्द्र जाना जा सकता है। चित्र ३४ में र प और गु क्रम से सूर्य पृथ्वी और वृहस्पति के स्थान हैं। र वह बिन्दु है जहाँ सूर्य पृथ्वी के मध्य से देख पड़ता है; इसलिए रा र गु कोण वृहस्पति का शीघ्र केन्द्र हुआ। प र गु कोण १८०°— रा र गु कोण के समान है। इसलिए प र गु त्रिभुज के दो भुज प र और गु र ज्ञात हैं, क्योंकि यह सूर्य से पृथ्वी और गुरु की दूरी अर्थात् पृथ्वी और गुरु के स्पष्ट कर्ण हैं और इनके बीच का कोण प र गु भी ज्ञात है। इसलिए प गु, ∠र प गु और ∠प गु र भी जाने जा सकते हैं, क्योंकि लोनी की त्रिकोणमिति भाग १ पृष्ठ १०४ अथवा हाल और नाइट की त्रिकोणमिति पृष्ठ १७१ से स्पष्ट है कि

$$\text{स्परे}\frac{\text{र प गु} - \text{र गु प}}{२} = \frac{\text{र गु} - \text{र प}}{\text{र गु} + \text{र प}}\ \text{स्परे}\ \frac{\text{र प गु} + \text{र गु प}}{२}$$

$$\text{परन्तु } \angle\text{र प गु} + \angle\text{र गु प} = \angle\text{रा र गु} = \text{शीघ्र केन्द्र}$$

$$\therefore \text{स्परे} \frac{\text{र प गु} - \text{र गु प}}{२} = \frac{\text{र गु} - \text{र प}}{\text{र गु} + \text{र प}} \text{ स्परे} \frac{\text{शीघ्र केन्द्र}}{२}$$

जिससे र प गु—र गु प ज्ञात हो सकता है। और $\angle$र गु प + $\angle$र प गु ज्ञात ही है; इसलिए इन दोनों को जोड़कर आधा कर देने से र प गु कोण जाना जा सकता है। यही कोण बृहस्पति और सूर्य के बीच का कोण है जो पृथ्वी से देख पड़ता है। इसी को इनान्तर कहते हैं क्योंकि इन सूर्य का पर्याय है।

पृथ्वी से गुरु की दूरी गु प जिसे शीघ्र कर्ण कहते हैं त्रिकोणमिति के अनुसार इस प्रकार जान सकते हैं :—

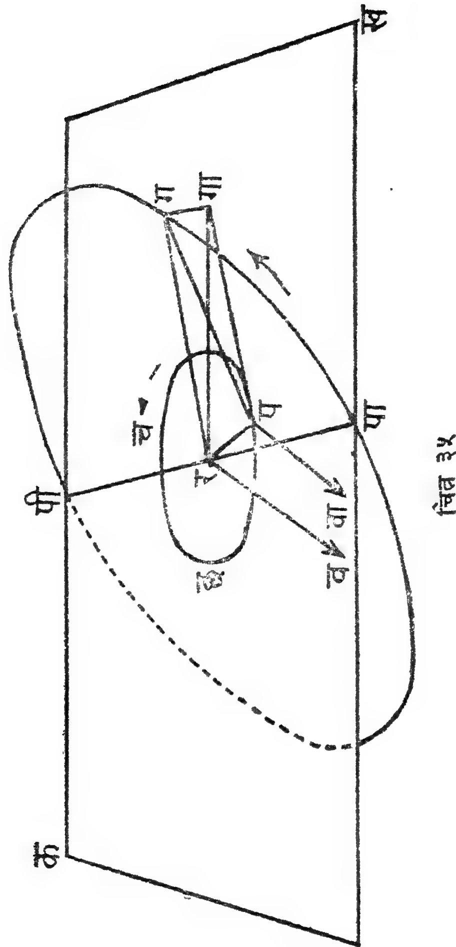
$$\frac{\text{गु प}}{\text{ज्या}\angle\text{प र गु}} = \frac{\text{गु र}}{\text{ज्या}\angle\text{र प गु}}$$

परन्तु ज्या प र गु = ज्या रा र गु = ज्या शीघ्र केन्द्र

$$\therefore \text{शीघ्र कर्ण} = \text{ज्या शीघ्र केन्द्र} \times \text{ग्रह का मंद कर्ण} \times \frac{१}{\text{ज्या इनान्तर}} \qquad (\text{ड})$$

यह इनान्तर और शीघ्र कर्ण क्रान्तिवृत्तीय धरातल के हैं अर्थात् उस दशा के हैं यदि ग्रह क्रान्तिवृत्त में देख पड़ता परन्तु यथार्थ में ग्रह कुछ उत्तर या दक्खिन रहता है। इसलिए शीघ्र कर्ण को यदि ग्रह के इष्टकालिक शर की कोटिज्या से भाग दे दिया जाय तो यथार्थ शीघ्र कर्ण ज्ञात हो जायगा। इसी प्रकार क्रान्तिवृत्तीय इनान्तर में भी संस्कार करने से यथार्थ इनान्तर जाना जाता है। चित्र ३५ से जो गाडफ्रे की 'एस्ट्रोनोमी' पृष्ठ २७४ के अनुसार है यह सब बातें एकसाथ ही स्पष्ट होती हैं—

क ख क्रान्तिवृत्तीय धरातल है, जिसमें पृथ्वी की कक्षा अर्थात् क्रान्तिवृत्त प च छ है। कक्षावृत्त पा ग पी है, जो क्रांतिवृत्तीय धरातल को पा पी विन्दुओं पर काटता है। पा उत्तर पात और पी दक्षिण पात हैं। र, प और ग क्रम से सूर्य, पृथ्वी और ग्रह के यथार्थ स्थान हैं; ग से ग गा क्रान्तिवृत्तीय धरातल पर लम्ब गिराया गया है; व वसंत संपात विन्दु है; $\angle$ग र गा और व र गा ग्रह के सूर्य केन्द्रीय शर और भोगांश (Longitude) हैं। $\angle$ग प गा और $\angle$ वा प गा ग्रह के भूकेन्द्रीय शर और भोगांश हैं। प वा र व समानान्तर हैं। $\angle$व र प सूर्यकेन्द्रीय पृथ्वी का भोगांश है; इसलिए $\angle$व र प + १८० भूकेन्द्रीय सूर्य का भोगांश है। र प गा त्रिभुज चित्र ३४ के त्रिभुज र प गु से मिलता है। प गा ग्रह का क्रान्तिवृत्तीय शीघ्र कर्ण और $\angle$र प गा क्रान्तिवृत्तीय इनान्तर है; प ग यथार्थ शीघ्रकर्ण और $\angle$र प ग यथार्थ इनान्तर है।



चित्र ३५

$$\text{प ग} = \frac{\text{प गा}}{\text{कोज्या} \angle \text{ग प गा}}$$

आधुनिक ज्योतिर्विज्ञान के अनुसार ग्रहों के स्पष्ट स्थान जानने की जो रीति बतलायी गयी है वह दिग्दर्शन मात्र है। इस क्रिया से जो स्पष्ट स्थान जाना जाता है उसमें और प्रत्यक्ष बेध द्वारा जाने गये स्थानों में कुछ सूक्ष्म अंतर देख पड़ता है। इसका कारण यह है कि किसी ग्रह पर केवल सूर्य का ही आकर्षण नहीं होता वरन् अन्य ग्रह और उपग्रहों का भी होता है जिनके कारण वह उस स्थान से कुछ विचलित

देख पड़ता है जो उपर्युक्त रीति से जाना जाता है। इसलिए सूक्ष्मतापूर्वक शुद्ध स्थान जानना हो तो अन्य ग्रहों के आकर्षण के कारण जो परिवर्तन होता है उसका संस्कार भी करना चाहिये। परन्तु यह विषय बहुत गंभीर है। इसकी पूरी जानकारी के लिए भौतिक ज्योतिर्विज्ञान (Physical astronomy), गति विज्ञान (Dynamics), चलन कलन, चलराशिकलन इत्यादि उच्च गणित की जानकारी भी आवश्यक है। इसलिए विस्तार भय से उसका विचार यहाँ नहीं किया जायगा।

ऊपर बतलाई गयी रीति से यदि चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान निकाला जाय तो देखा जाता है कि वेध द्वारा जाना गया स्थान उससे कभी-कभी तीन-तीन अंश आगे पीछे होता है। इसका कारण यह है कि चंद्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमते हुए इसके साथ सूर्य की परिक्रमा भी एक वर्ष में कर लेता है; इसलिए चंद्रमा पर पृथ्वी के आकर्षण के साथ-साथ सूर्य के आकर्षण का प्रभाव भी बहुत पड़ता है जिससे चंद्रमा का विचलन बहुत बड़ा रूप धारण कर लेता है। इसलिए चंद्रमा के सम्बन्ध में कुछ मुख्य संस्कार करने की आवश्यकता पड़ती है जिनकी चर्चा संक्षेप में की जाती है।

सबसे पहले केपलर के नियम के अनुसार जो मंद फल संस्कार करना चाहिए उसका सरल रूप बतला देना आवश्यक है। चंद्रमा की केन्द्रच्युति* १८५४ ई० के आरंभ में ०·०५४८४४२ थी।

इसलिए च = ०.०५४८४४२

$च^2$ = .००३००७९

$च^3$ = .०००१६४९६

$च^4$ = .०००००९०५

$च^5$ या इसके आगे की संख्याओं के मान जानने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह अत्यन्त छोटे हैं। च के घातों के इन मानों का समीकरण (छ) में उत्थापन करने से चन्द्रमा के मंदफल संस्कार का रूप यह होगा :—

स = म + (·१०९६८८४ — ·००००४१२४) ज्या म

+ (·००३७५९९ — ·००००४१५) ज्या म

+ ·०००१७८७ ज्या ३ म

+ ·०००००९७ ज्या ४ म

= म + .१०९६४७१६ ज्या म + .००३७५५७५ ज्या २ म

+ .०००१७८७ ज्या ३ म + .०००००९७ ज्या ४ म

यदि म, २ म, ३ म की ज्याओं को आधुनिक रीति से दशमलव भिन्न में लिखा जाय तो ज्या म, ज्या २ म के गुणकों को जो रेडियन में हैं, कलाओं या

*देखो Loomi's Practical Astronomy, पृष्ठ ४६२।

विकलाओं में लिखने के लिए ३४३७·७५ या २०६२६५ से गुणा कर देने से और भी सरलता होगी क्योंकि एक रेडियन ३४३७.७५ कला या २०६२६५ विकला के लगभग होती है। ऐसा करने से इसका रूप यह होगा :—

स=म+३७६′५६″.४ ज्या म+१२′५४″.७ ज्या २ म
+३६″.९ ज्या ३ म+२″.० ज्या ४ म

यहाँ यह याद रखना चाहिये कि म मन्द केन्द्र आजकल की रीत्यानुसार नीच (perigee) से समझा गया है। यदि मन्द केन्द्र पुरानी परिपाटी के अनुसार उच्च से समझा जाय तो

स=म−३७६′५६″.४ ज्या म+१२′५४″.७ ज्या २ म
−३६″.९ ज्या ३ म+२″.० ज्या ४ म

इसी प्रकार अन्य ग्रहों के प्रधान समीकरण के ज्या म, ज्या २ म, इत्यादि के गुणकों को कलाओं या विकलाओं में लिखा जा सकता है।

इस समीकरण के दाहिने पक्ष में म मन्द केन्द्र अर्थात् उच्च से मध्यम चंद्र का भोगांश है, शेष मन्द फल है जिसका संस्कार मन्द केन्द्र में करने से स्पष्ट चंद्र सिद्ध होता है। यह स्पष्ट है कि इस मन्द फल में पहला पद अर्थात् ३७६′५६″.४ ज्या म बहुत बड़ा है, इसके पीछे दूसरा पद १२′५४″.७ ज्या २ म है। परन्तु जिस समय म का मान ९०° होता है उस समय ज्या म का मान १ और ज्या २ म का मान शून्य होता है इसलिए परम मन्द फल का मान पहले ही पद पर अवलंबित रहता है और प्रायः ३७७′ अर्थात् ६°१७′ के समान होता है। परन्तु हमारे ज्योतिषियों ने चंद्रमा के परम मन्द फल का मान ५° के लगभग माना है इसलिए यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इतना अन्तर क्यों है ?

जब परम मंद फल का मान ३७६′५६″.४ ज्या म समझ कर चंद्रमा का स्पष्ट स्थान निकाला जाता है तब इसको बेध करके मिलाने पर देख पड़ता है कि प्रत्यक्ष स्थान और गणित-सिद्ध स्थानों में कभी-कभी अधिक से अधिक अंतर १° २०′ का होता है। कई वर्ष तक निरन्तर बेध करने पर यह बात प्रत्यक्ष हो जाती है कि अमावस या पूर्णिमा के दिन जब चंद्रमा मन्दोच्च से ९०° के लगभग दूर रहता है तब मंदफद संस्कृत स्पष्ट चन्द्र से वेध-सिद्ध चंद्रमा १°२०′ आगे रहता है और जब चंद्रमा मंदोच्च २७०° अथवा नीच से ९०° आगे रहता है तब मंदफल-संस्कृत-स्पष्ट-चंद्र से बेध-सिद्ध चंद्रमा १°२०′ पीछे रहता है। पहली दशा में मंदफल का संस्कार—३७६′५६″.४ अथवा—६°१६′५६″.४ होता है अर्थात् मध्यम ग्रह में ६°१६′५६″.४ घटाने से मंदफल संस्कृत स्पष्ट ग्रह आता है। परन्तु इससे बेध-सिद्ध ग्रह १°२०′ आगे रहता

है इसलिए मंदफल संस्कृत स्पष्ट ग्रह में १°२०′ जोड़ना चाहिए। इसलिए यदि ६°१६′५६″.४ घटाने और १°२०′ जोड़ने की जगह इन दोनों का अंतर अर्थात् ४°५६′५६″.४ ही घटाया जाय तो भी वही फल होगा। इसलिए यदि परम मंदफल ६°१६′५६″.४ की जगह ४°५६′५६″.४ मान लिया जाय तो कोई हानि नहीं समझ पड़ती। दूसरी दशा में ६°१६′५६″.४ जोड़ना पड़ता है और १°२०′ घटाना पड़ता है जिसकी जगह यदि इन दोनों का अंतर अर्थात् वही ४°५६′५६″.४ जोड़ा जाय तो कोई फेर नहीं पड़ेगा। जब पूर्णिमा के दिन चंद्रमा उच्च पर भी रहता है तब तो मंदकेन्द्र शून्य होने से मंदफल संस्कार शून्य होता है। उस समय मध्यम और स्पष्ट चंद्रमा के स्थानों में कोई अंतर ही नहीं रहता। इससे सिद्ध होता है कि पूर्णमासी या अमावस के दिन वेध करके परम मंदफल का मान जानने में ५° के लगभग ही आवेगा जो हमारे प्राचीन ग्रन्थों में दिया हुआ है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि परम मंदफल का मान ५° ही ठीक है ६°१६ नहीं। परन्तु वेध से यह भी जाना गया है कि प्रत्येक पक्ष की अष्टमी के लगभग जब चंद्रमा मंदोच्च से ९०° पर रहता है तब ५° का मंदफल का संस्कार देने पर भी चंद्रमा कोई ३° पीछे रहता है अर्थात् वेध-सिद्ध चंद्रमा मध्यम चंद्रमा से कोई ८° पीछे रहता है। और यदि अष्टमी के दिन चंद्रमा नीच से ९०° पर रहता है तब मध्यम चंद्र से वेध-सिद्ध-चंद्रमा ५° नहीं वरन् ८° के लगभग आगे रहता है। इसलिए यह मानना पड़ेगा कि परम मंदफल ५° मान लेने से पूर्णिमा या अमावस्या के दिन तो कोई हानि नहीं होती परन्तु अष्टमी के लगभग ३° का अन्तर देख पड़ता है। हमारे प्राचीन ज्योतिषियों को इस बात का पता इसलिए नहीं लगा कि वे, मेरी समझ में, ग्रहण-काल से मध्यम और स्पष्ट चंद्रमा का अन्तर निकाल कर मंदफल निकालते थे जैसा कि केशवाचार्य के उद्धरण से प्रकट होता है जो इसी अध्याय के १४वें श्लोक के भाष्य में दिया गया है। इस उद्धरण से यह भी पता लगता है कि केशवाचार्य को सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार स्पष्ट किये हुए चन्द्रमा से वेध द्वारा देखा गया चंद्रमा ५′ कम देख पड़ा जैसा कि पहले दिखाया गया है कि पूर्णिमा या अमावस्या को मंदफल और च्युति संस्कार मिलकर ४°५७′ होते हैं। इसलिए केशवाचार्य का वेध बहुत सूक्ष्म सिद्ध होता है।

इसलिए यह आवश्यक है कि इस भेद का कारण किसी और जगह देखा जाय। यह तो स्पष्ट है कि यह भेद चंद्रमा के उच्च से विशेष सम्बन्ध रखता है और यह भी देखा गया है कि यह सदैव इतना ही नहीं रहता वरन् घटते-घटते कभी शून्य हो कर ऋणात्मक हो जाता है और कभी धनात्मक हो जाता है इसलिए यह नियत-

कालिक (periodical) भी है। इसे यूनानी ज्योतिषी टालमी ने विक्रम की दूसरी शताब्दी में ही निश्चय कर लिया था, परन्तु इसके कारण का पता न्यूटन के पहले किसी ने नहीं लगा पाया था। न्यूटन ने आकर्षण सिद्धान्त से सिद्ध किया कि चंद्रमा पर पृथ्वी का ही आकर्षण नहीं होता वरन् अन्य ग्रहों का भी पड़ रहा है और उपर्युक्त महान् अंतर का कारण सूर्य का आकर्षण है। भौतिक ज्योतिर्विज्ञान ने गणित से सिद्ध कर दिया है कि यह अंतर सूर्य के आकर्षण से पड़ता है और इस संस्कार का मुख्य रूप जब मंद केन्द्र की गणना नीच से की जाय तो यह है + १°२०′२६.″५ × ज्या [२ (चन्द्रमा—सूर्य) -- चन्द्र मन्द केन्द्र]। इसके आगे के पद जो बहुत सूक्ष्म हैं छोड़ दिये गये हैं।

टालमी ने इस संस्कार का नाम इवेक्शन् (evection) रखा था जो अब तक प्रचलित है। स्वर्गीय वेंकटेश बापू जी केतकर ने अपने ज्योतिर्गणित में इसको च्युति संस्कार कहा है। इस पद में चंद्रमा—सूर्य का अर्थ है सूर्य से चंद्रमा का अंतर जो हमारे यहाँ तिथि के नाम से प्रकट किया जाता है। जिस समय अमावस या पूर्णिमा होती है उस समय चंद—सूर्य का मान शून्य या १८०° होता है इसलिए इस पद का रूप १° २०′ २६″.५ ज्या (—चन्द्र मंद केन्द्र) या — १° २०′ २६″.५ ज्या म होता है जो मंदफल संस्कार के रूप में है और जब मंदफल जोड़ा जाता है तब यह घटाया जाता है और जब मंदफल घटाया जाता है तब यह जोड़ा जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि यदि मंदफल को इन दोनों के अन्तर के समान समझ लिया जाय तो कोई हानि नहीं होती।

चूंकि मंदफल च्युति के मान पर आश्रित होता है इसलिए मंदफल के घटने से यह सूचित होता है कि चंद्रकक्षा की च्युति घट गयी है और बढ़ने से च्युति के बढ़ने की सूचना मिलती है। अर्थात् इस घट बढ़ से यह अनुमान दृढ़ होता है कि चंद्रकक्षा का आकार सदैव एक सा नहीं रहता। यह बात आकर्षण सिद्धान्त से भी पूरी तरह मेल खाती है जैसा कि आगे दिखाया जायगा।

परन्तु जब चंद्र—सूर्य ९०° या २७०° होता है अर्थात अष्टमी होती है तब इसका रूप १° २०′ २६.५″ ज्या [२ × ९०°—चन्द्र मन्द केन्द्र] अथवा १° २०′ २६″.५ ज्या म होता है जो है तो मन्द फल संस्कार के ही रूप का परन्तु यदि मन्द फल धनात्मक होता है तो यह भी धनात्मक होता है और मंद फल ऋणात्मक होता है तो यह भी ऋणात्मक होता है। इसलिए मंदफल ५° मानने से कभी ३° आगे पीछे का अंतर पड़ जाता है। इसी कारण सप्तमी, अष्टमी और नवमी के जो समय भारतीय रीति से बनाये गये पंचांगों में लिखे रहते हैं वह आधुनिक

रीति से जाने गये कालों से कभी-कभी १४, १५ घड़ी आगे पीछे रहते हैं। यह बात बापूदेव शास्त्री के पंचांग और काशी के मकरंद सारिणी से बनाये गये पंचांगों से भी प्रकट हो सकती है।

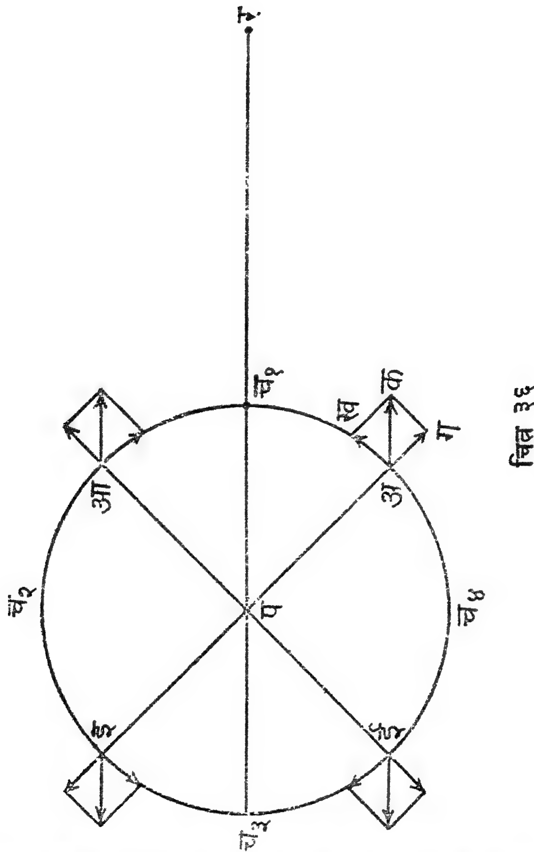
न्यूटन ने इसका कारण जिस तरह समझाया है वह संक्षेप में* यह है :— चंद्रमा और पृथ्वी की कक्षाओं के बीच का कोण केवल ५° के लगभग है इसलिए दोनों को एक ही धरातल में मान लेने से विशेष हानि नहीं होगी परन्तु सरलता आ जायगी।

मान लो र सूरज, प पृथ्वी और च१ च२ च३ च४ चंद्रमा की कक्षा हैं। यहाँ यह न भूल जाना चाहिये कि प र, अर्थात् सूर्य से पृथ्वी का अंतर प च, अर्थात् पृथ्वी से चंद्रमा की दूरी का कोई ४०० गुना है। यह भी समझे रहना आवश्यक है कि चंद्रमा का विचलन इसलिए होता है कि सूर्य पृथ्वी और चंद्रमा दोनों को असमान रूप से आकर्षित कर रहा है इसलिए इन दोनों के आकर्षण के अंतर के कारण यह विचलन हो रहा है। यदि यह अंतर न होता अर्थात् सूर्य का आकर्षण चंद्रमा और पृथ्वी पर समान होता तो विचलन कदापि न होता क्योंकि तब तो दोनों साथ ही साथ आगे पीछे होते और चंद्रमा की सापेक्ष गति में भिन्नता न पड़ती।

चित्र ३६ से यह स्पष्ट है कि जब तक चंद्रमा च४ से च१ होता हुआ च२ तक चलता है तब तक यह पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य के निकट रहता है अर्थात् कृष्ण-पक्ष की अष्टमी से लेकर शुक्ल पक्ष की अष्टमी तक चंद्रमा पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य के निकट रहता है और शुक्ल पक्ष की अष्टमी से कृष्ण पक्ष की अष्टमी तक चंद्रमा पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से दूर रहता है। इसलिए आकर्षण सिद्धान्त के अनुसार पहली दशा में सूर्य का आकर्षण चंद्रमा पर अधिक होता है अर्थात् सूर्य की ओर अधिक खिंचने के कारण चंद्रमा पृथ्वी से कुछ दूर हो जाया करता है जिससे जान पड़ता है कि विचालक शक्ति (perturbing force) चंद्रमा को पृथ्वी से दूर खींचे जा रही है। चूँकि र बहुत दूर है इसलिए यह शक्ति प र के प्रायः समानान्तर दिशा में र की ओर काम कर रही है। दूसरी दशा में पृथ्वी अधिक खिंचती है, इसलिए चंद्रमा पीछे रह जाता है जिससे जान पड़ता है कि विचालक शक्ति सूर्य से विरुद्ध दिशा में चंद्रमा को धक्का देकर पृथ्वी से दूर कर रही है। यह पहले ही कहा गया है कि सूर्य बहुत दूर है इसलिए विचालक शक्ति चंद्रमा को प र के समानान्तर दिशा में र से दूर ढकेले जा रही है। इसलिए यह सिद्ध है कि यह शक्ति चंद्रमा और पृथ्वी को सदैव परस्पर दूर कर रही है, प र के प्रायः समानान्तर काम कर रही है, और इसका प्रभाव उस

---

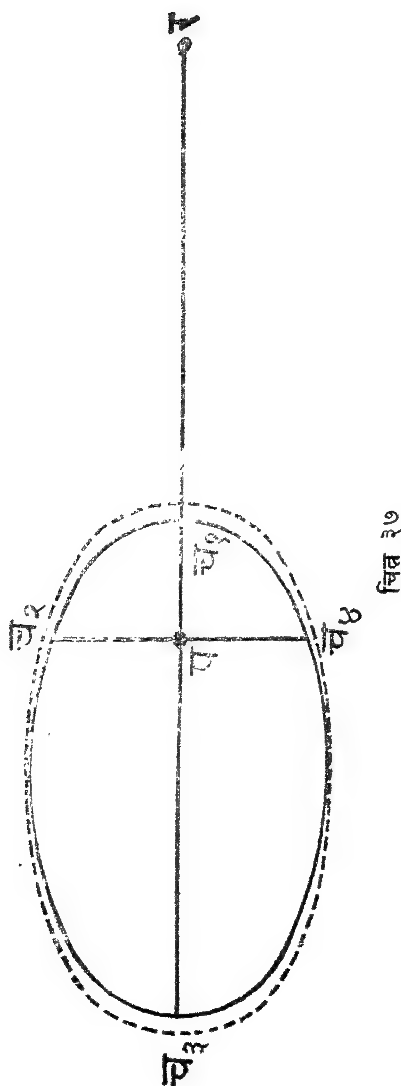
* Heroes of Science : Astronomers के आधार पर



चित्र ३९

समय शून्य होता है जब चंद्रमा च$_2$ या च$_4$ के पास रहता है क्योंकि उस समय चंद्रमा और पृथ्वी दोनों सूर्य से समान दूर होते हैं।

मान लो यह जानना है कि जिस समय चंद्रमा च$_4$ और च$_1$ के बीच में अ पर है और नीच पृथ्वी और सूर्य की रेखा पर है उस समय विचालक शक्ति किस प्रकार काम कर रही है। विचालक शक्ति को अ क रेखा से प्रकट किया जा सकता है और 'गति के समानान्तर चतुर्भुज नियम' के अनुसार इस शक्ति को विभक्त करके अ ख और अ ग रेखाओं में प्रकट कर सकते हैं जब कि अ ख रेखा अ पर स्पर्श-रेखा है अर्थात् चंद्रमा की गति की दिशा में है और अ ग रेखा मंदकर्ण (radius vector) की सीध में है और बाहर की ओर पृथ्वी के विरुद्ध काम कर रही है। विचालक शक्ति का जो भाग (resolved part) अ ग दिशा में काम कर रहा है वह चंद्रमा



चित्र ३७

को पृथ्वी से दूर कर रहा है और जिस समय चंद्रमा च$_1$ पर अर्थात् सूर्य की सीध में आ जाता है उस समय यह भाग ही प्रधान हो जाता है और दूसरा भाग शून्य हो जाता है। इसलिये विचालक शक्ति के इस भाग से चंद्रमा चाहे अ, आ, इ, ई पर

जहाँ हो पृथ्वी से दूर ही होता जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि चंद्रकक्षा अधिक लम्बी हो जाती है जैसा कि चित्र ३७ से प्रकट होता है।

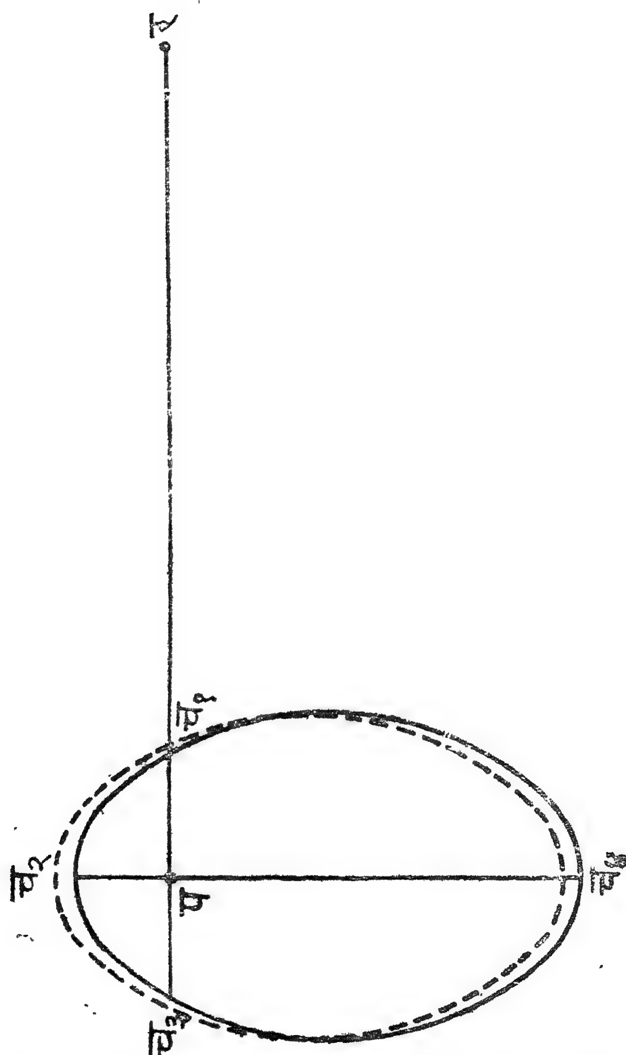
पूर्ण रेखा से वास्तविक चंद्र-कक्षा प्रकट होती है और कटी रेखा से चन्द्र कक्षा का नया रूप प्रकट होता है जो विचालक शक्ति के कारण हो गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाती है कि चंद्रकक्षा की च्युति बढ़ गयी क्योंकि दीर्घवृत्ति की च्युति अधिक होने से इसका आकार लम्बा हो जाता है और कम होने से कुछ गोला हो जाता है। यह बात प्रत्यक्ष वेध से भी देखी जाती है जिसका संकेत पहले किया गया है।

समीकरण 'छ' से यह भी सिद्ध है कि मंदफल संस्कार का मुख्य पद च्युति के मान पर कितना अवलम्बित है। यदि च्युति अधिक हो तो मंदफल भी अधिक होता है और च्युति कम हो तो मंदफल भी कम होता है। इसलिए यह सिद्ध है कि इस विचालक शक्ति के कारण चन्द्र कक्षा की च्युति यदि नीच सूर्य की सीध में हो तो अधिक हो जायगा जिससे मन्दफल संस्कार भी बढ़ जायगा। मन्दफल संस्कार यथार्थ जितना बढ़ जाता है उसी को च्युति संस्कार (evection) कहा गया है।

इसके विरुद्ध यदि नीच सूर्य से ९०° आगे या पीछे हो तो (देखो चित्र ३८) चन्द्रकक्षा का आकार कुछ गोल हो जायगा और च्युचि कम पड़ जायगी, जिससे मन्दफल संस्कार यथार्थ से उतना ही कम हो जायगा जितना पहली स्थिति में बढ़ गया है। ऐसी दशा में च्युति संस्कार ऋणात्मक हो जायगा।

इससे यह सिद्ध होता है कि विचालक शक्ति के उस भाग से जो चन्द्रमा के मन्द-कर्ण की दिशा में चन्द्रकक्षा के बाहर की ओर काम कर रहा है चन्द्रमा में इतना विचलन (deviation) हो जाता है कि च्युति-संस्कार की आवश्यकता पड़ती है।

अब इसके उस भाग की ओर ध्यान देना चाहिये जो चन्द्रकक्षा की स्पर्श रेखा की दिशा में काम कर रहा है। इससे यह फल होता है कि जब तक चन्द्रमा (देखो चित्र ३९) $च_४$ और $च_१$ के बीच अथवा $च_२$ और $च_३$ के बीच रहता है तब तक चन्द्रमा की साधारण गति की दशा में ही विचालक शक्ति भी अपना काम करती है और उसकी साधारण गति (जो पृथ्वी के आकर्षण के कारण होती है) को कुछ तीव्र कर देती है। परन्तु जब चन्द्रमा $च_१$ और $च_२$ अथवा $च_३$ और $च_४$ के बीच में रहता है तब तब विचालक शक्ति चंद्रमा की साधारण गति के विरुद्ध काम करती हुई उसको कुछ मन्द कर देती है। यह बात चान्द्रमास के प्रत्येक पक्ष की चौथ और एकादशी को बहुत देख पड़ती है, इसलिए इन तिथियों के कालों में कुछ परिवर्तन कर देती है। इस विषमता के कारण चन्द्रमा में एक और संस्कार भी करना पड़ता है जिसे पाक्षिक-



चित्र ३८

संस्कार (variation) कहते हैं। ज्योतिर्गणित में इसे तिथि-संस्कार कहा गया है। इसके भी कई पद हैं जिनमें मुख्य पद का रूप यह है।

३५′ ४१″·६ ज्या २ (चंद्र—सूर्य)

जब यह बात निश्चित हो गयी कि पृथ्वी की परिक्रमा करने के कारण चंद्रमा की दूरी सूर्य से कभी कम हो जाती है और कभी अधिक जिससे चंद्रमा में विचलन

हो जाता है जो च्युति और पाक्षिक संस्कारों से जाना जा सकता है, तब यह समझना कुछ कठिन नहीं है कि सूर्य की दूरी पृथ्वी से जो वर्ष भर में घटती बढ़ती रहती है उससे भी चंद्रमा के स्थान में कुछ अंतर पड़ जाता है और उपर्युक्त दो संस्कारों से पूरा नहीं होता। इसलिए एक और संस्कार की भी आवश्यकता पड़ती है जिसे वार्षिक संस्कार कहते हैं इसका मुख्य रूप यह है।

११′ ४१″.६१ ज्या (सूर्य-मंद-केन्द्र)

इस प्रकार चंद्रमा के चार मुख्य-मुख्य संस्कारों की चर्चा संक्षेप में हो गयी और यह भी त्र रूप से बतलाया गया है कि इनके कारण क्या हैं। इनके अतिरिक्त अनेक लघु संस्कार भी हैं जो उच्च-गणित की अच्छी जानकारी बिना समझ में नहीं आ सकते और जिनका आविष्कार गत सौ वर्षों में हुआ है जब कि गणित और वैज्ञानिक यंत्रों की सूक्ष्मता हुई है।

पहले बताया गया है कि च्युति-संस्कार का आविष्कारक टालमी है जो विक्रम की दूसरी शताब्दी में यूनान में रहा है। परंतु इसका कारण न्यूटन के पहले नहीं मालूम हो पाया था। पाक्षिक-संस्कार तथा वार्षिक-संस्कार का आविष्कार टाइको ब्राही ने (Tycho Brahe जन्म १४ दि० १५४६, मृत्यु २४ अक्टूबर, १६०१ ई०) अपनी अपूर्व निरूपण-शक्ति से किया था। इसका कारण उसको भी नहीं मालूम हो सका था क्योंकि उस समय तक उच्च गणित का तथा आकर्षण सिद्धान्त का अच्छा ज्ञान नहीं था। तिथि संस्कार का कुछ संकेत अबुल वफ़ा नामक मुसलमान ज्योतिषी ने भी किया था।

प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों ने मंदफल संस्कार के अतिरिक्त अन्य किसी संस्कार की ओर ध्यान नही दिया था। मुंजाल[१] ने (८५४ शक० ६८६ वि०) च्युति संस्कार की तरह एक संस्कार तथा एक पाक्षिक-संस्कार की चर्चा की है

---

१. अयं संस्कारश्च "इवेक्शन् वेरियेशन् नामक संस्कारवत् प्रतिभाति। तत्र श्लोकौच।

इन्दूच्चोनार्ककोटिघ्ना गत्यंशा विभवा विधोः।
गुणो व्यर्केन्दु दोः कोट्यो रूप पञ्चाप्तयोः क्रमात्॥
फले शशाङ्क तद गत्योर्लिप्ताद्ये स्वर्णयोर्वधे।
ऋणं चन्द्रे धनं भुक्तौ स्वर्ण साम्यवधेऽन्यथा॥

अत्र व्याख्याकारः 'अयं संस्कारस्थिति भ योग साधने न क्रियते पूर्वैरुपेक्षितत्वात्' (गणक तरङ्गिणी पृष्ठ २१ पाद टिप्पणी)

और नित्यानन्द जी[1] (शक १५६१ वि० १६९६ में) ने पाक्षिक संस्कार और पात संस्कार की चर्चा की है; परन्तु इनका प्रचार नहीं हुआ। सिद्धान्त-दर्पण से प्रकट होता है कि म० म० चन्द्र शेखर सामन्त ने भी संस्कारों की चर्चा की है।

इन चारों संस्कारों के साथ चन्द्रमा सम्बन्धी प्रधान समीकरण का रूप यह होगा :—

स = म

+३७६′२६″४ ज्या म
+१२′५४″.७′ ज्या २ म
+३६″ .९ ज्या ३ म
+२.″० ज्या म

} मंदफल संस्कार

+१°२०′२९″.५ ज्या [२ चंद्र—रवि)—म] च्युति संस्कार
+३५′४१″.६ ज्या २ (चंद्र—रवि) पाक्षिक संस्कार
+११′११.९७ ज्या (सूर्य मन्द केन्द्र) वार्षिक संस्कार

यहाँ स चन्द्रमा का स्पष्ट केन्द्र और म चंद्रमा का मंद केन्द्र है, जब कि मन्द केन्द्र की गणना नीच (perigee) से की गयी है। ज्योतिर्गणित में च्युति और पाक्षिक संस्कार के और पद भी दिये गये हैं जो यहाँ नहीं दिये जाते। च्युति के मंद परिवर्तन के कारण अङ्कों में एकाध कला का अंतर पड़ता जाता है जिसका ध्यान रखना आवश्यक है।

आधुनिक ज्योतिष का इतना परिचय देना मेरी समझ में पर्याप्त है। उदाहरण देने से विस्तार बहुत हो जायगा; इसलिए उदाहरण नहीं दिये जाते।

कुजार्किगुरुपातानां ग्रहवच्छीघ्रजं फलम्।
वामं तृतीयकं मान्दं बुधभार्गवयोः फलम् ॥५६॥
स्वपातोनाद्ग्रहाज्जीवा शीघ्रात् बुधशुक्रयोः।
विक्षेपघ्नाऽन्त्यकर्णाप्ता विक्षेपस्त्रिज्यया विधोः ॥५७॥

अनुवाद—(५६) मंगल, शनि और गुरु के पातों के स्थानों में प्रत्येक के दूसरे शीघ्रफल का संस्कार उसी प्रकार करो जिस प्रकार ग्रह के साथ किया जाता है अर्थात् यदि यह धनात्मक हो तो जोड़ दो और ऋणात्मक हो तो घटा दो। ऐसा

---

१. अत्र मन्दफलातिरिक्तः पाक्षिक नामक संस्कारश्च मध्यम रवि चन्द्रान्तर वशतश्चन्द्रे देयस्तथाऽनेन विधिना जातश्चन्द्रो विमण्डल स्थो भवति…(गणक तरंगिणी, पृष्ठ १०१)

करने से इन तीन ग्रहों के पातों के स्पष्ट स्थान ज्ञात हो जायँगे। परन्तु बुध और शुक्र के पातों के स्थानों में प्रत्येक के दूसरे मन्द फल का, जो ग्रह को स्पष्ट करने के लिए तीसरे संस्कार में काम आता है उलटा संस्कार करो अर्थात् यदि धनात्मक हो तो घटा दो और ऋणात्मक हो तो जोड़ दो। ऐसा करने से बुध और शुक्र के स्पष्ट पात ज्ञात हो जाँयगे। (५७) मंगल, शनि और गुरु प्रत्येक के स्पष्ट स्थान में से अपने-अपने पात के स्पष्ट स्थान को घटा दो जो शेष हो उसकी ज्या निकालो और इस ज्या को ग्रह के मध्यम विक्षेप से गुणा करके अन्तिम शीघ्रकर्ण से भाग दे दो तो स्पष्ट विक्षेप या शर ज्ञात हो जायगा। परन्तु बुध और शुक्र के शीघ्रोच्च के स्थानों में से इनके स्पष्ट पात घटाकर शेष की ज्या निकालनी चाहिये और इस ज्या को बुध और शुक्र के मध्यम विक्षेप से गुणा करके अन्तिम शीघ्रकर्ण से भाग देना चाहिये। चन्द्रमा का स्पष्ट शर (विक्षेप) जानने के लिए स्पष्ट चन्द्र के स्थान में से पात (राहु) का स्थान घटाकर शेष को चन्द्रमा के मध्यम विक्षेप से गुणा करके त्रिज्या से भाग दे देने से ही काम हो जाता है।

विज्ञान भाष्य—उदाहरण के लिए गुरु का स्पष्ट शर जानने की रीति लिखी जाती है। १९७८ वि० की वसंत पंचमी की अर्द्धरात्रि को उज्जैन में गुरु का स्पष्ट स्थान गणना से जो कुछ आया वह ६ $^{रा}$ ७°५३′२७″ है।

इसलिए इसी समय का गुरु का स्पष्ट शर निकालना सुगम होगा। एक कल्प में वृहस्पति का पात १७४ भगण करता है, इसलिए १९७९ वि० की वसंत पंचमी के दिन जब कि सृष्टि के आदि से १, ९५, ५८, ८५, ०२३ सौर वर्ष बीते हैं[†] वृहस्पति के पात का स्थान

$$= \frac{१,९५,५८,८५,०२३ \times १७४}{४,३२,००,००,०००}$$

$$= \frac{१,९५,५८,८५,०२३ \times २९}{७,२०,००,०००}$$

$$= ७८^{भ}\ ९^{रा}\ १०°\ १९′\ ५८.२″$$

या ९ $^{रा}$ १०° १९′ ५८·२″ क्योंकि पूरे भगण लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु पातों की गति विलोम दिशा में अथवा पच्छिम दिशा में होती है।

[†]यह १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति के समय का है परन्तु पात की गति अत्यन्त मन्द होने से इसी को वसंत पंचमी के दिन का भी मान लेने में कोई हानि नहीं है।

इसलिए ऊपर जो स्थान पात के लिए आया है वह ऋणात्मक है। इसको १२ राशि में से घटाने पर गुरु के पात का स्थान (भोगांश) साधारण रीति के अनुसार आ जावेगा। इसलिए गुरु के पात का स्थान=२$^{रा}$ १६° ४०′ २०″†

उपर्युक्त ५६वें श्लोक के अनुसार इसी में दूसरे शीघ्र फल का संस्कार ग्रह की तरह करना चाहिये। वसंत पंचमी के दिन बृहस्पति का दूसरा शीघ्रफल+१०° ४७′ और अंतिम शीघ्र कर्ण ३६०८ है।

इसलिये दूसरा शीघ्रफल संस्कृत पात

=२$^{रा}$ १६° ४०′ २″+१०°४७′

=३$^{रा}$ ०°२७′ २″

परंतु गुरु का स्पष्ट स्थान=६$^{रा}$ २७° ५३′ ३७″

∴ ५७ वें श्लोक के अनुसार पात से गुरु का अंतर

=६$^{रा}$ २७° ५३′ ३७″−३$^{रा}$ ०° २७′ २″

=३$^{रा}$ २७° २६′ ३५″

यही वसंत पंचमी के दिन गुरु का विक्षेप केन्द्र हुआ।

इसी विक्षेप केन्द्र की ज्या को गुरु के मध्यम विक्षेप से जो मध्यमाधिकार के ६६-७० श्लोकों के अनुसार १° या ६०′ है गुणा करके अन्तिम शीघ्रकर्ण से भाग देने पर गुरु का स्पष्ट विक्षेप या शर आ जायगा।

३$^{रा}$ २७° २६′ ३५″ दूसरे अर्थात् समपद में है इसलिए इसकी ज्या दूसरे पाद के गम्य भाग की ज्या के समान होती है।

∴ ज्या ३$^{रा}$२७° २६′ ३५″=ज्या २$^{रा}$२° ३३′ २५″

=ज्या ६२° ३३′ २५″

=३०५० कला

∴ गुरु का स्पष्ट शर $= \frac{३०५० \times ६०}{३६०८}$ कला

=५०′ ४३″

विक्षेप केन्द्र १८०° से कम है, इसलिए गुरु क्रान्ति वृत्त से उत्तर है और ५०′ ४३″ गुरु का उत्तर शर हुआ।

---

†सूर्य सिद्धान्त-मध्यमाधिकार (विज्ञान परिषद्)

इसी प्रकार मंगल और शनि के भी शर जाने जा सकते हैं। बुध और शुक्र के लिए कुछ भिन्नता करनी पड़ती है अर्थात् इनका विक्षेप केन्द्र जानने के लिए इनके पातों में दूसरे मंद फल का जो तीसरे कर्म में काम आता है उलटा संस्कार करके शीघ्रोच्चों के स्थानों में से घटाना पड़ता है। इसके बाद जो कुछ करना पड़ता है वह उपर्युक्त रीति की तरह होता है।

चंद्रमा का स्पष्ट शर जानने के लिए यह सब झंझट करने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि इसमें शीघ्र कर्म का संस्कार नहीं करना पड़ता। इसलिए इसके लिए वही नियम लागू है जो २८ वें श्लोक में सूर्य के लिए बतलाया गया है, अर्थात् चंद्रमा के विक्षेप केन्द्र (राहु से स्पष्ट चंद्र का अन्तर) की ज्या को चंद्रमा के परम विक्षेप अर्थात् ४°३०′ से गुणा करके ३४३८ कला से जो त्रिज्या का मान है भाग दें तो चंद्रमा का स्पष्ट शर ज्ञात हो जायगा। यदि विक्षेप केन्द्र १८०° से कम हो तो उत्तर शर होगा अन्यथा दक्षिण शर (देखो श्लोक ७ और उसका विज्ञान भाष्य तथा पृष्ठ २२ का चित्र ४)। पृष्ठ १२२ चित्र २५ में व को राहु का स्थान, व प को क्रान्तिवृत्त और व स को चंद्र कक्षा मान लिया जाय तो स प चंद्रमा का उत्तर शर होगा।

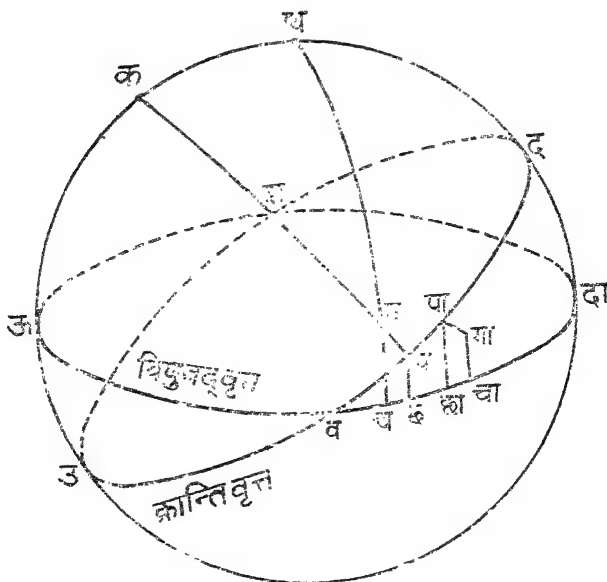
विक्षेपापक्रमैकत्वे क्रान्तिर्विक्षेप संयुता।
दिग्भेदे वियुता स्पष्टाभास्करस्य यथागता ॥५८॥

अनुवाद—(५८) किसी ग्रह की स्पष्ट क्रान्ति जानने के लिए उस ग्रह के स्पष्ट शर (विक्षेप) को उसी ग्रह की (मध्म) क्रान्ति में जोड़ दो यदि शर और क्रान्ति दोनों एक ही प्रकार हों, अर्थात् यदि शर और क्रान्ति दोनों उत्तर हों या दोनों दक्षिण हों। परन्तु यदि इनकी दिशाओं में भिन्नता हो तो इन दोनों का जो अन्तर होगा वही स्पष्ट क्रान्ति होगी। सूर्य की स्पष्ट क्रान्ति जानने के लिए जो नियम पहले (२८वें श्लोक में) बतलाया गया है वही पर्याप्त है (क्योंकि सूर्य क्रान्ति-वृत्त पर ही भ्रमण करता है)।

विज्ञान भाष्य—स्पष्ट ग्रह से क्रान्ति वृत्त का जो अन्तर कदम्ब-प्रोत-वृत्त पर होता है उसे उस ग्रह का स्पष्ट विक्षेप कहते हैं (देखो पृष्ठ २२ मध्य० तथा श्लोक ७, ८) और स्पष्ट ग्रह से विषुवद् वृत्त का जो अन्तर ध्रुव प्रोत वृत्त पर होता है उसे उस ग्रह की स्पष्ट क्रान्ति कहते हैं।

चित्र ३६ में व द श उ क्रान्तिवृत्त, व दा श ऊ विषुवद् वृत्त, क कदम्ब (क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव) और ध ध्रुव है। ग किसी ग्रह का स्थान अपने कक्षा-वृत्त में है जो चित्र में सरलता के विचार से नहीं दिखाया गया है। ग्रह इस समय

क्रान्तिवृत्त के उत्तर दिखलाया गया है। यदि ग्रह गा बिन्दु पर हो तो क्रान्ति वृत्त के दक्षिण होगा। क ग प कदम्ब प्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त पर समकोण बनाता है और ध ग च ध्रुव प्रोत वृत्त विषुवद् वृत्त पर समकोण बनाता है। प छ भी ध्रुव प्रोतवृत्त का खंड है और विषुवद् वृत्त पर समकोण बनाता है। ग प, ग का उत्तर विक्षेप, प छ, ग की उत्तर मध्य क्रान्ति और ग च, ग की उत्तर स्पष्ट क्रान्ति है। इसी प्रकार गा पा, गा ग्रह का दक्षिण विक्षेप, पा छा, गा ग्रह की उत्तर मध्य क्रान्ति और गा चा, गा की उत्तर स्पष्ट क्रान्ति है। पहली दशा में मध्य क्रान्ति और विक्षेप दोनों उत्तर हैं, इसलिए इन दोनों को जोड़ने से नियमानुसार स्पष्ट उत्तर क्रान्ति आयेगी। परन्तु दूसरी स्थिति में विक्षेप दक्षिण और मध्य क्रान्ति उत्तर है, इसलिए इन दोनों के अन्तर से स्पष्ट उत्तर क्रान्ति ज्ञात होगी।

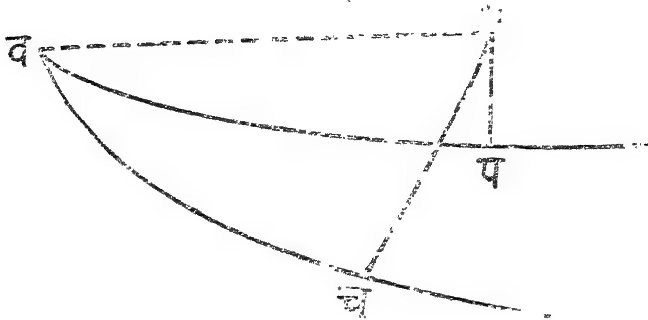


चित्र ३६

यहाँ एक बात विचारणीय है। ग प कदम्ब-प्रोतवृत्त का खण्ड है और प छ ध्रुव-प्रोत वृत्त का; इसलिए इन दोनों का योग ग च के समान नहीं होगा वरन कुछ भिन्न होगा। परन्तु आचार्य ने ऐसा ही लिखा है। इससे यह समझना चाहिये कि आचार्य के विचार में यह भिन्नता इतनी कम समझी गयी है कि इससे जो स्थूलता हो जाती है वह नहीं के समान समझ ली गयी है। भास्कराचार्य जी ने इसीलिए

इस रीति को अयुक्त[1] कह कर अयन वलन संस्कार करने का आदेश दिया है[2] जो विस्तार भय से यहाँ न लिख कर नेपियर के नियमों के आधार पर इस संस्कार की एक सरल रीति लिखी जाती है। सुविधा के लिए चित्र ३९ का सरल रूप चित्र ४० लिया जाता है।

इस चित्र में ग ग्रह का स्पष्ट स्थान, ग प ग्रह का स्पष्ट विक्षेप, ग च ग्रह की स्पष्ट क्रान्ति, व प ग्रह का सायन भोगांश, व च ग्रह का विषुवांश, और व ग



चित्र ४०

परम वृत्त का धनु है। इसलिए स्पष्ट है कि △ ग प व और △ ग च व समकोण गोलीय त्रिभुज है और प व च कोण क्रान्ति वृत्त और विषुष वृत्त के बीच का कोण है जिसे २८वें श्लोक में परम अपक्रम कहा गया है।

यदि ग्रह का सायन भोगांश व प और स्पष्ट विक्षेप ग प ज्ञात हो तो नेपियर के नियम (२) के अनुसार समकोण △ ग व प में,

कोज्या (व ग)=कोज्या (ग प) ×कोज्या(व प) (१)

नियम (१) के अनुसार

ज्या (व प)=स्पर्श रेखा (ग प) × कोटि स्पर्श रेखा (ग व प)

अथवा कोटिस्पर्श रेखा (ग व प)=ज्या (व प)×कोटि स्पर्श रेखा (ग प) (२)

---

[1] विक्षेपः कदम्बाभिमुखो भवति। ध्रुवाभिमुख्या क्रान्त्या सह कथं तस्य भिन्न दिक्कस्य योग वियोगावुचितौ। तयोर्यद्भिन्नदिक्त्वं तदायन वलन वशात्।......

सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय, पृष्ठ २१५

[2] गणिताध्याय, पृष्ठ २१७।

इन दोनों समीकरणों से व ग धनु और ग व प कोण जाने जा सकते हैं। फिर समकोण △ ग व च में, नियम (२) के अनुसार

ज्या (ग च)=ज्या (व ग) × ज्या (<ग व प + <प व च) (३)

और नियम (१) के अनुसार

स्पर्श रेखा (व च) = स्पर्श रेखा (व ग) × कोज्या

(<ग व प + <प व च) (४)

समीकरण (१), (२) और (३) से किसी ग्रह या तारे का विक्षेप और सायन भोगांश ज्ञात हो तो उसकी क्रान्ति जानी जा सकती है और समीकरण (४) की सहायता से उसका विषुवांश जाना जा सकता है।

इसी प्रकार यदि विषुवांश और क्रान्ति ज्ञात हों तो सायन भोगांश और विक्षेप भी जाने जा सकते हैं।

ग्रहोदयप्राणहता खखाष्टैकोद्धृता गतिः।
चक्रासवो लब्धयुता. स्वाहोरात्रासवस्स्मृताः ॥५६॥

अनुवाद—(५६) ग्रह जिस राशि में हो वह जितने प्राणों में उदय होती हो उसको ग्रह की दैनिक गति से गुणा करके १८०० से भाग देने पर जो कुछ आवे उसको पूरे चक्र के असुओं मे जोड़ दिया जाय तो योगफल ग्रह के अहोरात्र का परिमाण होता है।

विज्ञान भाष्य—मध्यमाधिकार के ११-१३ श्लोकों में नाक्षत्र-अहोरात्र, घड़ी, पल, प्राण, सावन दिन इत्यदि की चर्चा विस्तार के साथ की गयी है। वहाँ यह बतलाया गया है कि एक नाक्षत्र अहोरात्र २१६०० असुओं या प्राणों का होता है और सावन दिन नाक्षत्र अहोरात्र से प्रायः ४ मिनट या १० पल या ५६ प्राण अधिक होता है क्योंकि सूर्य प्रति दिन प्रायः १ अंश पूर्व की ओर बढ़ता है जब कि नक्षत्र या तारे एक ही जगह स्थिर रहते हैं। जैसे एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक के समय को सावन दिन कहते हैं उसी प्रकार किसी ग्रह के पूर्व में उदय होने के समय से दूसरे दिन फिर उदय होने तक के समय को उस ग्रह का अहोरात्र कहते हैं। यदि ग्रह मार्गी हुआ तो उसका अहोरात्र नाक्षत्र-अहोरात्र से अधिक और वक्री हुआ तो कम होगा। नक्षत्र अहोरात्र से ग्रह का अहोरात्र कितना अधिक या कम होगा यही जानने की रीति इस श्लोक में बतलायी गयी है। ग्रह दिन भर मे जितना आगे चलेगा या पीछे हटेगा उसी के अनुसार ग्रह का अहोरात्र नाक्षत्र-अहोरात्र से अधिक या कम होगा। त्रिपश्नाधिकार नामक तीसरे अध्याय में ४१-४३ श्लोकों में यह विस्तार के साथ

बतलाया जायगा कि कौन राशि किस जगह कितने समय में उदय होती है। जितने समय में जो राशि जहाँ क्षितिज के ऊपर आती है अर्थात् उदय होती है उसी समय को (नाक्षत्र काल के अनुसार) उस जगह उस राशि के उदय-प्राण या उदयासु कहते हैं। इसलिए यह त्रैराशिक से सहज ही जाना जा सकता है कि जब राशि का उदय उदयप्राण के समान समय में होता है तो उस राशि में ग्रह जितना दिन भर में हटता है उतने का उदय कितने प्राण में होगा। बस नाक्षत्र अहोरात्र की अपेक्षा इतने ही प्राण अधिक बीतने पर मार्गी ग्रह दूसरे दिन क्षितिज में फिर आ जायगा। एक राशि ३० अंश या ३० × ६० या १८०० कला के समान होती है। ग्रह की दैनिक गति भी कला में ही साधारणतः प्रकट की जाती है, इसलिए यह अनुपात हुआ—

१८०० कला : ग्रह की दैनिक गति : : राशि का उदय प्राण : इष्ट अन्तर

$$\therefore \text{इष्ट अंतर} = \frac{\text{राशि का उदय प्राण} \times \text{ग्रह की गति}}{\text{१८०० कला}}$$

बस यही अंतर नाक्षत्र अहोरात्र में जो २१६०० प्राणों का होता है जोड़ने से (यदि ग्रह मार्गी हुआ) और घटाने से (यदि ग्रह वक्री हुआ) ग्रह का अहोरात्र ज्ञात होता।

इस नियम में थोड़ी सी स्थूलता है। यदि ग्रह क्रान्तिवृत्त पर जिसमें कि राशियाँ होती हैं भ्रमण करता होता तो यह नियम बिल्कुल ठीक होता परन्तु वह तो अपने कक्षावृत्त में घूमता है, जिसके कारण वह या तो क्रान्तिवृत्त के उत्तर होता है या दक्षिण। यदि उत्तर हुआ तो कुछ पहले ही उदय होगा और यदि दक्षिण हुआ तो कुछ पीछे। यदि ग्रह के प्रतिदिन के उदय-काल के विषुवांश ५८ वें श्लोक के विज्ञान भाष्य के समीकरण (४) के अनुसार जान लिए जायँ और विषुवांशों के अंतर को प्राणों में बदल दिया जाय तो इसको २१६०० प्राणों में जोड़ने से ग्रह के उदय-प्राण ठीक-ठीक निकलेंगे।

आगे के कई श्लोकों में यह जानने की रीति बतलायी गयी है कि अहोरात्र-मान में से कितने समय तक ग्रह क्षितिज के ऊपर रहेगा और कितने समय तक क्षितिज के नीचे अर्थात् ग्रह का दिनमान और रात्रिमान कितने कितने समय के होते हैं। इसके लिए पहले यह जानना आवश्यक है कि ग्रह का चर प्राण कितना है जो नीचे लिखे श्लोकों के अनुसार जाना जाता है :—

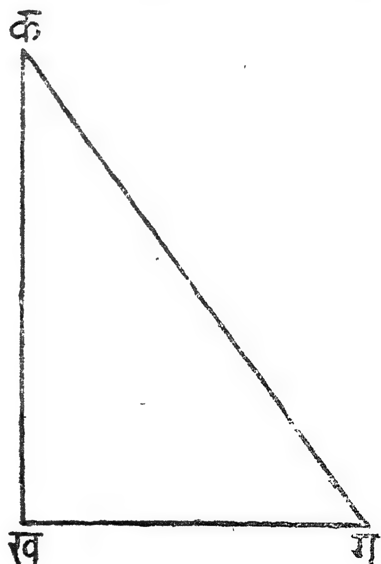
क्रान्तेः क्रमोत्क्रमज्ये द्वे कृत्वा तत्रोत्क्रमज्यया।
हीना त्रिज्या दिनव्यासदलं तद्दक्षिणोत्तरम् ॥६०॥

क्रान्तिज्या विषुवद्भाघ्ना क्षितिज्या द्वादशोद्धृता ।
त्रिज्यागुणा होरात्रार्धकर्णाप्ता चरजासवः ।।६१।।

अनुवाद—(६०) ग्रह की स्पष्ट क्रान्ति की ज्या और उत्क्रम ज्या दोनों जानकर उत्क्रम ज्या को त्रिज्या अर्थात् ३४३८ कला में से घटा दे तो अहोरात्र-वृत्त का व्यासार्द्ध निकल आता है । इसको द्युज्या भी कहते हैं । यदि क्रान्ति दक्षिण हो तो अहोरात्र वृत्त का व्यासार्ध दक्षिण होता है और यदि क्रान्ति उत्तर होती है तो उत्तर होता है । (६१) क्रान्ति ज्या को पलभा से गुणा करके १२ से भाग देने पर क्षितिज्या आती है जिसको त्रिज्या से गुणा करके अहोरात्र-वृत्त के व्यासार्ध से भाग देने पर जो लब्धि आती है उसे चरज्या कहते हैं । चरज्या के धनु की कला को चर प्राण कहते हैं ।

विज्ञान भाष्य—इन दो श्लोकों में त्रिप्रश्नाधिकार नामक तीसरे अध्याय का सार भरा हुआ है इसलिए इनमें जो पारिभाषिक शब्द आये हैं उनका विस्तृत विवेचन उसी अध्याय में मिलेगा । परन्तु इन दो श्लोकों का अर्थ समझने के लिए यह आवश्यक है कि पारिभाषिक शब्दों तथा कुछ अन्य बातों की संक्षेप में चर्चा की जाय ।

पलभा—जिस दिन सूर्य विषुवद् वृत्त पर होता है अर्थात् जिस दिन सूर्य सायन मेष या सायन तुला विन्दुओं पर आता है उस दिन समतल भूमि पर सीधे गड़े हुए १२ अंगुल के शंकु की छाया मध्याह्न कालिक जितनी बड़ी होती है उसी को पलभा कहते हैं ।



चित्र ४१

चित्र ४१ में समतल भूमि के ख बिन्दु पर क ख शंकु सीधा गड़ा है और क ख की नाप १२ अंगुल है तो सायन मेष संक्रान्ति के दिन मध्यान्ह काल में क ख की छाया यदि ख ग हो तो ख ग की नाप को ही ख स्थान की पलभा, विषुवद्भा, अक्षभा इत्यादि कहेंगे । इस पलभा का मान सब जगह एक सा नहीं होता वरन् अक्षांश के अनुसार बढ़ता घटता है । विषुवत् रेखा पर जहां अक्षांश शून्य होता है सायन मेष संक्रान्ति के दिन ख ग का मान शून्य होता है । विषुवत् रेखा से ज्यों-

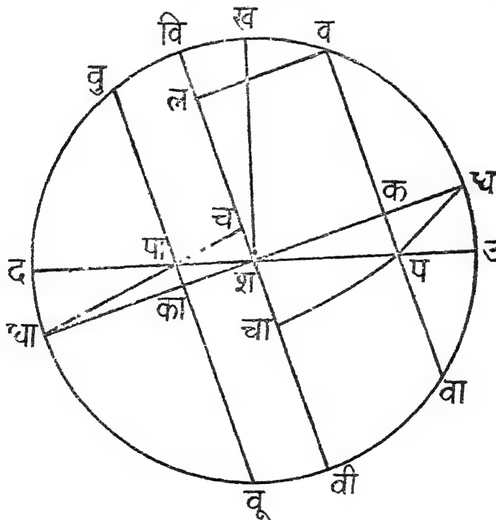
ज्यों उत्तर या दक्षिण जाइये त्यों-त्यों पलभा का मान बढ़ता जायगा। उत्तर गोल में पलभा शंकु से उत्तर दिशा में होगी और दक्षिण गोल में दक्षिण दिशा में; इसलिए पलभा से किसी स्थान का अक्षांश सहज ही जाना जा सकता है। हमारे देश में इसीलिए अक्षांश अंशों में प्रकट करने की जगह पलभा की नाप में जो अंगुलों में ली जाती है प्रकट करने की परिपाटी है। ख क ग कोण को ख स्थान का अक्षांश* कहते हैं, इसलिए,

$$\text{अक्षांश की स्पर्शरेखा} = \frac{\text{ख ग}}{\text{ख क}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}} = \frac{\text{पलभा}}{१२} \qquad (१)$$

इससे स्पष्ट है कि पलभा के ज्ञान से अक्षांश का मान कैसे जाना जा सकता है।

हमारे ग्रन्थों में ज्या, कोज्या, और उत्क्रम ज्या के सिवा अन्य त्रिकोणमितीय अनुपातों की चर्चा नहीं है; परन्तु अन्य अनुपातों का काम और रीति से लिया जाता है; जैसे अक्षांश की स्पर्शरेखा का काम $\frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}}$ से लिया जाता है।

द्युज्या, कुज्या और चरज्या को समझने के लिए नीचे लिखे चित्र को देखो—



चित्र ४२

*ऐसा मान लेने से लम्बन के कारण तनिक सी अशुद्धि रह जाती है, जिसका विवेचन तीसरे अध्याय में किया जायगा। परन्तु इस अशुद्धि से कोई हर्ज नहीं हो सकता।

श वह स्थान है जहाँ के लिए देखना है कि ग्रह कितने समय तक क्षितिज के ऊपर रहता है। उ श द रेखा श स्थान की क्षितिज रेखा तथा ध श धा निरक्ष देश की क्षितिज रेखा है। ध, आकाशीय उत्तरी ध्रुव और धा आकाशीय दक्षिणी ध्रुव है। उ ध ख द धा याम्योत्तर वृत्त और ख, श का ख का खस्वस्तिक है। पृथ्वी की दैनिक गति के कारण ग्रह, नक्षत्र, सूर्य इत्यादि जिस जिस वृत्त पर घूमते हुए दिन में एक परिक्रमा करते देख पड़ते हैं उस-उस वृत्त को उस ग्रह, नक्षत्र, या सूर्य का अहोरात्र वृत्त (Diurnal circle) कहते हैं। यह अहोरात्र-वृत्त विषुवत्-वृत्त के समानान्तर[1] होते हैं। तीन अहोरात्र वृत्तों के व्यास चित्र ४२ में व वा, वि वी और वु वू रेखाओं से प्रकट किये गये हैं। वि वी अहोरात्र-वृत्त का व्यास विषुवत् वृत्त से मिल जाता है। इस प्रकार वही तारे या ग्रह चलते देख पड़ते हैं जो ठीक विषुवत् वृत्त पर होते हैं। सायन विषुव संक्रान्ति के दिन सूर्य भी (यदि इसकी क्रान्ति की गति थोड़ी देर के लिए स्थिर मान ली जाय) इसी अहोरात्र वृत्त पर चलता हुआ देख पड़ता है। यदि किसी ग्रह की उत्तर क्रान्ति व वि धनु के समान हो तो उस ग्रह के अहोरात्र वृत्त का व्यास व वा होगा। इसी तरह यदि ग्रह की दक्षिण क्रान्ति वि वु के समान हो तो उसके अहोरात्र वृत्त का व्यास वु वू होगा।

चित्र से प्रकट है कि ध श धा रेखा से जो निरक्ष देश की क्षितिज रेखा है सभी अहोरात्र वृत्त के व्यास दो समान भागों में कट जाते हैं। निरक्ष देश में जब तक सूर्य, तारा या ग्रह ध श धा रेखा से ऊपर रहता है तब तक वह देख पड़ता है या उदय रहता है और जब तक वह इस रेखा से नीचे रहता है तब तक नहीं देख पड़ता अथवा अस्त रहता है। इसलिए निरक्ष देश में जहाँ यह रेखा क्षितिज बनाती है सूर्य, चन्द्रमा, तारे, सभी —क्रान्ति चाहे जो हो—१२ घंटे तक उदय और बारह घण्टे तक अस्त रहते हैं। इस बारह घण्टे के समय में ६ घण्टे तक तो यह पूर्व क्षितिज से निकल कर ऊपर चढ़ते हुए याम्योत्तर-वृत्त पर पहुँचते हैं और ६ घण्टे तक याम्योत्तर वृत्त से नीचे उतरते हुए पच्छिम क्षितिज में जा लगते हैं। (प्रकाश वक्रीभवन के कारण जो थोड़ा सा अन्तर पड़ जाता है उसका विचार सुविधा के लिए यहाँ नहीं किया गया है)। निरक्ष देश से उत्तर या दक्षिण के स्थानों में केवल वही ग्रह या तारा आधे दिन तक उदय और आधे दिन तक अस्त रहता है जो विषुवत् वृत्त पर रहता है अर्थात् जिसके अहोरात्र वृत्त का व्यास वि वी से मिलता जुलता है।

---

१. तारे का अहोरात्र वृत्त विषुवत् वृत्त के बिलकुल समानान्तर होता है। सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहों के अहोरात्र वृत्तों की दिशा में तनिक सा, अन्तर इसलिये पड़ जाता है कि इनकी क्रान्ति सदैव कुछ बदलती रहती है।

परन्तु जिस ग्रह यह या तारे की क्रान्ति उत्तर होती है वह उत्तर गोल में आधे दिन से अधिक समय तक क्षितिज के ऊपर रहता है और जिसकी क्रान्ति दक्षिण होती है वह आधे दिन से कम समय तक क्षितिज के ऊपर रहता है। दक्षिण गोल में इसका ठीक उलटा होता है। आधे दिन से कितना अधिक या कम समय तक ग्रह क्षितिज के ऊपर रहता है यह उसकी क्रान्ति के मान पर आश्रित है। यदि क्रान्ति अधिक हुई तो यह अन्तर अधिक होता है और कम हुई तो कम। चित्र में जिस ग्रह की उत्तर क्रान्ति व वि है वह श स्थान पर जिसका अक्षांश ध श उ कोण के समान है उस समय तक क्षितिज के ऊपर रहेगा जितने समय तक यह प से व तक ऊपर चढ़ेगा और फिर वहाँ से उतना ही नीचे उतर कर पच्छिम क्षितिज के नीचे चला जायगा। ऊपर बतलाया गया है कि क से व तक जाने में इसको ६ घण्टे लगेंगे; इसलिए प से क तक ऊपर चढ़ने में जितना समय लगेगा ६ घण्टे से उतना ही अधिक इसको प से व तक जाने में लगेगा क्योंकि क्रान्ति उत्तर होने के कारण ग्रह क्षितिज पर उस समय आवेगा जिस समय वह प विन्दु पर पहुँचेगा। उसके प्रतिकूल यदि दक्षिण क्रान्ति होने से ग्रह के अहोरात्र वृत्त का व्यास वु वू हुआ तो जितनी देर तक वह का से पा तक जायगा ६ घण्टे से उतना ही पीछे वह क्षितिज के विन्दु पा पर पहुँचेगा। अहोरात्र वृत्त के व्यास के प क या पा का खंड को कुज्या या क्षितिज्या और इतना चढ़ने में जितना समय लगता है उसे चर-काल कहते हैं। काल प्रायः पलों या प्राणों में प्रकट किया जाता है इसलिये चर-काल को चर पल, चर प्राण अथवा चर असु कहते हैं। अहोरात्र-वृत्त के व्यासार्ध क व, श वि, या का वु को द्युज्या कहते हैं क्योंकि द्यु के अर्थ हैं दिन, अहोरात्र या प्रकाश। चा श खंड को उत्तर क्रान्ति वाले ग्रह की चरज्या और च श खंड को दक्षिण क्रान्ति वाले ग्रह की चरज्या कहते हैं। चरज्या के धनु को चर खंड और इस धनु की कला को चरप्राण कहते हैं क्योंकि एक चक्र में ३६० × ६० कलाएँ अथवा २१६०० कलाएँ और एक नाक्षत्र अहोरात्र में इतने ही प्राण होते। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि ध प चा अथवा धा पा च वृत्तपाद विषुवत् वृत्त से समकोण बनाता हुआ खींचा गया है?

अब देखना है कि चित्र ४२ की सहायता से ६०, ६१ श्लोकों का नियम कैसे सिद्ध होता है।

वि श त्रिज्या है, व क द्युज्या, व श वि कोण या व वि धनु ग्रह की क्रान्ति;
इसलिये क्रान्ति ज्या = व ल = क श
क्रान्ति की उत्क्रम ज्या = वि ल (देखो ११६ पृष्ठ और चित्र २४)

द्युज्या = व क = ल ण = श वि − वि ल

= त्रिज्या − क्रान्ति की उत्क्रम ज्या (२)

यही ६०वें श्लोक का अर्थ है। दाहिने पक्ष का मान क्रान्ति-कोटि ज्या के समान है,

∴ द्युज्या = क्रान्ति-कोटि ज्या

त्रिभुज क श प में,

क श = व ल = क्रान्ति ज्या

∠क श प = श स्थान का अक्षांश

$$\therefore \text{अक्षांश स्पर्शरेखा} = \frac{\text{क प}}{\text{क श}} = \frac{\text{क्षिति ज्या}}{\text{क्रान्ति ज्या}} \quad (३)$$

परन्तु ऊपर समीकरण (१) में बतलाया गया है कि

$$\text{अक्षांश स्पर्शरेखा} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$$

$$\therefore \frac{\text{पलभ}}{१२} = \frac{\text{क्षितिज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

$$\text{अर्थात् क्षिति ज्या} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{पलभा}}{१२} \quad (४)$$

परन्तु घ प चा और घ क श दोनों व क और वि श पर लम्ब हैं इसलिए क प और व क का परस्पर जो सम्बन्ध है वही चा श और श वि का भी है, अर्थात्—

व क : क प : : वि श : श चा

$$\text{या श चा} = \frac{\text{क प} \times \text{वि श}}{\text{व क}}$$

$$= \frac{\text{क्षितिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}}$$

चा श को चरज्या भी कहते हैं, इसलिए

$$\text{चरज्या} = \frac{\text{क्षितिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} \quad (५)$$

समीकरण (४) और (५) से ६१वें श्लोक का नियम सिद्ध होता है।

चरज्या का कलात्मक धनु चर प्राण कहलाता है।

यदि समीकरण (५) में क्षितिज्या और द्युज्या की जगह समीकरण (३) और (४) के आधार पर इनके मान उत्थापित किये जायँ तो समीकरण (५) का सरल रूप यह होगा :—

$$\text{चरज्या} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{पलभा}}{१२} \times \frac{१}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}} \times \text{त्रिज्या}$$

$$= \frac{\text{क्रान्तिज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}} \times \frac{\text{पलभा}}{१२} \times \text{त्रिज्या}$$

$$= \text{क्रान्ति स्पर्श रेखा} \times \text{अक्षांश स्पर्शरेखा} \times \text{त्रिज्या} \qquad (६)$$

अर्थात् किसी स्थान के अक्षांश की स्पर्शरेखा को ग्रह की क्रान्ति की स्पर्श-रेखा से गुणा करके त्रिज्या से गुणा कर दो तो चरज्या आ जावेगी। यदि चरज्या मान दशमलव भिन्न में आजकल की रीति के अनुसार हो तो समीकरण (६) के दाहिने पक्ष में त्रिज्या से गुणा करने की आवश्यकता न पड़ेगी और चरज्या का सरल रूप यह होगा—

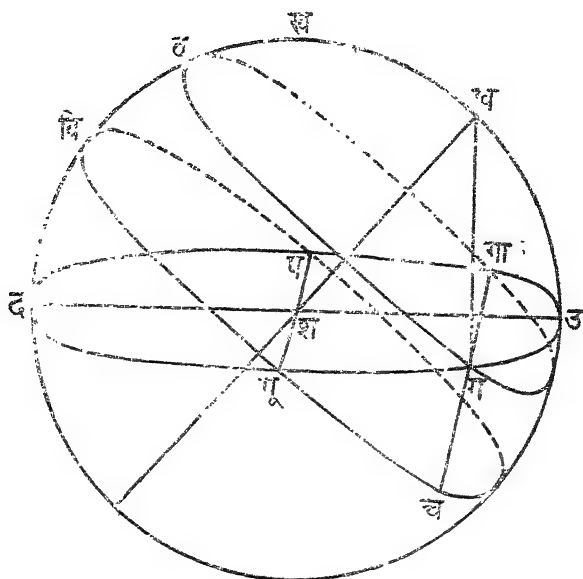
$$\text{चरज्या} = \text{क्रान्ति स्पर्शरेखा} \times \text{अक्षांश स्पर्शरेखा} \qquad (७)$$

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि क्रान्ति और अक्षांश ज्ञात हो तो चरज्या सहज ही जानी जा सकती है और द्युज्या, कुज्या इत्यादि जानने के झंझट की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

समीकरण (७) की उपपत्ति नेपियर के प्रथम नियम के आधार पर इस प्रकार है :—

चित्र ४३ में श उत्तर गोल में एक स्थान है जिसका अक्षांश ∠उ श ध या उ ध धनु है। उ पू द प, श का क्षितिज-वृत्त है जिसके उत्तर, पूर्व, दक्खिन और पच्छिम विन्दु क्रम से उ, पू, द और प विन्दु है। ख खस्वस्तिक, पू वि प विषुववृत्त और ग व गा उस ग्रह या तारे के अहोरात्र-वृत्त का वह खंड है जो क्षितिज के ऊपर रहता है जब ग्रह की क्रान्ति वि व धनु के समान होती है।

ग्रह का उदय-विन्दु ग उस वृहद् वृत्त (great circle) पर है जो आकाशीय ध्रुव ध से विषुववृत्त के च विन्दु पर लम्ब है। इसलिए जितने समय में ग्रह ग विन्दु से उदय होकर याम्योत्तर वृत्त के व विन्दु पर पहुँचेगा उतने ही समय में च विन्दु च से आगे बढ़ता वि तक पहुँचेगा। परन्तु जब तक च पूर्व-विन्दु पू पर नहीं पहुँच जायगा तब तक यह क्षितिज के नीचे रहेगा। जब वह पू विन्दु पर आवेगा तब से ६ घंटे पीछे वि पर पहुँचेगा। जितने समय में च विन्दु च से पू तक जायगा उतना ही पहले ग्रह का उदय ग पर हो चुका रहेगा। इसलिए च पू धनु की ज्या ग्रह की चर



चित्र ४३

ज्या होगी । इसका परिमाण जानने के लिए नेपियर का पहला नियम बहुत उपयुक्त है क्योंकि ग च पू एक समकोण गोलीय त्रिभुज है जिसका ग च पू कोण समकोण है, ग च ग्रह की क्रान्ति ज्ञात है और ग पू च कोण द पू वि कोण अथवा विद धनु के समान है जो विख धनु अथवा अक्षांश का पूरक कोण है । इसलिए—

ज्या (पू च) = स्पर्शरेखा (ग च) × कोटि स्पर्शरेखा < ग पू च, अथवा

चर ज्या = क्रान्ति स्पर्श रेखा × अक्षांश स्पर्शरेखा ।

तन्नाडिका उदक्क्रान्तौ धनं हानिः पृथक्स्थिते ।
स्वाहोरात्रचतुर्भागे दिनरात्रिदले स्मृते ॥६२॥
याम्यक्रान्तौ विपर्यस्तं द्विगुणे ते दिनक्षपे ।
विक्षेपयुक्तोनितया क्रान्त्या भानामपि स्वके ॥६३॥

अनुवाद—(६२) उपर्युक्त रीति से जो चर ज्या निकले उसके कलात्मक धनु को यदि क्रान्ति उत्तर हो तो ग्रह के अहोरात्र के असुओं के चौथे भाग में जोड़ने से दिन का आधा और घटाने से रात्रि का आधा होगा । (६३) यदि क्रान्ति दक्षिण हो तो इसके विपरीत होगा अर्थात् चौथे भाग में चर कला घटाने से दिन का आधा और जोड़ने से रात्रि का आधा होगा । दिन या रात्रि के आधे को दुगुना कर देने से दिन-

मान और रात्रिमान ज्ञात हो जायँगे। इसी प्रकार किसी नक्षत्र अर्थात् तारे का भी दिनमान या रात्रिमान जानने के लिए उसकी मध्य क्रान्ति में विक्षेप को जोड़ या घटा कर जैसी उसकी दिशा हो स्पष्ट क्रान्ति निकालनी चाहिए और स्पष्ट क्रान्ति से चर-काल जान कर दिनमान या रात्रिमान जानना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकों को विशेष समझाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इनके पहले के श्लोकों की जो व्याख्या की गयी है और उसके लिए जो चित्र दिये गये हैं उनसे इस नियम की उपपत्ति सहज ही सिद्ध हो सकती है। अंतिम पंक्ति में नक्षत्रों की चरज्या और दिनमान तथा रात्रिमान जानने के लिए भी यही नियम दिया गया है जो कि विज्ञान भाष्य में पहले ही आ चुका है। हां स्पष्ट क्रान्ति जानने के लिए विक्षेप को जोड़ने घटाने की बात में वही भूल होगी जो पहले बतलायी गयी है। इसलिए किसी तारे की स्पष्ट क्रान्ति का ज्ञान भी चित्र ४० के आधार पर बतलायी हुई रीति से करना चाहिए।

उदाहरण—मान लो किसी तारे की उत्तर क्रान्ति २२°३०′ है तो प्रयाग में उसके दिनमान तथा रात्रिमान क्या होंगे?

(१) सूर्य सिद्धान्त की रीति से—

प्रयाग की पलभा* = ५ अंगुल ४५ व्यंगुल

= ५.७ अंगुल (स्थूल रीति से)

तारे की क्रान्ति = २२°३०′

∴ क्रान्तिज्या = १३१५

और क्रान्ति की उत्क्रमज्या = २६१′ ,,

∴ द्युज्या = ३४३८′ − २६१′ = ३१७७′

$$\text{क्षितिज्या} = \frac{१३१५ \times ५.७}{१२}$$

$$\text{चरज्या} = \frac{\text{क्षितिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}}$$

$$= \frac{१३१५ \times ५.७}{१२} \times \frac{३४३८}{३१७७}$$

$$= \frac{२५७६९५२९}{३८१२४}$$

$$= ६७६'$$

---

*प्रयाग की पलभा और अक्षांश ज्योतिर्गणित पृष्ठ ७९ के अनुसार लिये हैं।

∴ चर कला=६८१′

∴ चर काल=६८१ प्राण=११३ पल ३ प्राण

=१ घड़ी ५३ पल ३ प्राण

इसको १५ नाक्षत्र घड़ी में जोड़ा क्योंकि क्रान्ति उत्तर है तो

दिनमान का आधा = १६ घड़ी ५३ पल ३ प्राण

पूर्ण दिनमान = ३३ घड़ी ४७ पल

पूर्ण रात्रिमान = ६ घड़ी १३ पल

यदि सूर्य का दिनमान या रात्रिमान जानना हो तो सूर्य के अहोरात्र के असुओं के चौथे भाग में चर प्राण जोड़कर दूना करने से दिनमान के असु और घटाकर दूना करने से रात्रिमान के असु ज्ञात होंगे यदि क्रान्ति उत्तर हो। सूर्य के अहोरात्र के असु ५९वें श्लोक के अनुसार जानना चाहिये।

इसी प्रकार ग्रह के अहोरात्र के असुओं के चौथे भाग में चर प्राण जोड़कर दूना करने से दिनमान के असु, और घटाकर दूना करने से रात्रिमान के असु निकलेंगे यदि क्रान्ति उत्तर हो।

यह याद रखना चाहिये कि इस प्रकार जो दिनमान या रात्रिमान निकलेंगे वह नाक्षत्र काल की इकाइयों में होंगे। सावन दिन की इकाइयों में बदलने के लिए अलग क्रिया करनी पड़ेगी। एक नाक्षत्र-अहोरात्र २१६०० प्राणों का होता है जबकि एक मध्यम सावन दिन २१६५९.१४ प्राणों का होता है।

(२) नवीन रीति से—

प्रयाग का अक्षांश २५° २५′

तारे की क्रान्ति २२°३०′

∴ चर ज्या=अक्षांश स्पर्शरेखा × क्रान्ति स्पर्शरेखा

=स्पर्शरेखा २५° २५′ × स्पर्शरेखा २२°३०′

=.४७५२ × .४१४२

=.१९६८

∴ चर=११°२१′

=११३ पल ३ प्राण

पृथ्वी की १° गति ४ मिनट, १० पल या ६० प्राणों में होती है। इसलिए ११°२१′ चर, ११३ पल और ३ प्राणों के समान रखा गया है।

स्पष्ट है कि नवीन रीति के अनुसार काम लेने में द्युज्या, क्षितिज्या इत्यादि की आवश्यकता नहीं पड़ती। हाँ स्पर्शरेखा की सारिणी की आवश्यकता अवश्य पड़ती है जो ज्या और कोटिज्या की सारिणियों की तरह बनायी जा सकती है।

का अंतिम चौथा भाग और श्रवण का पहला पन्द्रहवाँ भाग अभिजित् का भोग समझा जाता है। इस प्रकार अभिजित का भोग* २५३ ३/४ कला का हुआ।

प्राचीन काल में २७ नक्षत्रों की जगह अभिजित् को लेकर २८ नक्षत्रों के मान भिन्न भिन्न थे। भास्कराचार्यजी† कहते हैं कि पुलिश, वशिष्ठ, गर्ग आदि ज्योतिषी विवाह यात्रा आदि के फल की सिद्धि के लिए नक्षत्रों के सूक्ष्म मान यह बतला गये हैं :—

चन्द्रमा की मध्यम दैनिक गति ७९०′३५″ मानी गयी है। इसका ड्योढ़ा ११८५′५२.″५ और आधा ३९५′१७″.५ होते हैं।

विशाखा
पुनर्वसु
रोहिणी
तीनों उत्तरा } प्रत्येक का भोग ११८५′५२.″५

आश्लेषा
आर्द्रा
स्वाती
भरणी
ज्येष्ठा
शतभिज } प्रत्येक का भोग ३९५′१७.″५

शेप १५ नक्षत्रों में प्रत्येक का भोग ७९०′३५″ है। इन सबके भोगों को जोड़ कर २१,६०० कला में से घटाने पर जो आता है वही अभिजित् का भोग है। इस प्रकार सत्ताईस नक्षत्रों के भोग मिलकर ६ × ३/२ + ६ × १/२ + १५ × १ अथवा २७ मध्यम दैनिक गतियों के समान है, जो = २७ × ७९०′३५″

= २७ × (८०० − ९′२५″)

= २१६००″ − २५४′१५″

इस तरह सिद्ध है कि अभिजित् का भोग २५४′ १५″ है जो मुहूर्त चिंतामणि के मान से ४५″ अधिक है।

इन सब बातों से समझ पड़ता है कि नक्षत्रों के मान प्राचीन काल में चंद्रमा की मध्यम गति के अनुसार तथा नक्षत्र सूचक चमकीले ताराओं को देख कर निश्चित किये गये थे। परन्तु पीछे से जैसे-जैसे ज्योतिष का विकास हुआ तैसे जान पड़ा होगा

---

*वैश्य प्रांत्यांघ्रिः श्रुति तिथिभागतोऽभिजित्स्यात्।

मुहूर्त चिंतामणि विवाह प्रकरण श्लोक ५५

† सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ १००-१०१

कि वह विभाग मेल नहीं खाते; इसलिए सुविधा के लिये केवल २७ नक्षत्रों में क्रान्ति वृत्त का विभाग किया गया और प्रत्येक भाग ८०० कला का माना गया।

उदाहरण—मान लो यह जानना है कि वसंत पंचमी (१९७९ वि०) के दिन गुरु किस नक्षत्र में थे।

गुरु का स्पष्ट भोग = ६^रा^ २७°५३′३७″
= २०७°५४′ स्थूल रूप से
= १२४७४′

इसको ८०० से भाग देने पर लब्धि १५ और शेष ४ ४′ होते हैं।

इसलिए गुरु १५वें नक्षत्र को पार करके १६वें नक्षत्र विशाखा में है और विशाखा का ४७४′ भोग चुका है तथा ३२६ कला शेष है। यह जानने के लिए कि वृहस्पति विशाखा में कब तक रहेगा। नियम के अनुसार ३२६ कला को गुरु की दैनिक गति से भाग देना चाहिए। परन्तु वृहस्पति तथा अन्य मंदगामी ग्रहों के लिए यह नियम सूक्ष्म नहीं है क्योंकि ३२६ कला चलने के लिए वृहस्पति को बहुत दिन चाहिए जिसमें उसकी गति एक सी नहीं रहेगी। इसलिए अधिक सूक्ष्म विचार की आवश्यकता है।

तिथि के विषय में पहले जो कुछ लिखा गया है वही पर्याप्त है। आगे के ६६वें श्लोक में विशेष चर्चा की जायगी।

योग जानने की रीति

रवीन्दुयोगलिप्ताभ्यो योगाभ भोगभाजिताः।
गतं गम्यं च षष्टिघ्नं भुक्तियोगाप्त नाडिका॥६५॥

अनुवाद—(६५) सूर्य और चन्द्रमा के स्पष्ट स्थानों (निरयन भोगांशों) को जोड़कर उनकी कला बनाकर ८०० से भाग देने पर गत योगों की संख्या निकल आती है। शेष से यह जाना जाता है कि वर्तमान योग की कितनी कला बीत गई है। यदि इस शेष को ८०० कला में घटा दिया जाय तो यह ज्ञात होगा कि वर्तमान योग की कितनी कला रह गयी है। इस गत वा गम्य कला को ६० से गुणा करके सूर्य और चंद्रमा की स्पष्ट दैनिक गतियों के योग से भाग दे दिया जाय तो यह ज्ञात होगा कि वर्तमान योग कितनी घड़ी पहले आरंभ हुआ और कितनी घड़ी पीछे समाप्त होगा।

विज्ञान भाष्य—अश्विनी के आरंभ से जब सूर्य और चंद्रमा दोनों मिलकर ८०० कला आगे चल चुकते हैं तब १ योग बीतता है, जब १६०० कला आगे चल चुकते हैं तब दूसरा योग बीतता है, इत्यादि। इसी तरह जब दोनों मिलकर ३६०°

या २१६०० कला अश्विनी से आगे चल चुकते हैं तब २७वां योग बीतता है। फिर पहले योग का आरंभ होता है। २७ योगों के नाम यह हैं :—

१ विष्कम्भ	१० गंड	१९ परिघ
२ प्रीति	११ वृद्धि	२० शिव
३ आयुष्मान्	१२ ध्रुव	२१ सिद्ध
४ सौभाग्य	१३ व्याघात	२२ साध्य
५ शोभन	१४ हर्षण	२३ शुभ
६ अतिगंड	१५ वज्र	२४ शुक्र
७ सुकर्मा	१६ सिद्धि	२५ ब्रह्मा
८ धृति	१७ व्यतीपात	२६ इन्द्र या ऐन्द्र
९ शूल	१८ वरीयान्	२७ वैधृति

नियम समझने के लिए एक उदाहरण पर्याप्त होगा। मान लो यह जानना है है कि सम्बत् १९८१ वि० की मेष संक्रान्ति के दिन कौन योग वर्तमान था, उसका किस समय आरंभ और किस समय अंत हुआ?

पहले मेष संक्रान्ति के दिन के सूर्य और चंद्रमा के स्थान तथा दैनिक गतियां स्पष्ट करनी पड़ेंगी।

कलियुग के आरंभ से १९८१ वि० की स्पष्ट मेष संक्रान्ति के समय तक ५०२५ सौर वर्ष तथा १८,३५,४२३.०८०६२५ मध्यम सावन दिन होते हैं। कलियुग का आरंभ उज्जैन में गुरु का मध्य रात्रि से हुआ, इसलिए उज्जैन में शनिवार की मध्य रात्रि के .०८०६२५ दिन उपरान्त १९८१ वि० की मेष संक्रान्ति हुई। सुविधा के लिए मध्य रात्रि के समय के सूर्य और चंद्रमा स्पष्ट करना अच्छा होगा।

जिस रीति से सूर्य का स्पष्ट स्थान निकाला गया है उसी तरह सूर्य और चन्द्रमा दोनों को स्पष्ट करना चाहिये। गणना का सार यह है :—

	सूर्य का स्थान	चंद्रमा का स्थान	दोनों का योगफल
शनिवार (मध्य रात्रि)	३५९°५५′१६″	९५°३८′५३″	९५°३४′९″
रविवार (मध्य रात्रि)	०°५३′५९″	१०८°१६′५६″	१०९°१०′५५″
दैनिक गति	५८′४३″	१२°३८′३″	१३°३६′४६″

पहला योगफल ३६०° से अधिक हो जाता है इसलिए ३६०° छोड़ दिया गया और ९५°३४′९″ ले लिया गया

अब ९५°३४′९″ = ५७३४′९″

इसको ८०० से भाग देने पर ७ लब्धि और १३४′ ९″ शेष होते हैं। इसलिए शेर संक्रान्ति की अर्द्ध रात्रि को आठवां योग धृति वर्तमान है और इसका १३४′ ९″ बीत चुका है और ६६५′ ५१″ शेष है।

६० घड़ी में सूर्य और चन्द्रमा की गति मिलकर १३° ३६′ ४६″ या १३°.६१२८ होती है।

$$१३४'९'' = २°१४'९'' = २°.२३५८$$

$$६६५'५१'' = ११°५'५१'' = ११°.०९७५$$

$$१३.६१२८ : २.२३५८ :: ६० \text{ घड़ी} : \text{इष्ट काल}$$

$$\therefore \text{इष्ट काल} = \frac{२.२३५८ \times ६०}{१३.६१२८} = \frac{२२३५८ \times ६०}{१३६१२८}$$

$$= ९ \text{ घड़ी } ५१ \text{ पल}$$

इसलिए शनीचर की मध्यरात्रि से ९ घड़ी ५१ पल पहले उज्जैन में धृति योग का आरंभ हुआ।

$$१३.६१२८ : ११.०९७५ :: ६० : \text{इष्ट काल}$$

$$\therefore \text{इष्ट काल} = \frac{११०९७५ \times ६०}{१३६१२८} = ४८ \text{ घड़ी } ५५ \text{ पल}$$

इसलिए शनिचर की मध्यरात्रि से ४८ घड़ी ५५ पल उपरान्त रविवार को धृति योग का अंत और शूल योग का आरंभ होगा।

यह गणना मध्यम काल के अनुसार किया गया है। स्पष्ट काल के अनुसार करने के लिए काल-समीकरण का संस्कार तथा अन्य स्थान के लिए उज्जैन से उस स्थान का देशान्तर संस्कार भी करना होगा। काल समीकरण संस्कार की चर्चा तीसरे अधिकार में विशेष रूप से की जायगी। सूर्योदय से काल गणना करना हो तो चर संस्कार भी करना होगा।

अर्कोनचन्द्रलिप्ताभ्यस्तिथयो भोगभाजिताः।
गतं गम्यं च षष्टिघ्नं नाड्यो भुक्त्यन्तरोद्धृताः ॥६६॥

अनुवाद—(६६) चन्द्रमा के स्पष्ट स्थान में सूर्य का स्पष्ट स्थान घटाने से जो आवे उसकी कला बना कर एक तिथि के भोग अर्थात् ७२० कला से भाग दे दो, लब्धि गत तिथि होगी शेष जो बचेगा वह वर्तमान तिथि की गत कला होगी। इसको ७२० कला में से घटाने पर वर्तमान तिथि की गम्य कला आवेगी। वर्तमान तिथि की गत और गम्य कलाओं को ६० से गुणा करके सूर्य और चंद्रमा की दैनिक स्पष्ट गतियों के अंतर से भाग देने पर यह ज्ञात हो जायगा कि वर्तमान तिथि का आरंभ और अंत कब हुआ।

विज्ञान भाष्य—इस काम के लिए भी सूर्य और चंद्रमा को स्पष्ट करना पड़ता है। देखना है कि १६२१ की मेष संक्रान्ति के निकट शनिश्चर की मध्यरात्रि को कौन तिथि वर्तमान थी।

शनिवार की मध्यरात्रि को चंद्रमा के स्पष्ट स्थान में से सूर्य का स्पष्ट स्थान घटाने से नहीं घटता है इसलिए चंद्रमा के स्थान में ३६०° जोडकर योगफल में से सूर्य का स्थान घटाया तो ९५° ४३′ ३७″ आया। इसी तरह इतवार की मध्यरात्रि के स्थानों का अंतर १०७° २२′ ५७″ है। दोनों की दैनिक गतियों का अंतर ११° ३९′ २०″ है।

७२० कला या १२° की एक तिथि होती है इसलिए ९५° ४३′ ३७″ को १२° से भाग दिया तो लब्धि ७ और शेष ११° ४३′ ३७″ होता है। इससे प्रकट होता है कि मध्य रात्रि के समय आठवीं तिथि अर्थात् अष्टमी वर्तमान है जिसका ११° ४३′ ३७″ बीत चुका है और १६′ २३″ शेष है। इस १६′ २३″ को ६० से गुणा करके ११° ३९′ २०″ से भाग दिया तो १ घड़ी २४ पल आया। इसलिए शनीचर की मध्य रात्रि से १ घड़ी २४ पल उपरांत अष्टमी का अंत हुआ।

किसी अन्य स्थान में सूर्योदय से तिथि का अंतकाल जानने के लिए वही संस्कार करने पड़ते हैं जो योग के सम्बन्ध में कहा गया है।

तिथि योग इत्यादि जानने के लिए जो नियम बतलाये गये हैं वह बड़े कठिन हैं इसलिए व्यवहार के लिए सारणियों का उपयोग किया जाता है जिनसे तिथि योग इत्यादि का आरंभ या अंतकाल जानना बड़ा सुगम हो जाता है। विस्तार भय से सारणी बनाने का सिद्धान्त यहाँ नहीं बतलाया जा सकता। यदि आवश्यकता समझ पड़ेगी तो अंत में परिशिष्ट में बतला दिया जायगा।

ध्रुवाणि शकुनिर्नाग तृतीयं तु चतुष्पदम्।
किंस्तुघ्नं च चतुर्दश्याः कृष्णाया अपरार्धतः ॥६७॥
बवादीनि तथा सप्त चराख्यकरणानि तु।
मासेऽष्टकृत्व एकैकं करणं परिवर्तते ॥६८॥
तिथ्यर्धभोगं सर्वेषां करणानां प्रचक्षते।
इत्थं स्पष्टगतिः प्रोक्ता सूर्यादीनां खचारिणाम् ॥६९॥

अनुवाद—(६७) शकुनि, नाग, चतुष्पद और किंस्तुघ्न चार स्थिर करण प्रत्येक कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्द्ध से आरम्भ हो कर आधी-आधी तिथि तक क्रमानुसार रहते हैं। (६८) उसके बाद बवादि (बव, बालव, कौलव, तैतिल, गरज, वणिज, विष्टि) सात चर करण क्रमानुसार मास में आठ फेर करते हैं। (६९) प्रत्येक

करण का भोग आधी तिथि के समान समझना चाहिये। यहाँ तक सूर्यादि ग्रहों को स्पष्ट करने की रीति कही गयी।

विज्ञान भाष्य—स्थिर करणों का जो क्रम यहाँ बतलाया गया है प्रचलित पंचांगों में उससे कुछ विपरीत रहता है। इनमें शकुनि के बाद चतुष्पद तब नाग और किंस्तुघ्न लिखे मिलते हैं। इसका कारण क्या है और कब से इस क्रम का आरम्भ हुआ यह विचारणीय है। विष्टि का दूसरा नाम भद्रा है जो शुभ कामों में अशुभ समझी जाती है। प्रत्येक चांद्रमास में किस तिथि को कौन करण भोग करता है यह नीचे की तालिका से प्रकट होगा।

प्रत्येक चांद्र मास के करणों का क्रम (सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार)

तिथि	तिथि का शुक्ल पक्ष पूर्वार्द्ध	तिथि का शुक्ल पक्ष उत्तरार्द्ध	तिथि का कृष्ण पक्ष पूर्वार्द्ध	तिथि का कृष्ण पक्ष उत्तरार्द्ध
१	किंस्तुघ्न	बव	बालव	कौलव
२	बालव	कौलव	तैतिल	गरज
३	तैतिल	गरज	वणिज	विष्टि
४	वणिज	विष्टि	बव	बालव
५	बव	बालव	कौलव	तैतिल
६	कौलव	तैतिल	गरज	वणिज
७	गरज	वणिज	विष्टि	बव
८	विष्टि	बव	बालव	कौलव
९	बालव	कौलव	तैतिल	गरज
१०	तैतिल	गरज	वणिज	विष्टि
११	वणिज	विष्टि	बव	बालव
१२	बव	बालव	कौलव	तैतिल
१३	कौलव	तैतिल	गरज	वणिज
१४	गरज	वणिज	विष्टि	शकुनि
१५	विष्टि	बव	नाग	चतुष्पद

शुक्ल पक्ष की १५वीं तिथि को पूर्णिमा और कृष्ण पक्ष की १५वीं तिथि को अमावस्या कहते हैं। पूर्णिमा को १५ और अमावास्या को ३० से सूचित करते हैं।

●

सूर्य-सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार नामक दूसरे अध्याय का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

तृतीय अध्याय

त्रिप्रश्नाधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

[१-४ श्लोक—समतल भूमि में खड़ा शंकु गाड़कर दिशा सूचित करने वाली रेखाएँ खीचना । ५ श्लोक-शंकु की छाया और उसकी नोक से पूर्व-पश्चिम रेखा का अंतर जान कर छाया की दिशा जानना । ६ श्लोक—सममंडल, उन्मंडल और विषुवन्मण्डल की परिभाषा । ७ श्लोक—अग्रा की परिभाषा । ८ श्लोक—शंकु और उसकी छाया का परिमाण जानकर छायाकर्ण जानना । ९-१० श्लोक—अयनांश जानकर ग्रहों की क्रांति, छाया, चर इत्यादि जानना । ११ श्लोक—अयनान्त या विषुवत् दिन को सूर्य का वेध करके अयनांश जांचना । १२ श्लोक—पलभा की परिभाषा । १३ श्लोक—पलभा से लम्बांश और अक्षांश जानना । १४-१५ श्लोक—मध्याह्नकालिक सूर्य का नतांश और क्रान्ति जानकर अक्षांश जानना । १६ श्लोक—अक्षांश से पलभा जानना । १७-१९ श्लोक अक्षांश और मध्याह्नकालिक सूर्य के नतांश से सूर्य की क्रान्ति जानना और सूर्य की क्रान्ति से सूर्य का स्पष्ट सायन भोग जानना और मंदफल का संस्कार देकर मध्य सायन भोग जानना । २०-२१—अक्षांश और सूर्य की क्रांति से नतांश जानकर मध्याह्नकालिक छाया और छायाकर्ण जानना । २२ श्लोक—सूर्य की उदयकालिक अग्रा जानकर इष्टकाल की अग्रा जानना । २३-२४ श्लोक -अग्रा और पलभा से छाया का भुज जानना । २५ श्लोक—जब सूर्य सममंडल में हो तब छायाकर्ण जानने की रीति । २६ श्लोक—जब सूर्य की उत्तर क्रान्ति अक्षांश से कम हो तब सममंडल सूर्य का छायाकर्ण जानना । २७ श्लोक—अग्रा जानने की दूसरी रीति । २८-३१ श्लोक—करणी और फल के ज्ञान से सूर्य का उन्नतांश जानना जब सूर्य अग्निकोण या नैऋत्य कोण में हो । ३२ श्लोक—उन्नतांश जानकर नतांश जानना । ३३ श्लोक—उन्नतांश और नतांश । छाया और छायाकर्ण जानना ३४-३५ श्लोक—चरज्या और नतकाल से छेद जानकर दृग्ज्या अर्थात् नतांश ज्या जानना और उससे पहले की तरह छाया और छायाकर्ण जानना । ३६-३८ श्लोक छाया और छायाकर्ण से नतकाल जानना । ३९ और ४० का पूर्वार्द्ध—अग्रा से क्रान्ति जानकर सूर्य का भोगांश जानने की दूसरी रीति । ४० का उत्तरार्द्ध और ४१ का पूर्वार्द्ध—भाभ्रम रेखा खींचना । ४१ का उत्तरार्द्ध और ४२ श्लोक—लंका में सायन राशियों के उदय-काल जानने की रीति । ४३-४४ श्लोक—लंका में सायन मेष, वृष और मिथुन राशियों के उदयासु और अन्य स्थानों में सायन राशियों के उदयासु जानने की रीति । ४५-४७ श्लोक—किस समय कौन राशि पूर्व क्षितिज में लग्न होती है यह जानना । ४८ श्लोक—मध्यलग्न जानना । ४९-५० श्लोक—लग्न जानकर समय जानना ।]

इस अध्याय में किसी के मत से श्लोकों की संख्या ५० और किसी के मत से ५१ है। जो लोग श्लोकों की संख्या ५० मानते हैं वह कहते हैं कि ११ वें और २० वें श्लोकों में * प्रत्येक में ४ चरणों की जगह ६ चरण हैं। जो लोग ५१ मानते हैं वह प्रत्येक श्लोक चार-चार चरणों के मानते हैं। इसलिए दोनों मत मेरी समझ में अनिश्चित हैं। इस समय मेरे पास सूर्य सिद्धान्त के चार संस्करण हैं परन्तु खेद है कि किसी में भी श्लोकों के अंकों का क्रम एक सा नहीं है। पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी की सम्पादित पुस्तक में भी अंकों का क्रम गड़बड़ है इसलिए मैंने सुविधा के लिए १९वें और ३५वें श्लोक को तीन-तीन पंक्तियों अथवा छ छ चरणों का माना है। २०वें श्लोक को ६ चरणों का मानने से यह गड़बड़ पड़ती है कि आगे के किसी श्लोक में नियम पूर्ण नहीं होते वरन् एक श्लोक का उत्तरार्द्ध और दूसरे श्लोक का पूर्वार्द्ध मिलाना पड़ता है। ३५ वें श्लोक को ६ चरणों का मान लेने से ३६-४२ श्लोकों में ही यह असुविधा रहती है।

इस अध्याय में सूर्य के वेध से दिशा, देश (स्थान) और काल की जानकारी करने की अनेक रीतियाँ वर्णित हैं। वेध के लिए केवल एक यंत्र काम में लाया गया है जिसे शंकु कहते हैं। किसी कठिन धातु या हाथीदांत की एक सीधी नोकदार छड़ समतल भूमि में खड़ी गाड़कर उसी की छाया से सब काम लिया गया है। इसी को शंकु कहा गया है। यंत्राध्याय में और भी यंत्रों का वर्णन है परन्तु इस जगह केवल शंकु की चर्चा है। यह स्पष्ट है कि सूर्य का बिम्ब बहुत बड़ा देख पड़ता है और शंकु की छाया की नोक बहुत सूक्ष्मतापूर्वक नहीं निश्चित की जा सकती है इसलिए शंकु से जो जो बातें जानी जा सकती हैं वह कुछ स्थूल हैं। आजकल दूरदर्शक यंत्र से वेध करने से अधिक सूक्ष्मता हो सकती है परन्तु प्राचीन काल में शंकु बड़ा उपयोगी था। इससे वेध करके जितनी सूक्ष्मता हो सकती थी उसे प्राप्त करने में हमारे ज्योतिषियों ने बहुत कुशलता दिखलायी है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

दूरदर्शक यंत्र की सहायता से कुछ ऐसी बातों का भी आविष्कार हुआ है जिनके संस्कार के बिना दिशा, देश और काल का ज्ञान स्थूल रहता है इसलिए आवश्यकता है कि उनकी भी चर्चा की जाय। इसलिए विज्ञान भाष्य में लम्बन (parallax) किरणवक्रीभवन (refraction of light), अयन चलन का कारण, अक्ष विचलन (nutation), भूचलन संस्कार (aberration of light) और काल-समीकरण (equation of time) का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जायगा।

---

* पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी सम्पादित सूर्य-सिद्धान्त पृष्ठ १८०

दिशाओं के निश्चय करने की रीति

शिलातलेऽम्बुसंसिद्धे वज्रलेपेऽपि वा समे ।
तत्रशङ्क्वङ्गुलैरिष्टैः समं मण्डलमालिखेत् ।।१।।

तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कुं कल्पितद्वादशाङ्गुलम् ।
तच्छायाग्रं स्पृशेद्यत्र वृत्तं पूर्वापराह्णयोः ।।२।।

तत्र बिन्दू विधातव्यौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ ।
तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्तव्या दक्षिणोत्तरा ।।३।।

याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमे ।
दिङ्मध्यमत्स्यैः संसाध्या विदिशस्तद्वदेव हि ।।४।।

अनुवाद—(१) जल के द्वारा शोधकर समतल किये हुए पत्थर के तल पर अथवा वज्रलेप (सुर्खी चूने इत्यादि) से बने हुए समतल चबूतरे पर शंकु के अनुसार इष्ट अंगुल के व्यासार्ध का एक वृत्त खींचो । (२) इस वृत्त के केन्द्र मे बारह अंगुल का एक शंकु लम्ब रूप में स्थापित करो । इसकी छाया की नोक मध्याह्न के पहले और पीछे वृत्त को जहाँ स्पर्श करे, (३) वहाँ वृत्त पर दो बिन्दु बना दो । इनको पूर्वाह्न और अपराह्न बिन्दु कहते हैं । इन दो बिन्दुओं के बीच में तिमि द्वारा उत्तर दक्षिण रेखा खींचो । (४) उत्तर दक्षिण दिशाओं के बीच में तिमि द्वारा पूर्व-पच्छिम-रेखा खींचो । इस प्रकार दो दिशाओं के बीच में तिमि द्वारा ईशान आदि विदिशाओं की रेखाएँ खींचो ।

विज्ञान भाष्य—यह जानने के लिए कि कोई तल सम है या नहीं सबसे सुगम रीति यह है कि तल के किनारे चारों ओर गीली मिट्टी की आड़ करके उसमें एक या डेढ़ अंगुल गहरा पानी भर दो और किसी सीधी सींक से देखो कि सब जगह पानी की गहराई एक ही है या भिन्न भिन्न । यदि सब जगह पानी की गहराई एक ही हो तो समझना चाहिए कि तल सम है । आजकल यह काम स्पिरिट लेवेल (Spirit level) से होता है ।

वज्रलेप—पहले सुर्खी चूने में कई प्रकार का मसाला मिलाकर ऐसा गारा बनाया जाता था जिसकी गच वज्र की तरह कठिन हो जाती थी । ऐसे गारे को वज्रलेप कहते हैं । बराही* संहिता में वज्रलेप बनाने की एक विधि यों है :—

*सत्तावनवां अध्याय श्लोक १-३

तेंदू के कच्चे फल, कैथा के कच्चे फल, सेमल के फूल, सल्लकी के बीज, बंधन की छाल और बच इन सबको जल में पकाकर काढ़ा बनावे, जब आठवां भाग पानी रह जाय तब उतार कर इसमें श्रीवास (सरल वृक्ष का गोंद) रस, गूगल, भिलावा, कुंदरू, राल, अलसी और बेल की गिरी पीसकर मिलावे तो वज्रलेप तैयार होता है।

तिमि—यदि दो वृत्त एक दूसरे को काटते हुए खींचे जायँ तो इनके बीच का भाग मछली के आकार का हो जाता है। इसी को तिमि कहते हैं।

चित्र ४४ में वृत्त के मध्य में श शंकु का स्थान है। मध्याह्न के पहले शंकु की छाया जब श क के समान होती है तब इसकी नोक परिधि के क विन्दु पर पहुँचती है। मध्याह्न के पीछे जब छाया श ख के समान फिर होती है तब इसकी नोक परिधि के ख विन्दु पर पहुँचती है। बस इन्हीं क, ख विन्दुओं को केन्द्र मानकर समान व्यासार्द्ध के दो वृत्त ऐसे खींचे जिससे ग घ क्षेत्र तिमि के आकार का बनता है। इसके सामान्य विन्दुओं को मिलाने वाली रेखा ही उत्तर दक्षिण रेखा है। यह रेखा पहले वृत्त को जिन विन्दुओं पर काटती है उन पर उत्तर दिशा सूचित करने के लिए उ और दक्षिण दिशा सूचित करने के लिए द लिख देना चाहिये। फिर उ और द को केन्द्र मानकर समान व्यासार्द्ध के दो और धनु खींचकर इनके सामान्य विन्दुओं को एक सीधी रेखा से मिला दो। इसी को पूर्व-पश्चिम रेखा कहेंगे। पच्छिम दिशा सूचित करने के लिए प और पूर्व दिशा के लिए पू लिखना चाहिये। फिर उ और प विन्दुओं को केन्द्र मान कर समान व्यासार्द्ध के दो धनु खींचकर उनके सामान्य विन्दुओं को मिलाने वाली रेखा उ और प के बीच में जिस विन्दु पर परिधि को काटेगी वह वायव्य कोण की दिशा और पू द के बीच में जिस विन्दु पर काटेगी वह अग्नि कोण की दिशा होगी। इसी प्रकार ईशान और नैऋत्य कोण की दिशा भी जानी जा सकती है।

उपपत्ति—उदय के समय सूर्य पूर्व क्षितिज के जिस विन्दु पर देख पड़ता है उससे दक्षिण की ओर खसकता हुआ ऊँचा उठता जाता है और किसी खड़ी लकड़ी या शंकु की छाया छोटी होती हुई उत्तर की ओर खसकती जाती है। मध्याह्न काल में सूर्य याम्योत्तर-वृत्त पर आ जाता है। उस समय छाया सबसे छोटी और ठीक उत्तर दिशा में होती है। इसके बाद सूर्य कुछ कुछ उत्तर की ओर खसकता हुआ नीचे उतरने लगता है और छाया उत्तर दिशा से पूर्व की ओर खसकती हुई बड़ी होती जाती है। मध्याह्न काल से जितना समय पहले शंकुकी छाया उत्तर दिशा से जितना बड़ा कोण बनाती हुई पच्छिम की ओर रहती है, मध्याह्न से उतना ही समय पीछे छाया उत्तर दिशा से उतना ही बड़ा कोण बनाती हुई पूर्व की ओर रहती है। मध्याह्न से समान

काल आगे और पीछे, छाया की लम्बाई भी समान* होती है। इसलिए जब छाया की लम्बाई खिचे हुए वृत्त के व्यासार्द्ध के समान हो तब इनके बीच में जो कोण बनता है उसको दो समान भागों में विभाजित करने वाली रेखा ही उत्तर-दक्षिण-रेखा होगी। इसी समविभाजक रेखा को खींचने के लिए समान व्यासार्द्ध के धनु खींचकर तिमि बनाने का आदेश दिया गया है जो रेखागणित की विधि के अनुसार है। इसी नियम के अनुसार अन्य दिशाओं को सूचित करने वाली रेखाएँ खींची जा सकती हैं। वृत्त पर जो पूर्वाह्न और अपराह्न विन्दु छाया की नोक के द्वारा स्थिर किये जाते हैं उनको मिलाने वाली रेखा भी पूर्व-पच्छिम-रेखा है परन्तु भविष्य में गड़े हुए शंकु से काम लेने के लिए आवश्यक है कि दिशासूचक जितनी रेखाएं खींची जायँ वह सब शंकु के मध्य से होकर जायँ। इसलिए वृत्त के उत्तर दक्षिण विन्दुओं से तिमि बनाकर पूर्व-पच्छिम-रेखा खींचने का आदेश है।

क्रान्ति के सदैव बदलते रहने के कारण जो तनिक सी स्थूलता आ जाती है उसके संशोधन के लिए भास्कराचार्य † जी तथा अन्य ज्योतिर्यपियों ने नियम बनाये हैं परन्तु उनके वर्णन करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। इन संशोधनों से उपर्युक्त रीति की सरलता जाती रहती है। यदि शुद्धता के लिए कठिन नियम की आवश्यकता हो तो दिगंश जानने की रीति से ही क्यों न काम लिया जाय जिसकी चर्चा इसी अध्याय में की जायगी।

चतुरश्रं वहिः कुर्यात्सूत्रैर्मध्याद्विनिर्गतैः।
भुजसूत्राङ्गुलैस्तत्र दत्तैरिष्टप्रभाग्रतः ॥५॥

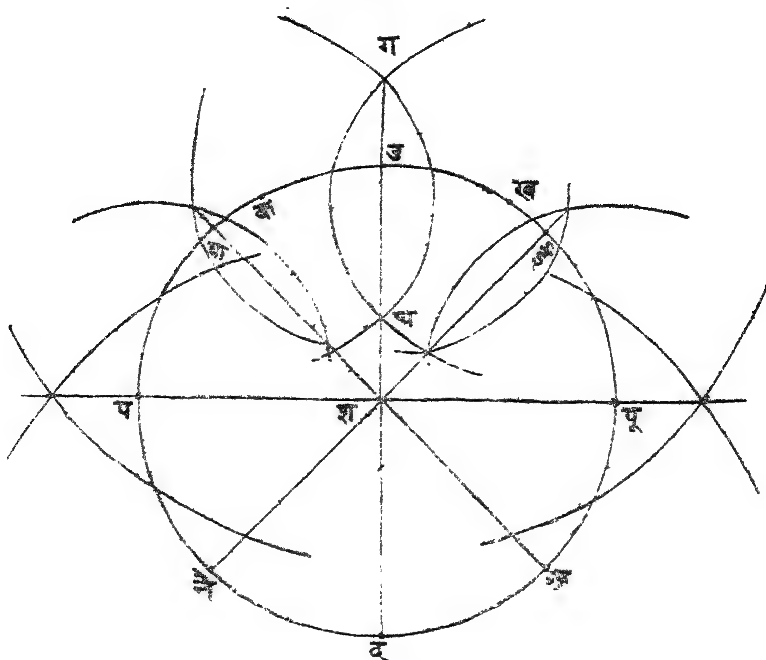
अनुवाद— (५) केन्द्र से उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पच्छिम रेखाएँ छाया के समान व्यासार्द्ध से खींची गयी परिधि के जिन विन्दुओं पर पहुँचती हैं उनको स्पर्श करती हुई रेखाएँ खींच कर समचतुर्भुज क्षेत्र बनाओ। पूर्वापर रेखा से समकोण बनाती

---

* सूर्य की क्रान्ति सदैव बदलती रहती है इसलिए मध्याह्न के पहले और पीछे की क्रान्तियों में कुछ अंतर पड़ जाता है जिससे उपर्युक्त कथन में कुछ स्थूलता आ जाती है परन्तु यह नहीं के समान समझना चाहिए। जिस समय क्रान्ति की गति बहुत मन्द होती है अर्थात् जिस समय सूर्य उत्तरायन या दाक्षिणायन विन्दुओं के पास रहता है उस समय यह बात अधिक शुद्ध होगी।

† तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद्भाकर्णमित्याहताल्लम्बज्याप्तमिताङ्गुलैरयनदिश्यैन्द्री स्फुटा चालिता ॥८॥

गणिताध्याय, त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ १०४-१०५



चित्र ४४

हुई इष्ट भुज के समान सीधी रेखा खींचो जो परिधि तक पहुँचे। परिधि के जिस विन्दु तक भुज की नोक पहुँचे उसको शंकु के मध्य से मिला दो तो छाया की दिशा ज्ञात होगी।

विज्ञान भाष्य—चित्र ४५ में श शंकु का केन्द्र है और श छ किसी समय की छाया है। श को केन्द्र मानकर श छ के व्यासार्द्ध से परिधि खींची गयी है। प पू पूर्वापरा रेखा अथवा पूर्व-पच्छिम रेखा है और उ द उत्तर-दक्खिन रेखा है। पूर्वापरा रेखा से छाया की नोक छ का अन्तर छ भ के समान और उत्तर-दक्खिन रेखा से छ का अंतर छ क के समान है। छ भ को छाया का भुज और छ क को छाया की कोटि कहते हैं। इस श्लोक का अर्थ यह है कि यदि छाया और भुज की नाप ज्ञात हो तो छाया की दिशा कैसे जानी जा सकती है। आजकल की प्रथा के अनुसार इसको यों कह सकते हैं कि यदि छाया की नोक के भुजयुग्म (coordinates) ज्ञात हों तो छाया कैसे खींची जा सकती है। पूर्वापरा रेखा से छाया की नोक के अंतर का छाया का भुज और उत्तर-दक्खिन रेखा से छाया की नोक के अंतर का

उ
छ क
विषुवद्भाग्रगा रेखा
त थ
अ व
पलभा
प पू
भ श
स
द

चित्र ४५

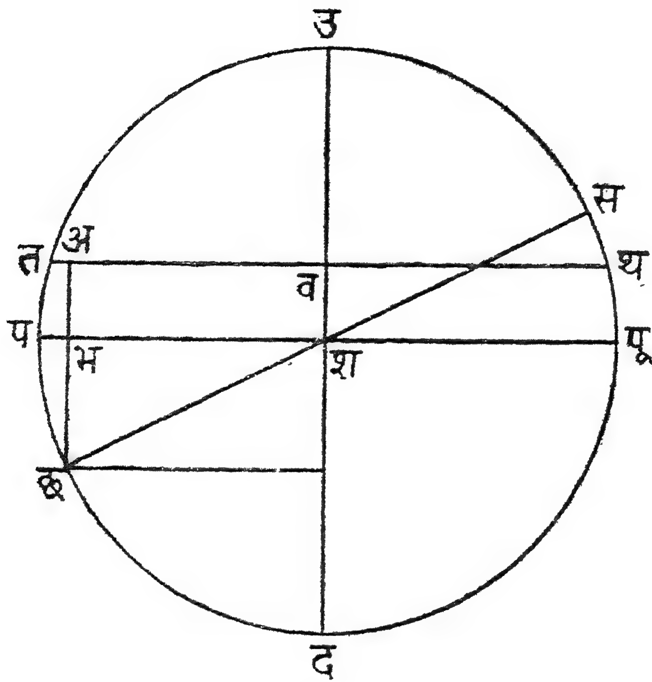
छाया की कोटि कहते हैं। किसी समय की छाया और इसके भुज में जो सम्बन्ध होता है वह २३-२४ श्लोकों में बतलाया गया है।

यदि छ श रेखा बढ़ायी जाय तो वह परिधि को स विन्दु पर काटेगी। इसी श स दिशा में सूर्य होगा जब कि शंकु की छाया श छ होगी। इस समय सूर्य पूर्व विन्दु पू से जितना दक्षिण है वह पू श स कोण से जाना जा सकता है। यही कोण इस समय सूर्य की अग्रा है। उत्तर विन्दु उ से सूर्य उ श स कोण के अंतर पर है। यही कोण इस समय सूर्य का दिगंश (azimuth) है। इस चित्र में सूर्य पूर्वापर रेखा से दक्खिन है। यदि सूर्य पूर्वापरा रेखा से उत्तर हो तो छाया, अग्रा, भुज, इत्यादि ४६ चित्र के अनुसार होंगी।

जिस दिन सूर्य विषुवद्वृत्त पर होता है उस दिन अर्थात् सायन मेष या सायन तुला संक्रान्ति के दिन मध्याह्न में शंकु की छाया जितनी बड़ी होती है उसको विषुवद्भा, पलभा या अक्षभा कहते हैं। यदि श स्थान की पलभा श व के समान हो तो व से पूर्वापरा रेखा के समानान्तर खींची गयी त थ रेखा को विषुवद्भाग्रगा रेखा कहते हैं। छाया की नोक से विषुवद्भाग्रगा रेखा का जो अन्तर होता है वही अग्राज्या कहलाता है। ४५-४६ चित्रों में छ अ अग्राज्या है।

★सममण्डल, उन्मण्डल और विषुवन्मण्डल★

प्राक्पश्चिमाश्रिता रेखा प्रोच्यते सममण्डलम्।
उन्मण्डलं च विषुवन्मण्डलं परिकीर्त्यते ॥६॥



चित्र ४६

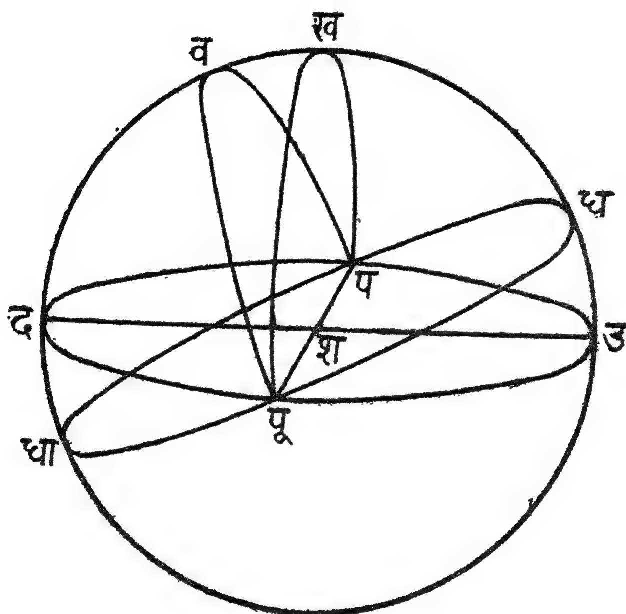
अनुवाद—(६) सममण्डल, उन्मण्डल और विषुवन्मण्डल पूर्व और पश्चिम विन्दुओं पर होते हैं ।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोक का शब्दार्थ यह है—पूर्व पश्चिम विन्दुओं से जानेवाली रेखा को सम-मण्डल कहते हैं और उसी को उन्मण्डल और विषुवन्मण्डल भी कहते हैं । परन्तु यथार्थ में यह तीनों शब्द भिन्न-भिन्न अर्थ रखते हैं इसलिये अनुवाद में मैंने अन्य कई टीकाकारों के विरुद्ध वही अर्थ लिखा है जो उचित है । जान पड़ता है कि इस श्लोक का शुद्ध रूप यह नहीं है वरन् भ्रम के कारण ऐसा कर दिया गया है । रंगनाथजी ने अपनी गूढ़ार्थ प्रकाशिका टीका में इसी को शुद्ध मान कर इन तीनों शब्दों की एकरूपता सिद्ध करने की चेष्टा की है परन्तु वह युक्तियुक्त नहीं जान पड़ती क्योंकि यह तीनों शब्द बहुत प्राचीन काल से भिन्न-भिन्न अर्थ रखते आये हैं और इनमें समानता केवल इतनी है कि यह तीनों मण्डल पूर्व पश्चिम विन्दुओं से होकर जाते हैं ।

सममण्डल (prime vertical) उस ऊर्ध्वाधर (vertical) वृत्त को कहते हैं

उन्मण्डल (six o'clock line) उस वृत्त को कहते हैं जो पूर्व पश्छिम विन्दुओं और उत्तरी दक्षिणी आकाशीय ध्रुवों से होकर जाता है। यही निरक्षदेश पर क्षितिज होता है।

विषुवन्मण्डल (celestial equator) उस वृत्त को कहते है जो पूर्व पश्चिम विन्दुओं से होकर जाता है और उत्तरी दक्षिणी आकाशीय ध्रुवों से समान अन्तर पर होता है।



चित्र ४७

चित्र ४७ का विवरण—

श...दर्शक का स्थान
उ...उत्तर विन्दु
पू...पूर्ण विन्दु
द...दक्षिण विन्दु
प...पच्छिम विन्दु
ध...उत्तरी अकाशीय ध्रुव
धा...दक्षिणी आकाशीय ध्रुव
ख...खस्वस्तिक
उ पू द प...क्षितिज वृत्त
ध पू धा प...उन्मण्डल
प ख पू...सममण्डल
प व पू...विषवन्मण्डल वा विषुवद्वृत्त
व...यामोत्तर वृत्त और विषुवद्वृत्त का सामान्य विन्दु
उ ध ख व द धा...यामोत्तर वृत्त

चित्र ४२ में एक एक वृत्त या मंडल के लिये केवल एक एक सीधी रेखा खींची गयी है। हाँ यामोत्तर वृत्त दोनों में एक ही तरह खींचा गया है।

अग्राज्या

रेखा प्राच्यपरा साध्या विषुवद्भाग्रगा तथा।
इष्टच्छायाविषुवतोः मध्यमग्राऽभिधीयते ॥७॥

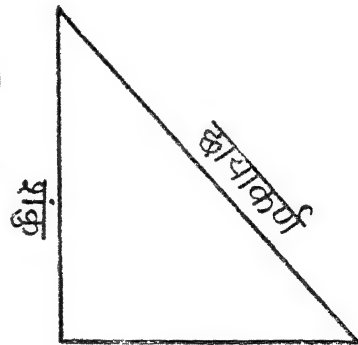
अनुवाद—(७) पलभा के अग्र से जानेवाली पूर्व पश्चिम रेखा के समानान्तर रेखा को विपुवद्भाग्रगा रेखा कहते हैं। इष्ट छाया की नोक से विषुवद्भाग्रगा रेखा का जो अन्तर होता है वह अग्रा कहलाती है।

विज्ञान भाष्य—चित्र ४५-४६ में जिसको अग्राज्या बतलाया गया है वही यहाँ अग्रा कही गयी है। आचार्य ने कोण और उसके सामने के भुज दोनों को अनेक स्थानों पर अग्रा शब्द से सूचित किया है परन्तु मैं कोण को अग्रा और अग्रा के सामने के भुज को अग्राज्या लिखूंगा जिससे भ्रम न हो।

छायाकर्ण

शङ्कुच्छायाकृतियुतेर्मूलं कर्णोऽस्य वर्गतः।
प्रोज्झ्य शङ्कुकृतिं मूलं छाया शङ्कुर्विपर्ययात् ॥८॥

अनुवाद—(८) शंकु और छाया प्रत्येक के वर्ग को जोड़कर वर्गमूल निकालने से छायाकर्ण आता है। छायाकर्ण के वर्ग में से शंकु के वर्ग को घटाकर वर्गमूल निकालने से छाया और छाया के वर्ग को घटाकर वर्गमूल निकालने से शंकु आता है।



चित्र ४८

विज्ञान भाष्य—समकोण त्रिभुज के दो भुज ज्ञात हों तो तीसरा भुज जानने की जो रीति है वही यहाँ शंकु, छाया और छायाकर्ण के सम्बन्ध में भी लागू है। इस श्लोक का सार यह है :—

$$\text{छाया कर्ण} = \sqrt{\text{शंकु}^2 + \text{छाया}^2}; \quad \text{छाया} = \sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{शंकु}^2};$$

$$\text{शंकु} = \sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{छाया}^2}$$

अयनांश जानने की रीति

त्रिंशत्कृत्या युगे भांशैश्चक्रं प्राक्परिलम्बते।
तद्गुणाद्भूदिनैर्भक्ताद् द्युगणाद्यदवाप्यते ॥९॥
तद्दोस्त्रिघ्ना दशाप्तांशा विज्ञेया अयनाभिधाः।
तत्संयुक्ताद् ग्रहात्क्रान्तिच्छायाचरदलादिकम् ॥१०॥

अनुवाद—(९) एक युग में नक्षत्र-चक्र ६०० बार पूर्व की ओर लोलक की तरह आन्दोलन (oscillation) करता है। इस ६०० को इष्ट अहर्गण से गुणा करके महायुगीय सावन दिनों की संख्या से भाग देने पर जो आवे (१०) उसका भुज बनाकर भुज को ३ से गुणा करके १० से भाग दे दो। ऐसा करने से जो कुछ आवे वही अयनांश कहलाता है। ग्रहों के स्थानों में इसका संस्कार देकर तब ग्रहों की क्रान्ति, छाया, चरदल इत्यादि जानना चाहिये।

विज्ञान भाष्य—क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त के जिस सामान्य विन्दु पर उत्तरगामी सूर्य आता है उसको वसंत-सम्पात (vernal equinox) कहते हैं। वसंत-सम्पात से आगे ९० अंश पर जब सूर्य पहुँच जाता है तब उसकी उत्तर की ओर बढ़ने की गति रुक जाती है और दक्षिण की ओर लौटने लगता है। इसी समय दक्षिणायन का आरंभ होता है। इसलिए जिस विन्दु पर पहुँच कर सूर्य दक्षिण की ओर मुड़ता है उसे दक्षिणायन विन्दु (summer solstice) कहते हैं। दक्षिणायन के आरंभ से जब तक सूर्य दक्षिण की ओर चलता रहता है तब तक के समय को भी जो ६ मास के समान होता है दक्षिणायन कहते हैं। दक्षिणायन के आरंभ से ३ मास बाद सूर्य विषुवद्वृत्त पर फिर आता है। इस विन्दु को शरद-सम्पात कहते हैं क्योंकि इसी समय शरद ऋतु का आरंभ होता है। शरद-सम्पात से ९०° आगे तक सूर्य दक्षिण की ओर चलता रहता है फिर उत्तर की लौट पड़ता है। जिस विन्दु पर पहुँच कर सूर्य उत्तर की ओर लौटने लगता है उस विन्दु को उत्तरायन विन्दु (winter solstice) कहते हैं। इसी समय से उत्तरायन का आरंभ होता है। उत्तरायन और दक्षिणायन विन्दुओं को अयन विन्दु कहते हैं। चित्र ३९ में व, द, श और उ क्रम से वसंत सम्पात, दक्षिणायन विन्दु, शरद सम्पात और उत्तरायन विन्दु हैं। जो वृत्त अयन विन्दुओं, आकाशीय ध्रुवों और कदम्बों पर हो कर जाता है उसे अयनान्त वृत्त (Solstitial colure) कहते हैं। चित्र ३९ में दा द ध क ऊ उ वृत्त अयनान्त वृत्त है।

यह अयन विन्दु आकाश में सदा एक ही जगह नहीं रहते वरन् पच्छिम की ओर खसक रहे हैं इसलिए जिस नक्षत्र या तारा समूह के पास आजकल उत्तरायण या दक्षिणायन होता है उसी तारे के पास प्राचीन काल में नहीं होता था। वेदांग[1]

---

१. प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघ श्रावणयोः सदा ॥
याजुष ज्योतिष श्लोक ७ और आर्च ज्योतिष श्लोक ६

ज्योतिष में लिखा है कि जब सूर्य श्रविष्ठा या धनिष्ठा नामक नक्षत्र के आदि में होता था तब उत्तरायण का आरंभ होता था और जब सूर्य अश्लेषा नक्षत्र के आधे भाग पर पहुँचता था तब दक्षिणायन का आरंभ होता था।

बराहमिहिर बाराही[1] संहिता में इसकी चर्चा करते हुए लिखते हैं कि प्राचीन काल में आश्लेषा के आधे पर दक्षिणायन और श्रविष्ठा के आदि पर उत्तरायण होता था परन्तु अब कर्क राशि में प्रवेश करते ही सूर्य दक्षिणायन और मकर राशि में प्रवेश करते ही उत्तरायण होता है। यदि ऐसा न हो तो वेध करके निश्चय करना चाहिए।

आजकल दक्षिणायन का आरंभ आर्द्रा नक्षत्र के आरंभ में और उत्तरायण का आरंभ मूल के आधे भाग पर होता है।

इस तरह सिद्ध है कि उत्तरायण विन्दु वेदांग ज्योतिष काल में धनिष्ठा के आदि में था और अब मूल के आधे पर। इसलिए स्पष्ट है कि अयन पच्छिम की ओर खसक रहा है। इसके कारण वसंत सम्पात विन्दु या शरद सम्पात विन्दु भी पच्छिम की ओर खसक रहा है। वसंत सम्पात विन्दु के खसकने को युरोपीय ज्योतिषी precession of equinoxes कहते हैं इसलिए हमारे ज्योतिषियों ने जिस घटना को अयन-चलन के नाम से लिखा है उसी को पाश्चात्य ज्योतिषी precession of equinoxes कहते हैं। भास्कराचार्य जी[2] ने अयन चलन और विषुवत्क्रान्ति-वलय-पातचलन दोनों का समान अर्थ किया है।

अयन चलन के सम्बन्ध में हमारे प्राचीन ज्योतिषियों के मतों में बड़ी भिन्नता है। सूर्य-सिद्धान्त का मत है कि नक्षत्र चक्र का आदि विन्दु अ लोलक (pendulum) की तरह वसंत सम्पात व के दोनों ओर २७ अंश तक परिलम्बन या आंदोलन करता है (चित्र ४९)। अ को अश्विनी का आदि विन्दु भी कहते हैं। इस आंदोलन का अर्थ यह हुआ कि युग के आरंभ में वसंत सम्पात और अश्विनी का आदि विन्दु एक साथ थे। इसके पश्चात् अश्विनी का आदि विन्दु पूर्व की ओर खसकने लगा और जब वसंत सम्पात से २७ अंश तक आगे बढ़ गया तब यह फिर वसंत सम्पात की

---

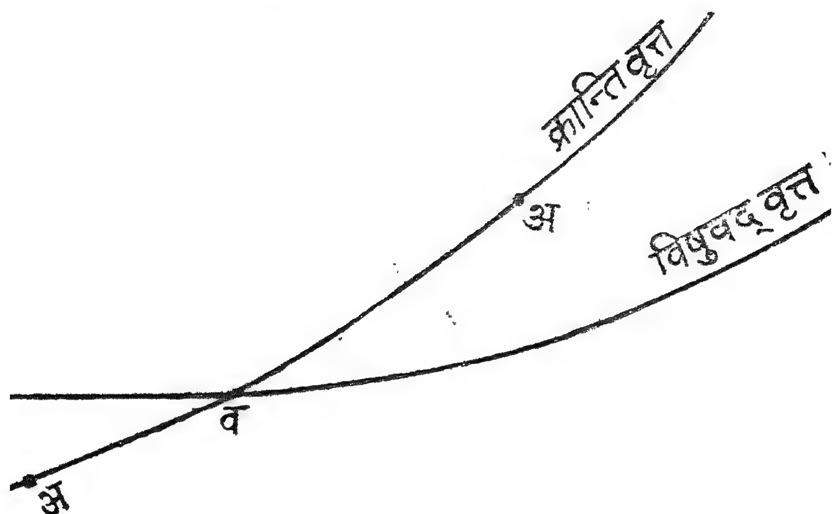
१. आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम्। नूनंकदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्व शास्त्रेषु ॥१॥ साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यं मृगादितश्चान्यत्। उक्ताभावे विकृतिः प्रत्यक्ष परीक्षणैर्व्यक्तिः ॥२॥

बाराही संहिता, आदित्यचार पृष्ठ १६, १७।

२. तस्य (विषुवत्क्रान्तिवलयपातस्य) अपि चलनमास्त। येऽयनचलन भागाः प्रसिद्धास्तएव विलोमगस्य क्रान्ति पातस्य भागाः।

गोलाध्याय पृष्ठ ५५

ओर लौटने लगा और धीरे-धीरे वसंत सम्पात के साथ हो गया। इसके पश्चात् वसंत सम्पात से पच्छिम की ओर जाने लगा और २७ अंश जाकर फिर वसंत सम्पात की ओर लौटा और धीरे-धीरे वसंत सम्पात के पास फिर पहुँच गया। इस क्रम को एक पूर्ण आंदोलन (oscillation) कहते हैं। ऐसे ऐसे ६०० आंदोलन एक महायुग में अर्थात् ४३,२०,००० सौर वर्षों में होते हैं। इसलिए एक आंदोलन ७२०० सौर वर्षों में तथा चौथाई आंदोलन अथवा २७° की गति १८०० सौर वर्षों में होती है।



चित्र ४६

यह जानने के लिए कि अश्विनी का आदि विन्दु वसंत सम्पात से किस समय कितनी दूर है अर्थात् अयनांश क्या है, ६—१० श्लोकों में कहे गये नियम को काम में लाना चाहिए जो एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा।

मान लो १६८२ वि० का अयनांश जानना है।

सृष्टि के आरंभ से वर्तमान कलियुग के आरंभ तक १,६५,५८,८०,००० सौर वर्ष बीते* जिसमें ७२०० वर्षों में एक आंदोलन के हिसाब से २,७१,६५० आंदोलन पूरे हो गये इसलिए कलियुग के आरंभ में नये आंदोलन का आरंभ हुआ। इसलिए अयनांश जानने के लिए कलियुगादि अहर्गण से ही काम लेने में सुबिधा

* देखो मध्यमाधिकार विज्ञान भाष्य

होगी। नियम में अहर्गण से काम लेने को कहा गया है परन्तु मेष संक्रान्ति काल का अयनांश जानने के लिए सौर वर्षों से ही काम लेने में कोई अशुद्धि नहीं हो सकती। कलियुग के आरंभ से १९८२ वि० की मेष संक्रान्ति तक ५०२६ सौर वर्ष होते हैं। इसलिए,

७२०० : ५०२६ : : १ आंदोलन : इष्ट आंदोलन

अर्थात्, इष्ट आन्दोलन $= \frac{५०२६}{७२००}$

$= \frac{५०२६ \times ३६०}{७२००}$ अंश

$= २५१^\circ १८'$

यह तीसरे पाद में है। इसलिए स्पष्टाधिकार के ३०वें श्लोक के अनुसार $७१^\circ १८'$ तीसरे पाद का गत भाग ही भुज हुआ। इसको ३ से गुणा करके १० से भाग देने पर $२१^\circ २३' २४''$ अयनांश होता है। मेष संक्रान्ति से जितने दिन पीछे का अयनांश जानना हो उतने दिन की गति वर्ष में $५४''$ के हिसाब से निकाल कर मेष संक्रान्ति काल के अयनांश में जोड़ देने से इष्ट काल का अयनांश ज्ञात हो जायगा।

यह स्पष्ट है कि भुज का परम मान ९०° होता है इसलिए यदि इसको ३ से गुणा करके १० से भाग दिया जाय तो २७° आता है जो सूर्य-सिद्धान्त के मत से अयनांश का परम मान है।

यहाँ एक बात ध्यान देने की है। ९वें श्लोक में कहा गया है कि नक्षत्र-चक्र पूर्व की ओर परिलम्बन करता है अर्थात् आन्दोलन आरम्भ करने पर पहले वह पूर्व की ओर चलता है। इसलिए जब तक वह वसन्त सम्पात से २७ अंश पूर्व की ओर बढ़ता रहता है तब तक प्रथम पाद में होता है, जब वह पूर्व से वसन्त सम्पात की ओर लौटता रहता है तब तक दूसरे पाद में रहता है, जब तक वसन्त सम्पात से २७ अंश पच्छिम की ओर बढ़ता रहता है तब तक वह तीसरे पाद में रहता है और जब वह पच्छिम से वसन्त सम्पात की ओर लौटता रहता है तब तक चौथे पाद में रहता है। इसलिए ऊपर की गणना से सिद्ध है कि अश्विनी का आदि विन्दु वसन्त सम्पात से $२१^\circ २३' २४''$ पच्छिम है। परन्तु यथार्थ में अश्विनी का आदि विन्दु इस समय वसन्त सम्पात से पूर्व है जैसा कि अगले ११वें श्लोक से भी स्पष्ट होता है इसलिए यह मानना पड़ेगा कि अश्विनी का आदि विन्दु आन्दोलन आरम्भ करने पर पहले पच्छिम की ओर बढ़ता है जो श्लोक के विरुद्ध है। इसलिए जान पड़ता है कि आचार्य

ने वसन्त सम्पात को ही अश्विनी के आदि विन्दु के दोनों ओर २७° पूर्व और पच्छिम आन्दोलन करता हुआ माना है और पाठ में किसी कारण गड़बड़ हो गया है। क्योंकि अन्य आचार्यों ने अयनान्त-वृत्त या क्रान्तिपात को ही चलता हुआ माना है। जब १८०० वर्ष में अयन २७ अंश चलता है तब १ वर्ष में ५४ विकला गति होती है। इसलिए सूर्य-सिद्धान्त के मत से दो बातें सिद्ध होती हैं—(१) वसन्त सम्पात अश्विनी के आदि से २७ अंश आगे पीछे हो सकता है तथा (२) इसकी वार्षिक गति ५४ विकला है।

अयन-चलन का कारण क्या है यह भारतीय ज्योतिष में कहीं नहीं मिलता। रंगनाथजी ने अपनी गूढ़ार्थ प्रकाशिका टीका में ईश्वर की इच्छा को ही इसका कारण माना है।

जो मत सूर्य-सिद्धान्त का है वही सोम-सिद्धान्त,* रोमश-सिद्धान्त,* शाकल्य ब्रह्म-सिद्धान्त,* और लघुवशिष्ठ-सिद्धान्त* का है। द्वितीय आर्यभट* और पराशर* जी ने भी अयन का पूर्ण भगण नहीं माना है, परन्तु इनके मत से वसन्त सम्पात २४ अंश ही मूल विन्दु से पूर्व पश्चिम जाता है न कि २७°। द्वितीय आर्यभट ने अयनांश जानने की जो रीति बतलायी है उससे जान पड़ता है कि अयन चलन की वार्षिक गति सदा समान नहीं होती। हाँ मध्यम वार्षिक गति ४६.३ विकला मानी गयी है।† पराशर जी ने वार्षिक गति ४६.५ विकला मानी है।†

इसके प्रतिकूल मुंजाल[१] का मत है कि अयन या वसन्त सम्पात विलोम दिशा में भ्रमण करता हुआ पूरा चक्कर लगाता है और एक कल्प में १,९९,६६९ भगण करता है। इसी को भास्कराचार्य[२] जी ने भी माना है। इस हिसाब से अयन की वार्षिक गति ५९.९००७ विकला होती है जो प्रायः १ कला के लगभग है। इसलिए व्यवहार में मुंजाल, भास्कराचार्य, गणेश दैवज्ञ इत्यादि ने १ कला अयन की वार्षिक गति मानी है।

वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त इत्यादि ने अयनांश का संस्कार करने की बात नहीं लिखी है। जान पड़ता है कि इनके समय में अयनांश का परिमाण बहुत कम था

---

*भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ३२८ तथा जोगेशचन्द्र राय सम्पादित सिद्धान्त दर्पण का Introduction pp. 39-40

† भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ३३०-३३१ तथा महासिद्धान्त पृष्ठ ६,४५,५७

१. गोलाध्याय पृष्ठ ५४

२. मुंजाल का लघुमानस ८५६ वि० के लगभग बना है (देखो भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ३१३)

तथा अयन चलन का ज्ञान भी इनको नहीं हुआ था । वराहमिहिर ने तो केवल इतना लिख दिया है कि पहले धनिष्ठा के आदि में उत्तरायण होता था और इनके समय में मकर के आदि में अर्थात् उत्तराषाढ़ के प्रथम पाद पर । इतना और भी कहा है कि यदि विकार हो तो प्रत्यक्ष वेध से काम लेना चाहिए । इसके सिवा अयन जानने का कोई नियम नहीं लिखा है । ब्रह्मगुप्त ने तो कोई संकेत भी नहीं किया है । इसका कारण भास्कराचार्य[1] जी यह लिखते हैं कि ब्रह्मगुप्त के[2] समय में अयनांश बहुत कम था इसलिए उनको इसका पता नहीं लग सका ।

वसंत संपात के चलने का ज्ञान यूनानी ज्योतिषी हिपार्कस (Hipparchus) को विक्रम संवत से कोई ७० वर्ष पहले हो चुका था । तारों की सूची बनाने पर इनको ज्ञात हुआ कि इनसे कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले जो सूची बनी थी उसकी अपेक्षा इस सूची में वसंत सम्पात से प्रत्येक तारे का अंतर कोई २ अंश अधिक हो गया था। जिससे इन्होंने यह परिणाम निकाला कि वसंत सम्पात पीछे खसक रहा है । इन्होंने वसंत सम्पात की जो वार्षिक गति निकाली थी वह कम से[3] कम ३६ विकला थी । वसंत सम्पात की यही गति टालमी[4] (Ptolemy) ने विक्रम की तीसरी शताब्दी के आरंभ में निश्चय की । इसके बाद यूनानी ज्योतिष में वसंत सम्पात के चलने के सम्बन्ध में तथा अन्य बातों में भी कोई उन्नति[5] नहीं हुई ।

अलबटानी नामक अरब के एक राजकुमार ने जो एक निपुण ज्योतिषी था ९३७ वि० के लगभग वसंत सम्पात की वार्षिक गति कुछ शुद्धतापूर्वक निश्चय की । शंकर बालकृष्ण दीक्षित[6] लिखते हैं कि अलबटानी ने सम्पात चलन की वार्षिक गति ५४.५ विकला निश्चित की थी । इसके बाद नसीरउद्दीन ने[7] वर्तमान ईरान के उत्तरी पश्चिमी सीमा के पास वेधालय स्थापित करके वसंत संपात की वार्षिक गति ५१ विकला विक्रम की १४वीं शताब्दी के आरंभ में निश्चय की ।

---

१. गोलाध्याय पृष्ठ ५५ ।

२. जन्म संवत् ६५५ वि०, ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त का रचना-काल सम्वत् ६८५ वि० । देखो ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त पृष्ठ ४०७ ।

३. Berry's Short History of Astronomy pp 51-52 तथा Encyclopaedia Brittanica, Eleventh edition pp. 810.

४. Berry's Short History of Astronomy pp. 68-69.

५. उपरोक्त, पृष्ठ ७३ ।

६. भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ३६५ ।

७. Berry's History of Astronomy pp. 81-82.

आजकल बहुत सूक्ष्मयंत्रों के द्वारा वसंत संपात की वार्षिक गति का सूत्र निउकंब[१] (Newcomb) के अनुसार यह है।

५०″.२४५३+०″.०००२२२५ व

जहाँ व, १८५० ई० अथवा १९०७ वि० के बाद के बीते हुए वर्षों की संख्या है। इस हिसाब से १९८२ वि० के आरंभ में वसंत सम्पात की वार्षिक गति

५०.″२४५३+०.″०००२२२५×७५

=५०″.२६२

भारतीय, यूनानी, अरबी तथा यूरोपीय विद्वानों के अयन चलन संबंधी विचारों की चर्चा संक्षेप में इसलिए की गयी जिससे प्रकट हो जाय कि इस संबंध में हमारे ज्योतिषियों के विचार कितने स्वतंत्र हैं। अब यह प्रश्न होता है कि हमारे ज्योतिषियों ने अयन की वार्षिक गति १ कला क्यों मानी है जब कि शुद्ध गति ५०.२६२ विकला के लगभग है। इसका कारण यह है कि हमारे ज्योतिषी अयनांश उस अंतर को कहते हैं जो विषुव सम्पात से मेष के आदि विन्दु का होता है। और मेष का आदि विन्दु वह वेध से नहीं निश्चय करते वरन् गणना से करते हैं। गणना के लिए हमारे यहाँ सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार ३६५ दिन १५ घड़ी ३१ पल ३१.४ विपल का वर्ष माना जाता है जब कि आधुनिक खोज के अनुसार शुद्ध वर्ष का मान ३६५ दिन १५ घड़ी २२ पल ५६.८७ विपल होता है (देखो मध्यमाधिकार पृष्ठ २० की सारिणी)। इस तरह हमारे वर्ष का मान शुद्ध वर्ष से ८ पल ३४.५३ विपल अधिक है। इतने समय में सूर्य ५८′४२″.४९ * प्रति दिन के हिसाब से ८.३९१ विकला चलता है। इसलिए शुद्ध वर्ष के अनुसार यदि वसंत सम्पात की गति ५०″.२६२ होती है तो हमारे वर्ष के अनुसार स्पष्ट मेष संक्रान्ति के विन्दु से वसंत सम्पात ५०.″२६२+८″.३९१=५८.″६५३ विकला पच्छिम हो जाता है। अर्थात् यदि सौर वर्ष का मान वह रखा जाय जो सूर्य-सिद्धान्त का है तो प्रतिवर्ष ५८″.६५३ वसंत संपात की गति मानने से शुद्धता होती है। इससे सिद्ध होता है कि मुंजाल, भास्कराचार्य, गणेश इत्यादि ने अयन की गति जो १ कला या ६० विकला मानी है वह इस समय सत्य से केवल १.३४७ विकला अधिक है। जिस समय मुंजाल ने प्रत्यक्ष वेध से अयन गति ५९.९००७ विकला निश्चय किया था उस समय अशुद्धि तनिक सी और रही होगी क्योंकि ९८९ विक्रमीय में शुद्ध अयन गति

---

१. Ball's Spherical Astronomy pp. 187.

*यह मेष संक्रान्ति के दिन सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति है और सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार निकाली गयी है।

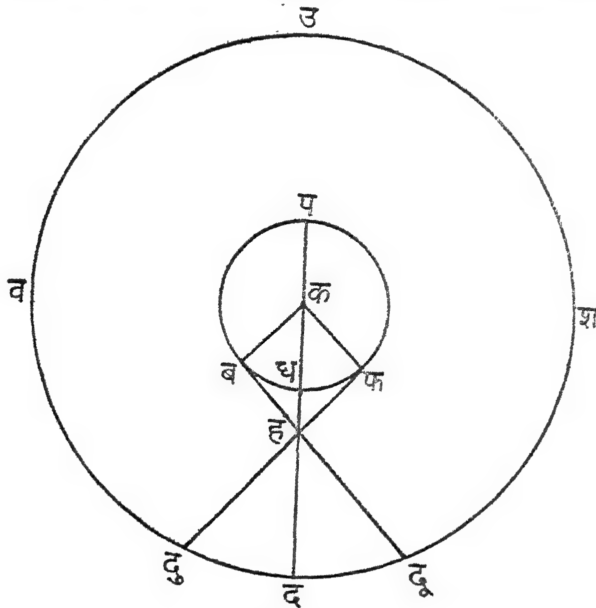
५०".२४५३—०.००० २२२५×(१९०७—९=९)

=५०".२४१३—.२०४२

=५०".०४१ रही होगी ।

इससे प्रकट है कि हमारे आचार्यों ने अपने स्वतंत्र और निराले ढंग से अयन की गति इतनी सूक्ष्म निकाली थी कि वह सत्य से केवल १.५६८ विकला अधिक थी जो उस समय के स्थूल यंत्रों के विचार से बहुत ही सराहनीय है ।

अब संक्षेप में इस बात पर विचार किया जायगा कि अयन की गति लोलक की गति की तरह होती है जैसा कि सूर्य-सिद्धान्त, सोम-सिद्धान्त, पराशर-सिद्धान्त और



चित्र ५०

महासिद्धान्त का मत है अथवा पूर्ण भ्रमण होता है जैसा कि मुंजाल या भास्कराचार्य इत्यादि का मत है ।

सूर्य-सिद्धान्त आदि ग्रन्थों में यह नहीं लिखा मिलता कि अयन की गति लोलक की गति की तरह क्यों होती है । ब्रेनेंड[1] ने और शायद इन्हीं के आधार पर विज्ञानानन्द[2] स्वामी ने इसको समझाने का प्रयत्न इस प्रकार किया है:—

---

१. Brennand's History of Hindu Astromomy, London 1896.

२. श्री सूर्य-सिद्धान्त बङ्गानुवाद तथा टीका, कलकत्ता १९०९ ई०

मानलो उ ब द श क्रान्तिवृत्त और क इसके ध्रुव अर्थात् कदम्ब का छेद्यक (projection) है। ध विषुवद्वृत्त का उत्तरी ध्रुव (pole) और क ध द अयनान्त-वृत्त (solstitial colure) का छेद्यक है। प फ ध ब उस मार्ग का छेद्यक समझो जिस मार्ग से उत्तरी ध्रुव कदम्ब की परिक्रमा अयन चलन के कारण विलोम गति से कर रहा है। दु दू क्रान्तिवृत्त के वह बिन्दु हैं जहाँ तक दक्षिणायन विन्दु द, अयन चलन के कारण परिलंबन करता है इसलिए द से दु या दू २७° के अंतर पर है। सिद्धान्त के मत से क ध अर्थात् उत्तरी ध्रुव से कदम्ब की दूरी २४° है। दु और दू विन्दुओं से फ और ब विन्दुओं पर स्पर्शरेखाएँ दु फ और दू ब खींचो जो एक दूसरे को ह विन्दु पर काटती हैं। जितनी देर में ध ब प फ वृत्त पर ध ३६० अंश चलता है उतनी देर में द विन्दु द से दू तक जाता है, फिर दू से द तक लौट कर दु तक पहुँचता है और दु से द तक फिर आ जाता है। इसलिए जब तक ध्रुव कदंब की परिक्रमा करता है तब तक नक्षत्रचक्र ह विन्दु के दोनों ओर लोलक की तरह आंदोलन करता हुआ देख पड़ता है।

परन्तु इससे कुछ संतोष नहीं होता क्योंकि प्राचीन लेखों से यह सिद्ध होता है कि वसंत संपात विन्दु अश्विनी के आरंभ स्थान से २७ अंश से भी आगे रहा है। शतपथ[१] ब्राह्मण में लिखा है कि कृत्तिकाएँ ठीक पूर्व दिशा में उदय होती हैं और अन्य तारे पूर्व दिशा से हटकर उदय होते हैं जिससे स्पष्ट है कि उस समय कृतिकाएँ ठीक विषुवद्वृत्त पर थीं। आजकल यह प्रयाग में कोई २७° उत्तर उदय होती हैं। इससे यह गणना की जा सकती है कि जिस समय कृत्तिकाएँ विषुवद्वृत्त पर थीं उस समय वसंत सम्पात विन्दु कहां था। कृत्तिका के योग तारा (n – Tauri) का भोग ३६°९′ और शर प्रत्यक्ष वेध[२] से ४°२′ होता है। यदि क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त के बीच का कोण (परम अपक्रम) २४° मान लिया जाय तो यह सहज ही जाना जा सकता है कि शतपथ ब्राह्मण काल में कृत्तिका का भोग वसंत सम्पात से क्या था। चित्र ५१ में व आजकल का वसंत सम्पात बिन्दु और प व पा विषुवद् वृत्त है। और वा शतपथ-ब्राह्मण काल का वसंत सम्पात विन्दु तथा च कु वा विषुवद्

---

१. एकं द्वे त्रीणि चत्वारीति वा अन्यानि नक्षत्राण्यथैता एव भूयिष्ठा यत्कृत्तिकास्तद्भूमानमेवैतदुपैति तस्मात्कृत्तिका स्वादधीत ॥२॥ एता ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवंते सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवंते तत्प्राच्यामेवास्यैतद्दिश्याहितौ भवतस्तस्मात् कृत्तिका स्वादधीत ॥ ३ ॥ शतपथ ब्राह्मण २. १.२. [भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ १२७ में उद्धृत]

२. भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ४५५।

वृत्त है। कृ कृत्तिका तारापुंज है जो विषुवद्वृत्त पर दिखलाया गया है। कृद कृत्तिका का कदम्बाभिमुख शर है जो ४°२′ माना गया है। द वा कृत्तिका का शतपथ ब्राह्मण काल का ऋणात्मक भोग है, अ अश्विनी का आदि विन्दु तथा अ द कृत्तिका का भोग है जो ३६°९′ माना गया है। अ व अयनांश है जो १९८२ वि० के मेष संक्रान्ति के दिन २२°४१′ के लगभग है।

गोलीय समकोण त्रिभुज कृ वा द में नेपियर के नियम के अनुसार,

ज्या (द वा) = स्पर्शरेखा (कृ द) × स्पर्शरेखा (९०° − ∠कृ वा द)

= स्पर्शरेखा ४°२′ × स्पर्शरेखा (९०° − २४°)

= .०७०५ × २.२४६०

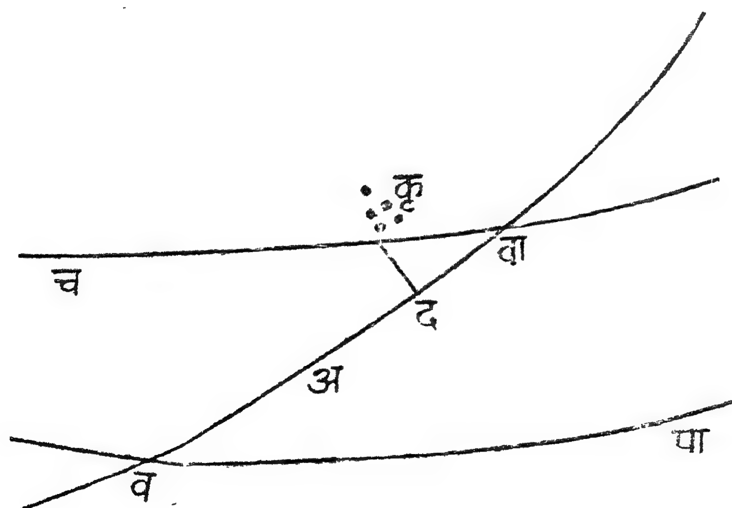
= .१५८३

∴ दवा = ९°६′

∴ कृत्तिका का भोगांश शतपथ-ब्राह्मण काल में वसंत सम्पात से ९°६′ पच्छिम था।

∴ व वा = व अ + अ द + द वा = २२°४१′ + ३६°९′ + ९°६′

= ६७°५६′



चित्र ५१

इसलिए यह सिद्ध है कि वसंत सम्पात विन्दु शतपथ ब्राह्मण के समय जहाँ था उससे इस समय ६७°५६′ पच्छिम है। परन्तु सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार वसंत सम्पात विन्दुओं का महत्तम अंतर ५४° से अधिक नहीं होना चाहिये। इसलिए यह सिद्ध होता है कि सूर्य-सिद्धान्त का यह मत है कि वसंत सम्पात विन्दु मध्यम स्थान से २७° पूर्व और पच्छिम जाता हैं ठीक नहीं है।

इस संबन्ध में केई[१] महाशय कहते हैं कि कृत्तिका से कृत्तिका तारापुंज (Pleiades) को नहीं समझना चाहिये वरन् वसंत सम्पात को समझना चाहिये जैसे आजकल युरोपीय विद्वान सायनमेष (First point of Aries) को समझते हैं। ऐसा मानने से शतपथ ब्राह्मण काल उतना प्राचीन नहीं ठहरता जितना पूर्वोक्त गणना से ठहरता है। पूर्वोक्त गणना से शतपथ ब्राह्मण का समय आज से कोई ४८६७ वर्ष पूर्व अथवा विक्रम से २८८५ वर्ष पूर्व सिद्ध होता है जो केई महाशय को असम्भव जान पड़ता है। परन्तु मेरी समझ में केई महाशय भ्रम में हैं। पूर्वोक्त अवतरण में जहाँ कृत्तिका शब्द आया है वहां इसका प्रयोग बहुवचन में है जिससे प्रकट है कि कृत्तिका का अर्थ कृत्तिका तारा पुंज है जिसमें कोरी आँख से ६ तारे देख पड़ते हैं। यदि इसका अर्थ वसंत सम्पात विंदु होता तो बहुवचन में प्रयोग कदापि न होता। इसके सिवा यह विचार करने की बात है कि जब कृत्तिका उसी नाम के तारापुंज को न समझकर वसंत सम्पात विंदु को समझा जाय तो क्या इस विंदु को देखकर पूर्व दिशा का ज्ञान हो सकता है? क्या आजकल सायनमेष को देखकर पूर्व दिशा का ज्ञान हो सकता हैं अथवा अग्रहायन पुंज के इल्वक के प्रथम तारे (δ orionis) से जो आजकल प्रायः विपुववृत्त पर है? इस विषय को बहुत न बढ़ाकर अब संक्षेप में यह बतलाया जायगा कि आजकल के भौतिक ज्योतिष शास्त्र (physical astronomy) के अनुसार अयन चलन या वसंत सम्पात के पीछे खसकने का क्या कारण है, जिससे यह भी सिद्ध हो जायगा कि इसका पूर्ण भगण होता है न कि लोलक की तरह आंदोलन।

प्रत्यक्ष वेध से क्या परिणाम निकलता है?

यदि किसी तारे के किसी समय के विपुवांश और क्रांति की तुलना उसी तारे के अन्य समय के विपुवांश और क्रान्ति से की जाय तो देख पड़ता है कि इनमें बहुत

---

१. Memoirs of Archaeological Survey of India No. 18. Hindu Astronomy by G. R. Kaye pp. 23-24.

अन्तर होता जाता है। उदाहरण के लिए ध्रुवतारे[1] (polaris) के विषुवांश[2] और क्रान्ति यही हैं :—

१८५० ई० की पहली जनवरी को { विषुवांश १ घ० ५ मि० २३ से०
क्रान्ति + ८८°३०′४६″

१९०० ई० की पहली जनवरी को { विषुवांश १ घंटा २३ मिनट ० सेकंड
क्रान्ति + ८८° ४६′ ५३″

यह कहा जा सकता है कि विषुवांश और क्रांति के परिवर्तन का कारण यह है कि तारा स्वयं चलता है। दूसरा अनुमान यह हो सकता है कि विषुवांश और क्रान्ति जिन भुजयुग्मों (axes of coordinates) से निश्चय किये जाते हैं उन्हीं में परिवर्तन होता होगा।

५० वर्ष में ध्रुवतारे की क्रांति १६′ ४″ अधिक हुई जिससे स्पष्ट होता है कि ध्रुवतारे से ध्रुव का अन्तर प्रायः १९″ प्रतिवर्ष कम हो रहा है अर्थात् या तो ध्रुवतारा ध्रुव की ओर जा रहा है या ध्रुव ध्रुव-तारे की ओर जा रहा है। जब अन्य तारों से ध्रुवतारा के अन्तरों की तुलना की जाती है तो देख पड़ता है कि इनमें परस्पर इतनी भिन्नता नहीं हो रही है जितनी ध्रुव और ध्रुवतारे में हो रही है। ध्रुवतारे में जो स्वयं गति (proper motion) है वह इतनी सूक्ष्म है कि इसमे १९″ प्रति वर्ष का अंतर नहीं पड़ सकता। यह भी देखा गया है कि ५० वर्षों में ध्रुव से अन्य तारों का भी अन्तर बहुत कम पड़ गया है परन्तु उनका परस्पर अंतर प्रायः जैसे का तैसा ही है। इन सब बातों से यही परिणाम निकलता है कि ध्रुव और ध्रुवतारे के बीच का अन्तर ध्रुवतारे की गति के कारण नहीं कम हो रहा है वरन् आकाशीय ध्रुव की गति के कारण कम हो रहा है।

यदि ध्रुव अपना स्थान सदैव बदलता रहता है तो यह भी आवश्यक है कि विषुवद्वृत्त भी जो ध्रुव से सदैव ९० अंश दूर रहता है अपना स्थान निरन्तर बदला करे। पर विषुवद्वृत्त के चलते रहने पर भी क्रान्तिवृत्त से उसका जो मध्यम झुकाव है वह सदैव प्रायः एक सा रहता है। यह झुकाव मध्यम मान से केवल कुछ कलाएँ इधर उधर आन्दोलन करता है। सूर्य की परम क्रान्ति १८५० ई० में जितनी थी प्रायः उतनी ही १९०० ई० में थी इसलिए विषुवद्वृत्त और क्रान्ति वृत्त के बीच

---

१. Balls' Spherical Astronomy pp. 171 साधारणतः लोग समझते हैं कि ध्रुवतारा एक ही जगह देख पड़ता है और इसी की परिक्रमा अन्य तारे करते हैं परन्तु यह ठीक नहीं है। ध्रुवतारा भी आकाशीय ध्रुव की जो अदृश्य है परिक्रमा करता है और उसके बहुत पास है इसलिए कुछ भेद नहीं जान पड़ता।

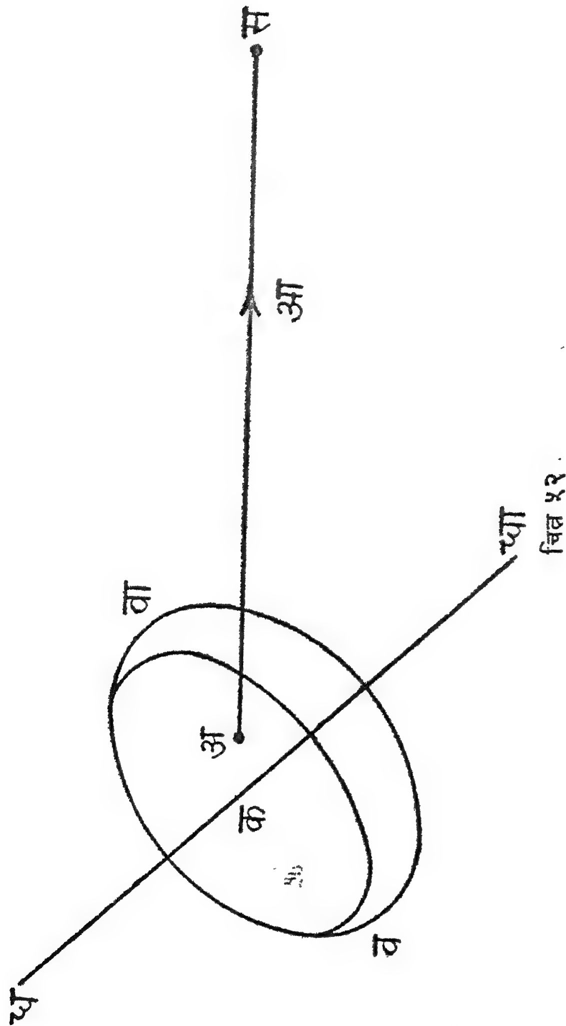
२. देखो चित्र ४० और इसका वर्णन।

का कोण प्राय: स्थिर रहता है। इससे यह सिद्ध होता है कि विषुवद्वृत्त इस प्रकार चलता है कि यह क्रान्तिवृत्त को सदैव समान कोण पर काटता है और विषुव सम्पात विन्दु (वसंत या शरद सम्पात विन्दु) पृथ्वी की गति की विलोम दिशा में भ्रमण कर रहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि कदम्ब (क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव) स्थिर है और आकाशीय ध्रुव (विषुवद्वृत्तीय ध्रुव) उसके चारों ओर सदैव समान दूरी पर रहता हुआ परिक्रमा कर रहा है। इसी गति को विषुव सम्पात विन्दु का चलन (Precession of equinoxes) या अयन चलन कहते हैं। यह गति विशेषकर सूर्य और चन्द्रमा के आकर्षण के कारण होती है इसलिए इसको चांद्र-सौर अयन चलन (luni-solar precession) कहते हैं।

चांद्र-सौर अयन चलन का कारण

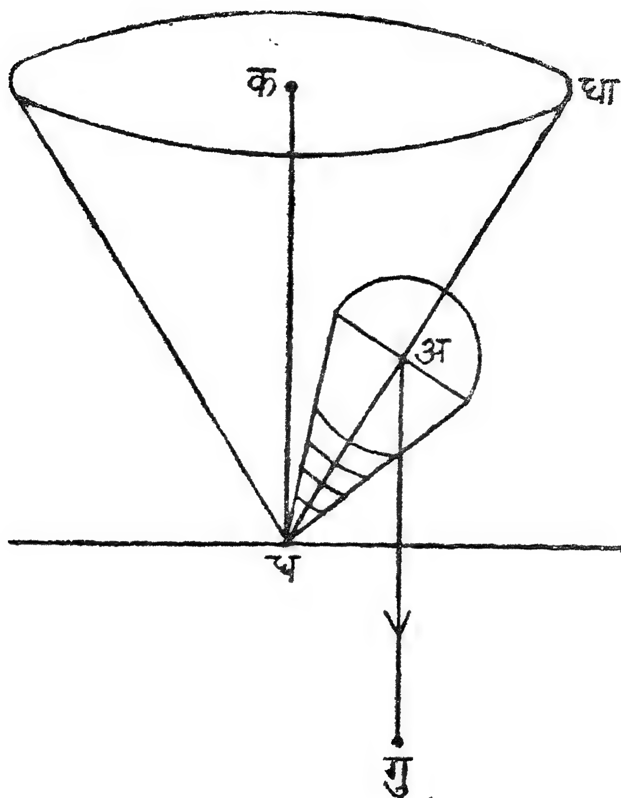
ऊपर सिद्ध हो चुका है कि जिस अक्ष पर पृथ्वी २४ घंटे में एक बार घूम जाती है उसकी दिशा में जो परिवर्तन होता है उसीसे विषुव सम्पात विन्दु चल रहा है। पृथ्वी की अक्ष की दिशा में जो विचलन हो रहा है उसका कारण यह है कि पृथ्वी पूर्ण गोल नहीं है वरन् ध्रुवों पर कुछ चपटी और विषुवत् रेखा पर कुछ उभड़ी हुई है इसलिए सूर्य और चन्द्रमा का लब्ध (resultant) आकर्षण इसके केन्द्र से होकर नहीं जाता है। चित्र ५२ में स को सूर्य, क को पृथ्वी का केन्द्र ध धा को पृथ्वी का अक्ष जो आकाश तक बढ़ा दिया गया है, व वा को विषुवत रेखा, अ को वह विन्दु जहां सूर्य का आकर्पण काम कर रहा है तथा अ आ को सूर्य के आकर्षण की दिशा समझो। यदि पृथ्वी पूर्ण गोल होती तो अ और क एक ही विन्दु पर होते जिससे व वा विषुवत् रेखा का तल सूर्य की ओर न झुकता। चित्र से यह भी प्रकट है कि निरक्षदेशीय मेखला का आधा भाग जो वा की ओर है सूर्य के निकट है और दूसरा आधा भाग जो व की ओर है सूर्य से दूर है। इसलिए सूर्य का आकर्षण व भाग की ओर कम होगा जिसका परिणाम यह होता है निरक्षदेशीय तल सूर्य की ओर कुछ झुक जाता है जिससे पृथ्वी का अक्ष ध धा कुछ डगमगा जाता है। इससे यह भी जान पड़ता है कि विषुवद्वृत्त का तल झुकते-झुकते क्रान्तिवृत्त के तल से जिस पर सूर्य रहता है अंत में मिल जायगा और पृथ्वी का अक्ष क्रान्तिवृत्त से समकोण बनाने लगेगा तथा ध्रुव और कदम्ब एक हो जायंगे। परन्तु बात ऐसी नहीं है। क्योंकि पृथ्वी बहुत तीव्र गति से अपने अक्ष पर घूम रही है जिससे विषुवद्वृत्त और क्रान्तिवृत्त के तलों के बीच का कोण सदैव प्राय: एक सा बना रहेगा और ध्रुव कदम्ब के चारों ओर एक वृत्त पर परिक्रमा करता रहेगा।

ठीक ऐसी ही बात लट्टू या फिरकी के घूमने में भी होती है। जिस समय



चित्र ५२

लट्टू तीव्र गति से घूमता रहता है उस समय उसका अक्ष उसके भार या गुरुत्व के प्रभाव से लम्ब-रेखा से कुछ झुका अवश्य रहता है परन्तु गति की तीव्रता के कारण वह पृथ्वी के धरातल से मिल नहीं जाता । हां, जिस समय गति बहुत मंद हो जाती हैं उसी समय लट्टू पृथ्वी पर लग जाता है । चित्र ५३ में अ लट्टू का गुरुत्व केन्द्र (Centre



चित्र ५३

सीध में काम कर रहा है, ध धा लट्टू के अक्ष की रेखा है जिसका एक सिरा ध भूतल पर लगा हुआ घूम रहा है और दूसरा सिरा धा ध क लम्ब रेखा से कुछ हटा हुआ इसी की परिक्रमा कर रहा है। जब तक लट्टू की गति तीव्र रहती है तब तक यह इसी भाँति भूतल की ओर प्राय: एक सा झुका हुआ क ध लम्ब की परिक्रमा करता रहता है। क ध रेखा के चारों ओर एक परिक्रमा जितने समय में होती है उतने समय में लट्टू ध धा अक्ष पर नहीं मालूम कितनी बार घूम जाता है। इसी प्रकार पृथ्वी अपने अक्ष पर २४ घंटे में एक बार घूमती हुई क्रान्तिवृत्तीय अक्ष की, जिसकी तुलना ध क लम्ब रेखा से हो सकती है, कोई २५००० वर्ष में एक परिक्रमा

कर लेती है जिसके कारण वसंत-सम्पात प्रति सायन* वर्ष ५०·३ विकला के लगभग विलोम दिशा में खसकता जाता है। चित्र ५२ और ५३ में समानता दिखाने के लिए कई अक्षर एक से हैं। चित्र ५२ में पृथ्वी लट्टू की तरह है, अ इसका सौराकर्षण केन्द्र है, घ धा लट्टू का अक्ष है और यदि क से स अ के समानान्तर रेखा खींची जाय तो यह घ क के समान होगी।

जो कुछ सूर्य के सम्बन्ध में कहा गया है वही चंद्रमा के लिए भी लागू होता है। चंद्रमा का प्रभाव सूर्य के प्रभाव के दूने से कुछ अधिक होता है क्योंकि चन्द्रमा पृथ्वी के बहुत पास है।

सूर्य और चंद्रमा में से प्रत्येक का प्रभाव उस समय सबसे अधिक होता है जिस समय इनकी उत्तर या दक्षिण क्रांति सबसे अधिक होती है। जिस समय यह विषुवद्वृत्त पर होते हैं उस समय इनका प्रभाव शून्य होता है। परन्तु ग्रहों का उलटा प्रभाव भी वसंत संपात की गति पर पड़ता है। ग्रह सम्बन्धी विचलन का परिमाण प्रति वर्ष ०·११ विकला पूर्व की ओर होता है। ग्रहों के कारण वसंत सम्पात में ही विचलन नहीं होता वरन् पृथ्वी की कक्षा भी विचलित होती है जिससे क्रान्तिवृत्त का तल डगमगा जाता है तथा क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त के बीच का कोण (परम अपक्रम) प्रतिवर्ष आधा विकला के लगभग कम होता जा रहा है। परन्तु यह कभी एक सीमा के भीतर ही, अर्थात् मध्यम स्थान से १½ अंश कम या अधिक होती है।

अभी तक बतलाया गया है कि सौर चान्द्र अयन चलन के कारण आकाशीय ध्रुव कदम्ब की परिक्रमा एक वृत्त पर कर रहा है। परन्तु यह कुछ स्थूल है। इसका कारण यह है कि चन्द्रमा सदैव क्रान्तिवृत्त पर नहीं रहता वरन् इससे ५ अंश के लगभग उत्तर या दक्खिन हो जाता है तथा इसका पात (राहु) प्रायः १९ वर्ष में एक

---

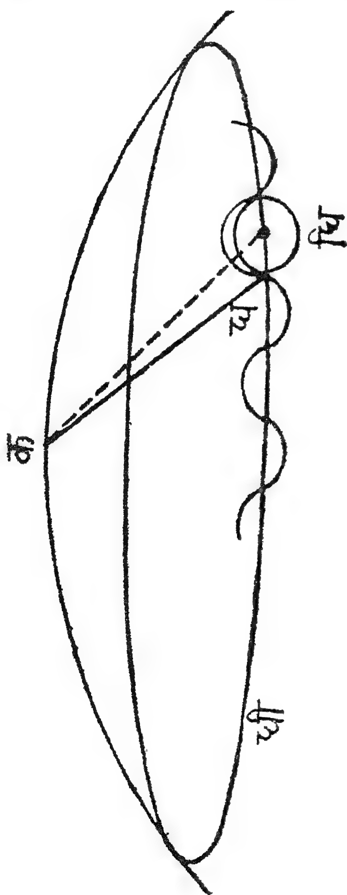
*वसंत सम्पात विन्दु से चल कर जितने समय में सूर्य फिर वसंत सम्पात विन्दु पर आ जाता है उतने समय को **सायन** वर्ष (tropical year) कहते हैं। यह ३६५·२४२२१६ मध्यम सावन दिन के समान होता है।

क्रान्तिवृत्त के एक बिन्दु से चल कर जितने समय में सूर्य फिर उसी विन्दु पर आ जाता है उसे नाक्षत्र सौर वर्ष (Sidereal year) कहते हैं। यह ३६५·२५६३७४ मध्यम सावन दिन के समान होता है। यही रवि या पृथ्वी का शुद्ध भगणकाल भी कहलाता है। (देखो मध्यमाधिकार पृष्ठ २०)

सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार रवि का जो भगणकाल है वही (३६५·२५८७५६ मध्यम सावन दिन)। सौर वर्ष हमारे यहाँ माना जाता है। (देखो मध्याधिकार पृष्ठ २०)

परिक्रमा कर लेता है। अयन चलन के कारण जिस प्रकार आकाशीय ध्रुव क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव की परिक्रमा २३°२७′ व्यासार्द्ध के वृत्त पर करता है उसी प्रकार राहु की विलोम गति के कारण चन्द्रकक्षा का ध्रुव भी क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव की परिक्रमा ५° व्यासार्द्ध के वृत्त पर करता है और इस चन्द्रकक्षा के ध्रुव की परिक्रमा आकाशीय ध्रुव अयन चलन के उस भाग के कारण करता है जो चन्द्रमा के प्रभाव से होता है।

इन दोनों कारणों से आकाशीय ध्रुव कभी मध्यम स्थान से कुछ आगे रहता है और कभी पीछे तथा कदम्ब से इसकी दूरी कभी कुछ कम हो जाती है और कभी कुछ अधिक। इसलिए आकाशीय ध्रुव का यथार्थ मार्ग तरंगाकार होता है। इस परिवर्तन का चक्र प्रायः १९ वर्ष का होता है जितने में राहु का एक चक्र होता है। चन्द्रमा के कारण आकाशीय ध्रुव के स्थान में जो यह तनिक सा परिवर्तन होता है उसे अक्षविचलन (nutation) कहते हैं।



चित्र ५४

अक्षविचलन का परिणाम यह होता है कि वसंत सम्पात विन्दु अपने मध्य स्थान से जो सौर चान्द्र, और ग्रह संबंधी अयन चलन से निश्चय किया जाता है कभी आगे रहता है और कभी पीछे। इसके कारण क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त के बीच का झुकाव (परमापक्रम) भी अपने मध्यम मान से कभी कुछ कम और कभी कुछ अधिक होता है।

अक्षविचलन का आविष्कार ब्रैडली नामक ज्योतिषी ने १७८४ विक्रमीय से १७९८ विक्रमीय की (१७२७-१७४१ ईस्वी) अवधि में, अजगर के 'ग, तारे (γ.Draconis) के निरंतर वेध से किया था। अक्षविचलन का स्पष्ट ज्ञान चित्र ५४ से होता है।

मान लो धिधी एक छोटा वृत्त है जिसे मध्यम ध्रुव कदम्ब की परिक्रमा करता हुआ बना रहा है। धि को केन्द्र मानकर एक दीर्घवृत्त खींचो जिसका दीर्घ अक्ष कदम्ब की सीध में हो और १८″.५ बड़ा हो और लघु अक्ष उसी छोटे वृत्त पर १३″.७ बड़ा हो। ज्यों-ज्यों मध्यम ध्रुव धि छोटे वृत्त पर दीर्घ वृत्त को अपने साथ लेता हुआ समान गति से विलोम दिशा में चलता है त्यों-त्यों यथार्थ ध्रुव ध दीर्घ वृत्त की परिधि पर ६७९८ दिन में (राहु के भगण-काल में) एक परिक्रमा करता जाता है।

धि क कदम्ब से ध्रुव का मध्यम अंतर और ध क स्पष्ट अंतर है। जिस समय ध दीर्घ अक्ष पर रहता है उस समय वसंत सम्पात विन्दु के मध्यम और स्पष्ट स्थान एक होते हैं अन्यथा वसंत सम्पात विन्दु का स्पष्ट स्थान मध्यम स्थान से कुछ आगे या पीछे होता है। इसी प्रकार जब ध लघु अक्ष पर रहता है तब कदम्ब से ध्रुव के मध्यम और स्पष्ट अन्तर अथवा मध्यम और स्पष्ट झुकाव (क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त के बीच का कोण) एक होता है अन्यथा कुछ कम या अधिक।

अयन चलन और परमाप क्रम की वार्षिक गति स्थिर नहीं होती वरन् इनमें कुछ सूक्ष्म परिवर्तन होता रहता है। एक सायन वर्ष में इनके जो मान होते हैं वह नीचे लिखे सूत्रों से जो भौतिक ज्योतिर्विज्ञान तथा उच्च गणित के आधार पर स्थापित किये गये हैं प्रकट होते :—

१९०० ईस्वी से 'व' वर्ष उपरान्त,

सायन वार्षिक मध्यम अयन चलन (वसंत संपात चलन)

=५०″.२५६४+०″.०००२२२५ व* (१)

तथा विषुवद्वृत्त और क्रान्तिवृत्त के बीच का कोण (यदि अन्य छोटे पदों को छोड़ दिया जाय)

=२३°२७′८″.२६ − ०″.४६८ व* (२)

अक्ष विचलन के कारण वसंत सम्पात विन्दु के मध्यम स्थान में जो संस्कार करना पड़ता है उसका सूत्र यह है—

−१७″.२३५ ज्या (सायन राहु) − १″.२७ ज्या (२ सायन सूर्य)* (३)

तथा क्रान्ति वृत्त और विषुवद्वृत्त के बीच के कोण के मध्यम मान में जो संस्कार करना पड़ता है उसका सूत्र यह है—

+९″.२१ कोटिज्या (सायन राहु) + ०″.५५ कोटिज्या (२ सायन सूर्य)* (४)

इष्ट काल में राहु का जो सायन भोगांश होता है अर्थात् विषुव सम्पात बिन्दु से क्रान्तिवृत्त पर राहु जितना दूर होता है वही सायन राहु तथा सूर्य का जो सायन भोगांश होता है वह सायन सूर्य कहा गया है।

इस अयन चलन के कारण वसंत संपात विंदु से प्रत्येक तारे का अंतर सदैव बढ़ रहा है जिससे तारे का सायन भोगांश बढ़ता जाता है। यदि बर्ष के आरंभ का तारे का भोगांश दिया हुआ हो तो किसी अन्य समय का भोगांश इस सूत्र† से जाना जाता है--

ता=त+५०″.२६व−१७″.२३५ ज्या (सायन राहु) − १″.२७ ज्या (२ सायन सूर्य) (५)

जहाँ

त=वर्ष के आरंभ में तारे का मध्यम सायन भोगांश,

व=वर्ष के आरंभ से इष्ट काल का अन्तर (वर्ष के दशमलव भिन्न में)

इस सूत्र के दाहिने पक्ष का दूसरा पद ५०″.२६व मुख्य है क्योंकि व जितना ही बड़ा होता जायगा उतना ही अधिक तारे का भोगांश होगा।

तीसरे पद में सायन राहु आया है जो यदि शून्य या १८०° हो तो ज्या सायन राहु शून्य होगा। इस समय तीसरा पद बिल्कुल लुप्त हो जायगा, अर्थात् जब सायन राहु का भोगांश शून्य या १८०° हो तो तीसरा पद उड़ जायगा। और जब सायन राहु ९०° होगा तो तीसरे पद का मान −१७″.२३५ तथा जब सायन राहु २७०° होगा तब तीसरे पद का मान +१७″.२३५ होगा। इसके कारण राहु के एक भ्रमण काल में वसंत सम्पात विन्दु का स्पष्ट स्थान ९ वर्ष के लगभग मध्यम स्थान से पूर्व और ९ वर्ष के लगभग मध्यम स्थान से पच्छिम रहता है।

सूर्य के कारण भी जो तनिक सा अक्ष विचलन होता है वह चौथे पद से सूचित किया गया है। इसका चक्र ६ महीने में बदलता है क्योंकि जिस समय सूर्य का सायन भोगांश शून्य, ९०°, १८०°, २७०° और ३६०° होगा उस समय चौथे पद का मान शून्य होगा और जिस समय सूर्य का भोगांश ४५°, १३५°, २२५°, ३१५° होगा उस समय इसके मान क्रमानुसार—१″.२७, +१″.२७, −१″.२७ और +१″.२७ होंगे।

इसी प्रकार परमाप क्रम में भी अक्ष विचलन के कारण परिवर्तन होता रहता है। अब इन सूत्रों से अयनांश जानने की रीति का उदाहरण दिया जाता है :—

† इस सूत्र का निश्चय ज्योतिषियों के एक सम्मेलन में जो पेरिस में हुआ था सन् १८९६ ई० के मई मास में किया गया था (देखो R. S. Balls' Spherical

समीकरण (१) में वसंत सम्पात की वार्षिक गति का सूत्र दिया हुआ है।

परन्तु यह वर्ष सायन है और हमारा वर्ष जो सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार माना जाता है इससे बड़ा है। इसलिये पहले त्रैराशिक से यह जानना चाहिये कि हमारे एक वर्ष में अयन की गति क्या होती है अर्थात् जब ३६५.२४२२१६ दिन में अयन गति ५०''.२५६४+०''.०००२२२५ व होती है तब ३६५.२५८७५६५ दिन में क्या होगी। सरल करने पर १९०० ई० की जनवरी के आरम्भ काल में सूत्र का रूप यह होता है।

५०''.२५८६७६+.०००२२२५१ व* (६)

और १९२२ ई० की जनवरी के आरम्भ काल में वार्षिक अयन गति का सूत्र उपर्युक्त सूत्र में 'व' की जगह २२ रखकर सरल करने से यह आता है—

५०''.२६३५७१+.०००२२२५१ व† (७)

जनवरी के आरम्भ से मेष संक्रान्ति काल तक प्रायः १०२ दिन या .२७९३ वर्ष होते हैं इसलिए यदि सूत्र (७) में व की जगह .२७९३ रख कर सरल किया जाय तो १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति काल में अयन की वार्षिक गति

५०.''२६३६३३+.००० २२५१ व (८)

होगी जब कि व का मान हमारे सिद्धान्तीय वर्ष के अनुसार लिया जाय। इस सूत्र से यह बात जानी जाती है कि वसंत सम्पात बिन्दु प्रति वर्ष (हमारे सिद्धान्त के अनुसार) क्रान्तिवृत्त के किसी बिन्दु से कितना पीछे हट जाता है। परन्तु हमारा सिद्धान्तीय वर्ष शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्ष से .००२३८२०६७ दिन बड़ा है†† इसलिये इतने समय में हमारे मेष संक्रान्ति का बिन्दु प्रति वर्ष कुछ आगे बढ़ जाता है। इसका परिमाण जानने के लिए मेष संक्रान्ति काल में सूर्य की जो स्पष्ट दैनिक गति होती है उससे उपर्युक्त अन्तर को गुणा करना चाहिये।

---

* यदि शुद्ध नाक्षत्र वर्ष लिया जाय जो ३६५.२५६३७४४ दिन का होता है तो एक शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्ष में अयन गति ५०.''२५८३५१+.०००२२२५१ व होती है।

† शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्ष के अनुसार १९२२ की जनवरी के आरम्भ में वार्षिक अयन गति

५०''.२६३२४६+०''.०००२२२५१ व और १९२२ की मेष संक्रान्ति जो १९७९ विक्रमी की मेष संक्रान्ति है इसका रूप

५०''.२६३३०८+०''.०००२२२५१ व होगा।

†† ३६५.२५८७५६४८४ में से ३६५.२५६३७४४१७ घटाने पर यह आता है।

१९२२ ई० के 'नाटिकल अलमनक' से मेष संक्रान्ति काल के आगे और पीछे के सूर्य के भोगांशों का अन्तर ५८′४६″.२ होता है। इसलिए इस दिन सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति ५८′४६″.२ होती है। इसको उपर्युक्त अन्तर से गुणा करने पर ८″.३६६६ सूर्य की गति होती है। इसलिए यह समझना चाहिये कि हमारे वर्ष के कुछ बड़ा होने के कारण अयनांश में प्रति वर्ष ८″.३६६६ की वृद्धि होती है। इसको सूत्र (८) में सम्मिलित करने से संक्रान्ति काल में वार्षिक अयन गति का सूत्र यह होगा—

५०″.२६३६३३+.०००२२२५१ व+८″.३६६६

अथवा ५८″.६६३२३३+.०००२२२५१ व (९)

यदि यह जानना हो कि 'व' वर्ष में अयनांश की वृद्धि क्या होगी तो यह सूत्र काम में लाना होगा—

५८″.६६३२३३ व+.०००२२२५१ $\left\{\frac{\text{व (व+१)}}{\text{२}}\right\}$ †

अथवा ५८″.६६३२३३ व+.०००१११२५५ व+.०००१११२५५ व^{२}

या ५८.६६३३४४२५५ व+.०००१११२५५ व^{२}

या संक्षेप में ५८.६६३३४४ व+.०००१११२५५ व^{२} (१०)

इससे अयनांश की जो वृद्धि आवे उसमें अक्ष विचलन का संस्कार सूत्र (३) के अनुसार करना चाहिए।

अब यह देखना है कि १९७९ वि० कि मेष संक्रान्ति काल में अयनांश कितना था। इसके लिए केवल यह जानना पर्याप्त है कि मेष संक्रान्ति काल में सूर्य का वेध-सिद्ध सायन भोगांश क्या है जिसके जानने का आदेश अगले ११वें तथा १७-१८ श्लोकों में है।

इसी अध्याय में आगे यह बतलाया जायगा कि शंकु की छाया नापकर सूर्य का सायन भोग कैसे जाना जा सकता है और उससे अयनांश कैसे जाना जा सकता है। आजकल यह काम दूरदर्शक यंत्रों से बहुत सूक्ष्मतापूर्वक हो सकता

---

† सूत्र (९) के दूसरे पद में जो व है उसकी जगह क्रमानुसार १, २, ३,⋯व तक उत्थापन करके सब को जोड़ने से .०००२२२५१.× $\left\{\frac{\text{व (व+१)}}{\text{२}}\right\}$ आता है। यह श्रेढी व्यवहार (Arithmetical progression) की संख्याओं के जोड़ने की तरह है।

है। जिस समय मेष संक्रान्ति होती है उसी समय का सूर्य का सायन भोग जान लिया जाय तो यही अयनांश होता है। परन्तु दूरदर्शक यंत्रों के अभाव में यही बात नाविक पंचांग (Nautical almanac) से भी जानी जा सकती है। इसलिए इसी से १९७९ विक्रमीय अथवा १९२२ ई० की मेष संक्रान्ति काल का सूर्य का सायन भोग निकाला जाता है। १९७९ विक्रमीय की मेष संक्रान्ति सूर्य सिद्धान्त के अनुसार १३ अप्रैल गुरुवार को उज्जैन के मध्यम ६ बजे प्रातःकाल के उपरांत १८ घड़ी ४७ पल १२ विपल पर हुई। काशी उज्जैन से ७२ पल ५० विपलों† पूर्व है। इसलिए काशी में मेष संक्रान्ति मध्यम ६ बजे के उपरांत २० घड़ी ० पल और २ विपल पर होगी। परन्तु काशी ग्रीनविच से ८३°३′४″ अथवा १३ घड़ी ५० पल ३१ विपल पूर्व है। इसलिए जिस समय काशी में मेष संक्रान्ति हुई उस समय ग्रीनविच में मध्यम ६ बजे के उपरांत ६ घड़ी ९ पल ३१ विपल रहा होगा।

इस वर्ष १२ अप्रैल के मध्यम मध्याह्न काल में सूर्य का भोगांश*

	२१°४७′३१″.५
और १३ ,, ,, ,, ,,	२२°४६′१७″.७
अंतर	५८′४६″.२

इसलिए ६० घड़ी में सूर्य की स्पष्ट गति ५८′४६″.२ हुई।

१३ अप्रैल को ग्रीनविच का मध्याह्न काल मध्यम ६ बजे से ६ घंटे अथवा १५ घड़ी उपरांत हुआ और मेष संक्रान्ति मध्यम ६ बजे से ६ घड़ी ९ पल ३१ विपल पर ही हो गयी इसलिए संक्रान्ति काल से १५ घड़ी—६ घड़ी ९ पल ३१ विपल=८ घड़ी ५० पल २९ विपल पश्चात् १३ अप्रैल का मध्याह्न हुआ जिस समय सूर्य का भोगांश २२°४६′१७″.७ था। इससे प्रकट है कि संक्रान्ति काल में सूर्य का भोगांश इससे कम होगा। परन्तु सूर्य की स्पष्ट गति ५८′४६″.२ है इसलिए ८ घड़ी ५० पल २९ विपल में सूर्य

$$\frac{\text{५८}'\text{४६}''.\text{२} \times \text{८ घड़ी ५० पल २९ विपल}}{\text{६० घड़ी}}$$

अथवा ८′३९″.६०९ चला होगा।

---

† काशी का देशान्तर (ग्रीनविच से) ८३°३′४″ पूर्व और उज्जैन का ७५°४६′६″ पूर्व है। इन दोनों का अंतर ७°१६′५८″ हुआ जो ७२ पल ५० विपल के समान होता है। इसलिए यही उज्जैन से काशी का देशान्तर हुआ।

* Nautical almanac for 1922 pp. 40.

इसलिए १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति काल में सूर्य का अयनांश

=२२° ६′१७″.७−८′३९″.६

=२२°३७′३८″.१

बस इसी में सूत्र (१०) के अनुसार जो कुछ वृद्धि आवे उसको जोड़ देने से किसी अन्य मेष संक्रान्ति काल का मध्यम अयनांश प्राप्त होगा। यदि अक्ष विचलन का संस्कार सूत्र (३) की सहायता से कर दिया जाय तो संक्रान्ति काल का स्पष्ट अयनांश प्राप्त हो जायगा। यदि संक्रान्ति काल के सिवा किसी अन्य समय का अयनांश जानना हो तो संक्रान्ति से जितने दिन बीते हों उतने दिन की अयन गति (जब कि एक वर्ष में ५८″.६६* के लगभग अयन की गति होती है) मेष संक्रान्ति के मध्यम अयनांश में जोड़कर अक्षविचलन का संस्कार कर दे तो उस समय का स्पष्ट अयनांश ज्ञात हो जायगा।

उदाहरण—काशी में १९८२ वि० की कार्तिक शुक्ल ८ रविवार का अयनांश क्या होगा ?

१९७९ से १९८२ तक तीन वर्ष होते हैं इसलिए तीन वर्ष में अयनांश की वृद्धि जानने के लिए सूत्र (१०) में 'व' की जगह ३ लिखकर सरल करो,

५८″.६६३३४४ × ३ + .०००१११२५५ × ३²

=१७५″.९९००३२ + ०″.००१००१२९५

=१७५″.९९१

=२′५५″.९९

इसको २२°३७′३८″.१ में जोड़ा तो २२°४०′३४″.०९ मेष संक्रान्ति काल का मध्यम अयनांश हुआ।

१९८२ वि० की मेष संक्रान्ति वैशाख कृष्ण ५ सोमवार को काशी के मध्यम ६ बजे के उपरांत ६ घड़ी ३४ पल ३६ विपल पर लगी। वैशाख कृष्ण ५ से कार्तिक शुक्ल ८ तक १९५ सावन दिन होते हैं जो .५३३९ सौर वर्ष के समान हुआ। इतने समय में ५८″.६६ प्रति वर्ष के हिसाब से मध्यम अयनांश ५८″.६६ × .५३३९ = ३१″.३२ और बढ़ेगा। इसलिए कार्तिक शुक्ल ८ को मध्यम अयनांश २२°४१′ ५″.४१ होगा।

अक्ष विचलन संस्कार के लिए कार्तिक शुक्ल ८ के दिन सायन राहु और सायन सूर्य का भोगांश जानना आवश्यक है। इस दिन प्रातः काल राहु का निरयन

* अधिक शुद्ध जानना हो तो सूत्र (९) से उस वर्ष की अयन गति निश्चय करना चाहिए।

भोगांश ३रा७°१३′८″ है। सायन भोगांश जानने के लिए २२°४१′५″ जोड़ दो तो हुआ ३रा२६°५४′१३″ अथवा स्थूल रूप से ३रा२६°५४′ या ११६°५४′। यही राहु का सायन भोगांश हुआ।

इसी तरह सूर्य का सायन भोगांश जानना चाहिए। कार्तिक शुक्ल ८ की मध्यरात्रि को सूर्य का निरयन भोगांश १८६°८′१०″ होगा इसलिए प्रातः काल ६ बजे इसका निरयन भोगांश १८८°२३′ स्थूल रूप से होगा। इसमें २२°४१′५″ जोड़ देने पर इसका सायन भोगांश २११°४′ स्थूल रूप से हुआ। इसलिए इस दिन सूत्र (३) के अनुसार अक्षविचलन संस्कार

= −१७″.२३५ ज्या ११६°५४′ − १′.२७ ज्या २×२११°४′

= −१७″.२३५ ज्या ६०°६′ − १″.२७ ज्या (३६०° + ६२°८′)

= −१७″.२३५ × .८६६६ − १″.२७ × .८८४१

= −१४″.६४ − १″.१२

= −१६″.०६

इसको मध्यम अयनांश २२°४१′५″.४१ में जोड़ा तो कार्तिक शुक्ल ८ के प्रातःकाल स्पष्ट अयनांश हुआ २२°४०′४६″.३५।

केतकर जी ने अपने ज्योतिर्गणित में अयनांश जानने की जो सारिणी दी है उससे उपर्युक्त अयनांश ६′ या ७′ कम आता है। इसका पहला कारण यह है कि केतकरजी ने मेष संक्रान्ति का आरम्भ उस समय माना है जिस समय चित्रा नामक तारा सूर्य से १८०° पर रहता है जब कि आजकल सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार मेष संक्रमण कोई ७ घड़ी पहले ही हो जाता है। दूसरा कारण यह है कि केतकर जी ने शुद्ध नाक्षत्र वर्ष का प्रयोग किया है और इस भाष्य में सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार वर्ष मानकर गणना की गयी है।

वेध करके अयनांश की परीक्षा करना

स्फुटदृक्तुल्यतां गच्छेदयने विषुवद्द्वये।
प्राक्चक्रं चलितं हीने छायार्कात्करणागते ॥११॥
अन्तरांशैरथोद्धृत्य पश्चाच्छेषैस्तथाऽधिके।

अनुवाद—(११) उत्तरायण और दक्षिणायन के दिन अथवा विषुव संक्रान्ति के दिन यह बात सहज ही देखी जा सकती है कि नक्षत्र किधर चला है। यदि छाया-सिद्ध सूर्य के भोगांश से (जिसकी रीति आगे १७-१६ श्लोकों में बतलायी गयी है) गणित सिद्ध सूर्य का भोगांश कम हो तो समझना चाहिए कि जितना इन दोनों का अन्तर है उतना ही नक्षत्र चक्र अथवा अश्विनी का आदि विन्दु पूर्व को चला है

अर्थात् वसंत सम्पात विन्दु से पूर्व है। परन्तु यदि अधिक हो तो उतना ही नक्षत्र-चक्र पच्छिम चला हुआ समझना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—छाया से सूर्य का जो भोगांश आता है वह वसंत सम्पात विन्दु से सूर्य का भोगांश (सायन भोगांश) है और गणित से जो भोगांश आता है जिसकी रीति स्पष्टाधिकार में बतलायी गयी है वह अश्विनी के आदि विन्दु से होता है। इसलिए इन दोनों का अन्तर यथार्थ अयनांश हुआ। इससे सिद्ध होता है कि अयनांश की परीक्षा वेध से भी करनी चाहिए। सूर्य-सिद्धान्तकार का मत है कि अश्विनी का आदि विन्दु जो क्रान्तिवृत्त का भी आदि विन्दु समझा जाता है वसंत सम्पात विन्दु से २७° पूर्व या २७° पच्छिम तक जा सकता है। इससे अधिक नहीं। ऐसा ही मत और भी कई प्राचीन आचार्यों का है। परन्तु कुछ आचार्य इससे भिन्न मत भी रखते हैं जिसकी चर्चा पहले की गयी है। प्राचीन वाक्यों से* भी यह सिद्ध होता है कि वसंत सम्पात विन्दु आजकल के अश्विनी के आदि विन्दु से २७° से भी अधिक पूर्व रहा है। भौतिक ज्योतिर्विज्ञान से जो कुछ सिद्ध होता है वह ऊपर बतलाया ही जा चुका है। परन्तु इसकी सत्यता का प्रत्यक्ष प्रमाण तो तब मिलेगा जब वसंत संपात विन्दु वास्तव में अश्विनी के आदि विन्दु से २७° से भी अधिक पच्छिम हो जायगा। सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार कलियुग संवत ५४०० में अथवा विक्रम संवत २३५६ में आज से ३७४ वर्ष उपरांत २७° का अयनांश पूरा होगा। परन्तु वेध से इसका प्रमाण इससे पहले ही मिल जायगा क्योंकि वि० १९८२ की मेष संक्रांति काल में मध्यम अयनांश २२°४०′३४″.०९ होगा जो २७° से केवल ४°१९′२६″ के लगभग कम है। सूत्र (१०) को इसके समान करके समीकरण बनाकर 'व' का मान निकाल लेने से उतने वर्ष की संख्या निकल आवेगी जितने वर्ष में अयनांश की इतनी वृद्धि होगी। अब

$$\text{४}^\circ\text{१९}'\text{२६}'' = \text{५८}''.\text{६६३३४४व} \times \text{०}''.\text{०००१११२५५व}^{\text{२}}$$

या $$\text{१५५६६}'' = \text{५८}''.\text{६६३३४४व} \times \text{०}''.\text{०००१११२५५व}^{\text{२}}$$

या $$.\text{०००१११२५५व}^{\text{२}} + \text{५८}.\text{६६३३४४व} - \text{१५५६६} = \text{०}$$

$$\therefore \text{व} = \frac{-\text{५८}.\text{६६३३४४} \pm \sqrt{(\text{५८}.\text{६६३३४४})^{\text{२}} + \text{४} \times .\text{०००१११२५५} \times \text{१५५६६}}}{\text{२} \times .\text{०००१११२५५}}$$

$$= \text{२६६ वर्ष के लगभग}$$

---

*देखो पिछले श्लोक के विज्ञान भाष्य में शतपथ ब्राह्मण का उद्धरण तथा तत्संबंधी गणना।

इसलिए प्रकट है कि १९८२+२६६=२२४८ विक्रमीय के दो चार वर्ष उपरांत ही यह सिद्ध हो जायगा कि वसंत संपात का पूर्ण भगण होता है अथवा आंदोलन।

यदि यह बात प्रत्यक्ष हो गयी कि वसंत सम्पात विन्दु पूर्ण भगण के कारण पीछे खसकता ही जायगा तो भारतीय पंचांग-निर्माण की रीति तथा तिथियों और पर्वों के निश्चय करने के लिए संशोधन की अत्यन्त आवश्यकता पड़ेगी। फलित ज्योतिष के लिए योगों और मुहूर्तों के निश्चय करने के जितने नियम हैं उनमें भी महान् परिवर्तन करना होगा।

पलभा जानने की १ली रीति

एवं विषुवति छाया स्वदेशे या दिनार्धजा।
दक्षिणोत्तरयोरेव सा तत्र विषुवत्प्रभा ॥१२॥

अनुवाद—(१२) इस प्रकार सूर्य जिस दिन विषुवद् वृत्त पर हो उस दिन मध्याह्न काल में जिस स्थान की उत्तर दक्षिण रेखा पर १२ अंगुल शंकु की जितनी लम्बी छाया पड़े वही उस स्थान की विषुवत्प्रभा या पलभा होती है।

विज्ञान भाष्य—पलभा के सम्बन्ध में २०४-२०५ पृष्ठों पर तथा इसी अध्याय के सातवें श्लोक के भाष्य में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। २०५वें पृष्ठ में यह बतलाया गया है कि किसी स्थान के अक्षांश की स्पर्शरेखा उस स्थान की पलभा को शंकु से भाग देने पर आती है। इसलिए यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि इस श्लोक के अनुसार पलभा का जो मान जाना जाता है वह स्थूल है। क्योंकि सायन मेष या सायन तुला संक्रान्ति (विषुव संक्रान्ति) के दिन, जिस दिन मध्याह्न काल में शंकु की छाया नाप कर पलभा जानी जाती है मध्याह्न काल में सूर्य ठीक विषुवद् वृत्त पर नहीं होता वरन् कुछ आगे या पीछे होता है। मध्याह्न काल में ठीक विषुवद् वृत्त पर सूर्य के आने का संयोग कई वर्ष के बाद आता है। इस दिन सूर्य की क्रान्ति प्रत्येक घंटे में प्रायः एक कला के हिसाब से बदलती है। इसलिए सायन मेष या तुला संक्रान्ति शुद्ध काल गणना से जानकर सूर्य की मध्याह्न काल की क्रान्ति जान लेनी चाहिये और इसका संस्कार कर लेने के बाद शुद्ध पलभा जाननी चाहिये। संस्कार करने की रीति अगले १४-१५ श्लोकों में बतलायी जायगी।

अक्षांश जानने की १ली रीति

शंकुच्छायाहते त्रिज्ये विषुवत्कर्णभाजिते।
लम्बाक्षज्ये तयोश्चापे लम्बाक्षौ दक्षिणौ सदा ॥१३॥

अनुवाद—(१३) शंकु और उसकी छाया (यहाँ पलभा) को अलग-अलग त्रिज्या अर्थात् ३४३८ से गुणा करके प्रत्येक गुणनफल को विषुवत्कर्ण से भाग दे देने पर क्रम से लम्बज्या और अक्षज्या आ जायेंगी जिनके धनु क्रम से लम्बांश और अक्षांश होंगे। (उत्तर गोल में) ये सदा दक्षिण होते हैं।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोक का सार यह है :—

$$\text{लम्बज्या} = \frac{\text{शंकु} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

सायन मेष या तुला संक्रान्ति के दिन मध्यान्ह काल में १२ अंगुल शंकु का जो छायाकर्ण होता है वही विषुवत्कर्ण, पलकर्ण या अक्षकर्ण कहलाता है। पृष्ठ २०४ के चित्र ४१ में क ग विषुवत्कर्ण है। इसलिए

$$\text{विषुवत्कर्ण} = \sqrt{\text{पलभा}^2 + \text{शंकु}^2}$$

पृष्ठ ५५ के चित्र ७ और पृष्ठ ५६ के चित्र १० में यह बतलाया गया है कि किसी स्थान के अक्षांश और लम्बांश क्या हैं। इन चित्रों से यह भी प्रकट होता है कि किसी स्थान के अक्षांश और लम्बांश दोनों मिलकर ९०° के समान होते हैं। पृष्ठ २०४ में चित्र ४१ के सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि विषुवत्कर्ण और शंकु के बीच का कोण ख क ग अक्षांश है। इसलिए यह सिद्ध है कि विषुवत्कर्ण और पलभा के बीच का कोण क ग ख लम्बांश हुआ, क्योंकि $\angle$ख क ग और $\angle$क ग ख दोनों पूरक कोण हैं।

इसलिए लम्बज्या या लम्बांश की ज्या

$$= \frac{\text{क ख}}{\text{क ग}} = \frac{\text{शंकु}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$ आजकल की प्रथानुसार (दशमलव भिन्न में)

$$= \frac{\text{शंकु} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$ हमारे सिद्धान्तों के अनुसार (कलाओं में)

लम्बांश की ज्या को अक्षांश की कोटिज्या भी कहते हैं क्योंकि लम्बांश और अक्षांश का योग ९०° होता है। इसी तरह अक्षज्या या अक्षांश की ज्या

$$= \frac{\text{ख ग}}{\text{क ग}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$ (दशमलव भिन्न में)

अथवा $$\frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$ (कलाओं में)

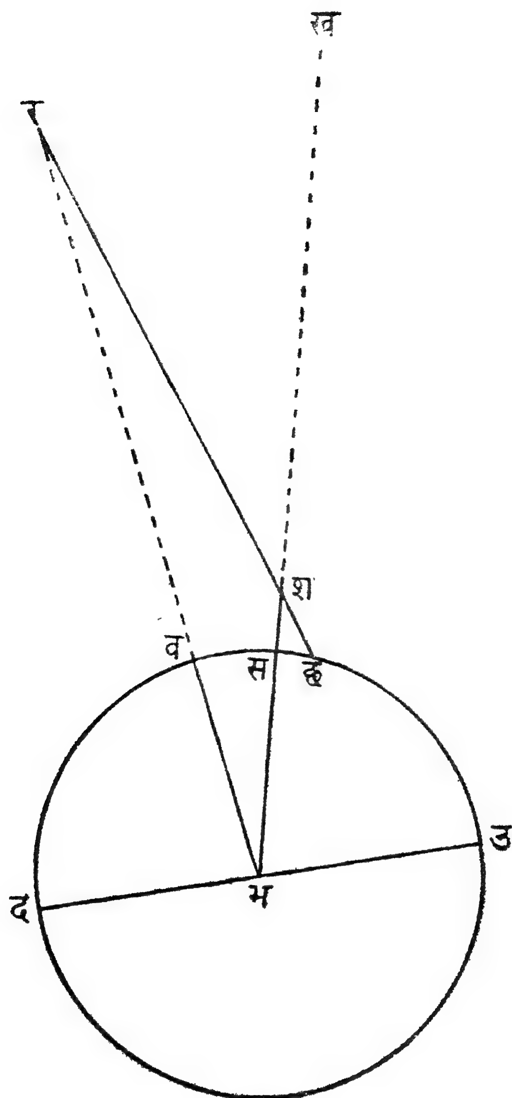
४२-४३ चित्रों के सम्बन्ध में भी बतलाया गया है कि क्षितिज के उत्तर-बिन्दु से ध्रुव की ऊँचाई अक्षांश के समान होती है। इसमें पाठकों को शायद शंका हो कि अक्षांश की कौन परिभाषा ठीक है। इसलिए यहां इस बात का निश्चय कर देना चाहिये कि अक्षांश की यह तीनों परिभाषाएँ एक ही हैं।

चित्र ९ और १० से स्पष्ट है कि विषुवत् रेखा से किसी स्थान का जो कोणात्मक अंतर उत्तर-दक्खिन रेखा पर होता है वही उस स्थान का अक्षांश है और ध्रुव से उत्तर-दक्खिन रेखा पर स्थान का कोणात्मक अंतर उसका लम्बांश है। विषुवत् रेखा के तल को यदि आकाश की ओर बढ़ा दिया जाय तो यही विषुवन्मण्डल कहलाता है और उत्तर-दक्खिन रेखा के तल को आकाश में बढ़ा दिया जाय तो वह याम्योत्तर वृत्त कहलाता है। इसी तरह पृथ्वी के केन्द्र से किसी स्थान को मिलाने वाली रेखा (चित्र ७ की रेखा स भ) ऊपर बढ़ाने पर आकाश के जिस बिन्दु पर पहुँचती है वह उस स्थान का खस्वस्तिक कहलाता है। इसलिए यह सिद्ध है कि किसी स्थान के खस्वस्तिक से विषुवन्मण्डल का जो अंतर याम्योत्तर वृत्त पर होता है वह भी अक्षांश है तथा खस्वस्ति से आकाशीय ध्रुव का जो अन्तर याम्योत्तरवृत्त पर होता है वह लम्बांश है। इसलिए चित्र ४२, ४३ के ख वि धनु श स्थान के अक्षांश तथा ख ध धनु श स्थान के लम्बांश हुए। परन्तु ध वि धनु या उ ख धनु ९० अंश के समान है। इसलिए प्रत्येक से सामान्य धनु ध ख निकाल दिया जाय तो शेष ख वि और उ ध समान होंगे, अर्थात् खस्वस्तिक से विषुवन्मण्डल का जो अंतर होता है वही क्षितिज के उत्तर बिन्दु से उत्तरी आकाशीय ध्रुव का अन्तर होता है। इसी तरह यह भी सिद्ध हो सकता है कि ध ख धनु द वि धनु के समान है, अर्थात् क्षितिज के दक्षिण विन्दु से विषुवन्मण्डल की जो ऊंचाई होती है वह भी लम्बांश के समान है। यह भी स्पष्ट है कि उत्तर गोल में किसी स्थान के खस्वस्तिक से विषुवन्मण्डल सदैव दक्षिण रहता है इसलिए ख वि अक्षांश और वि द लम्बांश उत्तर गोल में सदा दक्षिण ही रहेंगे।

अब यह सिद्ध करना रह गया कि शंकु और विषुवत्कर्ण के बीच का अन्तर अक्षांश के समान क्यों है।

यह ध्यान रखना चाहिए कि चित्र ५५ में पृथ्वी की तुलना में शंकु बहुत बड़ा दिखलाया गया है। रेखागणित से यह स्पष्ट है कि

$$\angle \text{स श छ} = \angle \text{र श ख}$$
$$= \angle \text{श र भ} + \angle \text{र भ श}$$



चित्र ५५

उ स व द=भूतल की उत्तर-दक्षिण रेखा
उ=उत्तरी ध्रुव
द=दक्षिणी ध्रुव
स=वह स्थान जहाँ श स शंकु गड़ा है
च=विषुवत्‌रेखा का विन्दु
ख=स स्थान का खस्वस्तिक
र=विषुवद्‌वृत्त पर रवि का स्थान
स छ=पलभा

परंतु भूकेन्द्र से सूर्य का अन्तर भ र प्रायः ९ करोड़ २९ लाख मील है और पृथ्वी का अर्द्धव्यास भ स अथवा भ श (क्योंकि स श=१२ अंगुल) ४००० मील है। इसलिए <श र भ इतना छोटा कोण है कि यह शून्य माना जा सकता है (यथार्थ में यह कोण ९ विकला के लगभग होता है)। इसलिए

<स श छ=<र भ श

=<व भ स

=अक्षांश

अर्थात् शंकु और विषुवत्कर्ण के बीच का कोण अक्षांश के समान होता है। इसलिए पलभा और विषुवत्कर्ण के बीच का कोण जो पहले का पूरक कोण होता है लम्बांश के समान हुआ।

उदाहरण—प्रयाग की पलभा ५ अंगुल ४१ व्यंगुल अथवा ५.६८ अंगुल है तो प्रयाग का अक्षांश बतलाओ।

प्रयाग का विषुवत्कर्ण

$$=\sqrt{\text{शंकु}^{२}+\text{पलभा}^{२}}$$

$$=\sqrt{१२^{२}+(५.६८)^{२}}$$

$$=\sqrt{१४४+३२.२६}$$

$$=\sqrt{१७६.२६}$$

$$=१३.२८ \text{ अंगुल}$$

∴ प्रयाग की अक्षज्या

$$=\frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

$$=\frac{५.६८ \times ३४३८}{१३.२८}$$

$$=१४७०.५ \text{ कला}$$

इसलिए ज्याओं की सारिणी (पृष्ठ १२०-१२१) तथा स्पष्टाधिकार के श्लोक ३३ (पृष्ठ १३०) के अनुसार अक्षांश=२५°२१′

अक्षांश जानने की दूसरी रीति—

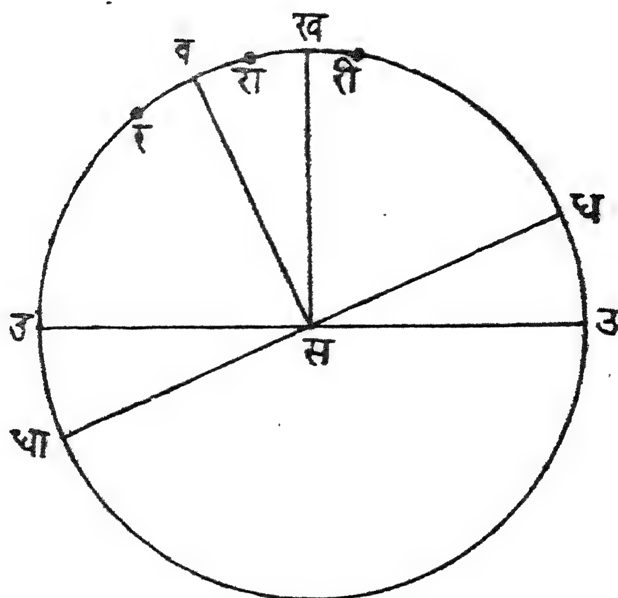
मध्यच्छाया भुजस्तेन गुणिता त्रिभमौर्विका।

तत्कर्णाप्तधनुर्लिप्ता नतास्ता दक्षिणे भुजे ॥१४॥

अनुवाद—(१४) किसी दिन के मध्याह्न की छाया को जिसे भुज भी कहते हैं त्रिज्या से गुणा करके मध्याह्न के छाया कर्ण से भाग दे दो और भागफल का धनु बनाओ तो सूर्य का मध्याह्नकालिक नतांश ज्ञात हो जायगा। यदि छाया दक्षिण की ओर हो तो (१५) उत्तर नतांश होगा और यदि छाया उत्तर हो तो दक्षिण नतांश होगा। यदि नतांश और सूर्य की क्रान्ति की दिशाएँ भिन्न हों तो इन दोनों का योग-फल और एक ही हों तो अन्तर अक्षांश होगा।

विज्ञान भाष्य—खस्वस्तिक से आकाश के किसी विन्दु (तारा, सूर्य का केन्द्र इत्यादि) पर जाता हुआ जो वृत्त क्षितिज से समकोण पर खींचा जाता है उसे ऊर्ध्ववृत्त (Vertical Circle) कहते हैं। इस वृत्त पर उस विन्दु का खस्वस्तिक से जो अंतर होता है उसे उस विन्दु का नतांश (zenith distance) कहते हैं और क्षितिज से जो अन्तर होता है उसे उस बिन्दु का उन्नतांश (altitude) कहते हैं। सममण्डल भी एक ऊर्ध्ववृत्त है। पर इसमें विशेषता यह है कि यह क्षितिज के पूर्व पच्छिम विन्दुओं पर होता है। यामोत्तर वृत्त भी उत्तर दक्षिण विन्दुओं पर ऊर्ध्ववृत्त है। इसलिए मध्याह्न काल में जब कि सूर्य यामोत्तर वृत्त पर रहता है, इससे खस्वस्तिक का जो अंतर होता है वह इसका मध्याह्नकालिक नतांश हुआ। यदि सूर्य विषुवद्वृत्त पर भी हो तो यही अक्षांश के समान होगा। यदि सूर्य विषुवद्वृत्त पर न हो तो यह या तो विषुवद्वृत्त से उत्तर रहेगा या दक्षिण। मध्याह्न काल में सूर्य का विषुवद्वृत्त से जो अंतर होता है वही सूर्य की क्रान्ति है जो सूर्य के विषुवद्वृत्त से उत्तर या दक्षिण रहने के अनुसार उत्तर या दक्षिण क्रान्ति कहलाती है। इसी प्रकार सूर्य खस्वस्तिक से भी उत्तर या दक्षिण हो सकता है। यदि सूर्य खस्वस्तिक से उत्तर हो तो छाया दक्खिन की ओर होगी और खस्वस्तिक से सूर्य का अंतर उत्तर नतांश कहलायेगा। परन्तु यदि सूर्य खस्व-स्तिक से दक्खिन हो तो छाया उत्तर की ओर होगी और सूर्य का नतांश दक्षिण होगा। चित्र ५६ से यह स्पष्ट है कि सूर्य के मध्याह्नकालिक नतांश और क्रान्ति से अक्षांश कैसे जाना जा सकता है :—

उ ध ख व द यामोत्तर वृत्त, ध उत्तरी आकाशीय ध्रुव, ख खस्वस्तिक, व विषुवद्वृत्त ओर यामोत्तर वृत्त का सामान्य विन्दु, और र, रा, री सूर्य के तीन भिन्न-भिन्न स्थान हैं। र पर सूर्य विषुवद्वृत्त के दक्खिन है इसलिए इस समय सूर्य की दक्षिण क्रान्ति व र है परन्तु व रा या व री सूर्य की उत्तर क्रान्तियाँ हैं। इसी प्रकार ख र और ख रा सूर्य के दक्षिण नतांश और ख री उत्तर नतांश हैं। ख व स स्थान



चित्र ५६

$$व\ ख = ख\ र - व\ र \qquad (१)$$

$$= ख\ रा + व\ रा \qquad (२)$$

$$= व\ री - ख\ री \qquad (३)$$

समीकरण (१) में सूर्य के नतांश और क्रान्ति दोनों दक्षिण तथा समीकरण (३) में नतांश और क्रान्ति दोनों उत्तर हैं। परन्तु समीकरण (३) में नतांश दक्षिण और क्रांन्ति उत्तर हैं। इससे प्रकट है कि जब नतांश और क्रान्ति दोनों की दिशाएँ एक ही हों तो इनका अंतर और भिन्न हों तो योग करने से अक्षांश जाना जा सकता है। यदि न नतांश, क क्रान्ति और अ अक्षांश माने जायँ तो इनका सम्बन्ध इस समीकरण से प्रकट होगा—

$$न \pm क = अ$$

यहाँ धन का चिह्न उस समय लिखा जायगा जब न और क दोनों की दिशाएँ भिन्न हैं और ऋण का चिह्न उस समय जब दोनों की दिशाएँ एक ही हों।

ऊपर के दोनों श्लोकों में यह बतलाया गया है कि शंकु की मध्याह्नकालीन छाया नापकर नतांश कैसे जानते हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि शंकु और छायाकर्ण के बीच में जो कोण होता है वह सूर्य का नतांश है। इसलिए

नतांश ज्या $=\dfrac{\text{छाया}\times\text{त्रिज्या}}{\text{छायाकर्ण}}$ [सिद्धान्तीय रीति के अनुसार]

नतांश की ज्या से नतांश निकाल कर इसको सूर्य की क्रान्ति में जो स्पष्टाधिकार के श्लोक २८ के अनुसार जानी जा सकती है, जोड़ने या घटाने से, जैसी आवश्यकता हो, अक्षांश निकल आता है।

उदाहरण—यदि किसी दिन सूर्य की उत्तर क्रान्ति १५.२५ और इसी दिन प्रयाग में शंकु की मध्याह्न छाया २.१२ अंगुल हो तो प्रयाग का अक्षांश बतलाओ।

प्रयाग का मध्याह्न छायाकर्ण

$$=\sqrt{\text{शंकु}^{२}+\text{छाया}^{२}}$$

$$=\sqrt{१२^{२}+(२.१२)^{२}}$$

$$=\sqrt{१४८.४९}$$

$$=१२.१९ \text{ अंगुल}$$

$$\therefore \text{नतांश ज्या}=\frac{\text{छाया}\times\text{त्रिज्या}}{\text{छायाकर्ण}}$$

$$=\frac{२.१२\times३४३८}{१२.१९}$$

$$=५९८'$$

इसलिए नतांश $=९^{\circ}२१'$

यह नतांश दक्खिन की ओर है और सूर्य की क्रान्ति उत्तर है। इसलिए दोनों का योग प्रयाग का अक्षांश होगा।

इसलिए इस रीति से प्रयाग का अक्षांश

$$=९^{\circ}५१'+१५^{\circ}२५'$$

$$=२५^{\circ}१६'$$

दोनों रीतियों से निकाले गये अक्षांशों में कुछ अन्तर है। इसका कारण प्रत्यक्ष है। छाया की नाप स्थूल होती है जिसका कारण पहले बतलाया जा चुका है। यदि छाया छोटी हो तो अशुद्धि और भी बढ़ जाती है।

पलभा जानने की दूसरी रीति यदि अक्षांश ज्ञात हो—

तज्ज्याऽक्षज्याऽथ तद्वर्गं प्रोज्झ्य त्रिज्याकृतेः पदम्।
लम्बज्याऽक्षगुणोऽर्कघ्नः पलभाप्तोऽवलम्बकः ॥१६॥

अनुवाद—(१६) ऊपर बतलायी गयी रीति से अक्षांश जानकर अक्षज्या बनाओ और अक्षज्या के वर्ग को त्रिज्या के वर्ग से घटाकर शेष का वर्गमूल निकालो

तो लम्बज्या निकल आवेगी। अक्ष ज्या को १२ से गुणा करके लम्बज्या से भाग देने पर जो आवेगा वही पलभा होगी।

विज्ञान भाष्य—पलभा जानने की पहली रीति सायन मेष या तुला संक्रान्ति के दिन ही काम में लायी जाती है। दूसरी रीति से किसी दिन के मध्याह्न काल के सूर्य की क्रान्ति और नतांश से अक्षांश जानकर पलभा की गणना की जा सकती है।

इस श्लोक का सार यह है :—

$$\sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{अक्षज्या}^2} = \text{लम्बज्या}$$

और $$\frac{\text{अक्षज्या} \times १२}{\text{लम्बज्या}} = \text{पलभा}$$

उपपत्ति—चित्र १० पृष्ठ ५६ में सभा लम्बज्या, भभा अक्षज्या, सभ त्रिज्या और कोण सभाभ समकोण है, इसलिए यदि अक्ष ज्या ज्ञात हो तो,

$$\text{सभा}^2 = \text{सभ}^2 - \text{भभा}^2$$

$$\text{अथवा सभा} = \sqrt{\text{सभ}^2 - \text{भभा}^2}$$

$$\therefore \text{लम्बज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{अक्षज्या}^2}$$

चित्र ४१ पृष्ठ २०४ में ख ग पलभा, क ख शंकु, $<$ख क ग अक्षांश और $<$क ग ख लम्बांश है, इसलिए आजकल की रीति के अनुसार

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{ख ग}}{\text{क ग}}$$

$$\text{लम्बज्या} = \frac{\text{क ख}}{\text{क ग}}$$

$$\therefore \frac{\text{अक्षज्या}}{\text{लम्बज्या}} = \frac{\text{ख ग}}{\text{क ग}} \div \frac{\text{क ख}}{\text{क ग}}$$

$$= \frac{\text{ख ग}}{\text{क ख}}$$

$$= \frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}}$$

$$= \frac{\text{पलभा}}{\text{१२ अंगुल}}$$

$$\therefore \text{पलभा} = \frac{\text{अक्षज्या} \times १२}{\text{लम्बज्या}} \text{ अंगुल} \qquad (१)$$

इस रीति से पलभा का मान निकालने में बहुत गुणा भाग करना पड़ता है। इसलिए यदि स्पर्शरेखाओं की सारिणी बना ली जाय तो यह काम सहज ही हो सकता है क्योंकि अक्षांश और लम्बांश पूरक कोण हैं इसलिए

$$\frac{\text{अक्ष ज्या}}{\text{लम्ब ज्या}} = \text{अक्षांश स्पर्शरेखा},$$

$$\text{पलभा} = १२ \times \text{अक्षांश स्पर्शरेखा} \qquad (२)$$

यही बात पृष्ठ २०५ में भी दिखलायी गयी है।

उदाहरण—प्रयाग का अक्षांश २५°२५′ है तो प्रयाग की पलभा क्या होगी ?

(१) सूर्य-सिद्धान्त की रीति से

$$\text{अक्षज्या} = २५°२५' \text{ की ज्या}$$

$$= १४७४'$$

$$\therefore \text{ लम्बज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^२ - \text{अक्षज्या}^२}$$

$$= \sqrt{३४३८^२ - १४७४^२}$$

$$= \sqrt{(३४३८ + १४७४)(३४३८ - १४७४)}$$

$$= \sqrt{४९१२ \times १९६४}$$

$$= ३१०६'$$

$$\text{पलभा} = \frac{\text{अक्षज्या} \times १२}{\text{लम्बज्या}}$$

$$= \frac{१४७४ \times १२}{३१०६}$$

$$= ५.६९ \text{ अंगुल}$$

(२) नवीन रीति से—

$$\text{पलभा} = १२ \times \text{अक्षांश स्पर्शरेखा}$$

$$= १२ \times \text{स्परे}^* \, २५°२५'$$

$$= १२ \times ०.४७५२ \text{ अंगुल}$$

$$= ५.७०२४ \text{ अंगुल}$$

$$= ५.७ \text{ अंगुल}$$

---

* स्पर्शरेखा की जगह सरलता के लिए स्परे लिखा गया है जैसे कोटिज्या के लिए कोज्या लिखा जाता है।

सूर्य की क्रान्ति नाप कर सायन भोगांश जानना—

स्वाक्षार्कनतभागानां दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा ।
दिग्भेदेऽपक्रमश्शेषः तस्य ज्या त्रिज्यया हता ॥१७॥
परमापक्रमज्याप्तचापं मेषादिगे रविः ।
कर्क्यादौ प्रोज्झ्य चक्रार्धात्तुलादौ भार्धसंयुतात् ॥१८॥
मृगादौ प्रोज्झ्य भगणात् मध्याह्नार्कस्फुटो भवेत् ।
तन्मान्दमसकृद्वामं फलं मध्यो दिवाकरः ॥१९॥

अनुवाद—(१७) अपने स्थान का अक्षांश और मध्यान्हकालिक सूर्य का नतांश यदि एक ही दिशा के हों तो इनका अन्तर निकाले और भिन्न-भिन्न दिशा के हों तो जोड़ दे। जो कुछ आवे वही सूर्य की मध्यान्हकालिक क्रान्ति है। इसकी ज्या को त्रिज्या से गुणा करके (१८) सूर्य की परमक्रान्ति ज्या से भाग दे दे और लब्धि का धनु बनावे। यदि सूर्य सायन मेषादि तीन राशियों में हो तो यही (धनु) मध्यान्ह-कालिक सूर्य का स्फुट सायन भोगांश होगा। यदि सूर्य सायन कर्कादि तीन राशियों में हो तो इस धनु को ६ राशि में घटाने से जो कुछ आवेगा वह मध्यान्हकालिक सूर्य का स्फुट सायन भोगांश होगा। यदि सूर्य सायन तुलादि तीन राशियों में हो तो इस धनु को ६ राशियों में जोड़ने से जो कुछ आवेगा वह मध्यान्हकालिक सूर्य का स्फुट सायन भोगांश होगा। और यदि सूर्य सायन मकर आदि तीन राशियों में हो तो इस धनु को १२ राशियों में घटाने जो पर कुछ आवेगा वह मध्यान्हकालिक सूर्य का सायन भोगांश होगा। इस स्फुट सायन भोगांश में मंद फल का उलटा संस्कार कई बार करने से मध्यम सायन भोगांश निकलेगा।

विज्ञान भाष्य—१४-१५ श्लोकों में सूर्य के मध्यान्हकालिक नतांश और क्रान्ति को जोड़ या घटाकर अक्षांश जानने की रीति बतलायी गयी है। १७वें श्लोक में अक्षांश और नतांश जान कर क्रान्ति निकालने की रीति है। इसलिए यह पहली रीति का ही दूसरा रूप है और जैसे वहाँ जोड़ना घटाना पड़ता है वैसे ही यहाँ भी। इसका कारण भी चित्र ५६ के संबंध के तीन समीकरणों से समझ में आ सकता है।

जोड़ने और घटाने का नियम इस समीकरण से सरलतापूर्वक समझ में आ जायगा—

$$अ \pm न = क$$

जिसमें अ, न और क क्रम से अक्षांश, नतांश और क्रान्ति सूचित करते हैं, धन का चिह्न उस समय लिखा जायगा जब अक्षांश और नतांश की दिशाएँ भिन्न होंगी अन्यथा ऋण का चिह्न प्रयोग होगा। यहाँ एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है। यह बात साधारणतः लोग समझते हैं और आजकल यही प्रथा भी है कि उत्तर

गोल में अक्षांश की दिशा उत्तर समझी जाती है परन्तु इस नियम में इसकी दिशा दक्षिण समझी गयी है क्योंकि उत्तर गोल में खस्वस्तिक से विषुवद्वृत्त की दिशा दक्षिण होती है।

क्रान्ति जब मालूम हो गयी तब सूर्य का भोगांश स्पष्टाधिकार के २८वें श्लोक से ही जाना जा सकता है; क्योंकि वहाँ बतलाया गया है (देखो पृष्ठ १२२ चित्र २५) कि

$$\frac{\text{ज्या (व स)} \times १३९७}{३४३८} = \text{ज्या (स प)}$$

$$\text{इसलिए ज्या (व स)} = \frac{\text{ज्या (स प)} \times ३४३८}{१३९७} \qquad (१)$$

जहाँ व स सूर्य का सायन भोगांश, स प सूर्य की क्रान्ति, और १३९७ सूर्य की परम क्रान्ति की ज्या है। यही १७वें श्लोक के अंनिम चरण और १८वें श्लोक के पूर्वार्द्ध का रूप है।

यदि आजकल की रीति से ज्या का मान दशमलव भिन्न में व्यवहार किया जाय तो और भी सरल रूप यह होगा—

$$\text{ज्या (व स)} = \frac{\text{ज्या (स प)}}{\text{ज्या (स व प)}} \qquad (२)$$

अब यह अच्छी तरह सिद्ध हो गया कि सूर्य की परम क्रान्ति २४° नहीं है वरन् इसका मध्य मान इस समय २३°२७′ के लगभग है और प्रतिवर्ष आधा विकला के लगभग घटती जा रही है। इसलिए यदि आजकल सूर्य की क्रांति से भोगांश जानना हो तो $\angle$स व प को २३° २७′ के समान समझ कर गणना करनी चाहिए।

उदाहरण—एक दिन मध्यान्ह काल में सूर्य की क्रान्ति १६°१७′ दक्षिण है और यह सायन मकरादि राशि में है तो इसका स्फुट सायन भोगांश बतलाओ।

$$\text{ज्या (भोगांश)} = \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{ज्या (परम क्रान्ति)}}$$

$$= \frac{\text{ज्या } १६^\circ\ १७'}{\text{ज्या } २३^\circ\ २७'}$$

$$= \frac{.२८०४}{.३९७९}$$

$$= .७०४७$$

$$\therefore \text{ भोगांश } = ४४^\circ ४८'$$

सूर्य सायन मकरादि में है इसलिए इस भोगांश को १२ राशि या ३६०$^\circ$ से घटाने पर जो आवेगा वह सूर्य का स्पष्ट सायन भोगांश होगा। इसलिए इस दिन सूर्य का सायन भोगांश

$$= ३६०^\circ - ४४^\circ ४८'$$
$$= ३१५^\circ १२'$$

पृष्ठ २०० के चित्र ३९ को देखने से तथा अनुभव से भी यह स्पष्ट है कि सूर्य जितने समय में वसंत संपात से दक्षिणायन विंदु तक जाता है अर्थात् सायन मेष से तीन राशि तक जाता है उतने समय में इसकी उत्तर क्रान्ति शून्य से २३$^\circ$२७$'$ तक बढ़ती है। जब सूर्य दक्षिणायन विंदु से (सायन कर्क के आदि से) शरद सम्पात तक जाता है तब इसकी उत्तर क्रान्ति २३$^\circ$२७$'$ से घटते-घटते शून्य हो जाती है। शरद सम्पात् अर्थात् सायन तुला से उत्तरायण विंदु (सायन मकर के आरंभ तक) सूर्य की दक्षिण क्रान्ति शून्य से २३$^\circ$२७$'$ बढ़ती रहती है और सायन मकर के आरम्भ से वसन्त सम्पात तक घटते-घटते फिर शून्य हो जाती है।

ऊपर भोगांश निकालने का जो नियम बतलाया गया है उससे केवल यह जाना जाता है कि वसंत या शरद सम्पात से सूर्य कितनी दूर है। यदि सूर्य वसंत संपात अर्थात् सायन मेष से तीन राशियों के बीच में है तो आया हुआ भोगांश वसंत संपात से ही सूर्य की दूरी है, इसलिए यही सायन भोगांश हुआ। यदि सूर्य सायन कर्क के आरम्भ से तीन राशियों के भीतर है तो आया हुआ भोगांश शरद सम्पात से विलोम दिशा में सूर्य की दूरी है। परन्तु शरद सम्पात सायन मेष से ६ राशि दूर है इसलिए ६ राशि में से आया हुआ भोगांश घटाना पड़ता है तब वसंत सम्पात से सूर्य का सायन भोगांश निकलता है। यदि सूर्य सायन तुला से तीन राशियों के बीच में है तो आया हुआ भोगांश शरद सम्पात से अनुलोम दिशा में सूर्य की दूरी है इसलिए ६ राशि में यह जोड़ना पड़ता है तब सूर्य का वसंत सम्पात से सायन भोगांश निकलता है। और यदि सूर्य सायन मकर से तीन राशियों के बीच में है तो आया हुआ भोगांश वसंत संपात से विलोम दिशा में सूर्य की दूरी है। इसलिए १२ राशियों में से इस भोगांश को घटाने पर वसंत संपात से अनुलोम दिशा में सूर्य की दूरी (भोगांश) आती है।

ऊपर बतलाया गया है कि सूर्य की परमक्रान्ति वर्ष में आधी विकला के लगभग घटती जा रही है। यहाँ वह सूत्र दे देना अच्छा होगा जिससे किसी समय परमक्रान्ति सहज ही जानी जा सकती है।

१६८० विक्रमीय की मेष संक्रान्ति के दिन मध्यम परमक्रान्ति २३° २६′५७″.३५ है। यह प्रति वर्ष ०″.४६८ विकला की दर से घटती है इसलिए मध्यम परमक्रान्ति का सूत्र=२३°२६′५७″.३५ – ०″.४६८ (व—१६८०)

यहाँ 'व' किसी विक्रमीय संवत् की संख्या है।

अयनांश का विचार करते समय यह कहा गया था कि अक्ष विचलन (Nutation) के कारण क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त के बीच के कोण अर्थात् परमक्रान्ति पर भी प्रभाव पड़ता है। इसके कारण परमक्रान्ति का स्पष्ट मान इस सूत्र के अनुसार होगा—

२३°२६′५७″.३५—०″.४६८ (व—१६८०)+६″.२१ कोज्या (सायन राहु)+०″.५५ कोज्या (२ सायन सूर्य)

वसंत संपात विंदु से राहु के भोगांश को सायन राहु और सूर्य के भोगांश को सायन सूर्य कहा गया है।

इस रीति से सूर्य का जो स्पष्ट सायन भोगांश निकलता है उससे अयनांश का मान घटा देने पर निरयन भोगांश अर्थात् अश्विनी के आदि से सूर्य की दूरी आ जाती है। यही सूर्य का स्पष्ट स्थान हुआ जिसको गणित से जानने की रीति स्पष्टाधिकार में बतलायी गयी है।

जैसे स्पष्टाधिकार में मंदफल का संस्कार करने पर मध्यम सूर्य से स्पष्ट सूर्य निकलता है वैसे ही इस रीति से आये हुये स्पष्ट सूर्य में मंदफल का उलटा संस्कार करने पर मध्यम सूर्य आता है। परन्तु स्पष्टाधिकार के विज्ञान भाष्य में बतलाया गया है कि मध्यम सूर्य में केवल सिद्धान्तीय रीति से मंदफल का संस्कार देने से वेध सिद्ध स्पष्ट सूर्य नहीं निकलता इसलिए यह सिद्ध है कि इस अध्याय के १७-१६ श्लोकों की रीति से जो स्पष्ट सूर्य निकलता है उसमें सिद्धान्तीय रीति के मंदफल का उलटा संस्कार करने पर मध्यम सूर्य नहीं आ सकता। इसीलिये असकृत्कर्म करने को कहा गया है अर्थात् एक बार मंदफल का उलटा संस्कार देने से जो मध्यम सूर्य आवे उसको ही स्पष्ट सूर्य समझ कर फिर मंदफल का संस्कार करे। इससे जो मध्यम सूर्य आवे उसमें फिर मंदफल का संस्कार करे। इस तरह कई बार करने पर मध्यम सूर्य आ जावेगा।

मध्यान्हकाल की छाया और छायाकर्ण जानना (सूर्य की क्रान्ति और अक्षांश से)—

स्वाक्षार्कापक्रमयुतिः दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा।
शेषं नतांशास्सूर्यस्य तद्बाहुज्याऽथ कोटिजा ॥२०॥

शंकुमानांगुलाभ्यस्ते भुजत्रिज्ये यथाक्रमम् ।
कोटिज्यया विभज्याऽऽप्ते छायाकर्णावहर्दले ।।२१।।

अनुवाद—(२०) अपने स्थान का अक्षांश और मध्यान्हकाल के सूर्य की क्रान्ति यदि एक ही दिशा में हो तो जोड़ दो और भिन्न दिशा में हों तो घटा दो । जो कुछ आवेगा वही सूर्य का मध्यान्हकालिक नतांश होगा । इसकी भुजज्या और कोटिज्या बनाओ । (२०) शंकु के अंगुलात्मक मान को अर्थात् १२ को भुज (नतांश की भुजज्या) से गुणा करके कोटिज्या से भाग देने पर लब्धि मध्यान्ह की छाया तथा शंकु को त्रिज्या से गुणा करके कोटिज्या से भाग देने पर मध्यान्ह का छायाकर्ण ज्ञात होगा ।

विज्ञान भाष्य—यह १४वें श्लोक का विलोम है । इन दोनों श्लोकों का सरल रूप यह है—

$$\text{अ} \pm \text{क} = \text{न} \qquad (१)$$

$$\text{छाया} = \frac{\text{ज्या (न)} \times १२}{\text{कोज्या (न)}} \qquad (२)$$

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{कोज्या (न)}} \qquad (३)$$

जहाँ अ अक्षांश, क सूर्य की मध्यान्हकालिक क्रान्ति और न सूर्य का मध्यान्हकालिक नतांश है । समीकरण (१) में धन का चिह्न उस समय लिखना चाहिए जब अक्षांश और क्रान्ति की दिशाएं एक ही हों और ऋण का चिह्न उस समय जब इनकी दिशाएँ भिन्न हों । अक्षांश की दिशा उत्तर गोल में सदैव दक्खिन समझी गयी है जिसकी व्याख्या पहले की जा चुकी है ।

१५वें श्लोक के भाष्य में बतलाया जा चुका है कि शंकु और छायाकर्ण के बीच के कोण को नतांश कहते हैं । इसलिये

$$\text{नतांश ज्या} = \frac{\text{छाया}}{\text{छायाकर्ण}} \quad \text{वर्तमान प्रथानुसार} \qquad (क)$$

$$\text{नतांश कोटिज्या} = \frac{\text{शंकु}}{\text{छायाकर्ण}} \qquad (ख)$$

$$\therefore \text{छाया} = \text{नतांशज्या} \times \text{छायाकर्ण}$$

$$= \text{नतांश ज्या} \times \frac{\text{शंकु}}{\text{नतांश कोटिज्या}}$$

$$= \frac{\text{ज्या (न)} \times १२}{\text{कोज्या (न)}}$$

यदि स्पर्शरेखा की सारिणी से काम लिया जाय तो इसका सरल रूप यह होगा—

$$\text{छाया} = १२ \times \text{स्परे (न)} \qquad (४)$$

ऊपर के समीकरण (ख) से सिद्ध है कि

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{शंकु}}{\text{नतांश कोटिज्या}} \quad \text{वर्तमान प्रथानुसार}$$

यदि नतांश कोटिज्या का मान भारतीय प्रथानुसार लिखा जाय तो

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{शंकु} \times \text{त्रिज्या}}{\text{नतांश कोटिज्या}}$$

अथवा $$\text{छायाकर्ण} = \frac{१२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{कोज्या (न)}}$$

उदाहरण—किसी दिन सूर्य की उत्तर क्रान्ति १५°२५′ और प्रयाग का अक्षांश २५°२५′ है तो प्रयाग में इस दिन मध्याह्नकाल में छाया और छायाकर्ण क्या होंगे ? [देखो १४-१५ श्लोक का उदाहरण]

प्रयाग उत्तर गोल में है, इसलिए इसके अक्षांश की दिशा श्लोकों के नियम के अनुसार दक्खिन है और क्रान्ति की दिशा उत्तर है इसलिए इन दोनों का अंतर ही सूर्य का नतांश होगा।

$$\therefore \text{न} = २५°२५' - १५°२५' = १०°$$

(१) सिद्धान्त की रीति से :—

$$\text{छाया} = \frac{\text{ज्या (न)} \times १२}{\text{कोज्या (न)}}$$

$$= \frac{\text{ज्या } १०° \times १२}{\text{कोज्या } १०°}$$

$$= \frac{५९७ \times १२}{३३८४}$$

$$= २.१२ \text{ अंगुल}$$

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{१२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{नतांश कोटिज्या}}$$

$$= \frac{१२ \times ३४३८}{३३८४}$$

(२) नवीन रीति से : —

छाया $=$ १२ $\times$ स्परे १०°

$=$ १२ $\times$ ·१७६३ अंगुल

$=$ २·११५६

$=$ २·१२ अंगुल

छायाकर्ण $= \frac{१२}{\text{कोज्या } १०°}$

$= \frac{१२}{·९८४८}$

$=$ १२·१९ अंगुल

सूर्य की क्रान्ति और किसी इष्टकाल की छाया जानकर दिशा जानना—

क्रान्तिज्या विषुवत्कर्णहताऽऽप्ता शंकुजीवया ।
अर्काग्रा सेऽष्टकर्णघ्ना मध्यकर्णोद्धृता स्वका ॥२२॥
विषुवद्भायुताऽर्काग्रा याम्ये स्यादुत्तरो भुजः ।
विषुवद्भा विशोध्योदग्गोले स्याद्बाहुरुत्तरः ॥२३॥
विपर्ययाद् भुजो याम्यो भवेत्पूर्वापरान्तरे ।
माध्याह्निके भुजो नित्यं छाया माध्याह्निकी मता ॥२४॥

अनुवाद—(२२) सूर्य की क्रान्ति की ज्या को विषुवत्कर्ण से गुणा करके शंकु रूपी जीवा अर्थात् १२ से भाग देने पर सूर्य की उदयकालिक अग्रा आती है । इसको इष्टकाल के छायाकर्ण से गुणा करके मध्यकर्ण अर्थात् त्रिज्या से भाग देने पर इष्टकाल की कर्णाग्रा अथवा कर्णवृत्ताग्रा आती है । (२३) यदि सूर्य दक्षिण गोल में हो अर्थात् यदि सूर्य की क्रान्ति दक्षिण हो तो कर्णाग्रा में पलभा जोड़ देने से और यदि सूर्य उत्तर गोल में हो तो पलभा से कर्णाग्रा घटा देने पर उत्तर भुज आता है । (२४) यदि सूर्य उत्तर गोल में हो और पलभा कर्णाग्रा से छोटी हो तो विपरीत क्रिया करने से अर्थात् कर्णाग्रा से पलभा घटाने पर दक्षिण भुज आता है । मध्याह्न में जो छाया होती है वही सदैव मध्याह्नकालिक भुज है ।

विज्ञान भाष्य—इसी अधिकार के ५वें और ७वें श्लोकों के विज्ञान भाष्य में अग्रा और अग्राज्या की चर्चा हुई है । ७वें श्लोक में अग्रा की परिभाषा यह बतलाई गई है, "इष्ट छाया की नोक से विषुवद्भाग्रगा रेखा का जो अंतर होता है वह अग्रा कहलाती है" । चित्र ८५, ८६, के वर्णन में छ अ अग्राज्या और छ भ भुज बतलाये गये हैं । परंतु छ अ को अग्रा या अग्राज्या कहने से बहुत गड़बड़ हो जाने का

अग्राज्या लिखा है इष्टकालिक कर्णाग्रा या जैसा भास्कराचार्य लिखते हैं कर्णवृत्ताग्रा कहना अधिक उचित होगा। अग्रा से केवल वह कोण समझना चाहिए जो क्षितिज-वृत्त पर पूर्व या पच्छिम विन्दु से सूर्य, ग्रह या तारे का अंतर होता है। चित्र ४३ में उदयकालिक ग्रह का स्थान क्षितिज वृत्त के ग विन्दु पर है और पूर्व विन्दु प है इसलिए ग्रह की उदयकालिक अग्रा ग पू धनु है। इसी प्रकार ग्रह की अस्तकालिक अग्रा गा प धनु है क्योंकि प पच्छिम विन्दु और गा ग्रह का अस्तकाल के समय का स्थान है। यदि ग अथवा गा विन्दुओं से पूर्व पच्छिम रेखा पर लम्ब गिराया जाय तो इसी का मान उदयकालिक अग्राज्या के नाम से व्यवहार किया जायगा। चित्र ४२ में प श सीधी रेखा उदयकालिक ग्रह की अग्राज्या है। उदयकाल के सिवा किसी अन्यकाल में सूर्य का ऊर्ध्ववृत्त क्षितिज के जिस विन्दु पर गिरेगा उस विन्दु से पूर्व या पच्छिम विन्दु का अन्तर इष्टकालिक अग्रा कही जायगी।

२२वें श्लोक में अर्काग्रा उदयकालिक सूर्य की अग्राज्या के लिए, इष्टकर्ण इष्ट-काल के छायाकर्ण के लिए और मध्यकर्ण त्रिज्या के लिए प्रयोग किये गये हैं इसलिए इनको ध्यान में रखना चाहिए। किसी-किसी अनुवादक ने मध्यकर्ण को मध्याह्न कालिक छायाकर्ण माना है परन्तु यह भ्रम है। मध्यकर्ण को रंगनाथ जी ने त्रिज्या इस तरह सिद्ध किया है "कर्णस्य व्यासस्य मध्यमर्धमिति मध्यकर्णो व्यासार्ध-त्रिज्यातयेत्यर्थः।"* व्यास के अर्थ में कर्ण का प्रयोग मध्यमाधिकार के ५९ वें श्लोक मे भी हुआ है। इसी अधिकार के अगले २७ वें श्लोक में यही नियम दुहराया गया है जिसमें मध्यकर्ण की जगह त्रिज्या का प्रयोग किया गया है। इसलिए मध्यकर्ण का अर्थ त्रिज्या के सिवा और कुछ नहीं है। इस श्लोक का सार यह है :—

$$\text{अग्राज्या} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{विषुवत्कर्ण}}{१२} \qquad (१)$$

$$\text{कर्ण वृत्ताग्रा} = \frac{\text{अग्राज्या} \times \text{इष्ट छायाकर्ण}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{विषुवत्कर्ण}}{१२} \times \frac{\text{इष्ट छायाकर्ण}}{\text{त्रिज्या}} \qquad (२)$$

परंतु $\frac{\text{विषुवत्कर्ण}}{१२} = \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}}$ [देखो १३वें श्लोक का भाष्य]

$$\text{इसलिये अग्रा ज्या} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} \qquad (३)$$

*वेङ्कटेश्वर प्रेस का सूर्य सिद्धान्त पृष्ठ ८०।

समीकरण (३) से अग्राज्या अर्थात् उदय या अस्तकालिक सूर्य की अग्रा की ज्या का मान तथा अग्रा सुगमतापूर्वक निकल सकते हैं इसलिए यह अच्छा है। इस तरह

$$\text{कर्णवृत्ताग्रा} = \frac{\text{क्रान्तिज्या}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} \times \text{इष्ट छायाकर्ण} \qquad (४)$$

कर्ण वृत्ताग्रा में पलभा के किस समय जोड़ने या घटाने से छाया का भुज ज्ञात होता है यह चित्र ४५, ४६ से स्पष्ट है। जब सूर्य दक्षिण गोल में होगा अर्थात् जब सूर्य की क्रान्ति दक्षिण होगी तब कर्ण वृत्ताग्रा में पलभा सदैव जोड़ी जायगी और योगफल उत्तर भुज होगा क्योंकि ऐसी दशा में छाया की नोक सदैव विषुवद्भाग्रगा रेखा मे उत्तर होती है (देखो चित्र ४५) यदि सूर्य उत्तर गोल में हुआ अर्थात् क्रान्ति उत्तर हुई तो जब तक सूर्य सममंडल से उत्तर रहेगा तब तक छाया पूर्व पच्छिम रेखा से दक्खिन रहेगी इसलिए कर्ण वृत्ताग्रा पलभा से बड़ी होगी। ऐसी दशा में कर्ण वृत्ताग्रा मे पलभा घटाने पर भुज ज्ञात होगा (देखो चित्र ४६)। परन्तु यदि सूर्य सममंडल से दक्खिन हुआ तो छाया पूर्व पच्छिम रेखा और विषुवद्भाग्रगा रेखा के बीच में रहेगी। ऐसी दशा में पलभा कर्ण वृत्ताग्रा से बड़ी होगी और पहले से दूसरी को घटाना पड़ेगा। २३-२४ श्लोकों का सार यह है :—

$$\text{कर्णवृत्ताग्रा} \pm \text{पलभा} = \text{भुज} \qquad (५)$$

इसमें धनात्मक चिह्न उस समय लिया जायगा जब सूर्य की क्रान्ति दक्षिण होगी अर्थात् जब सूर्य सायन तुला आदि ६ राशियों में रहेगा और ऋणात्मक चिह्न उस समय लिया जायगा जब सूर्य की क्रान्ति उत्तर होगी अर्थात् जब सूर्य सायन मेषादि ६ राशियों में रहेगा। पिछली दशा में यदि छाया पूर्व पच्छिम रेखा से दक्खिन होगी तो भुज दक्षिण में होगा और यदि छाया पूर्व पच्छिम रेखा से उत्तर होगी तो भुज उत्तर और पलभा मे कर्ण वृत्ताग्रा को घटाना पड़ेगा।

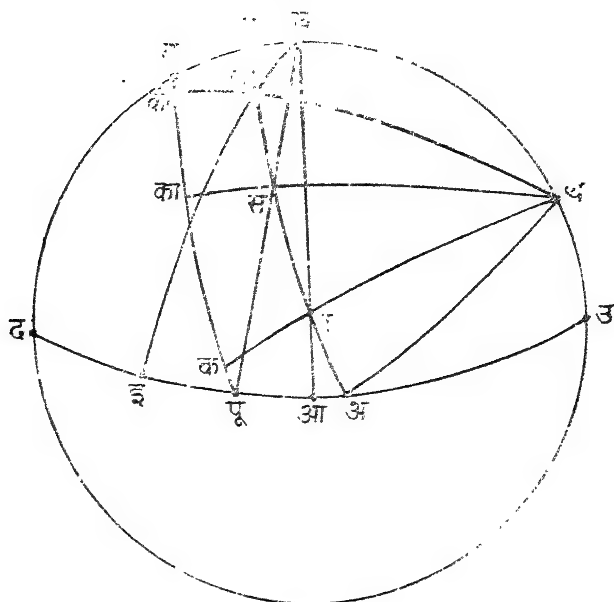
आजकल गोलीय त्रिकोणमिति के नियमों के अनुसार समीकरण (५) इस प्रकार निश्चय किया जाता है :—

त्रिभुज ध ख र एक गोलीय त्रिभुज है, इसलिए*

$$\text{कोज्या ध ख र} = \frac{\text{कोज्या (ध र)} - \text{कोज्या (ख र)} \times \text{कोज्या (ध ख)}}{\text{ज्या (ख र)} \times \text{ज्या (ध ख)}} \qquad (\text{क})$$

$$\text{अथवा कोज्या (दिगंश)} = \frac{\text{कोज्या (ध्रुवांतर)} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या लम्बांश}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (लम्बांश)}} \qquad (\text{ख})$$

*देखो टाडहंटर और लेथेम की गोलीय त्रिकोणमिति पृष्ठ २१।



चित्र ५७

चित्र का परिचय

उ पू: द=क्षितिज वृत्त पू क व=विषुवद्वृत्त
उ ध ख व द=यामोत्तर वृत्त द पू उ=क्षितिज
पू=पूर्व विन्दु उ=उत्तर विन्दु, द=दक्षिण विन्दु
ख=खस्वस्तिक य=यामोत्तर वृत्त और विषुवद्वृत्त का सामान्य विन्दु
अ र प=सूर्य का अहोरात्र वृत्त जब क्रांति उत्तर हो,
र, स, रा=सूर्य के तीन स्थान,
ख र आ, ख स पू और ख रा इ=सूर्य के तीन ऊर्ध्व वृत्त,
उ आ, उ पू और उ इ=सूर्य के दिगंश,
पू आ, पू ई=सूर्य की अग्रा,
अ=सूर्य का उदय विन्दु
∠ख ध अ=सूर्य का उदयकालिक नतकाल
∠ख ध र, ∠ख ध स और ∠ख ध रा=सूर्य के नतकाल जब वह क्रम से र, स और रा बिन्दुओं पर रहता है
ध अ, ध र, ध स और ध रा=सूर्य के ध्रुवान्तर जो प्राय: समान हैं
र क, स का, रा की=सूर्य की क्रान्तियाँ जो प्राय: समान हैं
ख र, ख स और ख रा=सूर्य के नतांश
आ र, पू स और इ रा=सूर्य के उन्नतांश।

परन्तु दिगंश अग्रा का, ध्रुवांतर क्रान्ति का और लम्बांश अक्षांश का पूरक है, इसलिए

$$\text{ज्या (अग्रा)} = \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (अक्षांश)}}{\text{ज्या नतांश} \times \text{कोज्या अक्षांश}} \qquad (\text{ग})$$

$$= \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (अक्षांश)}} - \text{कोटि स्पर्शरेखा (नतांश)} \times \text{स्पर्श रेखा (अक्षांश)} \qquad (\text{घ})$$

$$\text{परन्तु स्पर्शरेखा (अक्षांश)} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$$

$$\text{कोटि स्पर्शरेखा (नतांश)} = \frac{१२}{\text{छाया}}$$

$$\text{ज्या(नतांश)} = \frac{\text{छाया}}{\text{छायाकर्ण}}$$

$$\therefore \text{ज्या (अग्रा)} = \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)}} \times \frac{\text{छायाकर्ण}}{\text{छाया}} - \frac{१२}{\text{छाया}} \times \frac{\text{पलभा}}{१२}$$

$$= \frac{१}{\text{छाया}} \left\{ \frac{\text{क्रान्ति ज्या} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} - \text{पलभा} \right\} \qquad (६)$$

$\therefore$ छाया $\times$ इष्टकालिक अग्रा ज्या $=$ कर्ण वृत्ताग्रा $-$ पलभा

[देखो समीकरण (४)]

परन्तु छाया $\times$ इष्टकालिक अग्रा ज्या $=$ इष्टकालिक छाया का भुज, क्योंकि चित्र ४६ में $\angle$ स श पू या $\angle$ छ श भ इष्टकालिक अग्रा है जिसकी ज्या $= \frac{\text{छ भ}}{\text{छ श}}$

इसलिए छाया $\times$ इष्टकालिक अग्राज्या $=$ श छ $\times \frac{\text{छ भ}}{\text{छ श}}$

$\therefore$ भुज $=$ कर्ण वृत्ताग्रा $-$ पलभा

इस चित्र में सूर्य सममंडल से उत्तर है इसलिए भुज दक्षिण होगा। यदि सूर्य सममंडल के दक्खिन जैसे रा पर हो तो गोलीय त्रिभुज ध ख रा में

अथवा कोज्या (९०° + पू ख रा)

$$= \frac{\text{कोज्या (ध्रुवांतर)} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (लम्बांश)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (लम्बांश)}}$$

$$= \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (अक्षांश)}} - \text{को स्परे (नतांश)} \times \text{स्परे (अक्षांश)}$$

परन्तु कोज्या (९० + ∠पू ख रा) = − ज्या ∠पू ख रा = − ज्या (अग्रा)

∴ पहले की तरह

$$-\text{ज्या (अग्रा)} = \frac{1}{\text{छाया}} \left\{ \text{कर्ण वृत्ताग्रा} - \text{पलभा} \right\}$$

अथवा, − छाया × ज्या (अग्रा) = कर्णवृत्ताग्रा − पलभा

या, − भुज = कर्णवृत्ताग्रा − पलभा

यहाँ कर्णवृत्ताग्रा से पलभा घटाने पर ऋणात्मक होता है जिससे प्रकट है कि पलभा कर्णवृत्ताग्रा से बड़ी है। सूर्य सममंडल के दक्खिन है इसलिए कर्णवृत्ताग्रा पूर्व पच्छिम रेखा और विषुवद्भाग्रगा रेखाओं के बीच में होगी और पहला भारतवर्ष में सदैव उत्तर रहता है इसलिए भुज उत्तर होगा।

इन दोनों उदाहरणों में सूर्य उत्तर गोल में है अर्थात् इसकी क्रान्ति उत्तर है। यदि सूर्य दक्षिण गोल में हो तो चित्र ५८ की तरह स्थिति होगी। गोलीय त्रिभुज ध ख र में

$$\text{कोज्या } \angle \text{ ध ख र} = \frac{\text{कोज्या (ध र)} - \text{कोज्या (ख र)} \times \text{कोज्या (ध ख)}}{\text{ज्या (ख र)} \times \text{ज्या (ध ख)}}$$

$$\therefore \text{कोज्या (९०°} + \text{अग्रा)} = \frac{\text{कोज्या (९०°} + \text{क्रान्ति)} - \text{कोज्या (नतांश)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (लम्बांश)}}$$

$$\therefore -\text{ज्या (अग्रा)} = \frac{-\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (अक्षांश)}} \times \text{कोज्या (लम्बांश)}$$

$$- \text{को स्परे (नतांश)} \times \text{स्परे (अक्षांश)}$$

∴ पहले की तरह

$$-\text{ज्या (अग्रा)} = \frac{1}{\text{छाया}} \left\{ \frac{-\text{क्रान्ति ज्या} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} - \text{पलभा} \right\}$$

$$= \frac{1}{\text{छाया}} \left\{ -\text{कर्णवृत्ताग्रा} - \text{पलभा} \right\}$$

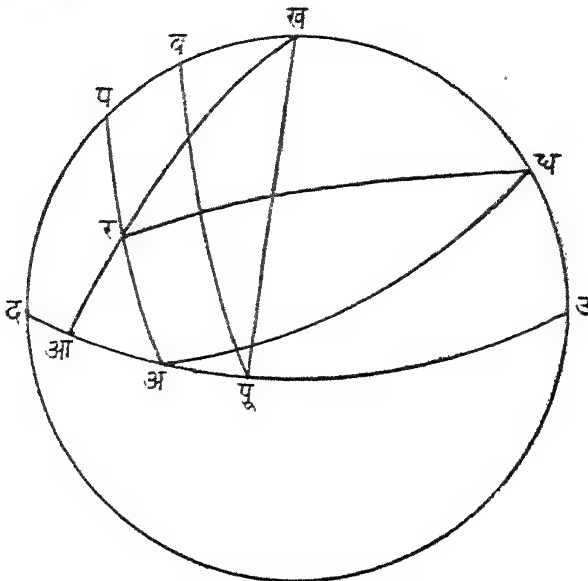
अथवा − ज्या (अग्रा) × छाया = − कर्णवृत्ताग्रा − पलभा

या − भुज = − कर्णवृत्ताग्रा − पलभा

∴ भुज = कर्णवृत्ताग्रा + पलभा

यहाँ कर्णवृत्ताग्रा में पलभा जोड़ने से भुज आता है।

∴ जब सूर्य की क्रान्ति दक्षिण होती है तब कर्णवृत्ताग्रा में पलभा सदैव जोड़ना पड़ता है।



चित्र ५८

चित्र परिचय

उ ध ख व प द = यामोत्तर वृत्त　　उ = उत्तर विन्दु

ध = उत्तरी आकाशीय ध्रुव　　ख = खस्वस्तिक

द = दक्षिण विन्दु　　पू = पूर्व विन्दु

ख पू = सम मंडल　　व पू = विषुवद्वृत्त

अ प = सूर्य का अहोरात्र वृत्त जब क्रान्ति दक्षिण हो

अ = उदय विन्दु　　र = सूर्य का इष्ट स्थान

ख र आ = सूर्य का ऊर्ध्व वृत्त　　उ अ = सूर्य का उदयकालिक दिगंश

उ आ = सूर्य का इष्टकालिक दिगंश　अ पू = उदयकालिक अग्रा

आ पू = इष्टकालिक अग्रा　　ख ध अ = सूर्य का उदयकालिक नत काल

∠ ख ध र = सूर्य का इष्टकालिक नत काल

ख र = सूर्य का नतांश;　　आ र = सूर्य का उन्नतांश

यदि सूर्य सममंडल में हो तो छायाकर्ण जानने की पहली रीति

लम्बाक्षजीवे विषुवच्छाया द्वादशसङ्गुणे ।
क्रान्तिज्याप्ते तु तौ कर्णौ सममण्डलगे रवौ ।।२५।।

अनुवाद—(२५) यदि सूर्य सममण्डल में हो तो लम्बज्या को पलभा से अथवा अक्षज्या को १२ से गुणा करके प्रत्येक को क्रान्तिज्या से भाग देने पर छायाकर्ण आ जाता है ।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोक का सार यह है :—

जब सूर्य सममंडल में हो तो,

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{लम्बज्या} \times \text{पलभा}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

$$= \frac{\text{अक्षज्या} \times १२}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

जिस समय सूर्य सममण्डल में होता है उस समय शंकु की छाया ठीक पूर्व-पच्छिम रेखा पर रहती है, चित्र ५७ में सूर्य इस स्थिति में अहोरात्र वृत्त प अ और सममंडल ख पू के सम्पात विन्दु 'स' पर रहेगा । ऐसी दशा में कोण ध ख स ९०° के समान होगा और इष्टकालिक अग्रा शून्य होगी । इसलिए पिछले श्लोक के समीकरण (६) के बायें पक्ष का मान्य शून्य होगा; इसलिए इस समीकरण के दाहिने पक्ष का भी मान्य शून्य होगा । इसलिए

$$\frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} - \text{पलभा} = ०$$

$$\therefore \frac{\text{क्रान्ति ज्या} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} = \text{पलभा}$$

$$\text{या}\quad \text{छायाकर्ण} = \frac{\text{पलभा} \times \text{अक्षांश कोटिज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

परन्तु अक्षांश कोटिज्या = लम्बज्या,

$$\therefore \text{छाया कर्ण} = \frac{\text{पलभा} \times \text{लम्ब ज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}} \qquad (७)$$

१३वें श्लोक के विज्ञान भाष्य में बतलाया गया है कि

$$\text{लम्बज्या} = \frac{\text{शंकु}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{पलभा}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

$$\therefore \text{विषुवत्कर्ण} = \frac{\text{शंकु}}{\text{लम्बज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{अक्षज्या}}$$

$$\therefore \text{पलभा} \times \text{लम्बज्या} = \text{शंकु} \times \text{अक्षज्या}$$

समीकरण (७) में पलभा × लम्बज्या की जगह शंकु × अक्षज्या रख देने से इसका रूप यह होगा—

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{शंकु} \times \text{अक्षज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

यह बात नेपियर के दूसरे नियम से भी सिद्ध हो सकती है क्योंकि जिस समय सूर्य सममंडल में होगा उस समय दिगंश ९०° और अग्रा शून्य होगी इसलिए चित्र ५७ का ∠ध ख स समकोण होगा। इसलिए त्रिभुज ध ख स समकोण गोलीय त्रिभुज होगा जिसके भुजों और कोणों का सम्बन्ध नेपियर के दूसरे नियम के अनुसार यह होगा :—

कोटिज्या (ध स) = कोटिज्या (ध ख) × कोटिज्या (ख स)

यहाँ धनु ध स, स सूर्य का ध्रुवांतर, ख स सूर्य का नतांश और ध ख लम्बांश है। इसलिए

कोटिज्या (ध्रुवांतर) = कोटिज्या (नतांश) × कोटिज्या (लम्बांश)

परन्तु ध्रुवांतर क्रांति का पूरक होता है, इसलिए

ज्या क्रांति = कोटिज्या (नतांश) × ज्या (अक्षांश)

$$\text{परन्तु नतांश कोटिज्या} = \frac{१२}{\text{छाया कर्ण}} \times \text{[देखो श्लोक २१ का समीकरण (ख)]}$$

$$\therefore \text{ज्या क्रान्ति} = \frac{१२}{\text{छायाकर्ण}} \times \text{ज्या (अक्षांश)}$$

$$\text{अर्थात् छायाकर्ण} = \frac{१२ \times \text{अक्षांशज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

इससे दूसरा रूप भी पहले की तरह जाना जा सकता है।

सममंडल में सूर्य हो तो छायाकर्ण जानने की रीति

सौम्याक्षोना यदाक्रान्तिः स्यात्तदाद्युदलश्रवः ।
विषुवच्छाययाभ्यस्तः कर्णोमध्याग्रयोद्धृतः ॥२६॥

अनुवाद—यदि उत्तर अक्षांश से उत्तर क्रान्ति कम हो तो मध्याह्नकालिक छायाकर्ण को पलभा से गुणा करके मध्याह्नकालिक कर्णाग्रा से भाग देने पर इष्ट-कालिक छायाकर्ण निकल आता है।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोक का सार यह है :—

जब सूर्य सममंडल मे हो तब,

$$\text{छाया कर्ण} = \frac{\text{मध्याह्न छायाकर्ण} \times \text{पलभा}}{\text{मध्याह्न कर्णाग्रा}} \qquad (१)$$

उपपत्ति—२२वें श्लोक के अनुसार,

$$\text{मध्याह्न कर्णाग्रा} = \frac{\text{उदयकालिक अग्राज्या} \times \text{मध्याह्न छायाकर्ण}}{\text{त्रिज्या}}$$

∴ समीकरण (१) में मध्याह्न कर्णाग्रा का यह मान उत्थापन करने से

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{मध्याह्न छायाकर्ण} \times \text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{उदयकालिक अग्राज्या} \times \text{मध्यान्ह छायाकर्ण}}$$

$$= \frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{उदयकालिक अग्राज्या}} \qquad (२)$$

समीकरण (२) में उदयकालिक अग्राज्या का मान २२वें श्लोक के प्रथम पंक्ति या वहाँ के समीकरण (१) के अनुसार उत्थापन करने से,

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\frac{\text{क्रान्ति ज्या} \times \text{विषुवत्कर्ण}}{१२}}$$

$$= \frac{\text{पलभा} \times १२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{क्रान्ति ज्या} \times \text{विषुवत्कर्ण}}$$

परंतु १३वें श्लोक के अनुसार $\frac{१२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}} = \text{लम्बज्या}$

$$\therefore \text{छायाकर्ण} = \frac{\text{पलभा} \times \text{लम्बज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

जो २५वें श्लोक के नियम का ही एक रूप है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि जब सूर्य सममंडल में हो तब

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{मध्याह्न छायाकर्ण} \times \text{पलभा}}{\text{मध्याह्न कर्णाग्रा}}$$

कर्णाग्रा जानने की दूसरी रीति—

स्वक्रान्तिज्या त्रिजीवाघ्ना लम्बज्याप्ताऽग्रमौर्विका ।।

सेष्टकर्णहता भक्ता त्रिज्ययाऽग्राङ्गुलात्मिका ।।२७।।

अनुवाद—(२७) इष्टकाल के सूर्य की क्रान्तिज्या को त्रिज्या से गुणा करके लम्बज्या से भाग देने पर उदयकालिक अग्राज्या आती है जिसको इष्टकाल के छाया कर्ण से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने पर इष्टकाल की कर्णाग्रा आती है।

विज्ञान भाष्य—२२वें श्लोक मे कर्णाग्रा जानने की रीति बतलायी गयी है वही यह भी है अंतर केवल इतना है कि वहाँ क्रान्तिज्या को विषुवत्कर्ण से गुणा करके १२ से भाग दिया गया है और यहाँ क्रान्तिज्या को त्रिज्या से गुणा करके लम्बज्या से भाग दिया गया है जो एक ही है (देखो श्लोक १३ तथा २२)।

जब सूर्य ईशान, अग्नि आदि चार कोणों में हो तब उन्नतांश या नतांश जानने की रीति –

त्रिज्यावर्गार्धतोऽग्रज्यावर्गोनाद् द्वादशाहतात् ।
पुनर्द्वादशनिघ्नाच्च लभ्यते यत्फलं बुधैः ॥२८॥
शङ्कुवर्गार्धसंयुक्त विषुवद्भवर्गभाजितात् ।
लब्धं तु करणी नाम तां पृथक्स्थापयेत्ततः ॥२९॥
विषुवच्छायाऽर्क वधादग्रज्यासङ्गुणात्तथा ।
भक्तात्फलाख्यं तद्वर्गसंयुक्तकरणीपदम् ॥३०॥
फलेन हीनं संयुक्तं दक्षिणोत्तरगोलयोः ।
याम्ययोर्विदिशोशङ्कुरेवं यामोत्तरे रवौ ॥३१॥
परिभ्रमति शङ्कोश्च शङ्कुरुत्तरयोश्च सः ।
तत्त्रिज्यावर्ग विश्लेषान्मूलं दृग्ज्याऽभिधीयते ॥३२॥

अनुवाद—(२८) त्रिज्या के वर्ग का आधा करके उसमें से उदयकालिक अग्रज्या के वर्ग को घटाकर शेष को १२ से गुणा करके गुणनफल को फिर १२ से गुणा करने पर जो फल विद्वानों को मिलता है (२९) उसको शंकु के वर्गार्ध और पलभा के वर्ग के योगफल से भाग देते हैं, जो लब्धि आती है उसे करणी कहते है। इसको विद्वान् अलग रखते हैं। (३०) १२ को पलभा से गुणा करके गुणनफल को उदयकालिक अग्रज्या से भी गुणा करके जो आता है उसको भी शंकु के वर्गार्ध और पलभा के वर्ग के योगफल से भाग देते हैं और लब्धि को फल कहते हैं। फल के वर्ग को करणी में जोड़कर योगफल का वर्गमूल निकालते हैं, (३१) यदि सूर्य दक्षिण गोल में हो अर्थात् यदि सूर्य क्रान्ति दक्षिण हो तो वर्गमूल से फल को घटा दे और यदि सूर्य उत्तर गोल में हो तो वर्गमूल में फल को जोड़ दे। ऐसा करने से जो कुछ

आता है वही आग्नेयादि कोणों का शंकु अर्थात् कोण शंकु कहलाता है। (३२) जब सूर्य दक्षिण में होता है तब कोण शंकु मध्याह्न के पहले अग्निकोण में और मध्याह्न के पीछे नैऋत्य कोण में होता है। परन्तु जब सूर्य उत्तर में होता है तब कोण शंकु मध्याह्न के पहले ईशान कोण में और मध्याह्न के पीछे वायव्य कोण में होता है। कोणशंकु और त्रिज्या के वर्गों के अंतर का वर्गमूल निकालने से दृग्ज्या होती है।

विज्ञान भाष्य—इन ५ श्लोकों का सार यह है :—

$$\text{करणी} = \frac{\left(\frac{\text{त्रिज्या}^2}{2} - \text{अग्रज्या}^2\right) \times 144}{\frac{12^2}{2} + \text{पलभा}}$$

$$\text{फल} = \frac{12 \times \text{पलभा} \times \text{अग्रज्या}}{\frac{12^2}{2} + \text{पलभा}^2}$$

$$\text{कोण शंकु} = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^2} \pm \text{फल}$$

$$\text{दृग्ज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{कोण शंकु}^2}$$

जिस समय सूर्य ईशान, अग्नि, नैऋत्य या वायव्य कोणों में रहता है उस समय इसका जो उन्नतांश (Altitude) होता है उसकी ज्या को कोण शंकु और जो नतांश होता है उसकी ज्या को दृग्ज्या कहते हैं; किसी अन्य समय के नतांश ज्या को भी दृग्ज्या तथा उन्नतांश ज्या को शंकु कहते हैं। इसलिए इस शंकु और १२ अंगुल वाले शंकु के भेद को अच्छी तरह ध्यान में रखना चाहिए। इसलिए जब सूर्य का दिगंश (Azimuth) ४५° होता है तब यह क्षितिज से जितने अंश ऊपर रहता है उस अंश की ज्या कोण शंकु हुई और खस्वस्तिक से जितना नीचे रहता है उस अंश की ज्या दृग्ज्या हुई। इसलिए चित्र ५७ के समीकरण (क), (ख), या (ग) की सहायता से कोण शंकु या दृग्ज्या का मान सहज ही निकल सकता है। समीकरण (ग) इस प्रकार है—

$$\text{ज्या (अग्रा)} = \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (अक्षांश)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (अक्षांश)}}$$

जब सूर्य ईशान, अग्नि, नैऋत्य या वायव्य कोण में होता है तब अग्रा ४५ अंश के समान होती है, इसलिए ऐसी दशा में

$$\text{ज्या (अग्रा)} = \text{ज्या } 45^\circ = \frac{1}{\sqrt{2}}$$

$$ज्या\ (अक्षांश) = \frac{पलभा}{विषुवत्कर्ण}$$ [श्लोक १२]

$$ज्या\ (क्रान्ति) = \frac{१२ \times अग्राज्या}{विषुवत्कर्ण}$$ [श्लोक २२]

$$कोज्या\ (अक्षांश)' = \frac{१२}{विषुवत्कर्ण}$$ [श्लोक १३]

समीकरण (ग) से सिद्ध है कि

$$ज्या\ (अग्रा) \times ज्या\ (नतांश) \times कोज्या\ अक्षांश$$
$$= ज्या\ (क्रान्ति) - कोज्या\ (नतांश) \times ज्या\ अक्षांश$$

इसमें ज्या (अग्रा), ज्या (अक्षांश) इत्यादि के मान उत्थापन करने से

$$\frac{१}{\sqrt{२}} \times ज्या(नतांश) \times \frac{१२}{विषुवत्कर्ण}$$
$$= \frac{१२ \times अग्र\ ज्या}{विषुवत्कर्ण} - कोज्या\ (नतांश) \times \frac{पलभा}{विषुवत्कर्ण}$$

इसी समीकरण के दूसरे पक्ष में जो अग्र ज्या है वह सूर्य की उदयकालिक अग्रा की ज्या है। इस समीकरण के प्रत्येक पद के हर में विषुवत्कर्ण है इसलिए इस सामान्य संख्या को हटा देने में कोई अंतर नहीं पड़ेगा। यदि पलभा, नतांश और अग्र ज्या को क्रम से प, न और अ अक्षरों से सूचित किया जाय और विषुवत्कर्ण हटा दिया जाय तो

$$\frac{१}{\sqrt{२}} \times ज्या\ (न) \times १२ = १२ \times अ - कोज्या\ (न) \times प$$

दोनों पक्षों का वर्ग करने से,

$$\tfrac{१}{२} \times ज्या^{२}\ (न) \times १२^{२} = १२^{२} \times अ^{२} \times प^{२} \times को\ ज्या^{२}(न)$$
$$- २ \times १२ \times अ \times प \times कोज्या\ (न)$$

परंतु १६वें श्लोक के आधार पर

$$ज्या^{२}\ (न) = त्रिज्या^{२} - कोज्या^{२}\ (न)$$

इसलिए उपर्युक्त समीकरण का रूप यह होगा

$$\tfrac{१}{२} \times १२^{२} \times [त्रिज्या^{२} - कोज्या^{२}\ (न)\ ]$$
$$= १२^{२}\ अ^{२} + प^{२} \times कोज्या^{२}\ (न) - २ \times १२ \times अ \times प \times\ कोज्या\ (न)$$

अथवा सरल करने पर

$$१२^२ \left[\frac{\text{त्रिज्या}^२}{२} - अ^२\right]$$

$$= \text{कोज्या}^२ \ (न) \left[\frac{१२^२}{२} + प^२\right] - २ \times १२ \times अ \times प \times \text{कोज्या} \ (न)$$

प्रत्येक पक्ष को $\frac{१२^२}{२} + प^२$ से भाग देने पर और आवश्यक पदों को एक पक्ष से दूसरे पक्ष में ले जाने पर

$$\text{कोज्या}^२ \ (न) - \frac{२ \times १२ \times अ \times प}{\frac{१२^२}{२} + प^२} \text{कोज्या} \ (न)$$

$$- \frac{१२^२ \left[\frac{\text{त्रिज्या}^२}{२} - अ^२\right]}{\frac{१२^२}{२} + प^२} = ०$$

तीसरे पद की जगह करणी और दूसरे पद के $\frac{१२ \times अ \times प}{\frac{१२^२}{२} + प^२}$ की जगह फल लिखने से इसका रूप होगा

$$\text{कोज्या}^२ \ (न) - २ \times \text{फल} \times \text{कोज्या} \ (न) - \text{करणी} = ०$$

या $$\text{कोज्या}^२ \ (न) - २ \ \text{फल} \times \text{कोज्या} \ (न) = \text{करणी}$$

पहले पक्ष को पूर्ण वर्ग बनाने के लिए प्रत्येक पद में $(\text{फल})^२$ जोड़ने से

$$\text{कोज्या}^२ \ (न) - २ \ \text{फल} \times \text{कोज्या} \ (न) + \text{फल}^२$$

$$= \text{करणी} + \text{फल}^२$$

इस समीकरण का पहला पक्ष $= [\text{कोज्या} \ (न) - \text{फल}]^२$

$$\therefore \text{कोज्या} \ (न) - \text{फल} = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^२}$$

अथवा $$\text{कोज्या} \ (न) = \text{फल} + \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^२}$$

परंतु कोज्या (न) = कोज्या (नतांश) = ज्या (उन्नतांश) = कोण शंकु

$$\therefore \text{कोण शंकु} = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^२} + \text{फल}$$

इसलिए यह सिद्ध हुआ कि जब सूर्य की क्रान्ति उत्तर होती है तब फल के वर्ग को करणी में जोड़कर और योगफल का वर्गमूल निकालकर फल में जोड़ देने से कोण शंकु आ जाता है। यदि सूर्य की क्रान्ति दक्षिण हो तो चित्र ५८ के अनुसार

$$-\text{ज्या (अग्रा)} \times \text{ज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (अक्षांश)}$$
$$= -\text{ज्या (क्रान्ति)} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (अक्षांश)}$$

जिसमें ज्या अग्रा, ज्या क्रान्ति इत्यादि के मान उत्थापन करने और सरल करने से

$$-\frac{१}{\sqrt{२}} \times \text{ज्या (न)} \times १२ = -१२\ \text{अ} - \text{प} \times \text{कोज्या (न)}$$

अथवा $$\frac{१}{\sqrt{२}} \times १२ \times \text{ज्या (न)} = १२\ \text{अ} + \text{प} \times \text{कोज्या (न)}$$

दोनों पक्षों का वर्ग करने से

$$\frac{१२^२}{२} \times \text{ज्या}^२\ \text{(न)} = १२^२\ \text{अ}^२ + \text{प}^२ \times \text{कोज्या}^२\ \text{(न)} + २ \times १२ \times \text{अ} \times \text{प} \times \text{कोज्या न}$$

अथवा $$\frac{१२^२}{२}\left[\text{त्रिज्या}^२ - \text{कोज्या}^२\ \text{(न)}\right]$$
$$= १२^२\ \text{अ}^२ + \text{प}^२ \times \text{कोज्या}^२\ \text{(न)} + २ \times १२ \times \text{अ} \times \text{प} \times \text{कोज्या (न)}$$

$$\therefore\ १२^२\left[\frac{\text{त्रिज्या}^२}{२} - \text{अ}^२\right]$$
$$= \text{कोज्या}^२\ \text{(न)}\left[\frac{१२^२}{२} + \text{प}^२\right] + २ \times १२ \times \text{अ} \times \text{प} \times \text{कोज्या न}$$

$$\therefore\ \text{कोज्या}^२\ \text{(न)} + \frac{२ \times १२ \times \text{अ} \times \text{प}}{\frac{१२^२}{२} + \text{प}^२}\ \text{कोज्या (न)}$$
$$= \frac{१२^२\left[\frac{\text{त्रिज्या}^२}{२} - \text{अ}^२\right]}{\frac{१२^२}{२} + \text{प}^२}$$

अथवा $$\text{कोज्या}^२\ \text{(न)} + २ \times \text{फल} \times \text{कोज्या (न)} = \text{करणी}$$
$$\therefore\ [\text{कोज्या (न)} + \text{फल}]^२ = \text{करणी} + \text{फल}^२$$
$$\therefore\ \text{कोज्या (न)} + \text{फल} = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^२}$$
$$\therefore\ \text{कोज्या (न)} = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^२} - \text{फल}$$

इसलिए यह सिद्ध होता है कि जब सूर्य की क्रान्ति दक्षिण होती है तब फल घटाना पड़ता है।

स्वशंकुना विभज्याप्ते दृक्त्रिज्ये द्वादशाहते ।
छायाकर्णौ तु कोणेषु यथास्वं देशकालयोः ॥३३॥

अनुवाद—(३३) दृग्ज्या और त्रिज्या को १२ से गुणा करके कोण शंकु से भाग दो। भागफल क्रमानुसार इष्ट स्थान के यथासमय छाया और कर्ण होंगे।

विज्ञान भाष्य—२८-३२ श्लोकों में यह बतलाया गया है कि जब सूर्य आग्नेयादि विदिशाओं में हो तब उस समय की उन्नतांश ज्या (कोण शंकु) और नतांश ज्या (दृग्ज्या) कैसे निकालते हैं। ३३वें श्लोक में यह बतलाया गया है कि दृग्ज्या और कोण शंकु से उस समय की छाया या छायाकर्ण कैसे निकाला जाता है।

इस नियम का सार यह है :—

$$\text{(कोण) छाया} = \frac{\text{दृग्ज्या} \times १२}{\text{कोण शंकु}}$$

$$\text{(कोण) छायाकर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{कोण शंकु}}$$

यह २१वें श्लोक से मिलता-जुलता है। इसलिए इसकी उपपत्ति भी उसी तरह है।

उदाहरण—जब सूर्य की क्रान्ति १५° उत्तर या दक्षिण हो तो प्रयाग में (अक्षांश २५° २५′) कोण शंकु और दृग्ज्या क्या होंगे ?

प्रयाग का विषुवत्कर्ण = १३·२८ अंगुल

,, की पलभा = ५·६८ अंगुल

इसलिए उस दिन की उदयकालिक अग्राज्या

$$= \frac{\text{ज्या } १५° \times १३·२८}{१२} \text{ [देखो श्लोक २२]}$$

$$= \frac{८९० \times १३·२८}{१२} = ९८५'$$

$$\text{करणी} = \frac{\left(\frac{\text{त्रिज्या}^२}{२} - \text{अग्राज्या}^२\right) \times १४४}{७२ + \text{पलभा}^२}$$

$$= \frac{(५९०९९२२ - ९७०२२५)\ १४४}{७२ + ३२·२६}$$

$$= \frac{४९३९६९७ \times १४४}{१०४·२६}$$

$$= ६८२२५२४$$

$$फल = \frac{१२ \times पलभा \times अग्राज्या}{७२ + पलभा^२}$$

$$= \frac{१२ \times ५·६८ \times ९८५}{१०४·२६}$$

$$= ६४४$$

$$\therefore कोण\ शंकु = \sqrt{करणी + फल^२} \pm फल$$

$$= \sqrt{६८२२५२४ + ४१४७३६} \pm ६४४$$

$$= \sqrt{७२३७२६०} \pm ६४४$$

$$= २६९० \pm ६४४$$

$$= ३३३४' \text{ या } २०४६'$$

इसलिए जब क्रान्ति उत्तर होगी तब कोण शंकु ३३३४′ और जब क्रान्ति दक्षिण होगी तब कोण शंकु २०४६′ होगी।

यह बतलाया गया है कि कोण शंकु नतांश की कोटिज्या अथवा उन्नतांश की ज्या को कहते हैं इसलिए यदि नतांश या उन्नतांश जानना हो तो कोण शंकु का धनु बनाना होगा।

यहाँ कोण शंकु = उन्नतांश की ज्या = ३३३४′

$\therefore$ उन्नतांश = ७५°५७′

$\therefore$ नतांश = ९०° − ७५°५७′ = १४°३′

जब क्रान्ति दक्षिण होगी तब

उन्नतांश की ज्या = २०४६′

$\therefore$ उन्नतांश = ३६°३२′

और नतांश = ९०° − ३६°३२′ = ५३°२८′

जब सूर्य की क्रान्ति उत्तर होगी तब,

$$दृग्ज्या = \sqrt{त्रिज्या^२ - कोण\ शंकु^२}$$

$$= \sqrt{३४३८^२ - ३३३४^२}$$

$$= \sqrt{(३४३८ + ३३३४)\ (३४३८ - ३३३४)}$$

$$= \sqrt{६७७२ \times १०४}$$

$$= ८३९ \text{ कला}$$

परन्तु दृग्ज्या = नतांश की ज्या

$$= ८३९'$$

$\therefore$ नतांश = १३°५९′

दोनों उत्तरों में ४ कला का अंतर है क्योंकि वर्गमूल निकालने में दशमलव के अंक छोड़ दिये गये हैं।

यदि यह जानना हो कि कोणों (विदिशाओं) पर शंकु की छाया या छाया-कर्ण क्या होंगे तो ३३वें श्लोक से काम लेना होगा। जब सूर्य की क्रान्ति उत्तर होगी तब

$$\text{छाया} = \frac{\text{दृग्ज्या} \times १२}{\text{कोण शंकु}}$$

$$= \frac{८३९ \times १२}{३३३४}$$

$$= ३\cdot०२ \text{ अंगुल}$$

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{कोण शंकु}}$$

$$= \frac{३४३८ \times १२}{३३३४}$$

$$= १२.३७ \text{ अंगुल}$$

नवीन रीति से कोण शंकु का मान जानने में कोई विशेष सुविधा नहीं है फिर भी उदाहरण दे देना अच्छा होगा। यह पहले सिद्ध हो चुका है कि जब सूर्य ईशान या वायव्य कोण में होगा तब अग्रा की ज्या $+\frac{१}{\sqrt{२}}$ और जब अग्नि या नैर्ऋत्य कोण में होगा तब अग्रा की ज्या $-\frac{१}{\sqrt{२}}$ होगी (देखो चित्र ५७, ५८) इसलिए २२—२४ श्लोकों के समीकरण (ग) के अनुसार,

$$\pm\frac{१}{\sqrt{२}} = \frac{\pm\text{ज्या } १५° - \text{कोज्या (न)} \times \text{ज्या } २५°२५'}{\text{ज्या (न)} \times \text{कोज्या } २५°२५'} \dagger$$

$$\text{या } \pm\cdot७०७१ = \frac{\pm\cdot२५८८ - \text{कोज्या (न)} \times \cdot४२९२}{\text{ज्या (न)} \times \cdot९०३२}$$

$$\therefore \pm\cdot७०७१ \times \cdot९०३२ \times \text{ज्या (न)}$$

$$= \pm\cdot२५८८ - \cdot४२९२ \times \text{कोज्या (न)}$$

---

† १५° क्रान्ति की ज्या धनात्मक तब होगी जब क्रान्ति उत्तर होगी अर्थात् जब सूर्य उत्तर गोल में होगा। परंतु जब क्रान्ति दक्षिण होगी तब इसकी ज्या ऋणात्मक होगी।

दोनों पक्षों का वर्ग करने पर,

$$\cdot ४०७९\ \text{ज्या}^{२}\ (\text{न}) = \cdot ०६७० \mp \cdot २२२२\ \text{कोज्या}\ (\text{न}) + \cdot १८४२\ \text{कोज्या}^{२}\ (\text{न})$$

या $\cdot ४०७९\ (१ - \text{कोज्या}^{२}\ \text{न})$

$$= \cdot ०६७० \pm \cdot २२२२\ \text{कोज्या न} + \cdot १८४२\ \text{कोज्या}^{२}\ \text{न}$$

$$\therefore \cdot ५९२१\ \text{कोज्या}^{२}\ \text{न} \pm \cdot २२२२\ \text{कोज्या न} - \cdot ३४०९ = ०$$

$$\therefore \text{कोज्या न} = \frac{\pm \cdot २२२२ \pm \sqrt{(\cdot २२२२)^{२} + ४ \times \cdot ५९२१ \times \cdot ३४०९}}{२ \times \cdot ५९२१}$$

$$= \frac{\pm \cdot २२२२ \pm \cdot ९२५६}{१ \cdot १८४२}$$

$$= \frac{१ \cdot १४७८}{१ \cdot १८४२}\ \text{या}\ \frac{\cdot ७०३४}{१ \cdot १८४२}$$

$\therefore$ उन्नतांशकी ज्या $= \cdot ९६९३$ या $\cdot ५९४०$

$\therefore$ उन्नतांश $= ७५^{\circ}४६'$ या $३६^{\circ}२७'$

इससे दृग्ज्या, छाया, इत्यादि भी जानी जा सकती हैं।

इष्टकाल, अक्षांश और क्रान्ति जान कर उन्नतांश, छाया इत्यादि जानने की रीति—

त्रिज्योदक्चरजायुक्ता याम्यायां तु विवर्जिता।
अन्त्या नतोत्क्रमज्योना स्वाहोरात्रार्धताडिता ॥३४॥
त्रिज्याभक्ता भवेच्छेदो लम्बज्याघ्नोऽथ भाजितः॥
त्रिभज्यया भवेच्छङ्कुस्तद्वर्गं प्रविशोधयेत्।
त्रिज्यावर्गात्पदं दृग्ज्या छायाकर्णौ तु पूर्ववत् ॥३५॥

अनुवाद—(३४) यदि सूर्य उत्तर गोल में हो तो चरज्या को त्रिज्या में जोड़ने और यदि सूर्य दक्षिण गोल में हो तो घटाने से अन्त्या आती है। इससे नत काल की उत्क्रमज्या को घटाकर शेष को द्युज्या से गुणा कर दो (३५) और त्रिज्या से भाग दे दो तो छेद आता है। इसको लम्ब ज्या से गुणा करके त्रिज्या के भाग दे देने पर शंकु (इष्टकाल की उन्नतांश की ज्या) आता है। शंकु के वर्ग को त्रिज्या के वर्ग से घटाकर शेष का वर्गमूल निकालने पर जो आता है वह दृग्ज्या (इष्टकाल की नतांश ज्या) है जिससे छाया और छायाकर्ण पहले की तरह जान लेना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—इन दो श्लोकों का सार यह है :—

(१) अन्त्या = त्रिज्या $\pm$ चरज्या

$$(२)\quad \text{छेद} = \frac{(\text{अन्त्या} - \text{नतोत्क्रमज्या}) \times \text{द्युज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$(३)\quad \text{शंकु} = \frac{\text{छेद} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$(४)\quad \text{दृग्ज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{शंकु}^2}$$

समीकरण (३) में समीकरण (२) और (१) के मान उत्थापन करने से,

$$\text{शंकु} = \frac{(\text{अन्त्या} - \text{नतोत्क्रमज्या}) \times \text{द्युज्या}}{\text{त्रिज्या}} \times \frac{\text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{(\text{त्रिज्या} \pm \text{चर ज्या} - \text{नतोत्क्रमज्या}) \times \text{द्युज्या}}{\text{त्रिज्या}} \times \frac{\text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{(\text{त्रिज्या} - \text{नतोत्क्रमज्या} \pm \text{चरज्या}) \quad \text{द्युज्या} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}^2}$$

$$= \frac{(\text{नतकोटिज्या} \pm \text{चरज्या}) \ \text{द्युज्या} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}^2} \dagger$$

$$= \frac{(\text{नतकोटिज्या} \pm \text{चरज्या}) \times \text{क्रान्तिकोटिज्या}}{\text{त्रिज्या}^2}$$

× अक्षांश कोटिज्या.................................(क)*

यह बात गोलीय त्रिकोणमिति से सहज ही सिद्ध हो सकती है। यहाँ कुछ नये शब्द आये हैं इसलिए पहले उनका समझाना आवश्यक है:—

अन्त्या—चित्र ४२ में चरज्या चा श और च श है और वि श त्रिज्या है। इसलिए चा वि और च वि क्रम से अन्त्या हुए।

नत काल—किसी समय से जितनी देर में कोई ग्रह या तारा यामोत्तर वृत्त पर आता है उसको उस ग्रह या तारे का पूर्व नत काल कहते हैं और उस तारे या ग्रह के यामोत्तर वृत्त लांघने के बाद जितना समय बीता रहता है उसको उस तारे या ग्रह का पच्छिम नत काल कहते हैं। किसी ग्रह या तारे का नत काल (hour angle) और क्रान्ति दी हुई हो तो उसका स्थान सहज ही निश्चय किया जा सकता है। नत काल का परिमाण उस कोण से जाना जाता है जो ग्रह या तारे के ध्रुवप्रात वृत्त और यामोत्तर वृत्त के बीच में होता है। ध्रुवप्रातवृत्त विषुवद्वृत्त से समकोण बनाता है, इसलिए नत काल विषुवद्वृत्त के उस धनु से भी जो तारे या ग्रह के ध्रुव

---

† देखो चित्र २४ और पृष्ठ ११६, ११८-११६

* देखो पृष्ठ २०८

प्रोत वृत्त और याम्योत्तर वृत्त के बीच में होता है, जाना जा सकता है। चित्र ५७ में ख ध र, ख ध स और ख ध रा कोण सूर्य के नत काल हैं जबकि सूर्य क्रम से र, स और रा बिन्दुओं पर रहता है। यह स्थान याम्योत्तर वृत्त के पूर्व हैं इसलिए यह सूर्य के पूर्व नत काल हैं। जब ग्रह या तारा याम्योत्तर वृत्त पर होता है तब उसका नत काल शून्य होता है। नत काल साधारणत: अंश में लिखा जाता है। यदि किसी तारे या ग्रह का पूर्व नत काल १५° हो तो समझना चाहिए कि वह १५×४ मिनट अथवा १ घंटे (नाक्षत्र) में याम्योत्तर वृत्त पर आवेगा।

उन्नत काल—दिनमान के आधे से नत काल घटाने पर जो आता है वह उन्नत काल कहलाता है। पूर्व उन्नत काल ग्रह या तारे के उदयकाल से इष्ट काल तक के समय को कहते हैं और पच्छिम उन्नत काल इष्ट काल से अस्त होने तक के समय को कहते हैं। पच्छिम उन्नत काल उस समय होता है जब ग्रह या तारा याम्योत्तर वृत्त के पच्छिम होता है। उन्नत काल या इसके संक्षिप्त रूप उन्नत को उन्नतांश से भिन्न समझना चाहिए जैसे नत को नतांश से।

३४-३५ श्लोकों में यह बतलाया गया है कि यदि किसी ग्रह या तारे का नत काल, अक्षांश और क्रान्ति ज्ञात हो तो उसका उन्नतांश, नतांश इत्यादि कैसे जान सकते हैं। इसकी उपपत्ति गोलीय त्रिकोण-मिति के आधार पर यह है। (देखो चित्र ५७)

मान लो सूर्य र पर है। गोलीय त्रिभुज ध ख र में कोज्या $\angle$ ख ध र

$$= \frac{\text{कोज्या (ख र)} - \text{कोज्या (ध ख)} \times \text{कोज्या (ध र)}}{\text{ज्या (ध ख)} \times \text{ज्या (ध र)}}$$

$$\therefore \text{कोज्या (नत काल)}$$

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)} - \text{कोज्या (लम्बांश)} \times \text{कोज्या (ध्रुवांतर)}}{\text{ज्या (लम्बांश)} \times \text{ज्या (ध्रुवांतर)}}$$

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)} - \text{ज्या (अक्षांश)} \times \text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)} \times \text{कोज्या (क्रान्ति)}} \qquad (१)$$

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)}}{\text{कोज्या अक्षांश} \times \text{कोज्या क्रान्ति}}$$

$$- \frac{\text{ज्या (अक्षांश)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)}} \times \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{कोज्या (क्रान्ति)}}$$

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)} \times \text{कोज्या (क्रान्ति)}} - \text{स्परे (अक्षांश)}$$

$$\times \text{स्परे (क्रान्ति)} \qquad (२)$$

और चरज्या*=क्रान्ति स्पर्श रेखा × अक्षांश स्पर्शरेखा (३)

समीकरण (२) और (३) के समान पक्षों को जोड़ने से,

कोज्या (नतकाल)+चरज्या

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)} \times \text{कोज्या (क्रान्ति)}}$$

अथवा नतकोटिज्या+चरज्या

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)}}{\text{अक्षांश कोटिज्या} \times \text{क्रान्ति कोटिज्या}}$$

∴ नतांश कोटिज्या

=(नतकोटिज्या+चरज्या) × अक्ष कोटिज्या × क्रांति कोटिज्या (ख)

नतांश कोटिज्या को भी शंकु कहते हैं। इस सूत्र से शंकु का मान आजकल की रीति के अनुसार दशमलव भिन्न में होगा। यदि भारतीय रीति के अनुसार लिखना हो तो इसको त्रिज्या (३४३८) के वर्ग से भाग देना होगा।

यह सूत्र उस समय काम देगा जब कि सूर्य उत्तर गोल में हो। यदि सूर्य दक्षिण गोल में हो तो चरज्या ऋणात्मक होगी (देखो चित्र ४२ की व्याख्या)। ऐसी दशा में ध्रुवांतर ध र ९०° से अधिक होगा जिससे कोज्या (ध र) ऋणात्मक होगी। इसलिए समीकरण (२) के दाहिने पक्ष का- स्परे (अक्षांश) × स्परे (क्रान्ति) भी धनात्मक होगा जिससे समीकरण (ख) में चरज्या ऋणात्मक रहेगी परन्तु और कहीं अंतर न पड़ेगा। इसलिए समीकरण (ख) का व्यापक रूप यह होगा—

नतांश कोटिज्या

=(नत कोटिज्या±चरज्या) × अक्षकोटिज्या × क्रान्तिकोटिज्या (ग)

जिसमें धन चिह्न उस समय लिया जायगा जब सूर्य या ग्रह की क्रान्ति उत्तर होगी और ऋण चिह्न उस समय जब क्रान्ति दक्षिण होगी।

नतांश कोटिज्या अथवा शंकु का मान जान लेने पर दृग्ज्या, छाया, छायाकर्ण इत्यादि पहले की ही तरह जाने जा सकते हैं इसलिए विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

उदाहरण—यदि सूर्य की क्रान्ति १५° उत्तर या दक्षिण हो तो प्रयाग में जिस समय सूर्य का पूर्वनतकाल ३ घंटा ३० मिनट होगा उस समय उसका नतांश क्या होगा?

सूर्य सिद्धान्त की रीति से

$$\text{चरज्या} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{१२} \times \text{क्रान्तिकोटिज्या}}$$ [देखो पृष्ठ २०८]

*देखो पृष्ठ २०९

$$= \frac{\text{ज्या } १५° \times ५·७ \times ३४३८}{१२ \times \text{कोज्या } १५°}$$

$$= \frac{८९० \times ५·७ \times ३४३८}{१२ \times ३३२१}$$

$$= ४३८$$

परन्तु अन्त्या = त्रिज्या ± चरज्या

$\therefore$ अन्त्या = ३४३८ ± ४३८

= ३८७६ या ३०००

नतकाल = ३ घंटा ३० मिनट = ५२° ३०

नतोत्क्रम ज्या = उज्या ५२° ३०′

= १३४५

$$\therefore \text{छेद} = \frac{(३८७६ - १३४५) \times ३३२१}{३४३८} \text{ या } \frac{(३००० - १३४५) \times ३३२१}{३४३८}$$

$$= \frac{२५३१ \times ३३२१}{३४३८} \quad \text{अथवा} \quad \frac{१६५५ \times ३३२१}{३४३८}$$

$$\therefore \text{शंकु} = \frac{\text{छेद} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{२५३१ \times ३३२१ \times ३१०६}{३४३८ \times ३४३८} \text{ अथवा } \frac{१६५५ \times ३३२१ \times ३१०६}{३४३८ \times ३४३८}$$

= २२०९ अथवा १४४४

परन्तु यहाँ शंकु उन्नतांश की ज्या के लिए प्रयुक्त है।

इसलिए जब सूर्य उत्तर गोल में होगा तब इष्टकाल में उन्नतांश की ज्या २२०९ कला और जब सूर्य दक्षिण गोल में होगा तब उन्नतांश की ज्या १४४४ कला होगी। इसलिए पहली दशा में—

उन्नतांश = ४०° और नतांश = ९०° − ४०° = ५०°

और दूसरी दशा में उन्नतांश = २४° ५२′ और नतांश = १५° ८′

पहली दशा में दृग्ज्या = $\sqrt{\text{त्रिज्या}^२ - \text{शंकु}^२}$

$= \sqrt{११८१९८४४ - २२०९^२}$

$= \sqrt{११८१९८४४ - ४८७९६८१}$

$= \sqrt{६९४०१६३}$

= २६३४

$\therefore$ पहली दशा में छाया $= \frac{\text{दृग्ज्या} \times १२}{\text{शंकु}}$

$= \frac{२६३४ \times १२}{२२०६}$

$= १४\cdot३१$ अंगुल

दूसरी दशा में दृग्ज्या $= \sqrt{\text{त्रिज्या}^२ - १४४४^२}$

$= \sqrt{११८१६८४१ - २०८५१३६}$

$= ३१२०$

$\therefore$ दूसरी दशा में छाया $= \frac{३१२० \times १२}{१४४४}$

$= २५\cdot९३$ अंगुल

नवीन रीति से—

समीकरण (ख) के आधार पर,

नतांश कोटिज्या = (नतकोटिज्या $\pm$ चरज्या) $\times$ अक्षकोटिज्या $\times$ क्रान्ति-कोटिज्या

परन्तु चरज्या = स्परे क्रान्ति $\times$ स्परे अक्षांश [देखो पृष्ठ २०६

$=$ स्परे १५° $\times$ स्परे २५°२५′

$= \cdot२६७९ \times \cdot४७५२$

$= \cdot१२७३$

$\therefore$ नतांश कोटिज्या

= (कोज्या ५२°३०′ $\pm$ ·१२७३) $\times$ कोज्या २५°२५′ कोज्या १५°

= (·६०८८ $\pm$ ·१२७३) $\times$ ·९०३२ $\times$ ·९६५९

= ·७३६१ $\times$ ·९०३२ $\times$ ·९६५९ या ·४८१५ $\times$ ·९०३२ $\times$ ·९६५९

= ·६४२२ या ·४२०१

$\therefore$ जब क्रान्ति उत्तर होगी तब नतांश ५०°३′ होगा,

और जब क्रान्ति दक्षिण होगी तब नतांश ६५°९′ होगा।

पहली दशा में १२ अंगुल शंकु की छाया = १२ स्परे ५०°३′

$= १२ \times १\cdot१९४०$

$= १४\cdot३२८$ अंगुल

दूसरी दशा में, छाया = १२ $\times$ स्परे ६५°९′

$= १२ \times २\cdot१५९४$

$= २५\cdot९१३$ अंगुल

किसी समय की छाया नापकर नतकाल जानना—

अभीष्टच्छाययाऽभ्यस्ता त्रिज्या तत्कर्णभाजिता ।
दृग्ज्या तद्वर्गसंशुद्धात् त्रिज्यावर्गाच्च यत्पदम् ।।३६।।
शङ्कुस्य त्रिभजीवाघ्न: स्वलम्बज्याविभाजित: ।
फलं त्रिभज्ययाऽभ्यस्तं स्वाहोरात्रार्धभाजितम् ।।३७।।
उन्नतज्या तया हीना स्वान्त्या शेषस्य कार्मुकम् ।
उत्क्रमज्याभिरेवं स्यात्प्राक्पश्चाच्च नतासव: ।।३८।।

अनुवाद—(३६) इष्टकाल की छाया को त्रिज्या से गुणा करके छायाकर्ण से भाग देने पर दृग्ज्या आती है। त्रिज्या के वर्ग से दृग्ज्या के वर्ग को घटा कर वर्गमूल निकालने से (३७) शंकु प्राप्त होता है। शंकु को त्रिज्या से गुणा करके इष्ट स्थान की लम्बज्या से भाग देने पर छेद आता है। छेद को त्रिज्या से गुणा करके द्युज्या से भाग देने पर (३८) उन्नतज्या आती है। इसको अन्त्या से घटाने पर जो शेष बचता हो उसको उत्क्रमज्या समझ कर उत्क्रमज्या पिंड से धनु बनावे तो पूर्व या पच्छिम नतकाल ज्ञात होता है।

विज्ञान भाष्य—इन तीनों श्लोकों का सारांश यह है :—

$$(१) \quad \frac{\text{छाया} \times \text{त्रिज्या}}{\text{छाया कर्ण}} = \text{दृग्ज्या}$$

$$(२) \quad \sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{दृग्ज्या}^2} = \text{शंकु}$$

$$(३) \quad \frac{\text{शंकु} \times \text{त्रिज्या}}{\text{लम्बज्या}} = \text{छेद}$$

$$(४) \quad \frac{\text{छेद} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} = \text{उन्नतज्या}$$

$$(५) \quad \text{अन्त्या} - \text{उन्नत ज्या} = \text{नतोत्क्रमज्या}$$

इन तीन श्लोकों के नियम ३४-३५ श्लोकों में लिखे हुए नियम के विलोम हैं इसलिए उनकी उपपत्ति भी वही है। हाँ, यहाँ छाया से दृग्ज्या अर्थात् नतांश ज्या का मान १३वें श्लोक में बतलाये गये नियम की तरह जानना चाहिए। यह पहले ही बतलाया गया है कि शंकु और छायाकर्ण के बीच का कोण नतांश होता है इसलिए छाया को छाया कर्ण से भाग देने पर दशमलव भिन्न में तथा इस फल को त्रिज्या से गुणा करने पर कलाओं में नतांश ज्या का मान निकल आवेगा।

इस रीति के सम्बन्ध में पंडित इन्द्रनारायण जी द्विवेदी लिखते हैं, "यद्यपि ३४-३५ श्लोकों के विपरीत गणना से ही ऊपर के श्लोकों में नतकाल बनाने की

विधि कही गयी है तथापि इसी रीति से नतकाल में कुछ अंतर आ जाता है इसी से भास्कराचार्य ने इसे सुधार दिया है (देखो सिद्धान्त शिरोमणि)।"*

परन्तु मेरी समझ में यह अंतर इसलिए नहीं पड़ता कि नियम अशुद्ध है वरन् इसका कारण छाया की नाप की स्थूलता है। यदि छाया दो तीन दशमलव स्थान तक ठीक-ठीक नापी जाय और गुणा भाग में भी स्थूलता न आने पावे तो इस रीति से नतकाल जानने में कोई अशुद्धि नहीं हो सकती।

उदाहरण १—यदि प्रयाग में किसी समय छाया १४.३३ अंगुल हो और सूर्य की क्रान्ति १५° उत्तर हो तो पूर्व या पच्छिम नतकाल बताओ और यह भी बतलाओ कि घड़ी में क्या बजा है?

सिद्धान्तीय रीति—

$$\text{छाया} = १४\cdot३३ \text{ अंगुल}$$

$$\therefore \text{छाया कर्ण} = \sqrt{१२^२ + (१४\cdot३३)^२} = १८\cdot६९ \text{ अंगुल}$$

$$\therefore \text{दृग्ज्या} = \frac{१४\cdot३३ \times ३४३८}{१८.६९} = २६३६ \text{ कला}$$

$$\therefore \text{शंकु} = \sqrt{३४६८^२ - २६\cdot३६^२} = २२०७ \text{ कला}$$

$$\therefore \text{छेद} = \frac{२२०७ \times ३४३८}{३१०६}$$

$$\text{और उन्नतज्या} = \frac{२२०७ \times ३४३८}{३१०६} \times \frac{३४३८}{३३२१} = २५२९ \text{ कला}$$

$$\text{अन्त्या} = ३८७६ \text{ (पहिले की तरह)}$$

$$\therefore \text{नतोत्क्रमज्या} = ३८७६ - २५२९ = १३४७ \text{ कला}$$

$$\therefore \text{नतकाल} = १३४७ \text{ कला का (उत्क्रम ज्या के अनुसार) धनु}$$

$$= ५२^\circ ३२' \text{ [देखो पृष्ठ १२०-१२१]}$$

$$= ३ \text{ घंटा } ३० \text{ मिनट } ८ \text{ सेकंड}$$

यदि नतकाल पूर्व हो तो १२ घंटे में से घटाने पर और पच्छिम हो तो १२ घंटे में जोड़ने पर धूपघड़ी का समय ज्ञात होगा।

∴ यदि पूर्व नतकाल हो तो धूप-घड़ी में

१२ घंटा − ३ घंटा ३० मि० ८ सेकंड = ८ घंटा २९ मि० ५२ सेकंड होगा।

और यदि पच्छिम नतकाल हो तो धूप-घड़ी में मध्याह्न के उपरान्त ३ घंटा ३० मिनट ८ सेकंड बीता है अर्थात् ३ बजकर ३० मिनट और ८ सेकंड हुआ है।

यह ध्यान रखना चाहिए कि घड़ी का यह समय शुद्ध स्थानीय काल है। इसको रेलवे के समय से मिलाने के लिए काल-समीकरण संस्कार तथा देशान्तर संस्कार करना पड़ेगा जिसकी चर्चा इसी अध्याय के अंत में की जायगी।

नवीन रीति—

$$\text{स्परे (नतांश)} = \frac{\text{छाया}}{१२} = \frac{१४\cdot३३}{१२} = १\cdot१९४१$$

$\therefore$ नतांश $= ५२^\circ ३'$

$\therefore$ शंकु = नतांश कोटि ज्या = कोज्या $५०^\circ ३' = \cdot६४२१$

समीकरण (ख) में सिद्ध किया गया है कि

नतांश कोटिज्या

$=$ (नतकोटिज्या $+$ चरज्या) $\times$ अक्ष कोटिज्या $\times$ क्रान्ति कोटिज्या

$\therefore \cdot६४२१ =$ (नत कोटिज्या $+ \cdot१२७३) \times \cdot९०३२ \times \cdot९६५९$

$=$ (नत कोटिज्या $+ \cdot१२७३) \times \cdot८७२४$

$$\therefore \text{नत कोटिज्या} + \cdot१२७३ = \frac{\cdot६४२१}{\cdot८७२४} = \cdot७३६०$$

$\therefore$ नत कोटिज्या $= \cdot७३६० - \cdot१२७३ = \cdot६०८७$

$\therefore$ नत काल $= ५२^\circ ३०'$

$=$ ३ घंटा ३० मिनट

इसलिए यदि पूर्व नत है तो समय होगा ८ बज कर ३० मिनट और पच्छिम नत है तो साढ़े तीन बजा रहेगा।

नवीन रीति से नत काल निकालने में और सरलता होगी यदि समीकरण (१) से सीधे ही काम लिया जाय। इसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

उदाहरण २—छाया = १४·३३ अंगुल और क्रान्ति = १५° उत्तर तो प्रयाग में नत काल क्या है ?

$$\text{स्परे (नतांश)} = \frac{\text{छाया}}{१२} = \frac{१४\cdot३३}{१२} = १\cdot१९४१$$

$\therefore$ नतांश $= ५०^\circ ३'$

$\therefore$ कोज्या (नत काल)

$$= \frac{\text{कोज्या } ५०^\circ ३' - \text{ज्या } २५^\circ २५' \times \text{ज्या } १५^\circ}{\text{कोज्या } २५^\circ २५' \times \text{कोज्या } १५^\circ}$$

$$=\frac{\text{·६४२१ − ·४२९२ × ·२५८८}}{\text{·९०३२ × ·९६५९}}$$

$$=\frac{\text{·६४२१ − ·१११९}}{\text{·८७२४}}$$

$$=\frac{\text{·५३१०}}{\text{·८७२४}}$$

$$=\text{·६०८७}$$

∴ नत काल = ५२°३०′ = ३ घंटा ३० मिनट

उदाहरण ३—यदि छाया २५·९१३ अंगुल और सूर्य की दक्षिण क्रान्ति १५° हो तो नत काल बतलाओ।

$$\text{स्परे नतांश} = \frac{\text{छाया}}{\text{१२}} = \frac{\text{२५·९१३}}{\text{१२}} = \text{२·१५९४}$$

∴ नतांश = ६५°९′

यहाँ क्रान्ति दक्षिण है इसलिए ध्रुवांतर ९०° से अधिक है और समीकरण (१) में कोज्या (ध्रुवांतर) अथवा ज्या (क्रान्ति) ऋणात्मक होगी।

इसलिए कोज्या (नत काल)

$$=\frac{\text{कोज्या नतांश + ज्या (अक्षांश) + ज्या (क्रान्ति)}}{\text{कोज्या (अक्षांश) × कोज्या (क्रान्ति)}}$$

$$=\frac{\text{कोज्या ६५°९′ + ज्या २५°२५′ × ज्या १५°}}{\text{कोज्या २५°२५′ × कोज्या १५°}}$$

$$=\frac{\text{·४२०२ + ·४२९२ × ·२५८८}}{\text{·९०३२ × ९६५९}}$$

$$=\frac{\text{·४२०२ + १११९}}{\text{·८७२४}} = \frac{\text{·५३१३}}{\text{·८७२४}} = \text{·६०९०}$$

∴ नत काल = ५२°२९′ = ३ घंटा २९ मिनट ५६ सेकंड

किसी समय की कर्णाग्रा जानकर सूर्य का भोगांश निकालना—

इष्टाग्राघ्ना स्वलम्बज्या स्वकर्णाङ्गुलभाजिता।
क्रान्तिज्या सात्रिजीवाघ्नी परमापक्रमोद्धृता ॥४०॥
तच्चापं भादिकं क्षेत्रं पदै र्भध्याह्निको रविः।

अनुवाद—(४०) इष्टकाल की अग्रा अर्थात् कर्णाग्रा को लम्बज्या से गुणा करके इष्टकाल के छाया-कर्ण से भाग दे दो तो भागफल सूर्य की क्रान्तिज्या होगी। इसको त्रिज्या से गुणा करके परमाप क्रम ज्या से भाग देकर भागफल का धनु

बनाओ। फिर सूर्य जिस राशि में हो उसका पद बनाकर सायन भोग का निश्चय (१७-१६) श्लोकों के अनुसार करो।

विज्ञान भाष्य—इसका सारांश यह है :—

$$\frac{\text{कर्णाग्रा} \times \text{लम्बज्या}}{\text{छायाकर्ण}} = \text{क्रान्ति ज्या}$$

$$\frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{परमापक्रम ज्या}} = \text{सूर्य का सायन भोगांश ज्या}$$

पहले नियम में इष्टकाल की अग्रा (कर्णाग्रा अथवा कर्णवृत्ताग्रा) से सूर्य की क्रान्ति जानने की रीति बतलायी गया है जो २७वें और २२वें श्लोकों का विलोम रूप है [देखो २ वें श्लोक का समीकरण (४)]

दूसरा नियम जिससे क्रान्ति जानकर सूर्य का सायन भोगांश निकाला जाता है इसी अध्याय के १७-१६ श्लोकों में तथा स्पष्टाधिकार के २८वें श्लोकों में आ गया है। इसलिए यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

छाया की नोक जिस मार्ग पर चलता है वह खींचना—

इष्टे हि मध्ये प्राक्पश्चाद् वृत्ते बाहुत्रयान्तरे ॥४१॥
मत्स्यद्वयान्तरयुते स्त्रिस्पृक्सूत्रेण भाभ्रमः।

अनुवाद—जिस दिन शंकु की छाका की नोक का मार्ग खींचना हो उस दिन मध्याह्न के पहले और पीछे छाया की नोक के तीन विन्दु निश्चित करो। पहले और दूसरे तथा दूसरे और तीसरे विन्दुओं से तिमि बनाओ। प्रत्येक तिमि के सामान्य विंदुओं पर जाती हुई रेखाओं को इतना बढ़ाओ कि वे मिल जायँ। जिस विन्दु पर मिलें उसको केन्द्र मानकर छाया की नोक के तीनों विन्दुओं पर जाती हुई एक परिधि खींचो। बस यही परिधिखंड छाया की नोक का मार्ग भाभ्रम रेखा उस दिन होगा।

विज्ञान भाष्य—यथार्थ में छाया की नोक का मार्ग वृत्ताकार नहीं होता वरन् अतिपरवलय (hyperbola) के आकार का होता है। इसलिए यह नियम अशुद्ध है जिसको भास्कराचार्य, रंगनाथ जी इत्यादि सभी ने स्वीकार किया है। इसलिए इस पर बहुत विचार करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

लंका और इष्ट स्थान में सायन मेषादि राशियों के उदयकाल जानने की रीति—

त्रिभद्युकर्णार्धगुणाः स्वाहोरात्रार्धभाजिताः ॥४१॥
क्रमादेकद्वित्रिभज्यास्तच्चापानि पृथक् पृथक्।

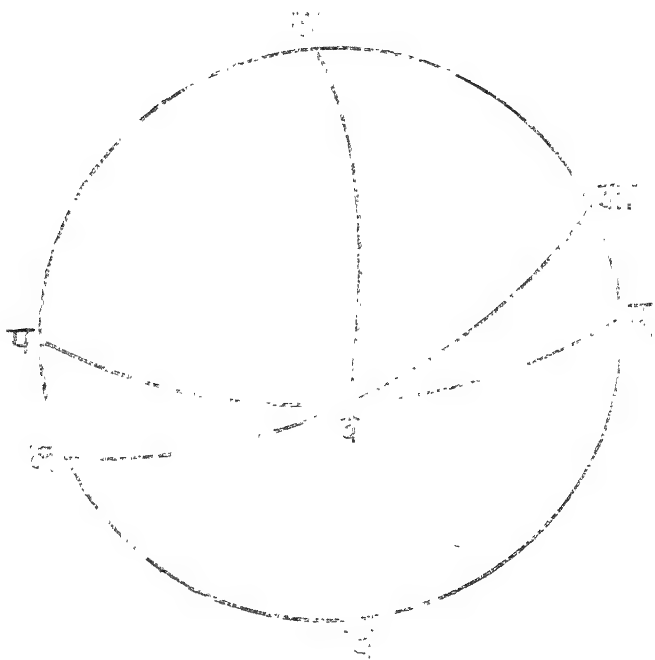
स्वाधोऽधः प्रविशोध्याथ मेषाल्लङ्कोदयासवः ॥४२॥
खागाष्टयोऽर्थगोऽगैकाशशरत्र्यङ्कहिमांशवः ।
स्वदेशचरखण्डोना भवन्तीष्टोदयासवः ॥४३॥
व्यस्ता व्यस्तैर्युतास्तैस्तैः कर्कटाद्यसवस्स्मृताः ।
व्युत्क्रमेण षडैवैते भवन्तीष्टास्तुलादय ॥४४॥

अनुवाद— (४१, ४२) एक, दो और तीन राशियों की ज्याओं को क्रम से तीन राशियों की द्युज्या से गुणा कर दो और गुणनफलों को क्रम से एक, दो और तीन राशियों के अहोरात्रार्धों (द्युज्याओं) से भाग दे दो, भजनफलों के धनु बनाकर अलग अलग रखो । पहला लंका में मेष राशि का उदयासु है, पहले को दूसरे से घटाने पर जो शेष आता है वह लंका में वृष राशि का उदयासु है और दूसरे को तीसरे से घटाने पर जो शेष होता है वह लंका में मिथुन राशि का उदयासु है । (४३) इनके मान क्रमानुसार १६७०, १७९५ और १९३५ असु अथवा प्राण हैं । इनसे इष्ट स्थान के अपने अपने चरखण्ड घटाने पर इष्ट स्थान के मेष, वृष और मिथुन राशियों के उदयासु जाने जाते हैं । (४४) यही उलटे क्रम से कर्कादि तीन राशियों के लंका में उदयासु हैं । इन्हीं में उलटे क्रम से अपने अपने चरखंडों को जोड़ने से इष्ट स्थान के कर्क, सिंह और कन्या के उदयासु होंगे । यही ६ उदयासु उलटे क्रम से तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन के उदयासु हैं ।

विज्ञान भाष्य—सायन मेष अर्थात् वसंत संपात विन्दु क्षितिज के पूर्व विन्दु पर जिस क्षण आता है उस समय से सायन मेष राशि का उदय होने लगता है और जिस क्षण तक वसंत सम्पात से क्रान्ति वृत्त का ३० अंश क्षितिज के ऊपर नहीं आ जाता उस समय तक सायन मेष राशि का उदय होता रहता है । जितने समय में वसंत सम्पात विन्दु से क्रान्ति वृत्त का ३० अंश उदय होता है उसको सायन मेष राशि का उदयकाल कहते हैं । यह सूक्ष्मता के लिए असुओं में प्रकट किया जाता है । इसीलिए इस समय को सायन मेषराशि का उदयासु कहते हैं । इसके पश्चात् क्रान्ति वृत्ति का अगला ३० अंश जितने समय में उदय होता है उसको सायन वृष राशि का उदय काल या उदयासु कहते हैं । इसी प्रकार अन्य सायन राशियों के उदयासुओं के बारे में समझना चाहिए ।

किसी स्थान में कौन राशि कितने समय में उदय होती है यह जानने के लिए पहले यह जानना सुगम होता है कि वह राशि विषुवत् रेखा (निरक्षदेश equator) पर कितने समय में उदय होती है । जब यह ज्ञात हो गया तब अपने स्थान का उदय काल जानने के लिए निरक्षदेश के उदय काल में कुछ संस्कार करना पड़ता है ।

हमारे ज्योतिष सिद्धान्त में विषुवत् रेखा और उज्जैन को जाती हुई देशान्तर रेखा के सामान्य विन्दु पर लंका स्थित मानी गयी है। इसलिए निरक्षदेश के उदयासु को लंका के उदयासु कहा गया है। लंका में मेष, वृष और मिथुन राशियों के उदयासु जानने का नियम ४१ श्लोक के उत्तरार्द्ध और ४२वें श्लोक में दिया हुआ है जिसकी उत्पत्ति चित्र ५६ से समझ में आवेगी।



चित्र—५६

उ, प, द, पू—लंका के क्षितिज के क्रम से उत्तर, पच्छिम, दक्षिण और पूर्व विन्दु।

प व पू—विषुवद्वृत्त जो लंका में सममण्डल भी होता है।

क व का—क्रान्ति वृत्त।

व—वसन्त सम्पात अथवा सायन मेष राशि का आदि विन्दु।

उ—उत्तरी ध्रुव का भी स्थान है।

पृथ्वी की दैनिक गति के कारण जितने समय मे विषुवद्वृत्त का व पू भाग क्षितिज के ऊपर आता है उतने ही समय में क्रान्ति वृत्तको व का भाग-भी क्षितिज के ऊपर आता है। इसलिए व का के उदय होने में उतना ही समय लगता है जितना व

पू के उदय होने में लगता है। परन्तु पूरे विषुवद्वृत्त (३६०°) के उदय होने के समय को एक नाक्षत्र दिन* कहते हैं जो २१६०० असुओं के समान होता है (पृष्ठ ६); इसलिए विषुवद्वृत्त के ३६०° अथवा २१६०० कला के उदय होने में जब २१६०० असुओं का समय बीतता है तब १ कला के उदय होने में १ असु का समय लगेगा। इसलिए यदि व पू का मान कलाओं में ज्ञात हो जाय तो उतने ही असुओं में व का का उदय काल निकल आवेगा।

अब देखना है कि व का और व पू का परस्पर क्या सम्बन्ध है। व पू का एक समकोण गोलीय त्रिभुज है जिसका व पू का कोण समकोण है और पू व का कोण विषुवद्वृत्त और क्रान्ति वृत्त के बीच का कोण अर्थात् सूर्य की परम क्रान्ति है। इस गोलीय त्रिभुज का भुज पू का क्रान्ति वृत्त के का विन्दु की क्रान्ति, भुज व का, का विन्दु का सायन भोगांश और भुज व पू, का विन्दु का विषुवांश है (देखो पृष्ठ २०१) इसलिए नेपियर के पहले नियम के आधार पर व का और व पू का सम्बन्ध जाना जा सकता है क्योंकि कोटि ज्या ∠ का व पू=स्पर्शरेखा (व पू) × कोटि स्पर्शरेखा (व का)

$$\text{अथवा, विषुवांश की स्पर्शरेखा} = \frac{\text{परम क्रान्ति कोटिज्या}}{\text{सायन भोगांश की कोटि स्पर्शरेखा}}$$

$$= \frac{\text{कोज्या २३° २७}'}{\text{कोस्परे (सायन भोगांश)}}$$

परन्तु हमारे आचार्य स्पर्शरेखा या कोटि स्पर्शरेखा का व्यवहार नहीं करते थे इसलिए उन्होंने गोलीय त्रिभुज उ व का से इनका सम्बन्ध इस प्रकार निकाला था :—

$$\frac{\text{ज्या (उ का)}}{\text{ज्या (उ व का)}} = \frac{\text{ज्या (व का)}}{\text{ज्या (व उ का)}}$$

---

* पृष्ठ ७ पर बतलाया गया है कि किसी तारे के उदय होने के समय से उसके फिर उदय तक के समय को नाक्षत्र अहोरात्र या नाक्षत्र दिन कहते हैं। इसलिए वसन्त सम्पात विन्दु के उदय होने के समय से उसके फिर उदय होने तक के समय को भी नाक्षत्र दिन नहीं समझना चाहिए क्योंकि इतने समय में यह विन्दु अयन चलन के कारण लगभग ०·१४ विकला पच्छिम हो जाने के कारण ०·००१ असु पहले उदय होगा। परन्तु यह भेद इतना सूक्ष्म है कि व्यवहार में दोनों परिभाषाओं को एक ही समझ लेने में कोई हानि नहीं। आजकल पाश्चात्य ज्योतिषी नाक्षत्र दिन की परिभाषा वही करते हैं जो पीछे दी हुई है।

परन्तु कोण व उ का = धनु व पू

$$\therefore \frac{\text{ज्या (उ का)}}{\text{ज्या (उ व का)}} = \frac{\text{ज्या (व का)}}{\text{ज्या (व पू)}}$$

$$\therefore \text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{ज्या (व का)} \times \text{ज्या (उ व का)}}{\text{ज्या (उ का)}}$$

परन्तु व का = 'का' का सायन भोगांश

$\angle$उ व का = $\angle$उ व पू − $\angle$का व पू

= ९०° — सूर्य की परम क्रान्ति

$\therefore$ ज्या (उ व का) = सूर्य की परम क्रान्ति कोटिज्या

= २४° की कोटिज्या (सिद्धान्तीय मत से)

= तीन राशि की द्युज्या (पृष्ठ २०८)

ज्या (उ का) = ज्या (उ पू — का पू)

= ज्या (९०° — 'का' की क्रान्ति)

= 'का' की क्रान्ति कोटिज्या

= 'का' की द्युज्या

इसलिए, ज्या (व पू)

$$= \frac{\text{'का' के भोगांश की ज्या} \times \text{परम क्रान्ति कोटिज्या}}{\text{'का' की क्रान्ति कोटिज्या}}$$

इससे व पू का जो मान कलाओं में आवेगा वही असुओं में 'का' के भोगांश का उदय काल होगा। इस साधारण समीकरण में 'का' के भोगांश की जगह जो धनु रखा जायगा उसी के लंका के उदयासु ज्ञात हो जायँगे। यदि इसकी जगह ३०°, ६०° और ९०° रखे जायँ तो ३०, ६० और ९० अंशों के भोगांशों के उदयासु अर्थात् सायन मेष राशि, सायन मेष और वृष राशि तथा सायन मेष, वृष और मिथुन राशियों के उदयासु क्रम से आ जायँगे। सायन मेष और वृष राशियों के उदयासुओं में से सायन मेष राशि के उदयासु घटाये जायँ तो सायन वृष राशि के उदयासु और सायन मेष वृष और मिथुन राशियों के उदयासुओं में से सायन मेष और वृष के उदयासु घटाये जायँ तो सायन मिथुन के उदयासु प्राप्त होंगे।

यदि समीकरण (१) में 'का' का भोगांश ९०° हो तो 'का' की क्रान्ति सूर्य की परम क्रान्ति होगी। ऐसी दशा में 'का' के भोगांश की ज्या का मान सिद्धान्तीय रीति से ३४३८ कला और आधुनिक रीति से १ होगा। इसलिये 'का' की क्रान्ति कोटिज्या परम-क्रान्ति-कोटिज्या के समान होने से समीकरण का दाहना पक्ष ३४३८ या १ के समान होगा जिससे व पू का मान भी ९०° के समान होगा। इसका अर्थ

यह हुआ कि जब व का ९०° होगा तब व पू भी ९०° होगा। इसलिये मेषादि तीन राशियों के उदयासु ९०×६० = ५४०० होंगे, जो १५ नाक्षत्र घड़ी या ६ नाक्षत्र घंटों के समान हैं।

४२वें श्लोक के पूर्वार्ध में लंका में मेष, वृष और मिथुन राशियों के उदयासु क्रम से १६७०, १७९५ और १९३५ दिये गये हैं जो समीकरण (१) से उपर्युक्त नियम के अनुसार प्राप्त हुए हैं और नीचे लिखे उदाहरण से स्पष्ट होंगे।

उदाहरण—लंका में वृष राशि के उदयासु क्या हैं?

पहले मेष राशि के उदयासु जानना चाहिए। इसके लिए समीकरण (१) में 'क' का भोगांश ३० रखना होगा। इस समय 'का' सायन मेष का अन्तिम विन्दु और सायन वृष का आदि विन्दु है जिसकी क्रान्ति स्पष्टाधिकार के २८वें श्लोक से जानी जा सकती है।

$$\text{'का' की क्रान्तिज्या} = \frac{\text{ज्या } ३०° \times १३९७}{३४३८}$$

$$= \frac{१७१९ \times १३९७}{३४३८}$$

$$= ६९८ \text{ कला}$$

$\therefore$ का की क्रान्ति = ७०३ कला = ११°४३′

७०३ कला की उत्क्रमज्या = ७२ कला

$\therefore$ का की क्रान्ति कोटिज्या = ३४३८ − ७२ [देखो पृष्ठ २०८]

= ३३६६ कला

परम क्रान्ति कोटिज्या का मान जानने के लिए पहले परम क्रान्ति अर्थात् २४° की उत्क्रमज्या जानना चाहिए जो २९८ कला है।

इसलिए परम क्रान्ति कोटिज्या = ३४३८ − २९८ = ३१४० कला

$\therefore$ समीकरण (१) से

$$\text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{ज्या } ३००° \times ३१४०}{३३६६}$$

$$= \frac{१७१९ \times ३१४०}{३३६६}$$

$$= १६०४′$$

$\therefore$ व पू = २७°५०′ = १६७०′

अर्थात् मेष राशि के उदयासु १६७० हैं।

अब सायन मेष और वृष राशियों के सम्मिलित उदयासु जानना चाहिए।

इस समय 'का' का भोगांश ६०° और इसकी क्रान्ति सायन वृष के अंतिम विन्दु की क्रान्ति होगी।

सायन वृष के अन्त की क्रान्तिज्या

$$= \frac{\text{ज्या } ६०° \times १३९७}{३४३८}$$

$$= \frac{२९७८ \times १३९७}{३४३८}$$

$$= १२१० \text{ कला}$$

∴ सायन वृष के अन्त की क्रान्ति $= २०° ३८'$

परन्तु $२०° ३८'$ की उत्क्रमज्या $= २२२'$

∴ $२०° ३८'$ की कोटिज्या $= ३४३८ - २२२ = ३२१६'$

∴ समीकरण (१) में,

$$\text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{ज्या } ६०° \times ३१४०}{३२१६}$$

$$= \frac{२९७८ \times ३१४०}{३२१६}$$

$$= २९०८ \text{ कला}$$

∴ $\text{व पू} = ५७° ४८' = ३४६८'$

∴ मेष और वृष राशियों के सम्मिलित उदयासु $= ३४६८$

परन्तु मेष राषि के उदयासु $= १६७०$

∴ वृष राशि के उदयासु $= १७९८$

श्लोक में इसकी जगह १७९५ असु लिखे हैं।

यह ऊपर बतलाया ही जा चुका है कि सायन मेष, वृष और मिथुन के सम्मिलित उदयासु ५४०० हैं और यह सिद्ध हुआ है कि सायन मेष और वृष के सम्मिलित उदयासु ३४६८ हैं, इसलिए मिथुन के उदयासु इन दोनों के अंतर अर्थात् १९३२ के समान हैं। श्लोक में १९३५ दिया है। यह अंतर गणना की स्थूलता के कारण है।

अब यह सिद्ध हो गया है कि सूर्य की परम क्रान्ति २४° नहीं है वरन् सं० १९८० वि० मे २३° २६' ५७''.३५ है और प्रतिवर्ष ०''.४६८ के लगभग घटती जाती है [देखो पृष्ठ २९८]। इस प्रकार परम क्रान्ति में १ कला की कमी प्राय: सवा सौ वर्षों में होती है। इसलिए विक्रम की २१वीं शताब्दी के पहले ५० वर्षों

तक परम क्रान्ति को २३°२७′ मान कर सायन मेष इत्यादि के उदयासु जानने में पर्याप्त सूक्ष्मता होगी ।

नवीन रीति से २३°२७′ की ज्या=०.३९७९ जिसे नवीन रीति से सूर्य की परम क्रान्तिज्या समझना चाहिए ।

स्पष्टाधिकार के २८वें श्लोक के अनुसार सायन मेष के अन्तिम विन्दु की क्रान्तिज्या

$$= \frac{\text{ज्या } ३०° \times .३९७९}{१} \quad [\text{ नवीन रीति से त्रिज्या} = १ \ ]$$

$$= .५ \times .३९७९ = .१९९०$$

∴ सायन मेष के अन्तिम विन्दु की क्रान्ति=११°२९′

इसी प्रकार सायन वृष के अन्तिम विन्दु की क्रान्तिज्या

$$= \frac{\text{ज्या } ६०° \times .३९७९}{१}$$

$$= .८६६ \times .३९७९ = .३४४६$$

∴ सायन वृष के अन्तिम विन्दु की क्रान्ति=२०°९′.७

क्रान्तियों के इन मानों से उदयासु जानने के लिए समीकरण (१) में उचित संशोधन करने पर, सायन मेष के लिए

$$\text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{ज्या } ३०° \times \text{कोज्या } २३°२७′}{\text{कोज्या } ११°२९′}$$

$$= \frac{.५ \times .९१७५}{.९७९८}$$

$$= .४६८२$$

∴ व पू=२७°५५′

∴ सायनमेष के उदयासु =१६७५

सायन मेष और वृष के सम्मिलित उदयासु के लिए

$$\text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{ज्या } ६०° \times \text{कोज्या } २३°२७′}{\text{कोज्या } २०°९.७}$$

$$= \frac{.८६६ \times .९१७५}{.९३८७}$$

$$= .८४६४$$

∴ व पू=५७°४९′

∴ सायन मेष और वृष के उदयासु=३४६९

∴ सायन वृष के उदयासु = ३४६६ − १६७५
= १७९१

और मिथुन के उदयासु = ५४०० − ३४६६
= १९३४

नेपियर के पहले नियम के आधार पर सायन मेष के उदयासु इस समीकरण से भी ज्ञात हो सकते हैं।

$$\text{विषुवांश की स्पर्शरेखा} = \frac{\text{कोज्या } २३^\circ २७'}{\text{कोस्परे } ३०^\circ}$$

$$= \frac{.९१७५}{१.७३२१}$$

$$= .५२९७$$

∴ विषुवांश = २७°५४′.५ = १६७४.५

∴ सायन मेष के उदयासु = १६७४.५

सायनमेष और वृष के विषुवांश की स्पर्शरेखा

$$= \frac{\text{कोज्या } २३^\circ २७'}{\text{कोस्परे } ६०^\circ}$$

$$= \frac{.९१७५}{.५७७४} = १.५८९०$$

∴ विषुवांश = ५७°४८′

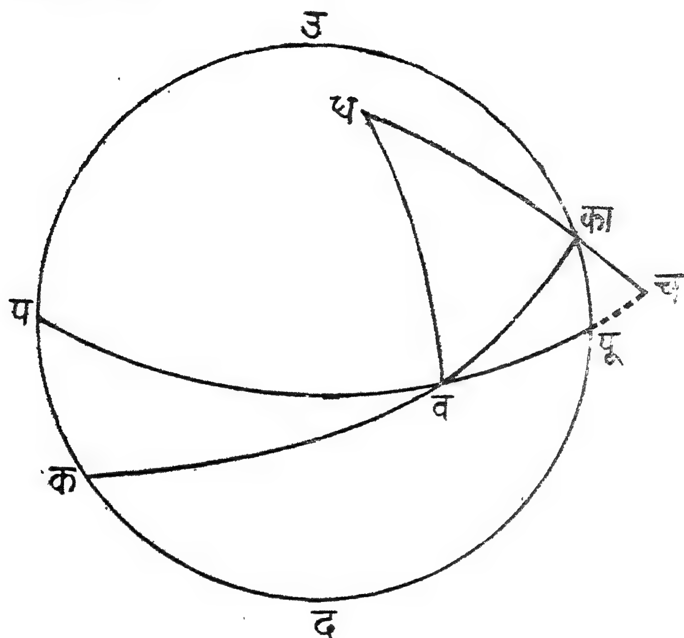
∴ सायनवृष के उदयासु = ३४६६ − १६७४.५
= १७९१.५

परन्तु उन कोणों या धनुओं की स्पर्शरेखाओं के मान सूक्ष्मतापूर्वक नहीं निकल सकते जो ६०° से अधिक है इसलिए यह रीति व्यापक नहीं है।

इस प्रकार लंका में मेषादि तीन सायन राशियों के उदयकाल यह हुए :—

सायन राशियाँ	प्राचीन रीति से			नवीन वेधों के अनुसार		
	असुओं में	पलों में	मिनटों में	असुओं में	पलों में	मिनटों में
मेष	१६७०	२७८	१११	१६७५	२७९	१११.७
वृष	१७९५	२९९	१२०	१७९१	२९९	११९.६

अब वह देखना है कि विषुवत् रेखा के सिवा किसी अन्य स्थान में जिसका उत्तरी अक्षांश अ है सायन मेषादि तीन राशियों के उदयासु क्या हैं।



चित्र ६०

उ पू द प—उस स्थान का क्षितिज वृत्त जिसका उत्तरी अक्षांश अ है

ध—उत्तरी आकाशीय ध्रुव

व—वसन्त सम्पात

प व पू—विषुवद्वृत्त

क व का—क्रान्तिवृत्त

पू च—का विन्दु का चर जो क्षितिज के नीचे है।

जिस समय वसन्त सम्पात विन्दु उदय होता रहता है उस समय वह ठीक पूर्व विन्दु पर होता है। इसलिए इस समय क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त दोनों पूर्व विन्दु पर रहते हैं। जितने समय में क्रान्तिवृत्त का व का भाग क्षितिज के ऊपर आता है उतने ही समय में विषुवद्वृत्त का व पू भाग क्षितिज के ऊपर आता है इसलिए व का में उदयासु व पू के उदयासु के समान है। क्रान्तिवृत्त के का विन्दु से जो ठीक क्षितिज

विन्दु पर मिलता है। इसलिए विपुवद्वृत्त का व पू च भाग का विन्दु का विपुवांश है। लंका में क्रान्तिवृत्त का का विन्दु और विपुवद्वृत्त का च विन्दु एक साथ क्षितिज पर आते हैं जैसा कि अभी बतलाया गया है। परन्तु अ अक्षांश पर पू च भाग क्षितिज के नीचे ही रहता है जब का विन्दु अ अक्षांश मे क्षितिज पर आ जाता है। इसलिए अ अक्षांश के स्थान में व का के उदयासु व पू के उदयासुओं के समान हैं जो व पू च से पू च घटाने पर आता है। पृष्ठ २०६—२१० में बतलाया गया है कि यही पू च का विन्दु का चर-काल है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि लंका के उदयासुओं में से चर-काल घटाने पर इष्ट स्थान के उदयासु निकलेंगे। पृष्ठ २१० में बतलाया गया है कि चर ज्या=क्रान्ति स्पर्शरेखा × अक्षांश स्पर्शरेखा।

(१) जब व का=३०°

तब का की क्रान्ति=११°५९′

इसलिए प्रयाग में जिसका अक्षांश २५°२५′ है, का विन्दु की चर ज्या

=स्परे ११°५९′ × स्परे २५°२५′

=·२०३२ × ·४७५२

=·०९६६

∴ चरांश=५°३३′

∴ का विन्दु के चरासु=३३३

∴ प्रयाग में व का के उदयासु=१६७५ − ३३३=१३४२

अर्थात् प्रयाग में सायन मेष के उदयासु=१३४२

(२) जब व का=६०°

तब का की क्रान्ति=२०°९′·६=२०°१०′

इसलिए तब प्रयाग में का की चरज्या

=स्परे २०°१०′ × स्परे २५°२५′

=·३६७१ × ·४७५२

=·१७४५

∴ का का चरांश=१०°३′

∴ का के चरासु =६०३

∴ प्रयाग में व का के उदयासु=३४६९ − ६०३

=२८६६

अर्थात् प्रयाग में सायन मेष और वृष राशियाँ २८६६ असुओं में उदय होंगी। परन्तु सायन मेष राशि १३४२ असुओं में उदय होती है। इसलिए सायन वृष राशि २८६६ − १३४२=१५२४ असुओं में उदय होगी।

(३) जब व का = ९०°

तब का की क्रान्ति = २३°२७′

∴ प्रयाग में का की चरज्या

= स्परे २३°२७′ × स्परे २५°२५′

= ·४३३७ × ·४७५२ = ·२०६१

∴ का का चरांश = ११°५४′

∴ का के चरासु = ७१४

∴ प्रयाग में व का के उदयासु = ५४०० − ७१४

= ४६८६

अर्थात् प्रयाग में सायन मेष, वृष और मिथुन राशियाँ ४६८६ असुओं में उदय होंगी। परन्तु सायन मेष और वृष राशियाँ २८६६ असुओं में उदय होती हैं, इसलिए सायन मिथुन राशि ४६८६ − २८६६ = १८२० असुओं में उदय होंगी।

इस तरह यह प्रकट है कि सायन मेष के अन्तिम विन्दु के चरासु ३३३, सायन वृष के अन्तिम विन्दु के चरासु ६०३ और सायन मिथुन के अन्तिम विन्दु के चरासु ७१४ हैं। पहले और दूसरे का अन्तर २७०, तथा दूसरे और तीसरे का अन्तर १११ है। इन्हीं को वृष और मिथुन के चरखंड ४३वें श्लोक के उत्तरार्ध में कहा गया है जिसका तात्पर्य नीचे के कोष्ठक से स्पष्ट हो जायगा :—

सायन राशियाँ	लंका में उदयासु	चरखंड असुओं में	प्रयाग में उदयासु
मेष	१६७५	−३३३	१३४२
वृष	१७९४	−२७०	१५२४
मिथुन	१९३१	−१११	१८२०

४४वें श्लोक के पूर्वार्ध में यह बतलाया गया है कि सायन कर्क, सिंह और कन्या राशियों के उदयासु किस प्रकार ज्ञात होंगे। लंका में कर्क के उदयासु वही होंगे जो मिथुन के हैं, सिंह के वह होंगे जो वृष के हैं और कन्या के वह होंगे जो मेष के हैं। इनमें अपने-अपने चरखंड जोड़ने पर इष्ट स्थान के उदयासु निकल आवेंगे जो आगे के कोष्ठक से स्पष्ट होगा :—

सायन राशियाँ	लंका में उदयासु	चरखंड असुओं में	प्रयाग में उदयासु
कर्क	१९३१	+१११	२०४२
सिंह	१७९४	+२७०	२०६४
कन्या	१६७५	+३३३	२००८

इसकी उपपत्ति यों है :—

क्रान्तिवृत्त के किसी विन्दु का का विषुवांश जानने के लिए समीकरण (१) का प्रयोग किया जाता है जो यह है

$$\text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{का के भोगांश की ज्या} \times \text{परमक्रान्ति कोटिज्या}}{\text{का की क्रान्ति कोटिज्या}}$$

प्राचीन तथा अर्वाचीन दोनों रीतियों से यह सिद्ध है कि किसी कोण की ज्या उसके परिपूरक (Supplementary) कोण की ज्या के समान होती है [देखो पृष्ठ १२६—१२८] अर्थात् ज्या (क)=ज्या (१८०° — क) जहाँ क किसी कोण का मान है। इसलिए यह सिद्ध है कि

ज्या (व पू)=ज्या (१८०° — व पू)

और ज्या (काका भोगांश)=ज्या (१८०° — का का भोगांश)

इसलिए ज्या (१८०° — व पू)

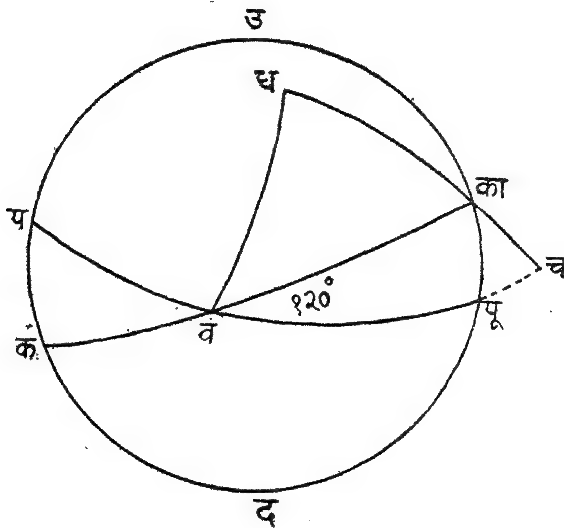
$$= \frac{\text{ज्या (१८०° — का का भोगांश) परम क्रान्ति कोटिज्या}}{\text{का की क्रान्ति कोटिज्या}} \qquad (२)$$

ऊपर बतलाया गया है कि जब का का भोगांश अर्थात् व का ६०° होता है तब का का विषुवांश अर्थात् व पू ५७°४९′ होता है, इसलिए समीकरण (२) के अनुसार जब का का भोगांश १८०° — ६०° = १२०° होगा तब इसका विषुवांश १८०° — ५७°४९′ = १२२°११′ होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जितने समय में वसंत संपात से क्रान्तिवृत्त का १२० अंश लंका में उदय होता है उतने समय में विषुवद्वृत्त का १२२°११′ उदय होता है। परन्तु क्रान्तिवृत्त की पहिली तीन राशियाँ जितनी देर में उदय होती हैं उतनी देर में विषुवद्वृत्त का भी ९०° उदय होता है। इसलिए चौथी राशि जितने समय में उदय होती है उतने समय में विषुवद्वृत्त का १२२°११′ — ९०° = ३२°११′ उदय होता है। परन्तु विषुवद्वृत्त का

३२°११′ = ९·१′, इसलिए इसके ३२°११′ के उदय होने का समय = १९३१ असु। इसलिए सायन कर्क राशि के उदयासु १९३१ हैं जो सायन मिथुन के भी उदयासु हैं।

इसी प्रकार यह सिद्ध हो सकता है कि सायन सिंह राशि के उदयासु सायन वृष राशि के उदयासुओं के और सायन कन्या राशि के उदयासु सायन मेष राशि के उदयासुओं के समान हैं।

अब यह जानना है कि सायन कर्क राशि के उदयासु किसी अन्य स्थान में, मान लो प्रयाग में, क्या होंगे।



चित्र ६१

यह चित्र ६०वें चित्र के ही समान है अन्तर केवल यह है कि उसमें व का ९०° से कम है और यहाँ व का १२०° के समान है।

चित्र से यह प्रकट है कि व का जो १२०° के समान है प्रयाग में उतने ही समय में उदय होगा जितने समय में व पू उदय होता है। परन्तु व का का विषुवांश व पू च के समान है जिसमें पू च चरांश क्षितिज के नीचे है। इसलिए

व पू=व पू च—पू च

परन्तु वा विन्दु की क्रान्ति सायन वृष के अन्तिम विन्दु की क्रान्ति के समान अर्थात् २०°१०′ है क्योंकि वसंत संपात विन्दु से ९०° के भोगांश तक क्रान्ति जिस क्रम से बढ़ती है उसी क्रम से ९०° से १८०° तक के भोगांश तक वह घटती भी है अर्थात् सायन वृष के अन्तिम विन्दु की क्रान्ति सायन कर्क के अन्तिम विन्दु की क्रान्ति के समान होती है और सायन मेष के अन्तिम विन्दु की क्रान्ति सायन सिंह के अन्तिम विन्दु की क्रान्ति के समान होती है, इत्यादि।

इसलिए पू च=१०°३′

परन्तु व पू च=१२२°११′

क्योंकि यह १२०°के भोगांश का विषुवांश है।

इसलिए व पू=१२२°११′—१०°३′
=११२°८′
=६७२८′

∴ १२० भोगांश के उदयासु =६७२८

परन्तु प्रथम तीन राशियों के उदयासु=४६८६

∴ कर्क राशि के उदयासु=६७२८—४६८६
= २०४२

जो लंका में कर्क के उदयासुओं में १११ जोड़ने से आता है।

इसी प्रकार यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि १५० भोगांश अर्थात् मेष से सिंह ५ राशियों तक के उदयासु प्रयाग मे क्या होंगे। फिर प्रथम चार राशियों के उदयासु घटाने पर सिंह राशि के उदयासु निकल आवेंगे जो लंका में सिंह के उदयासुओं में २७० जोड़ने मे भी प्राप्त हो सकते हैं।

सायन कन्या राशि का अन्तिम विन्दु जिसका भोगांश १८० है विषुवद्वृत्त से फिर मिल जाता है अर्थात् यही शरद संपात का स्थान है इसलिए यह वसंत संपात की तरह ठीक पूर्व में उदय होता है और इसका विषुवांश भी १८०° होता है।

इसी प्रकार सायन मेष से सायन कन्या तक की प्रत्येक राशि के उदयासु लंका में तथा उत्तरी गोलार्द्ध के अन्य स्थानों में क्या होते हैं जाना जा सकता है। अब वह दिखलाना है कि सायन तुला से लेकर सायन मीन तक की प्रत्येक राशि के उदयासु क्या हैं। ४४वें श्लोक के उत्तरार्द्ध में इसके लिए बहुत ही सरल नियम यह दिया हुआ है कि मेष से कन्या तक के जो उदयासु हैं वही उलटे क्रम से तुला से मीन तक के उदयासु हैं अर्थात् कन्या के उदयासु तुला के उदयासु के समान हैं, सिंह के उदयासु वृश्चिक के समान हैं, इत्यादि।

नीचे के कोष्ठक से यह और भी स्पष्ट होगा —

सायन राशियाँ	लंका में उदयासु	चरखंड असुओं में	प्रयाग में उदयासु	सायन राशियां
१ मेष	१६७५	— ३३३	१३४२	१२ मीन
२ वृष	१७९४	— २७०	१५२४	११ कुंभ
३ मिथुन	१९३१	— ११७	१८२०	१० मकर
४ कर्क	१९३१	+ ११७	२०४२	९ धनु
५ सिंह	१७९४	+ २७०	२०६४	८ वृश्चिक
६ कन्या	१६७५	+ ३३३	२००८	७ तुला

इसकी उपपत्ति बतलाने के लिये केवल यह बतलाना पर्याप्त होगा कि तुला के उदयासु क्या हैं।

चित्र ६२ से प्रकट है कि जितनी देर में शरद-संपात से क्रान्तिवृत्त का श का भाग प्रयाग के क्षितिज पर आवेगा उतनी ही देर में विषुवद्वृत्त का श पू भाग भी क्षितिज पर आवेगा।

परन्तु श पू = श च + च पू

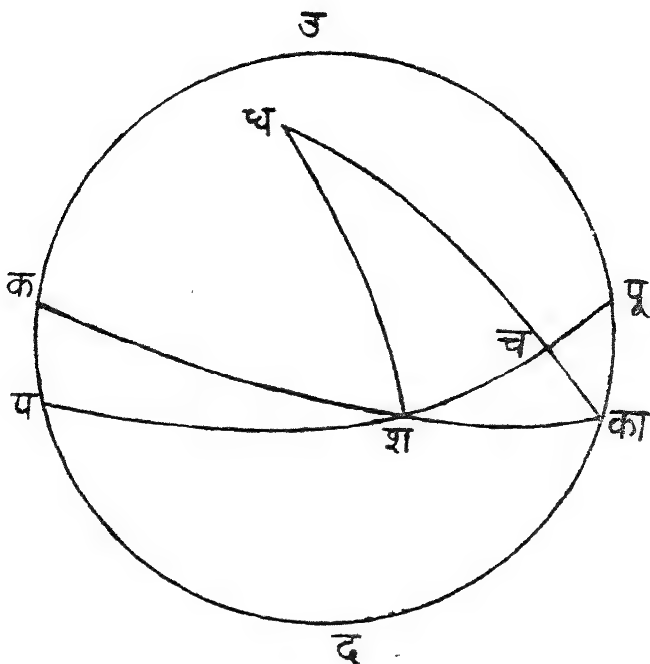
यदि का विन्दु सायन तुला का अन्तिम विन्दु माना जाय तो श का ३० अंश के समान होगा। श च का समकोण गोलीय त्रिभुज है क्योंकि का च ध, का विन्दु का ध्रुवप्रोत वृत्त है जो विषुवद्वृत्त से समकोण पर होता है। इसलिए इस समकोण गोलीय त्रिभुज में नेपियर के नियमों के अनुसार

$$\text{कोज्या (च श का)} = \text{स्परे (च श)} \times \text{कोस्परे (श का)}$$

$$\text{अर्थात् स्परे (च श)} = \frac{\text{कोज्या } २३^\circ २७'}{\text{कोस्परे } ३०^\circ}$$

$$= \cdot ५२९७ \text{ [देखो पृष्ठ ३०७]}$$

$$\therefore \text{च श} = २७^\circ ५४'.५ = १६७४.५ \text{ जो लंका में कन्या के उदयासु हैं।}$$



चित्र ६२

यह चित्र ५९, ६० चित्रों के समान है अन्तर केवल इतना है कि यहाँ श शरद का सम्पात का स्थान है जहाँ से क्रान्तिवृत्त विषुवद्वृत्त के दक्खिन हो जाता है। का च ध क्रान्तिवृत्त के का विन्दु का ध्रुवप्रोतवृत्त।

चरांश च पू का मान जानने के लिए समकोण गोलीय त्रिभुज पू च का से काम लेना चाहिए जिसमें च का का विन्दु की दक्षिण क्रांन्ति है। यह ११°२९′ के समान होती है जब शका ३०° के समान होता है। च पू का कोण विषुवद्वृत्त और क्षितिजवृत्त के बीच का कोण है जो प्रयाग के लम्बांश के समान होता है (देखो पृ० २५७)

इसलिये नेपियर के नियम के अनुसार

ज्या (च पू) = स्परे (च का) × कोस्परे (च पू का)

= स्परे ११°२९′ × कोस्परे (९०° − २५°२५′)

= स्परे ११°२९ × स्परे २५°२५′

= .०९६६

∴ च पू = ५°३३′ = ३३३′ [देखो पृष्ठ ३०९]

इसलिए श पू = १६७४.५ + ३३३

= २००८ कला

इसलिए श का अर्थात् सायन तुला के उदयासु (प्रयाग मे) वही हैं जो सायन कन्या के उदयासु हैं।

इसी प्रकार यह भी सिद्ध हो सकता है कि सायन वृश्चिक, धनु इत्यादि के उदयासु भी क्रमानुसार सायन सिंह, कर्क इत्यादि के उदयासु हैं।

भोगांश		विषुवांश		क्रान्ति उत्तर	
अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला
०	०	०	०	०	०
३०	०	२७	५५	११	२६
६०	०	५७	४६	२०	१०
९०	०	९०	०	२३	२७
१२०	०	१२२	११	२०	१०
१५०	०	१५२	५	११	२६
१८०	०	१८०	०	०	०
				क्रान्ति दक्षिण	
२१०	०	२०७	५५	११	२६
२४०	०	२३७	४६	२०	१०
२७०	०	२७०	०	२३	२७
३००	०	३०२	११	२०	१०
३३०	०	३३२	५	११	२६
३६७	०	३६०	०	०	०

ऊपर की सारिणी से यह प्रकट होगा कि क्रान्तिवृत्त के १२ प्रधान विन्दुओं के भोगांश, विपुवांश, क्रान्ति क्या हैं।

इससे प्रकट है कि लंका में सायन मेष, वृप इत्यादि राशियों के जो उदयासु हैं उन्हीं को कला समझकर जोड़ लेने से विपुवांश आते हैं; परन्तु यह ध्यान रहे कि यदि क्रान्तिवृत्त के किसी ऐसे विन्दु का विपुवांश जानना है जो उपर्युक्त १२ प्रधान विन्दुओं के सिवा अन्य विन्दु हैं तो अनुपात की रीति से काम नहीं चलेगा, क्योंकि कुछ स्थूलता हो जाती है। इसके लिए सबसे अच्छी रीति यही है कि चित्र ५६ और समीकरण (१) की रीति से काम लिया जाय।

अब तक जो कुछ लिखा गया है उससे सायन राशियों के उदयासु जाने जा सकते हैं परन्तु आजकल निरयन राशियों का भी प्रचार है जिनका आरम्भ मेप तथा अश्विनी के आदिविन्दु से होता है। यह विन्दु विक्रम की ६ठीं शताब्दी में वसंत संपात का स्थान था (देखो ६-१० श्लोकों का विज्ञान भाष्य)। इसलिये आवश्यक है कि निरयन राशियों के उदयासु भी संक्षेप में बतला दिये जायँ।

यह बतलाया गया है कि सायन भोगांश से अयनांश घटा दिया जाय तो निरयन भोगांश आता है, परन्तु अयनांश प्रतिवर्ष ५८".६६ के लगभग बढ़ता है (देखो पृष्ठ २०) और १६८२ वि० की मेष संक्रान्ति के समय यह २२°४१′ के लगभग था (देखो पृष्ठ २५२)। सुविधा के लिये विकलाओं की गणना छोड़ दी गई है जिससे व्यवहार में बहुत कम अन्तर पड़ता है। अयनांश २२°४१′ मानने का अर्थ यह है कि जब सायन भोगांश २२°४१′ होता है तब निरयन भोगांश शून्य होता है अर्थात् तब निरयन मेष राशि का आरम्भ होता है, और जब सायन भोगांश ५२°४१′ होता है तब निरयन मेप राशि का अंत तथा निरयन वृष का आरम्भ होता है। इसी तरह मिथुन, कर्क इत्यादि निरयन राशियों का निश्चय कर लेना चाहिए।

निरयन मेष राशि के उदयासु जानने के लिए यह देखना पड़ता है कि क्रान्तिवृत्त का वह भाग जो २२°४१′ और ५२°४१′ सायन भोगांशों के बीच में है कितने समय में उदय होता है। इसलिए पहले यह जानना आवश्यक है कि वसंत सम्पात और निरयन मेष के आदि विन्दु के बीच का भाग कितने समय में उदय होता है। फिर यह जानना पड़ता है कि वसंत सम्पात और निरयन मेष के अन्तिम विन्दु के बीच का भाग कितने समय में उदय होता है। दोनों का जो अंतर आता है वही निरयन मेष के उदयासु हैं। इसके लिए निरयन मेष के आदि और अन्तिम विन्दु की क्रान्तियां भी जाननी पड़ती हैं।

निरयन मेष के आदि विन्दु की क्रान्तिज्या

=ज्या २२′४१° × ज्या २३° २७′ [पृष्ठ ३०५]

=.३८५६ × .३९७९

=.१५३४

∴ निरयन मेष के आदि विन्दु की क्रान्ति =८° ४९′

निरयन वृष के आदि विन्दु की क्रान्ति ज्या

=ज्या ५२° ४१′ × ज्या २३° २७′

=.३१६५

∴ निरयन वृष के आदि विन्दु की क्रान्ति=१८° २७′

यही निरयन मेष के अन्तिम विन्दु की क्रान्ति भी है।

निरयन मेष के आदि विन्दु के विपुवांश की ज्या

$$= \frac{\text{ज्या २२°४१′ × कोज्या २३°२७′}}{\text{कोज्या ८°४९′}}$$

$$= \frac{\text{·३८५६ × ·९१७५}}{\text{·९८८२}}$$

=·३५८०

∴ विषुवांश=२०°५९′=१२५९′

∴ लंका में अयन भाग के उदयासु=१२५९

प्रयाग में निरयन मेष के आदि विन्दु की चरज्या

=स्परे ८°४९′ × स्परे २५°२५′

=·१५५१ × ·४७५२

=·०७३७

∴ चरांश=४°१४

∴ निरयन मेष के आदि विन्दु के चरासु=२५४

∴ प्रयाग में अयन भाग के उदयासु =१२५९ − २५४
=१००५

इसी प्रकार निरयन मेष के अन्तिम विन्दु अथवा निरयन वृष के आदि विन्दु के विषुवांश की ज्या

$$= \frac{\text{ज्या ५२°४१′ × कोज्या २३°२७′}}{\text{कोज्या १८°२७′}}$$

∴ विषुवांश = ५०°१७′ = ३०१७′

इसलिए लंका में अयन भाग और निरयन मेष के उदयासु = ३०१७

परन्तु प्रयाग में निरयन मेष के अन्तिम विन्दु की चरज्या

= स्परे १८°२७′ × स्परे २५°२५′

= ·३३३७ × ·४७५२

= ·१५८६

चरांश = ९°७′ = ५४७′

∴ प्रयाग में अयन भाग और निरयन मेष के उदयासु

= ३०१७ − ५४७ = २४७०

परन्तु प्रयाग में अयन भाग के उदयासु = १००५

∴ ,, निरयन मेष के ,, = १४६५

∴ ,, ,, ,, का उदयकाल = २४४ पल

= ४ घड़ी ४ पल

यदि प्रत्येक निरयन राशि के उदयासु जानने की रीति उपर्युक्त विवरण के साथ लिखी जायगी तो पुस्तक का आकार बढ़ने के सिवा कोई विशेष लाभ नहीं होगा। इसी रीति से आगे की सारिणी बनायी गयी है जिससे यह पता चल जायगा कि निरयन राशि के उदयासु या उदय काल किसी स्थान में कैसे निकाले जा सकते हैं :—

दूसरे स्तम्भ में क्रान्ति के पहले धन का चिह्न यह प्रकट करता है कि क्रान्ति उत्तर दिशा में है और ऋण का चिह्न यह प्रकट करता है कि क्रान्ति दक्षिण दिशा में है। सातवीं राशि तुला से क्रान्तियों का क्रम पहली ६ राशियों के क्रम की तरह है केवल दिशा में भिन्नता है।

तीसरे स्तम्भ मे प्रत्येक राशि के आदि विन्दु का चरांश दिया हुआ है जिसको कलाओं में लिखने से जो संख्या मिलती है वही उस विन्दु के चरासु अथवा चर प्राण है। जब क्रान्ति उत्तर होती है तब उत्तरी गोलार्ध में चरासु घटाने पड़ते हैं और जब क्रान्ति दक्षिण होती है तब उत्तरी गोलार्ध में चरासु जोड़ने पड़ते हैं (देखो पृष्ठ २०६-२१०)। इसीलिए चरांश पहली ६ राशियों में ऋणात्मक और पिछली ६ राशियों मे धनात्मक लिखा गया है। यह प्रयाग के चरांश है। अन्य स्थान के चरांश जानने के लिए चरज्या = क्रान्ति स्पर्शरेखा × अक्षांश स्पर्शरेखा वाले सूत्र में इष्ट स्थान का जो अक्षांश हो वह लिखकर गणना करना चाहिए।

निरयन राशियां	आदि विंदु की कान्ति अंश	कला	प्रयाग में आदि विंदु का चरांश अंश	कला	प्रयाग में चर खंड अंश	कला	आदि विंदु का विषुवांश अंश	कला	लंका में उदयांश अंश	कला	प्रयाग में उदयांश अंश	कला	प्रयाग में उदयकाल (नाक्षत्र) घड़ी	पल	प्रयाग में मेष के आदि से राशि के उदय का समय घड़ी	पल
मेष	+ ८	४६	− ४	१४	− ४	५३	२०	५६	२६	१८	२४	२५	४	४	४	४
वृष	+ १८	२७	− ६	९	− २	४०	५०	१७	३१	४३	२६	३	४	५१	८	५५
मिथुन	+ २३	१५.३	− ११	४७	+ ०	५८	८०	०	३२	३०	३३	२८	५	३५	१४	३०
कर्क	+ २१	३२·७	− १०	४६	+ ४	२	११४	३०	३०	३३	३४	३५	५	४६	२०	१६
सिंह	+ १३	५८	− ६	४७	+ ५	२४	१४५	३	२८	१४	३३	३८	५	३६	२५	५२
कन्या	+ २	५४	− १	२३	+ ५	३७	१७३	१७	२७	४२	३३	१६	५	३३	३१	२५
तुला	− ८	४६	+ ४	१४	+ ४	५३	२००	५६	२६	८	३४	११	५	४२	३७	७
वृश्चिक	− १८	२७	+ ६	९	+ २	४०	२३०	१७	३१	४३	३४	२३	५	४१	४२	५१
धनु	− २३	१५·३	+ ११	४७	− ०	५८	२६२	०	३२	३०	३१	२८	५	१५	४८	६
मकर	− २१	३२·७	+ १०	४६	− ४	२	२६४,	३०	३०	३३	२६	३१	४	२५	५२	३१
कुम्भ	− १३	५८	+ ६	४७	− ५	२४	३२५	३	२८	१४	२२	५०	३	४८	५६	१९
मीन	− २	५४	+ १	२३	− ५	३७	३५३	१७	२७	४२	२१	५	३	४१	६०	०
मेष	+ ८	४६	− ४	१४			३८०	५६								

४थे स्तम्भ में जो चरखंड दिया हुआ है वह पासवाली दो राशियों के आदि विंदुओं के चरांशों का अन्तर है जिससे जाना जाता है कि पहली राशि के आदि विन्दु से अन्तिम विन्दु तक चरांश में क्या अन्तर पड़ता है। जैसे—

मेष राशि का चर खंड
=वृषराशि के आदि विंदु का चरांश
=मेषराशि के आदि विंदु का चरांश
= −९°०७′ − (४°१४′)
= −९°७′ + ४°१४′
= −४°५३′

सिंह राशि का चरखंड
=कन्या राशि के आदि विंदु का चरांश − सिंह राशि के आदि विंदु का चरांश
= −१°२३′ − (−६°४७′)
= −१°२३′ + ६°४७′
= +५°२४′

ध्यान देने से प्रकट होता है कि पहली ६ राशियों के चरखंड दूसरी ६ राशियों के चरखंडों के परिमाण में क्रमानुसार समान हैं। केवल + या − चिह्नों में अन्तर है।

५वें स्तम्भ में प्रत्येक राशि के आदि विन्दु का विषुवांश दिया हुआ है। यदि इसको कलाओं में लिखा जाय तो इतने ही असुओं में वसन्त सम्पात से उस राशि का आदि विन्दु लंका में उदय होगा। यदि पास वाली दो राशियों के विषुवांशों का अन्तर निकाला जाय तो यही ऊपरवाली राशि के उदयांश लंका में होंगे जो ६ठें स्तम्भ में दिया हुआ है। इसको कला में लिखा जाय तो यही संख्या लंका में उस राशि के उदयासु होंगे। लंका में राशि का जो उदयांश हो उसमें उसी राशि का चरखण्ड यदि धनात्मक हो तो जोड़ने और ऋणात्मक हो तो घटाने से इष्ट स्थान में उस राशि का उदयांश आता है जिसको कला में लिखने से उस राशि के उदयासुओं की संख्या भी प्राप्त हो जायगी। ८वें स्तम्भ में प्रत्येक राशि का उदयकाल उदयासुओं में न लिखकर घड़ी, पलों में लिखा गया है जो अधिक व्यवहारात्मक है परन्तु कुछ स्थूल है क्योंकि ६ असुओं का १ पल होता है और ६ से भाग देने पर पूरे पल जब नहीं आये हैं तब आधे से अधिक को १ मान लिया गया है और आधे से जो कम आये हैं उनको छोड़ दिया गया है।

९वें स्तम्भ में यह दिखलाया गया है कि मेष के आदि से पूरी राशि के उदय होने में क्या समय लगता है। जैसे यदि जानना है कि मेष के आदि से पूरे सिंह के उदय होने तक क्या समय लगता है तो सिंह के सामने ९वें स्तम्भ में २५ घड़ी ५२ पल इसका उत्तर है अर्थात् मेष, वृष, मिथुन, कर्क और सिंह राशियाँ प्रयाग में २५ घड़ी ५२ पल में उदय होती हैं। इस स्तम्भ से लग्न जानने में बड़ी सहायता मिलेगी। इसलिए यह भी यहाँ दे दिया गया है।

यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि यह समय नाक्षत्र मान के अनुसार है जो सावन मान से कुछ भिन्न होता है। (देखो पृष्ठ ७, ८)।

इस सारिणी से यह बात सिद्ध होती है कि किसी स्थान में राशियों के उदयासु जानने के लिये केवल चरांश जान लेने से आवश्यक संशोधन सुगमतापूर्वक हो सकते हैं। परन्तु यह सारिणी सदैव काम नहीं दे सकती क्योंकि अयन चलन के कारण प्रत्येक निरयन राशि के आदि विन्दु के भोगांश और विषुवांश बढ़ते रहते हैं। इससे क्रान्ति, चरांश और चरखंडों में कुछ अन्तर होता जाता है। परन्तु यह अन्तर बहुत सूक्ष्म होता है क्योंकि अयन चलन के कारण भोगांश में प्रतिवर्ष केवल १ कला के लगभग वृद्धि होती रहती है इसलिए कम से कम २५ वर्ष से बाद सारणी में एक बार संशोधन कर देना आवश्यक है।

यह जानना कि किस समय क्रान्तिवृत्त का कौन विन्दु पूर्व क्षितिज में लग्न है

गतगम्यासवः कार्या भास्करादिष्टकालिकात्।
स्वोदयासुहता भुक्तभोग्या भक्ता खवह्निभिः ॥४५॥
अभीष्टघटिकासुभ्यो भोग्यासून् प्रविशोधयेत्।
तद्वदैष्यभलग्नासून् एवं यातांस्तथोत्क्रमात् ॥४६॥
शेषं त्रिशत्क्रमाभ्यस्तमभुक्तोदयभाजितम्।
भागादिहीनं युक्तं च तल्लग्न क्षितिजे तथा। ४७॥

अनुवाद—(४५) जिस समय का लग्न जानना हो उस समय के स्पष्ट सूर्य से गतासु और भोग्यासु जानना चाहिये। सूर्य राशि के जितने अंश पर होता है उसको गतांश और राशि का जितना अंश सूर्य के भोगने को शेष रह जाता है उसको भोग्यांश कहते हैं। राशि के उदयासुओं को गतांश से गुणा करके ३० से भाग देने पर गतासु और भोग्यांश से गुणा करके ३० से भाग देने पर भोग्यासु जाने जाते हैं। (४६) सूर्योदय से जितनी घड़ी (समय) इष्ट काल तक बीत चुकी हो उसमें से भोग्यासुओं को घटा देना चाहिये। जो शेष हो उसमें से आगे आनेवाली राशि के उदयासुओं को घटाना

चाहिये। शेष में से इससे आगे की राशि के उदयासुओं को घटाना चाहिये। इसी प्रकार आगे आने वाली राशियों के उदयासुओं को घटाते जाने से जब शेष इतना रह जाय कि फिर आगे की राशि के उदयासु न घटे तो यही अशुद्ध राशि (न घटने वाली राशि) कही जायगी। परन्तु यदि गतासु से लग्न जानना हो तो जो राशियाँ सूर्योदय के पहले उदय हो चुकी रहती हैं उनके उदयासुओं को सूर्योदय होने में जितना समय हो उसमें से उलटे क्रम से घटना चाहिये अर्थात् पहले तो गतासु घटावे, फिर सूर्य की राशि से जो राशि पीछे हो उसके उदयासुओं को घटाना चाहिये फिर उससे पीछे की राशि के उदयासुओं को घटाना चाहिये इत्यादि, (४७) अंत में यदि कुछ शेष रह जाय तो उसको ३० से गुणा करके अशुद्ध राशि के उदयासुओं से भाग देना चाहिये। यदि क्रिया गतासु से की गयी हो तो भागफल को अशुद्ध राशि से घटाने पर और यदि यह क्रिया भोग्यासु से की गयी हो तो भागफल को जोड़ने से यह ज्ञात हो जाता है कि उस समय क्षितिज में क्रान्तिवृत्त का कौन विन्दु लग्न है।

विज्ञान भाष्य—४७वें श्लोक के उत्तरार्द्ध का अर्थ करने में कई टीकाकारों ने अयनांश के जोड़ने-घटाने की भी चर्चा की है जो मेरी समझ में व्यर्थ है क्योंकि जब स्पष्ट सूर्य की राशि से लग्न जाना जाता है और सभी ग्रहों का स्पष्ट निरयन राशियों में किया जाना है तब सायन सूर्य से लग्न जानने की क्या आवश्यकता है। इसके अर्थ में भ्रम इसलिए होता है कि इन तीन श्लोकों में लग्न निकालने की दो रीतियाँ जो प्रायः एक ही सी हैं दी हुई हैं। यदि सूर्योदय से इष्टकाल तक का समय ३० घड़ी से कम हो तो भोग्यासुओं से काम लेना सुगम होगा और यदि इष्ट काल अगले सूर्योदय के निकट हो तो अगले सूर्योदय के गतासुओं से काम लेने में सुविधा होगी। इसीलिए अन्तिम लब्धि के जोड़ने घटाने की आवश्यकता पड़ती है। यह बात नीचे के २ उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगी।

उदाहरण १.—सूर्योदय से १६ घड़ी १५ पल और ५२ घड़ी १० पल पर कौन-कौन लग्न होंगे जब कि सूर्योदय काल में सूर्य का निरयन भोगांश ३$^{रा}$५°१′६″ और सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति ५७′२१″ है।

विकलाओं की गणना करने में गुणा भाग बहुत करना पड़ेगा इसलिए आगे चलकर सूर्य का निरयन भोगांश केवल कलाओं तक लिया जायगा।

१ली रीति—

पहिले यह जानना चाहिए कि सूर्योदय से १६ घड़ी १५ पल पर सूर्य का निरयन भोगांश क्या होगा।

६० घड़ी में सूर्य ५७′ २१″ आगे बढ़ता है

∴ १५ घड़ी में ,, १४′२०″१५‴ ,,

और १ घड़ी में ,, ५७″२१‴ ,,

और १५ पल में ,, १४″२०‴ ,,

∴ १६ घड़ी १५ पल में १५′३२″ सूर्य आगे बढ़ता है। इसलिए सूर्योदय से १६ घड़ी १५ पल पर सूर्य का निरयन भोगांश

=३^रा^५°१६′३८″

=३^रा^५°१७′

इष्ट काल में कर्क राशि में सूर्य का गतांश ५°१७′ और भोग्यांश ३०°−५°१७′=२४°४३′=१४८३′

परन्तु कर्क राशि के उदयासु† (प्रयाग में) २०७५ हैं। इसलिए जब कर्क के ३०° अंश अथवा १८०० कला २०७५ असुओं में उदय होता है तब २४°४३′ या १४८३′ कितने समय में उदय होगा, अर्थात्

$$\text{भोग्यासु} = \frac{१४८३ \times २०७५}{१८००}$$

=१७१०

∴ भोग्यकाल =२८५ पल

=४ घड़ी ४५ पल

अर्थात् सूर्योदय से ४ घड़ी ४५ पल तक कर्क राशि उदय होती रहेगी। फिर सिंह राशि का उदय आरम्भ होगा।

इष्टकाल	१६	घड़ी	१५	पल
कर्क का भोग्यकाल	४	,,	४५	,,
अंतर	११	,,	३०	,,
सिंह का उदयकाल	५	,,	३६	,,
अंतर	५	,,	५४	,,
कन्या का उदयकाल	५	,,	३३	,,
अंतर			२१	पल

यही तुला का गत काल है।

---

* जैसे कला के ६०वें भाग को विकला कहते हैं वैसे ही विकला के ६०वें भाग को प्रतिविकला समझना चाहिए जिसके लिए तीन चिन्हों (‴) का प्रयोग किया गया है।

† यदि उदयासु की जगह उदयकाल पल में लिखा जाय तो गणना में सरलता होगी परन्तु कुछ स्थूलता आ जायगी।

इसलिए इष्टकाल में तुला राशि २१ पल तक उदय हो चुकी है और ५ घड़ी २१ पल तक और उदय होगी क्योंकि तुला का उदय काल प्रयाग में ५ घड़ी ४२ पल हैं। इसलिए इष्टकाल में तुला राशि पूर्व क्षितिज में लगी हुई है अर्थात् लग्न है। यह जानने के लिए कि तुला का कौन विन्दु लग्न है फिर अनुपात से काम लेना होगा। क्योंकि जब ५ घड़ी ४२ पल अर्थात् ३४२ पल में तुला के ३० अंश उदय होते हैं तब २१ पल में कितने उदय हो चुकेंगे।

३४२ : २१ : : ३० : तुला का गतांश

$$\therefore \text{तुला का गतांश} = \frac{२१ \times ३०}{३४२} = १^\circ ५०' ३१''$$

$$= १^\circ ५१'$$

∴ सूर्योदय से १६ घड़ी १५ पल पर ६$^{रा}$१°५१′ लग्न है। यहाँ १°५१′ उदित राशियों में जोड़ा गया है।

२री रीति—

यदि यह जानना हो कि सूर्योदय से ५२ घड़ी १० पल पर क्या लग्न है तो अगले दिन के सूर्योदय के गतांश से काम लेने में अधिक सुविधा होगी।

इष्टकाल से अगले सूर्योदय का समय

$$= ६० \text{ घड़ी} - ५२ \text{ घड़ी } १० \text{ पल}$$

$$= ७ \text{ घड़ी } ५० \text{ पल}$$

अगले सूर्योदय काल में सूर्य का निरयन भोगांश

$$= ३^{रा} ५^\circ १' ६'' + ५७' २१''$$

$$= ३^{रा} ५^\circ ५८' २७''$$

६० घड़ी में सूर्य की गति $= ५७' २१''$

∴ ७½ ,, ,, $= ७' १०'' ८'''$

२० पल में ,, $= १९'' ७'''$

∴ ७ घड़ी ५० पल में ,, $= ७' २९''$

∴ इष्टकाल में सूर्य का निरयन भोगांश

$$= ३^{रा} ५^\circ ५८' २७'' - ७' २९''$$

$$= ३^{रा} ५^\circ ५१'$$

∴ इष्टकाल में कर्क राशि में सूर्य का गतांश ५°५१′ = ३५१′

$$\text{इसलिए पहले की तरह गतासु} = \frac{३५१ \times २०७५}{१८००}$$

=४०५

∴ गतकाल=६७ पल

=१ घड़ी ७ पल

सूर्योदय होने में	७ घड़ी	५० पल है
सूर्योदय से	१ घड़ी	७ पल पहले कर्क का आरंभ होगा
अंतर	६ घड़ी	४३ पल
मिथुन का उदयकाल	५ घड़ी	३५ पल
अंतर	१ घड़ी	८ पल

∴ इष्टकाल में पूरे वृष के उदय होने में १ घड़ी ८ पल शेष है। परन्तु वृष के ३०° या १८००′ का उदय २९१ पल में होता है।

∴ २९१ : ६८ : : १८०० : लग्न का भोग्यांश

$$\therefore \text{लग्न का भोग्यांश} = \frac{६८ \times १८००}{२९१}$$

=४२१′

=७°१

और वृष का भुक्तांश (गतांश)=३०°−७°१′

=२२°५९′

∴ इष्टकाल का लग्न =१

यहाँ अन्तिम लब्धि घटाई गयी है।

इस संबंध में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि राशियों के उदयासु अथवा उदयकाल नाक्षत्रकाल में प्रकट किये जाते हैं और इष्टकाल धूपघड़ी के अनुसार जाना जाता है इसलिये यह सावन काल में होता है (देखो पृ० ७, ८ तथा २१२)।

१ सावन दिन=६० सावन घड़ी

=२१६५९.१४ असु

=३६१० पल (नाक्षत्र) स्थूल रूप से

=६० घड़ी १० पल (नाक्षत्र)

∴ ६ सावन घड़ी=६ नाक्षत्र घड़ी+१ नाक्षत्र पल

जिससे सिद्ध होता है कि सावन काल को नाक्षत्र काल में बदलना हो तो प्रति ६ सावन घड़ियों के लिए १ पल और बढ़ा देने से नाक्षत्र काल आ जाता है।

परन्तु इष्टकाल का स्पष्ट सूर्य निकाल कर लग्न की गणना करने में यह अन्तर नहीं पड़ता इसलिए सूर्य-सिद्धान्त का नियम बिल्कुल शुद्ध है क्योंकि जब

इष्टकाल का स्पष्ट सूर्य निकाल लिया जाता है तब प्रश्न यह रहता है कि उस विन्दु से जिस जगह सूर्य इष्टकाल में है क्रान्तिवृत्त के उदय-विन्दु तक जो क्षितिज में लगा रहता है क्या अन्तर है। क्रान्तिवृत्त का वह भाग जो तात्कालिक या इष्ट-कालिक सूर्य और क्रान्तिवृत्त के उदय-विन्दु के बीच में है जितने नाक्षत्र काल में उदय होता है उतने ही सावन काल में सूर्य सूर्योदय काल के स्थान से इष्टकाल के स्थान तक पहुँचता है। हाँ यदि यह जानना हो कि सूर्योदय काल से इष्टकाल तक कितना नाक्षत्र काल बीता, तब यह गणना करनी पड़ेगी कि सूर्योदय काल में क्रान्तिवृत्त का जो विन्दु उदय हो रहा था उससे इष्टकालिक उदय-विन्दु तक के उदयासु क्या हैं। क्रान्तिवृत्त का सूर्योदय कालिक विन्दु इष्टकाल में सूर्य से कुछ पच्छिम हो जाता है क्योंकि इष्टकाल तक सूर्य कुछ पूरब हट जाता है। इस बात का विचार उस समय अवश्य करना पड़ेगा जब कि उदयकालिक सूर्य के निरयन भोगांश से ही इष्टकाल का लग्न निकालना हो। नीचे इस रीति से भी लग्न जानने का उदाहरण दिया जाता है :—

३री रीति—

सूर्योदय से १६ घड़ी १५ पल पर लग्न क्या है ?

उदयकालिक सूर्य का निरयन भोगांश $=$ ३$^{रा}$५$^\circ$१$'$६$''$

$\therefore$ कर्क का भोग्यांश $=$ ३०$^\circ$ $-$ ५$^\circ$१$'$ $=$ २४$^\circ$५६$'$ $=$ १४९६$'$

१८०० : १४९६ : : २०७५ : भोग्यासु

$\therefore$ भोग्यासु $= \dfrac{१४९६ \times २०७५}{१८००} =$ १७२८ $=$ २८८ पल

१६ घड़ी १५ पल धूपघड़ी के अनुसार होता है इसलिए यह सावन काल की इकाई में है।

सावन	नाक्षत्र
६ घड़ी	$=$ ६ घड़ी १ पल

$\therefore$ १६ घड़ी १५ पल $=$ १६ घड़ी १८ पल (स्थूल रूप से)

अब इसमें कर्क के भोग्यासु तथा सिंह, कन्या के उदयासु क्रमशः पूर्ववत् घटाने चाहिये।

	१६ घड़ी १८ पल
कर्क का भोग्यकाल	४ घड़ी ४८ पल
अन्तर	११ घड़ी ३० पल
सिंह का उदयकाल	५ " ३६ पल

अन्तर ५ घड़ी ५४ पल
कन्या का उदयकाल ५ ,, ३३ पल
तुला का गतकाल २१ पल

इसके बाद की गणना पहले की ही तरह है।

इससे सिद्ध होता है कि चाहे तात्कालिक सूर्य का निरयन भोगांश जानकर सावनकाल को ही नाक्षत्रकाल समझकर काम निकाला जाय अथवा उदयकालिक सूर्य के निरयन भोगांश जानकर इष्टकालिक सायनकाल को नक्षत्रकाल में बदल कर काम निकाला जाय दोनों में कोई अन्तर नहीं पड़ता। हाँ सावनकाल से नाक्षत्रकाल बनाकर काम निकालने में कुछ सुगमता होती है।

इस रीति में प्रत्येक राशि का उदयकाल इष्टकाल में घटाना पड़ता है। यदि ३२०वें पृष्ठ को सारिणी के ९वें स्तम्भ से काम लिया जाय तो और भी सुविधा हो सकती है।

सूर्योदय काल में कर्क का भोग्यकाल = ४ घड़ी ४८ पल
परन्तु कर्क का उदयकाल = ५ घड़ी ४६ पल
दोनों का अन्तर = ० घड़ी ५८ पल
∴ सूर्योदय काल में कर्क का गतकाल = ० घड़ी ५८ पल

निरयन मेष के आदि से मिथुन के अन्त तक का उदयकाल
= १४ घड़ी ३० पल

∴ सूर्योदय काल में क्रान्तिवृत्त के उदित भाग का उदयकाल
= १५ घड़ी २८ पल
इष्टकाल १६ घड़ी १८ पल

इष्टकाल में क्रान्तिवृत्त के उदित भाग का उदयकाल
= ३१ घड़ी ४६ पल

जिससे कन्या तक का उदयकाल घट सकता है क्योंकि वह
३१ घड़ी २५ पल है

∴ तुला का गतकाल = २१ पल

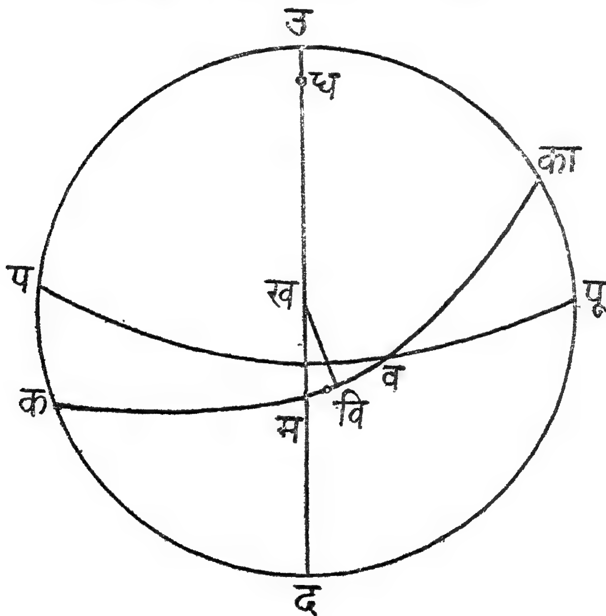
अर्थात् इष्टकाल में तुला राशि लग्न है। तुला राशि का कौन विन्दु लग्न है यह जानने के लिए पहले की तरह आगे की क्रिया भी करनी चाहिए।

भास्कराचार्य ने सायन सूर्य से लग्न साधन की रीति बतलायी है जो अधिक शुद्ध है क्योंकि यह बतलाया जा चुका है कि किसी राशि के ३० अंश के प्रत्येक अंश समानकाल में उदय नहीं होते इसलिए उचित यह है कि प्रत्येक अंश के उदयासु

अलग-अलग जाने जायें। परन्तु यह काम कष्टप्रद है इसलिए यदि प्रत्येक अंश का उदयकाल समान समझकर अनुपात से काम लिया जाय जैसा कि सब करते हैं तो लग्न की राशि में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा हाँ राशि के उदय-विंदु के निश्चय करने में तनिक सा अन्तर पड़ जायगा। इसलिए यदि लग्न का नवांश या द्वादशांश शुद्धता-पूर्वक जानना हो तो सायन सूर्य से ही पूर्ववत् काम लेना चाहिए। ऐसी दशा में अयनांश का संस्कार करने पर निरयन लग्न का ज्ञान होगा।

मध्य लग्न जानने की रीति—

> प्राक्पश्चान्नतनाडोभि: तस्माल्लंकोदयासुभि.।
> भानौक्षयधने कृत्वा मध्यलग्नं तथाभवेत् ॥४८॥



चित्र ६३

उ, प, द, पू=प्रयाग के क्षितिजवृत्त के उत्तर, पच्छिम, दक्षिण और पूर्व विन्दु।

क व का=क्रान्तिबृत्त। उ ध ख म द=यामोत्तरवृत्त।

का=उदय लग्न। क=अस्त लग्न।

म=मध्य या दशमलग्न। व=वसन्त सम्पात।

वि=वित्रिभ लग्न। ख=खस्वस्तिक।

अनुवाद—(४८) पूर्व या पश्चिम नतकाल, तात्कालिक सूर्य और लंका के उदयासुओं से तात्कालिक सूर्य और याम्योत्तर वृत्त के बीच के क्रान्तिवृत्त के खंड को जान लो। पूर्व नतकाल हो तो इसको तात्कालिक सूर्य से घटा दो अन्यथा जोड़ दो तो मध्य लग्न ज्ञात हो जायगा।

विज्ञान भाष्य—क्रान्तिवृत्त का जो विन्दु यामोत्तरवृत्त पर होता है वही मध्यलग्न या दशमलग्न (Culminating point) कहलाता है। क्रान्तिवृत्त का जो विन्दु खस्वस्तिक से अत्यन्त निकट रहता है उसे वित्रिभ लग्न कहते हैं। उदयलग्न में ३ राशि घटाने से अथवा अस्तलग्न में तीन राशि जोड़ने से वित्रिभ लग्न ज्ञात होता है।

लंका में राशियों के उदय होने में जितना समय लगता है उतना ही समय उनके याम्योत्तरवृत्त के उल्लंघन करने में भी लगता है। यह सब स्थानों के लिए वही होता है। जैसे निरयन मेष राशि का उदयांश लंका में २८°१८′ है। इसलिए लंका में मेष के उदयासु १७५८ हुए। इतने ही समय में मेषराशि सब स्थानों में यामोत्तरवृत्त का उल्लंघन करता है। इसी तरह अन्य राशियों के बारे में समझना चाहिए।

इसका कारण यह है कि लंका में किसी राशि का उदयांश विषुवद्वृत्त का वह खंड है जिसके उदय होने में उतना ही समय लगता है जितने समय में वह राशि क्षितिज के ऊपर आती है। विषुवद्वृत्त के इस खंड को यामोत्तर उल्लंघन करने में भी इतना ही समय लगता है। इसलिए यह राशि यामोत्तर के उल्लंघन करने में भी इतना ही समय लेगी।

उदाहरण २.—सूर्योदय से १६ घड़ी १५ पल और ५२ घड़ी १० पल उपरान्त कौन-कौन मध्यलग्न होंगे जब कि सूर्योदयकाल में सूर्य का निरयन भोगांश ३रा५°१′६″ और सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति ५७′२१″ है?

प्रथम खण्ड—

पहले यह जानना होगा कि सूर्योदयकाल से १६ घड़ी १५ पल पर नतकाल क्या है अर्थात् इस समय के कितना पीछे या पहले ठीक मध्याह्न होगा। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि सूर्योदय से कितनी घड़ी, पल पर मध्याह्न होगा। इसके लिए चरप्राण की गणना करनी होगी। परन्तु चरज्या सूर्य की क्रान्ति और स्थान के अक्षांश पर अवलम्बित है। इसलिए पहले यही जानना चाहिए कि सूर्योदय काल के सूर्य की क्रान्ति क्या है।

सूर्य का निरयन भोगांश = $३^{रा}$५°१′६″

अयनांश = २२°४१′

∴ सूर्य का सायन भोगांश = $३^{रा}$२७°४२′ = ११७°४२′

∴ क्रान्तिज्या = ज्या ११७°४२′ × ज्या २३ २७′

= ज्या (१८०° − ११७°४२′) × ज्या २३ २७′

= ज्या ६२°१८′ × ज्या २३°२७′

= .८८५४ × .३६७६

= .३५२३

∴ क्रान्ति = २०°३८′ उत्तर

∴ चरज्या = स्परे २०°३८′ × स्परे २५°२५′

= .३७६६ × .४७५२

= .१७६०

∴ चरांश = १०°१८′ = ६१८′

∴ चरकाल = ६१८ असु = १०३ पल = १ घड़ी ४३ पल

∴ दिनार्द्धमान = १५ घड़ी + १ घड़ी ४३ पल

= १६ घड़ी ४३ पल

अर्थात् सूर्योदय से १६ घड़ी ४३ पल पर ठीक मध्याह्न होगा।

परन्तु इष्टकाल १६ घड़ी १५ पल है जिस समय सूर्य का निरयन भोगांश $३^{रा}$५°१६′३८″ अथवा $३^{रा}$५°१७′ है (देखो ४५-४७ श्लोकों का विज्ञान भाष्य)

इसलिए पूर्व नतकाल = २८ पल = १६८ असु

सूर्य कर्क राशि में है जिसके लंका के उदयासु १८३३ हैं (सारिणी के ६ठें स्तम्भ के मान को कलाओं में लिखने से असुओं की संख्या आ जाती है)। अब यह देखना है कि जब १८३३ असुओं में पूरी कर्कराशि अर्थात् १८०० कला यामोत्तर वृत्त को उल्लंघन करती है तब १६८ असुओं में कर्क राशि का कौन भाग उल्लंघन करेगा।

१८८३ : १६८ : : १८०० : इष्ट भाग।

$$∴ इष्टभाग = \frac{१६८ \times १८००}{१८३३}$$

= १६५′

= २°४५′

यही यामोत्तर वृत्त और सूर्य के बीच का क्रान्तिवृत्त का खंड है। परन्तु सूर्य $३^{रा}$५°१७′ पर है। इसलिए $३^{रा}$५°१७′ − २°४५′ = $३^{रा}$२°३२′ यामोत्तर लग्न है।

दूसरा खण्ड—

जब इष्टकाल ५२ घड़ी १० पल होगा तब पच्छिम नतकाल

=५२ घड़ी १० पल—१८ घड़ी ४३ पल

अर्थात् मध्याह्न के उपरान्त ३५ घड़ी २७ पल भर सूर्योदय से ५२ घड़ी १० पल बीता रहेगा। इस समय सूर्य का निरयन भोगांश=३$^{रा}$५°५१′

इसलिए कर्क राशि का भोग्यांश=२४°९′

जब पूरी कर्क राशि १८३३ असुओं में यामोत्तर वृत्त का उल्लंघन करती है तब इसकी २४°९′ कितने असुओं में उल्लंघन करेगी।

१८०० : १४४९ : : १८३३ : भोग्यांश का उल्लंघन काल

∴ भोग्यांश का उल्लंघन काल $=\frac{१४४९ \times १८३३}{१८००}$

=१४७६ असु

=२४६ पल

=४ घड़ी ६ पल

अब पच्छिम नतकाल=३५ घड़ी २७ पल

मध्याह्न के बाद कर्क के उल्लंघन में ४ घड़ी ६ पल लगेगा

अन्तर ३१ घड़ी २१ पल

सिंह का यामोत्तर उल्लंघन ४ घड़ी ४२ पल में होता है

अन्तर २६ घड़ी ३९ पल

कन्या का यामोत्तर उल्लंघन ४ घड़ी ३७ पल में होता है

अन्तर २२ घड़ी २ पल

तुला का यामोत्तर उल्लंघन ४ घड़ी ५३ पल में होता है

अन्तर १७ घड़ी ९ पल

वृश्चिक का यामोत्तर उल्लंघन ५ घड़ी १७ पल में होता है

अन्तर ११ घड़ी ५२ पल

धनु का यामोत्तर उल्लंघन ५ घड़ी २५ पल में होता है

अन्तर ६ घड़ी २७ पल

मकर का यामोत्तर उल्लंघन ५ घड़ी ५। पल में होता है

अन्तर १ घड़ी २१॥ पल

∴ कुम्भ राशि यामोत्तर वृत्त पर लग्न है। क्योंकि अन्तिम अन्तर से कुम्भ राशि का यामोत्तर उल्लंघन काल नहीं घटता है इसलिए यही अशुद्ध राशि है। अब यह देखना है कि इसका कौन विन्दु यामोत्तर वृत्त पर है।

कुम्भ का यामोत्तर उल्लंघन काल=४ घड़ी ४२ पल

=१६६४ असु

१ घड़ी २१॥ पल=८१॥ पल=४८६ असु

इसलिए जब १६६४ असुओं में १८०० कला का उल्लंघन होता है तब ४८६ असुओं में कितना होगा !

१६६४ : ४८६ : : १८०० : गतांश

$$\therefore \text{गतांश} = \frac{४८६ \times १८००}{१६६४} = ५२०' = ८°४०'$$

∴ कुम्भ राशिका ८°४०′ यामोत्तर उल्लंघन कर चुका

∴ मध्यम या दशम लग्न=१०^रा ८°४०′

स्पष्ट सूर्य और लग्न से समय जानना—

भोग्याशेनूनकस्याथ भुक्तासूनधिकस्य च ।
संपिण्ड्यान्तरलग्नासूनवं स्यात्कालसाधनम् ।।४६।।
सूर्यादूने निषाशेषे लग्नेऽर्काधिके दिवा ।
भचक्रार्धयुताद्भानोः अधिकेऽस्तमयात्परम् । ५० ।

अनुवाद—(४६) लग्न और स्पष्ट सूर्य की राशियों में जो कम हो उसके भोग्यासुओं और जो अधिक हो उसके भुक्तासुओं को जोड़कर दोनों के बीच में जो पूरी राशियां हों उनके उदयासुओं को भी जोड़ लो । इसी योगफल से इष्टकाल जाना जाता है । (५०) रात्रि कुछ शेष रहने पर अर्थात् मध्य रात्रि के पीछे और सूर्योदय के पहले सूर्य की राशि से लग्न की राशि कम होती है, सूर्योदय के पीछे दिन में सूर्य की राशि लग्न की राशि से कम होती है और सूर्यास्त के पीछे सूर्य की राशि में ६ राशि जोड़ने पर भी लग्न की राशि अधिक होती है ।

इति त्रिप्रश्नाधिकार नामक तीसरे अध्याय का अनुवाद समाप्त हुआ ।

विज्ञान भाष्य—इष्टकाल और उसके स्पष्ट सूर्य से लग्न जानने की जो रीति ४५-४७ श्लोकों में दी गयी है उसी की विलोम (उलटा) क्रिया ४६-५० श्लोकों में बतलायी गयी है । इसलिए इसकी उपपत्ति समझाने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती । दिन में सूर्य की राशि से उदय लग्न आगे होती है इसलिए सूर्य की राशि लग्न से कम होता है । मध्य रात्रि के बाद उदय लग्न के आगे सूर्य रहता है इसलिए उस समय लग्न सूर्य से कम होती है । सूर्यास्त के समय उदय लग्न सूर्य से ठीक ६ राशि आगे रहती है इसलिए इसके उपरान्त उदय लग्न ६ राशि युक्त स्पष्ट सूर्य (सषडभ सर्य) से अधिक होती है ।

इस नियम से मध्य रात्रि के पीछे का जो इष्टकाल आता है वह उस समय से सूर्योदय तक का समय होता है और दिन में या सूर्यास्त के बाद जो इष्टकाल होता है वह सूर्योदय से उस समय तक का काल होता है। यह नियम एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा :—

उदाहरण—सूर्योदय काल का स्पष्ट सूर्य ३$^{रा}$५°१′६″, स्पष्ट दैनिक गति ५७′२१″ है। प्रयाग में किस समय उदय लग्न ६$^{रा}$१°५१′ और १$^{रा}$२२°५९′ होंगी ?

पहला खंड—

यहाँ उदय लग्न स्पष्ट सूर्य से अधिक है इसलिए सूर्य की राशि के भोग्यासु और लग्न की राशि के भुक्तासुओं को जोड़ना चाहिए। इन भोग्यासु और भुक्तासुओं को पहले की तरह जानना चाहिए।

कर्क का भोग्यांश=२४°५८′५४″=२४°५९′

तुला का भुक्तांश=१°५१′

∴ कर्क का भोग्यकाल=२८५ पल

और तुला का भुक्तकाल=२१ पल

दोनों का जोड़ =३०६ पल=५ घड़ी ६ पल

कर्क और तुला के बीच में सिंह और कन्या है जिनमें सिंह का उदयकाल

=५ घड़ी ३६ पल

कन्या का उदयकाल =५ घड़ी ३३ पल

कुल का योग =१६ घड़ी १५ पल

दूसरा खंड—

यहाँ उदय लग्न सूर्य की राशि से कम है। इसलिए उदय लग्न के भोग्यासुओं को सूर्य की राशि के भुक्तासुओं में जोड़ना चाहिए। इनके मान पहले की तरह जानना होता है। जिस समय लग्न १$^{रा}$२२°५९′ होगी वह मध्यरात्रि के बाद का समय है इसलिए अगले सूर्योदय के स्पष्ट सूर्य के भुक्तासुओं से काम लेना चाहिए।

उसी दिन के सूर्योदय काल का स्पष्ट सूर्य=३$^{रा}$५°१′६′

स्पष्ट दैनिक गति =५७°२१′

∴ अगले दिन के सूर्योदय काल का स्पष्ट सूर्य=३$^{रा}$५°५८′२७″

=३$^{रा}$५°५८′ स्थूलतः

∴ सूर्य का भुक्तांश = ५°५८′ = ३५८′

लग्न का भोग्यांश = ३०° − २२°५९′ = ७°१′ = ४२१′

सूर्य के भुक्तासु $= \frac{३५८ \times २०७५}{१८००}$

= ४१३

= ६९ पल

लग्न का भोग्य काल $= \frac{४२१ \times २९१}{१८००}$ पल

= ६८ पल

∴ सूर्य का भुक्तकाल और लग्न का भोग्यकाल = ६९ + ६८ पल

= २ घड़ी १७ पल

सूर्य और लग्न के बीच मिथुन राशि का

उदयकाल = ५ घड़ी ३५ पल

दोनों का योग = ७ घड़ी ५२ पल

इसलिए सूर्योदय होने में ७ घड़ी ५२ पल रह गया है।

लग्न से समय जानने की रीति तभी व्यवहार में लायी जा सकती है जब राशि और नक्षत्रों की पहचान अच्छी तरह हो। इसलिए यह आवश्यक है कि राशि, नक्षत्र तथा अन्य प्रसिद्ध तारों की पूरी जानकारी हो। सूर्य-सिद्धान्त के नक्षत्र ग्रह युत्यधिकार नामक ८वें अध्याय में कुछ नक्षत्रों और तारों की चर्चा है इसलिए वहीं यह भी बतलाया जायगा कि प्रसिद्ध प्रसिद्ध तारे कौन हैं जिनसे राशि में समय का ज्ञान सहज ही हो सकता है।

यहाँ केवल यह बतला देना पर्याप्त है कि मध्य लग्न से समय जानने में अधिक सुविधा होती है। यदि यह मालूम हो कि मध्याह्न काल में सूर्य का विषुवांश क्या था और रात्रि में कौन तारा जिसका विषुवांश ज्ञात है यामोत्तर वृत्त पर है तो यह सहज ही जाना जा सकता है कि मध्याह्न से कितना समय बीता है क्योंकि तारा के विषुवांश से सूर्य के विषुवांश को घटाने पर जो अन्तर कलाओं में होता है उतने ही असुओं में वह तारा मध्याह्न के उपरान्त यामोत्तर वृत्त पर आता है।

यदि किसी तारे का विषुवांश न ज्ञात हो तो केवल क्रान्तिवृत्त के तारा-समूहों को पहचान लेने से भी समय का स्थूल ज्ञान हो सकता है। इसके लिए सूर्य किस नक्षत्र पर है यह भी जानना आवश्यक होता है। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि क्रान्तिवृत्त के २७वें भाग को नक्षत्र कहते हैं और पूरा क्रान्तिवृत्त एक

नाक्षत्र दिन में में पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ जान पड़ता है इसलिए एक नक्षत्र $\frac{६०}{२७}$ घड़ी $=$ २$\frac{२}{९}$ घड़ी या सवा दो घड़ी में यामोत्तर उल्लंघन करता है अथवा ९ नक्षत्र २० घड़ी या ८ घंटे में यामोत्तर उल्लंघन करते हैं। इस प्रकार की गणना से जो समय जाना जायगा उसमें और यथार्थ समय में आधे घंटे से अधिक अन्तर नहीं पड़ सकता।

उदाहरण—सूर्य पुनर्वसु नक्षत्र में है तो किस समय श्रवण नक्षत्र यामोत्तर वृत्त पर होगा?

२१३ पृष्ठ की नक्षत्र सारिणी में पुनर्वसु ७वां नक्षत्र और श्रवण २२वां नक्षत्र है। इसलिए इन दोनों में १५ नक्षत्रों का अन्तर है।

९ नक्षत्रों का अन्तर २० घड़ी या ८ घंटे में पड़ता है।

६ ,, ,, १३$\frac{१}{३}$,, या ५$\frac{१}{३}$,, ,,

∴ १५ ,, ,, ३३$\frac{१}{३}$,, १३$\frac{१}{३}$,, ,,

∴ मध्याह्न से १३$\frac{१}{३}$ घंटे पीछे अथवा मध्यरात्रि से १$\frac{१}{३}$ घंटे पर सवा बजे रात्रि में श्रवण नक्षत्र यामोत्तर वृत्त पर होगा।

आजकल धूप-घड़ी से समय का ज्ञान नहीं होता वरन् कमानी के बल पर चलनेवाली घड़ियों से होता है जिसका समय धूप-घड़ी से कुछ भिन्न होता है इसलिए जो लोग आजकल की प्रचलित घड़ियों से लग्न की गणना करके फलित ज्योतिष के फल बतलाते हैं उनको लग्न का ठीक ठीक ज्ञान नहीं होता। काशी के महामहोपाध्याय बापूदेवजी शास्त्री के पंचांग के अतिरिक्त अन्य पंचांग ऐसे देखने में नहीं आये जिनमें इस बात का अच्छा विवेचन हो। इसलिए यहाँ यह बतलाना बहुत आवश्यक है कि धूप-घड़ी और आजकल की कमानीदार घड़ियों में परस्पर क्या सम्बन्ध है।

स्पष्टकाल, मध्यकाल और काल-समीकरण—

मध्यमाधिकार पृष्ठ ७, ८ में बतलाया गया है कि किसी तारे के उदय होने के समय से उसके फिर उदय होने तक के समय को नाक्षत्र दिन और सूर्य के एक उदय से लेकर दूसरे उदय तक के समय को सावन दिन कहते हैं। परन्तु उदय होने का समय ठीक-ठीक जानना बड़ा कठिन होता है क्योंकि इस काम के लिए ऐसा क्षितिज होना चाहिए जहाँ वृक्ष इत्यादि न हों जो सब जगह के लिए प्रायः असम्भव है क्योंकि ऐसा मैदान साधारणतः बहुत कम मिलता है जहाँ कई कोस तक पूर्व या पच्छिम दिशा में कोई वृक्ष न हों। यदि ऐसा क्षितिज भी मिल जाय तो प्रकाश की किरणों के झुक जाने से सूर्य या तारे का उदय उचित समय से कुछ पहले ही हो जाता है जिसका परिमाण वातावरण की भिन्न-भिन्न दशाओं के अनुसार घटता बढ़ता रहता

है। इसलिए बहुत सूक्ष्म गणना के लिए उदयकाल से समय की परीक्षा नहीं की जाती वरन् मध्यान्ह काल से की जाती है। इसलिए सावन या नाक्षत्र दिन की परिभाषा आजकल यों की जाती है :—

सूर्य का केन्द्र जिस क्षण यामोत्तर वृत्त पर आता है उस क्षण से लेकर फिर उसका केन्द्र जिस क्षण यामोत्तर वृत्त पर आता है उस क्षण तक के समय को 'स्पष्ट सावन दिन' कहते हैं।

वसंत सम्पात विन्दु जिस क्षण यामोत्तर वृत्त पर आता है उस क्षण से लेकर फिर यह बिन्दु जिस क्षण यामोत्तर वृत्त पर आता है उस क्षण तक के समय को 'नाक्षत्र दिन' कहते हैं।

वसंत सम्पात विन्दु की गति प्रायः समान होती है। इसलिए नाक्षत्र दिन सदा समान* होता है। परन्तु सावन दिन के परिमाण में बहुत भेद पड़ जाता है क्योंकि सूर्य की दैनिक गति निरंतर बदला करती है। इसका पता नाक्षत्र काल सूचित करने वाली घड़ियों से सहज ही लग सकता है। यदि घड़ी ऐसी बनायी जाय कि वसंत सम्पात विन्दु के यामोत्तर वृत्त पर आने के समय उसमें ठीक १२ बजा करे तो ऐसी घड़ी को नाक्षत्र घड़ी (घटिका यंत्र) कहते हैं। इस तरह के घटिका यंत्र से सहज ही जाना जा सकता है कि सावन दिनों के परिमाणों में कितना अन्तर हो जाता है। उदाहरण के लिए १९०६ ई० के चार सावन दिनों के† परिमाण दिये जाते हैं :—

१९०६ ई०	(नाक्षत्रकाल) घंटा	मिनट	सेकंड
१ली जनवरी के स्पष्ट मध्याह्न से २री जनवरी के स्पष्ट मध्याह्न तक का समय	२४	४	२४.६
२री अप्रैल के स्पष्ट मध्याह्न से ३री अप्रैल के स्पष्ट मध्याह्न तक का समय	२४	३	३८.५
३री जुलाई के स्पष्ट मध्याह्न से ४थी जुलाई के स्पष्ट मध्याह्न तक का समय	२४	४	७.५
२री अक्टूबर के स्पष्ट मध्याह्न से ३री अक्टूबर के स्पष्ट मध्याह्न तक का समय	२४	३	३७.६

---

* अक्ष विचलन के कारण वसन्त सम्पात का स्पष्ट स्थान से पूर्व मध्यम स्थान या पच्छिम हो जाता है (देखो पृष्ठ २४७)। परन्तु इससे नाक्षत्र दिन के परिमाण में इतना कम अन्तर पड़ता है कि उसको नहीं के समान समझ लेने में कोई हानि नहीं होती।

†Ball's Spherical Astronomy पृष्ठ २१५

इससे प्रकट है कि स्पष्ट सावन दिन का मान समान नहीं होता। १ली जनवरी के मध्यान्ह से दूसरी जनवरी के मध्यान्ह तक के सावन दिन का मान दूसरी और तीसरी अप्रैल के सावन दिन के मान से ४६.४ सेकंड बड़ा होता है, इत्यादि। ऐसी घड़ी बनाना असम्भव है जो सूर्य की गति के अनुसार अपनी चाल घटाया-बढ़ाया करे क्योंकि यांत्रिक बल से चलनेवाली घड़ी सदा समान चाल से चलेगी। इसलिए ऐसी घड़ियों से जो समय जाना जाता है वह धूपघड़ी के समय से भिन्न रहता है क्योंकि धूपघड़ी से स्पष्ट सावन दिन का मान जाना जाता है जो प्रतिदिन बदलता रहता है। यदि नाक्षत्र काल बतलाने वाली घड़ी से काम लिया जाय तो लौकिक व्यवहार में सुविधा नही होती क्योंकि नाक्षत्र काल के २४ घंटे सावन दिन के २४ घंटे से ४ मिनट के लगभग छोटे होते हैं। इसलिए यदि आज सूर्य का यामोत्तरोल्लंघन नाक्षत्र घड़ी में ठीक १२ बजे होता है तो कल सूर्य का यामोत्तरोल्लंघन नाक्षत्र घड़ी के १२ बजकर ४ मिनट पर होगा। इस तरह प्रतिदिन चार-चार मिनट पीछे होते-होते १५ दिन में सूर्य का यामोत्तरोल्लंघन नाक्षत्र घड़ी के १ बजे होगा, १ महीने मे सूर्य का यामोत्तरोल्लंघन नाक्षत्र घड़ी के २ बजे और दो महीने में नाक्षत्र घड़ी के ४ बजे होगा, इत्यादि। इस प्रकार प्रत्यक्ष है कि सूर्य का उदय अस्त नाक्षत्र घड़ी के अनुसार दिन के किसी समय हो सकता है जो लौकिक व्यवहार के लिए उपयोगी नहीं हो सकता क्योंकि साधारणतः सूर्य के उदय अस्त और यामोत्तरोल्लंघन से ही समय का निश्चय करना सुगम होता है।

इस दुविधा को मिटाने के लिये ज्योतिषियों ने यह निश्चय किया है कि ज्योतिष के काम के लिए तो ऐसी ही घड़ियाँ काम में लायी जायँ जिनसे नाक्षत्रकाल सूचित होता है, परन्तु लौकिक व्यवहार वाली घड़ियाँ ऐसी हों जिनसे मध्यम सावन दिन के घंटे मिनट सेकंड अथवा घड़ी, पल सूचित हों। ऐसा करने से इन घड़ियों का समय स्पष्ट सावन दिन सूचित करने वाली धूपघड़ियों से कुछ भिन्न अवश्य रहता है परन्तु यह भिन्नता १६ मिनट से अधिक नहीं बढ़ने पाती। मध्यम सावन दिन का मान कई वर्षों के स्पष्ट सावन दिनों का मध्यम मान (औसत) होता है। १६०६ ई० के ऊपर लिखे हुए चार दिनों का मध्यम मान २४ घंटा ३ मिनट ५७.१ सेकंड होता है जो एक सावन दिन के मध्यम मान के बहुत निकट है। यदि कई वर्षों के स्पष्ट सावन दिनों के मानों का मध्यम मान निकाला जाय तो एक मध्यम सावन दिन नाक्षत्र काल के २४ घंटा ३ मिनट ५६.५५५ सेकण्ड के समान होता है। नीचे के उदाहरण से स्पष्ट होगा कि मध्यम सावन दिन का मान वेध से कैसे जाना जाता है।

मध्यम सावन दिन का मान निश्चय करना

१८३६ ई० की ४थी जुलाई के दिन जिस समय स्पष्ट सूर्य का केन्द्र यामोत्तर-

वृत्त पर था उस समय इसका स्पष्ट विषुवांश (right ascension) ६ घंटा ५४ मिनट ७·०३ सेकण्ड था।* इसी प्रकार १८६० ई० की ४थी जुलाई के दिन यामोत्तरोल्लंघनकाल में सूर्य के केन्द्र का स्पष्ट विषुवांश ६ घंटा ५३ मिनट ५४·६१ सेकण्ड था। इससे मध्यम सावन दिन का मान निश्चय करो।

पहले यह जानना आवश्यक है कि १८६० ई० की ४थी जुलाई के ६ घंटा ५३ मिनट ५४·६१ सेकण्ड (नाक्षत्रकाल) तक कितना समय नाक्षत्रकाल में बीता।

यह स्पष्ट है कि एक सायन वर्ष में अर्थात् एक सायन मेष संक्रान्ति से दूसरी सायन मेष संक्रान्ति तक के समय में वसन्त सम्पात विन्दु जितने बार यामोत्तरोल्लंघन करता है उससे एक बार कम सूर्य यामोत्तरोल्लंघन करता है क्योंकि पृथ्वी की गति के कारण सूर्य प्रतिदिन एक अंश पूर्व की ओर बढ़ जाता है जिससे यह प्रदिदिन वसन्त सम्पात से ४ मिनट के लगभग पीछे यामोत्तरोल्लंघन करता है। इस तरह पिछड़ते पिछड़ते १ वर्ष में सूर्य पूरा १ दिन पिछड़ जाता है अर्थात् १ वर्ष में सूर्य का यामोत्तरोल्लंघन वसन्त सम्पात विन्दु के यामोत्तरोल्लंघन से १ बार कम पड़ जाता है।

१८३६ ई० की चौथी जुलाई से १८६० ई० की ४थी जुलाई तक ५४ वर्ष होते हैं जिनमें १८४०, १८४४, १८४८ इत्यादि १३ अधिक वर्ष (लीप इयर) हैं और शेष ४१ वर्ष साधारण वर्ष हैं। इसलिए यह अवधि ४१ × ३६५ + १३ × ३६६ अर्थात् १६७२३ सावन दिन के समान हुई। ऊपर सिद्ध किया गया है कि एक वर्ष में वसन्त सम्पात विन्दु का यामोत्तरोल्लंघन सूर्य के यामोत्तरोल्लंघन से १ बार अधिक होता है इसलिए ५४ वर्षों में वसन्त सम्पात विन्दु का यामोत्तरोल्लंघन ५४ बार अधिक होगा। इस प्रकार उपर्युक्त अवधि में १६७२३ + ५४ = १६७७७ नाक्षत्र दिन हुए। इसलिए १८३६ ई० की ४थी जुलाई के सूर्य के यामोत्तरोल्लंघन काल से १८६० ई० की ४थी जुलाई के यामोत्तरोल्लंघन काल तक १६७७७ दिन ६ घंटा ५३ मिनट ५४·६१ से० − ६ घंटा ५४ मिनट ७·०३ सेकण्ड अर्थात् १६७७६ दिन २३ घंटा ५६ मिनट ४७·५८ से० समय नाक्षत्र काल में हुआ।

इसलिए यह नाक्षत्र काल १६७२३ स्पष्ट सावन दिनों के समान हुआ। अब यदि उपर्युक्त नाक्षत्र काल को १६७२३ से भाग दे दिया जाय तो १ मध्यम सावन दिन का मान नाक्षत्र काल में २४ घंटा ३ मिनट ५६·५५५ सेकण्ड आता है। इसलिए

---

*सूर्य के केन्द्र से होता हुआ ध्रुवप्रोतवृत्त विषुवद्वृत्त के जिस विन्दु पर पहुँचता है उसका वसंत सम्पात से जो अन्तर होता है उसे सूर्य के केन्द्र का विषुवांश कहते हैं। यह अंश, कला, विकला तथा घंटा, मिनट, सेकण्ड दोनों में प्रकट किया जाता है। १ अंश ४ मिनट या १० पल के समान होता है।

१ मध्यम सावन दिन=२४ घंटा ३ मिनट ५६·५५५ सेकण्ड (नाक्षत्र)

मध्यम और स्पष्ट सावन दिनों का भेद समझाने के लिए ज्योतिषियों ने एक ऐसे सूर्य की कल्पना की है जो विषुवद्वृत्त पर सदैव समान गति से चलता हुआ माना गया है और नाक्षत्र काल के २४ घंटा ३ मिनट ५४.५५५ सेकण्ड पीछे प्रतिदिन याम्योत्तर वृत्त पर आता है। जिस क्षण यह कल्पित सूर्य याम्योत्तरोल्लंघन करता है उसी क्षण मध्यम मध्यान्ह होता है और मध्यम काल सूचित करनेवाली घड़ियों में ठीक १२ बजता है। यह ऊपर बतलाया गया है कि वर्ष भर के स्पष्ट सावन दिनों का मध्यममान ही मध्यम सावन दिन के समान होता है इसलिए यह प्रकट है कि जितने समय में उपर्युक्त कल्पित सूर्य विषुवद्वृत्त पर चलता हुआ एक चक्कर पूरा कर लेता है उतने ही समय में स्पष्ट सूर्य क्रान्तिवृत्त पर चलता हुआ एक चक्कर पूरा करता है। इसलिए क्रान्तिवृत्त पर स्पष्ट सूर्य की जो मध्यम दैनिक गति होती है वह विषुवद्वृत्त पर इस कल्पित सूर्य की गति होती है। इससे सिद्ध है कि समान काल में कल्पित सूर्य का विषुवांश उतना ही बढ़ता है जितना स्पष्ट सूर्य का भोगांश बढ़ता है।

३२० पृष्ठ की सारिणी से* प्रकट है कि जब तक स्पष्ट सूर्य का भोगांश ९० अंश से कम होता है तब तक इसका विषुवांश भोगांश से कम रहता है। परन्तु उपर्युक्त कल्पित सूर्य का विषुवांश सदैव स्पष्ट सूर्य के मध्यम भोगांश के समान होता है। इसलिए यह सिद्ध है कि जब तक कल्पित सूर्य का विषुवांश अथवा सूर्य का मध्यम भोगांश ९० अंश से कम होता है तब तक कल्पित सूर्य का ध्रुवप्रोतवृत्त स्पष्ट सूर्य के ध्रुवप्रोतवृत्त से पूर्व की ओर होता है। इसलिए स्पष्ट सूर्य का ध्रुवप्रोतवृत्त कल्पित सूर्य से पहले याम्योत्तर वृत्त पर आता है और स्पष्ट मध्याह्न मध्यम मध्याह्न से पहले होता है। इसलिए जिस समय धूप घड़ी में जो स्पष्ट सूर्य के अनुसार समय बतलाती है १२ बजता है उससे पीछे मध्यमकाल बतलाने वाली घड़ियों में १२ बजेगा। अर्थात् धूपघड़ी मध्यम घड़ी से तेज होगी। जितना तेज होगी उतना ही धूपघड़ी के समय से घटाने पर मध्यम घड़ी का समय ज्ञात होगा।

इसी प्रकार जब तक स्पष्ट सूर्य का मध्यम भोगांश ९० अंश से अधिक और १८० अंश से कम होगा अर्थात् जब सूर्य सायन कर्क से सायन कन्या राशि में रहेगा

---

*इस सारिणी में जो भोगांश दिया हुआ है उसे कल्पित सूर्य का विषुवांश और जो विषुवांश दिया हुआ है उसे स्पष्ट सूर्य का विषुवांश समझ लेने से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस समय स्पष्ट सूर्य का ध्रुवप्रोतवृत्त कल्पित सूर्य के ध्रुवप्रोतवृत्त के आगे या पीछे है।

तब तक स्पष्ट सूर्य का ध्रुवप्रोतवृत्त कल्पित सूर्य से पूर्व की ओर रहता है। क्योंकि स्पष्ट सूर्य का विषुवांश कल्पित सूर्य के विषुवांश से जो स्पष्ट सूर्य के मध्यम भोगांश के समान होता है अधिक होगा (देखो ३२० पृष्ठ की सारिणी)। ऐसी दशा में स्पष्ट सूर्य कल्पित सूर्य से पीछे यामोत्तरोल्लंघन करेगा अर्थात् धूपघड़ी मध्यम घड़ी से पीछे (मन्द या सुस्त) रहेगी। इसलिए धूपघड़ी के समय में दोनों के विषुवांशों का अन्तर जोड़ने पर यांत्रिक घड़ी (मध्यम घड़ी) का समय ज्ञात होगा। इसी प्रकार जब स्पष्ट सूर्य सायन तुलादि तीन राशियों में होगा तब धूपघड़ी मध्यम घड़ी से आगे रहेगी और धूपघड़ी के समय से स्पष्ट सूर्य और कल्पित सूर्य के विषुवांशों का अन्तर घटाने पर मध्यम घड़ी का समय ज्ञात होगा और जब स्पष्ट सूर्य सायन मकरादि तीन राशियों में रहेगा तब धूपघड़ी के समय में दोनों के विषुवांशों का अन्तर जोड़ने पर मध्यम समय ज्ञात होगा।

परन्तु स्पष्ट सूर्य क्रान्तिवृत्त पर सदा समान गति से नहीं चलता। कभी इसकी गति तीव्र हो जाती है और कभी मन्द। इसलिए इसके कारण भी स्पष्ट सूर्य यामोत्तर वृत्त पर उस समय नहीं आवेगा जिस समय मध्यम सूर्य आता है जैसा कि ऊपर बतलाया गया है। स्पष्ट सूर्य और मध्यम सूर्य क्रान्तिवृत्त के केवल मन्दोच्च और नीच स्थानों पर साथ रहते हैं (देखो पृष्ठ ८०-८२)। जब सूर्य मन्दोच्च से आगे बढ़ता है तब स्पष्ट सूर्य की दैनिक गति मध्यम सूर्य की दैनिक गति से कम होने के कारण स्पष्ट सूर्य मध्यम सूर्य से पीछे पड़ जाता है अर्थात् मध्यम सूर्य से स्पष्ट सूर्य पूर्व की ओर बढ़ा रहता है इसलिए स्पष्ट सूर्य मध्यम सूर्य से पहले यामोत्तर वृत्त पर आता है अर्थात् स्पष्ट मध्यान्ह मध्यम मध्यान्ह से पहले होता है। इस कारण भी धूप-घड़ी का समय मध्यम काल से आगे रहता है। यह दशा तब तक रहती है जब तक सूर्य नीच पर नहीं पहुँच जाता है। यहाँ से आगे बढ़ने पर स्पष्ट सूर्य की गति मध्यम गति से अधिक होती है इसलिये स्पष्ट सूर्य मध्यम सूर्य से आगे पूर्व की ओर रहता है। इसलिए स्पष्ट मध्यान्ह मध्यम मध्यान्ह से पीछे होता है अर्थात धूपघड़ी मध्यम घड़ी से सुस्त रहती है।

इन दोनों कारणों से अर्थात् सूर्य के क्रान्तिवृत्त पर चलने तथा दैनिक गति के समान न होने से स्पष्ट काल और मध्यम काल में कुछ अन्तर होता है। स्पष्ट काल में जितना समय घटाने या जोड़ने से मध्यम काल ज्ञात होता है उसी को 'काल समीकरण' कहते हैं। इसको यों भी लिखते हैं :—

मध्यमकाल = स्पष्टकाल + काल समीकरण*

* वेंकटेश बापू केतकर ने अपने ज्योतिर्गणित में इसका नाम उदयान्तर रखा है (ज्यो० ग० पृष्ठ ७१)

जब काल समीकरण धनात्मक होता है तब जोड़ा जाता है और ऋणात्मक होता है तब घटाया जाता है।

काल समीकरण का निश्चय करना—

अब यह सिद्ध हो गया कि उपर्युक्त कल्पित सूर्य के विषुवांश और स्पष्ट सूर्य के विषुवांश के अन्तर को ही काल-समीकरण कहते हैं। इसलिए काल-समीकरण जानने का गुरु नीचे लिखी रीति के अनुसार सहज ही निकल सकता है :—

पृष्ठ ३०२-३०३ में दिखाया गया है कि

$$\text{विषुवांश की स्पर्शरेखा} = \frac{\text{परम क्रान्ति कोटि ज्या}}{\text{सायन भोगांश की कोटि स्पर्शरेखा}}$$

यदि विषुवांश को सूचित करने के लिए व, परम क्रान्ति के लिए क और स्पष्ट सायन भोगांश के लिए भ मान लिये जायँ तो

$$\text{स्परे व} = \text{कोटिज्या क} \times \frac{१}{\text{कोस्परे भ}}$$

$$= \text{कोटिज्या क} \times \text{स्परे भ} \qquad (१)$$

यह समीकरण उसी रूप में है जिस रूप में स्पष्ट केन्द्र और उत्केन्द्र का सम्बन्ध सूचित करनेवाला समीकरण है [देखो पृष्ठ १६४ समीकरण (३)]। इसलिए इस समीकरण का भी विस्तार १६४-१६८ पृष्ठों में लिखी गयी रीति के अनुसार हो सकता है। इस प्रकार यह सिद्ध हो सकता है कि

$$२\,\text{व} = २\,\text{भ} + २\left(-\text{स्परे}^{२}\frac{\text{क}}{२}\,\text{ज्या}\,२\,\text{भ} + \frac{१}{२}\text{स्परे}^{४}\frac{\text{क}}{२}\,\text{ज्या}\,४\,\text{भ} - \frac{१}{२}\text{स्परे}^{६}\frac{\text{क}}{२}\,\text{ज्या}\,६\,\text{भ} + \cdots\cdots\right)$$

अथवा

$$\text{व} - \text{भ} = -\text{स्परे}^{२}\frac{\text{क}}{२}\,\text{ज्या}\,२\,\text{भ} + \frac{१}{२}\text{स्परे}^{४}\frac{\text{क}}{२}\,\text{ज्या}\,४\,\text{भ} - \frac{१}{३}\text{स्परे}^{६}\frac{\text{क}}{२}\,\text{ज्या}\,६ + \cdots \qquad (२)$$

$$\text{यहां} -\text{स्परे}^{२}\frac{\text{क}}{२} = -\frac{१ - \text{कोज्या क}}{१ + \text{कोज्या क}} = \frac{\text{कोज्या क} - १}{\text{कोज्या क} + १}$$

इसलिए जैसे पृष्ठ १६७ में प का मान निश्चित किया गया है उसी प्रकार यहाँ $-\text{स्परे}^{२}\frac{\text{क}}{२}$ का मान आया है।

समीकरण (२) के प्रत्येक पद चापीय मानों (radian) में हैं (देखो पृष्ठ

व—भ का मान कलाओं में तथा असुओं में ज्ञात हो जायगा। इस सूत्र से हम सूर्य के किसी सायन भोगांश का विषुवांश सहज ही जान सकते हैं।

यह बतलाया गया है (देखो पृष्ठ ३०६) कि सूर्य की परम क्रान्ति विक्रम की २१वीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध तक २३°२७′ मान लेने में कुछ हानि नहीं है इसलिए

$$\text{स्परे}^{2} \frac{\text{क}}{2} = \text{स्परे}^{2} \frac{२३^\circ२७'}{२} = \text{स्परे}^{2}\, ११^\circ४३'.५ = (.२०७५)^{2} = .०४३०५$$

$$\text{स्परे}^{4} \frac{\text{क}}{2} = (.०४३०५)^{2} = .००१८५$$

$$\text{स्परे}^{6} \frac{\text{क}}{2} = .००१८५ \times .०४३०५ = .००००८$$

इसलिए समीकरण (२) के दाहिने पक्ष को ३४३७.७५ से गुणा करने तथा $\text{स्परे}^{2} \frac{\text{क}}{2}$, $\text{स्परे}^{4} \frac{\text{क}}{2}$, इत्यादि के मान उत्थापन करने पर इसका रूप यह हो जायगा—

$$\text{व} - \text{भ} = १४७'.९९२ \text{ ज्या } २\text{ भ} + ३'.१८ \text{ ज्या } ४\text{ भ} - ०'.०९ \text{ ज्या } ६\text{ भ} + \cdots \quad (३)$$

इस समीकरण के दाहिने पक्ष के पद इतनी शीघ्रता से छोटे हो रहे हैं कि तीसरे पद के आगे आनेवाले पदों को छोड़ देने से कुछ भी हानि नहीं हो सकती। यदि तीसरा पद भी छोड़ दिया जाय तो भी विशेष हानि नहीं। इस प्रकार स्पष्ट भोगांश और उसके विषुवांश का अन्तर कलाओं या असुओं में सहज ही जाना जा सकता है जिससे विषुवांश और भोगांश की सारिणी २२० पृष्ठ की सारिणी की तरह सहज ही बनायी जा सकती है।

अब इस सूत्र की सहायता से कल्पित सूर्य के मध्यम विषुवांश और स्पष्ट सूर्य के विषुवांश का सम्बन्ध भी जानना आवश्यक है क्योंकि काल समीकरण तो स्पष्ट सूर्य के विषुवांश और कल्पित सूर्य के विषुवांश का अन्तर है। परन्तु कल्पित सूर्य का विषुवांश सूर्य के मध्यम भोगांश के समान होता है। इसलिए समीकरण (२) और पृष्ठ १७८ के समीकरण (छ) से यह काम सहज ही निकल सकता है।

पृष्ठ १७८ के समीकरण (छ) का नीचे लिखा संक्षिप्त रूप पर्याप्त होगा—

$$\text{स} = \text{म} + २\text{ च ज्या म} + \frac{५}{४}\text{ च}^{2} \text{ ज्या } २\text{ म}$$

यहाँ स = स्पष्ट मन्द केन्द्र, म = मध्यम मन्द केन्द्र और च = पृथ्वी की केन्द्रच्युति जो $\frac{c}{५९.७०}$ के समान है।

नीच (Perigee) से ग्रह के अन्तर को मन्द केन्द्र कहते हैं (देखो पृष्ठ १६२)। इसलिए यदि मन्द केन्द्र में नीच का भोगांश जोड दिया जाय तो ग्रह का भोगांश आ जायगा। यदि पृथ्वी के नीच का भोगांश नी मान लिया जाय तो

स्पष्ट भोगांश = स + नी

और मध्यम भोगांश = म + नी

स्पष्ट भोगांश को भ माना गया है इसलिए मध्यम भोगांश को भा मान लेना उचित होगा। इसलिए

भ = स + नी अथवा स = भ − नी

भा = म + नी अथवा म = भा − नी

स और म के इन मानों को समीकरण (छ) के संक्षिप्त रूप में उत्थापित करने से

$$\text{भ} - \text{नी} = \text{भा} - \text{नी} + 2\,\text{च ज्या}\,(\text{भा} - \text{नी}) + \tfrac{5}{4}\,\text{च}^2\,\text{ज्या}\,2\,(\text{भा} - \text{नी})$$

अथवा

$$\text{भ} = \text{भा} + 2\,\text{च ज्या}\,(\text{भा} - \text{नी}) + \tfrac{5}{4}\,\text{च}^2\,\text{ज्या}\,2\,(\text{भा} - \text{नी}) \qquad (4)$$

समीकरण (२) और (४) की सहायता से एक ऐसा समीकरण ज्ञात हो सकता है जिसमें भ न रहे। ऐसे समीकरण से स्पष्ट विषुवांश और माध्यम भोगांश अथवा कल्पित सूर्य के विषुवांश का सम्बन्ध सहज ही जाना जा सकता है। यह प्रकट है कि उपर्युक्त दोनों समीकरणों के योग से ऐसे पद भी प्राप्त होंगे जिनके गुणक बहुत छोटे हों और जिनके रखने से प्राप्त समीकरण का रूप बहुत बढ़ जायगा परन्तु उससे अधिक लाभ नहीं होगा। इसलिए जिन पदों के गुणक ·०००१ से कम होंगे उनको छोड़ दिया जायगा। समीकरण (२) के भ की जगह समीकरण (४) का दाहिना पक्ष उत्थापित करने से और ऐसे पदों को छोड़ देने से जिनके गुणक .०००१ से कम हों, हमें नीचे लिखा समीकरण प्राप्त होगा।

$$\text{व} = \text{भा} + 2\,\text{च ज्या}\,(\text{भ} - \text{नी}) + \tfrac{5}{4}\,\text{च}^2\,\text{ज्या}\,2\,(\text{भा} - \text{नी})$$

$$- \text{स्परे}^2 \frac{\text{क}}{2}\,\text{ज्या}\,2\,[\text{भ} + 2\,\text{चज्या}\,(\text{भा} - \text{नी}) + \tfrac{5}{4}\,\text{च}^2\,\text{ज्या}\,2\,(\text{भा} - \text{नी})]$$

$$+ \tfrac{1}{2}\,\text{स्परे}^4 \frac{\text{क}}{2}\,\text{ज्या}\,4\,[\text{भा} + 2\,\text{चज्या}\,(\text{भा} - \text{नी}) + \tfrac{5}{4}\,\text{च}^2\,\text{ज्या}\,2\,(\text{भा} - \text{नी})]$$

यहाँ $\tfrac{5}{4}$ च² ज्या २ (भा − नी) भी बहुत छोटा है इसलिए चौथे और पांचवें पदों में इसको भी छोड़ देने पर यह पद क्रमानुसार नीचे के रूप के हो जायेंगे।

$$\text{स्परे}^2 \frac{\text{क}}{2}\,\text{ज्या}\,[2\,\text{भा} + 4\,\text{च ज्या}\,(\text{भा} - \text{नी})]\ \text{और}$$

$$+\frac{१}{२}\text{स्परे}^{४}\frac{\text{क}}{२}\text{ज्या}\left[४\text{ भा}+८\text{ च ज्या }(\text{भा}-\text{नी})\right]$$

इसमें से चौथा पद

$$=-\text{स्परे}^{२}\frac{\text{क}}{२}\{\text{ज्या }२\text{ भा}\times\text{कोज्या }[४\text{ च ज्या }(\text{भा}-\text{नी})]$$

$$+\text{कोज्या }२\text{ भा}\times\text{ज्या }[४\text{ च ज्या }(\text{भा}-\text{नी})]\}$$

$$=-\text{स्परे}^{२}\frac{\text{क}}{२}\{\text{ज्या }२\text{ भा}+\text{कोज्या }२\text{ भा}\times४\text{ च ज्या }(\text{भा}-\text{नी})\}$$

क्योंकि ४ च ज्या (भा — नी) बहुत छोटा कोण है इसलिए इसकी कोटिज्या एक के समान होगी और इसकी ज्या इसी के समान होगी। (देखो Hall and Knight's Trigonometry पृष्ठ २६२)

इसी प्रकार पाँचवाँ पद

$$=\frac{१}{२}\text{स्परे}^{४}\frac{\text{क}}{२}\{\text{ज्या }४\text{ भा}\times\text{कोज्या }[८\text{ चज्या }(\text{भा}-\text{नी})]$$

$$+\text{कोज्या }४\text{ भा}\times\text{ज्या }[८\text{ च ज्या }(\text{भा}-\text{नी})]\}$$

$$=\frac{१}{२}\text{स्परे}^{४}\frac{\text{क}}{२}\{\text{ज्या }४\text{ भा}+\text{कोज्या }४\text{ भा}\times८\text{ च ज्या }(\text{भा}-\text{नी})\}$$

$$=\frac{१}{२}\text{स्परे}^{४}\frac{\text{क}}{२}\text{ ज्या }४\text{ भा}$$

क्योंकि इसके दूसरे पद का गुणक .०००१ से भी कम है इसलिए

$$\text{व}=\text{भा}+२\text{ चज्या }(\text{भा}-\text{नी})+\frac{५}{४}\text{च}^{२}\text{ ज्या }२\text{ }(\text{भा}-\text{नी})$$

$$-\text{स्परे}^{२}\frac{\text{क}}{२}\{\text{ज्या }२\text{ भा}+४\text{ चज्या }(\text{भा}-\text{नी})\times\text{कोज्या }२\text{ भा}\}$$

$$+\frac{१}{२}\text{स्परे}^{४}\frac{\text{क}}{२}\text{ज्या }४\text{ भा}\cdots \qquad (५)$$

परन्तु $२\text{ ज्या }(\text{भा}-\text{नी})\times\text{कोज्या }२\text{ भा}$

$$=\text{ज्या }(\text{भा}-\text{नी}+२\text{ भा})+\text{ज्या }(\text{भा}-\text{नी}-२\text{ भा})$$

$$=\text{ज्या }(३\text{ भा}-\text{नी})-\text{ज्या }(\text{भा}+\text{नी})$$

इसलिए यदि समीकरण (५) सरल किया जाय और इसके पद बड़ाई छुटाई के अनुसार क्रम से लिखे जायँ तो

$$\text{व}=\text{भा}+२\text{च ज्या }(\text{भा}-\text{नी})-\text{स्परे}^{२}\frac{\text{क}}{२}[\text{ज्या }२\text{ भा}]$$

$$+२ \text{ च स्परे}^२ \frac{क}{२} \text{ज्या} (\text{ भा}+\text{नी}) + \frac{५}{४} \text{च}^२ \text{ ज्या } २ (\text{भा}-\text{नी})$$

$$-२ \text{ च स्परे}^२ \frac{क}{२} \text{ ज्या } (३ \text{ भा}-\text{नी}) + \frac{१}{२} \text{स्परे}^४ \frac{क}{२} \text{ ज्या } ४ \text{ भा} \cdots (६)$$

बस इसी समीकरण से कल्पित सूर्य के विषुवांश अथवा सूर्य के मध्यम सायन भोगांश भा और स्पष्ट सूर्य के विषुवांश व का सम्बन्ध जाना जा सकता है। दाहिने पक्ष में भा के पश्चात् जितने पद आते हैं सब मिलकर काल-समीकरण (equation of time) कहलाते हैं। इन सब पदों में भी पहिले दो पद २च ज्या (भा—नी) — स्परे$^२ \frac{क}{२}$ ज्या २ भा बड़े महत्व के हैं क्योंकि अन्य पदों के गुणक इतने छोटे हैं कि छोड़ दिये जा सकते हैं। इसलिए

व = भा + काल-समीकरण

जहाँ काल-समीकरण = २ च ज्या (भा — नी) - स्परे$^२ \frac{क}{२}$ ज्या २ भा

यह रेडियन में प्रकट किया गया है। यदि असुओं में प्रकट करना है तो इसे ३४३७.७५ से गुणा कर देना चाहिए क्योंकि १ रेडियन = ३४३७′.७५ और विषुवद्-वृत्त की एक कला की गति एक असु में होती है। इसलिए असुओं में काल समीकरण का रूप यह होगा।

$$३४३७.७५ \{२ \text{ च ज्या } (\text{भा}-\text{नी}) - \text{स्परे}^२ \frac{क}{२} \text{ ज्या } २ \text{ भा} \} \qquad (७)$$

यदि च की जगह ०·०१६७५ और नी की जगह २८१°२६′१४″ रख दिया जाय जो १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति काल में सूर्य के नीच का सायन भोगांश* था तो

---

* सूर्य के नीचे का यह सायन भोगांश १९२५ ई० के Nautical Almanac पृष्ठ ६२९ के इस सूत्र से जाना गया है—

Mean longitude of solar perigee

$$=281°13'15''.0+6189''\cdot03\tau+1''\cdot63\tau^2+0''\cdot012\tau^3$$

जब कि २८१°१३′१५″ सन् १९०० ई० की जनवरी की पहली तारीख के मध्यान्ह काल का नीच का सायन भोगांश है और τ उस समय से इष्टकाल तक का जूलियन शताब्दी का भिन्न है। १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति के लिए $\tau = \frac{८१३७}{३६५२५}$ जब कि १९०० ई० की जनवरी के पहले मध्यान्ह से १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति के मध्यान्ह तक के दिनों की संख्या ८१३७ है और ३६५२५ जूलियन शताब्दी के दिनों की संख्या है।

२ चज्या (भा—नी)

=२ च (ज्या भा×कोज्या नी—कोज्या भा×ज्या नी)

=२ च (ज्या भा×कोज्या २८१°३६′१४″—कोज्या भा×ज्या २८१°३६′१४″)

=२ च{ज्या भा×कोज्या (३६०°—७८°२३′४६″) —कोज्या भा×ज्या (३६०°—७८°२३′४६″)}

= २ च {ज्या भा×कोज्या ७८°२३′४६″+कोज्या भा ×ज्या ७८°२३′४६″}

= २×·०१६७५ (.२०११ ज्या भा+·९७९६ कोज्या भा)

=·००६७४ ज्या भा+·०३२८२ कोज्या भा

∴ काल समीकरण (७) का रूप यह होगा

३४३७·७५ (.००६७४ ज्या भा+.०३२८२ कोज्या भा —·०४३·५ ज्या २ भा)

=२३′·१७ ज्या भा+११२′.८३ कोज्या भा—१४८′·० ज्या २ भा (८)

इसमें इष्टकाल के सूर्य के मध्यम भोगांश भा का मान स्थापित करके ज्या भा, कोज्या भा इत्यादि के मान जाने जा सकते हैं जिससे इष्टकाल का काल-समीकरण जाना जा सकता है। यह असुओं में होगा।

यह प्रकट है कि काल-समीकरण का यह मान सदा के लिए शुद्ध नहीं है क्योंकि इसका यह रूप उस समय आया है जब सूर्य का नीच २८१°३६′१४″ समझा गया है। सूर्य के नीच का सायन भोगांश प्रतिवर्ष १ कला के लगभग आगे बढ़ता है इसलिए १० या १५ वर्षों तक यही समझ लेने में अधिक अशुद्धि नहीं होगी। सूर्य की परम क्रान्ति के भी घटते रहने से कुछ अन्तर हो जाता है परन्तु इसकी गति बहुत मंद है इसलिए इसके कारण १०० वर्ष तक बहुत भेद नहीं हो सकता।

यह बतलाया गया है कि वसंत सम्पात विन्दु के यामोत्तरोल्लंघन के उपरान्त जितना समय नाक्षत्र घड़ी में बीता रहता है उसे नाक्षत्र काल (sidereal time) कहते हैं। यदि किसी समय का नाक्षत्रकाल ना हो और उसी समय स्पष्ट सूर्य का विषुवांश व हो तो स्पष्ट सूर्य के यामोत्तरोल्लंघन के उपरान्त ना—व समय बीता है। इसलिए उस समय के स्पष्ट सूर्य का नतकाल† (hour angle) या

---

† सूर्य या तारे के यामोत्तरोल्लंघन के समय से इष्टकाल तक जितना समय होता है उसको सूर्य या तारे का नतकाल (hour angle) कहते हैं। आजकल पूर्व नतकाल और पच्छिम नतकाल का भेद नहीं माना जाता जैसा कि पृष्ट २३० में

स्पष्ट सावन काल* = ना − व

उसी समय मध्यम सूर्य का नतकाल ना − भा है

∴ मध्यम सावन काल = ना − भा = (ना − व) + (व − भा)

= स्पष्ट सावन काल + काल समीकरण

इसलिए यह सिद्ध हो गया कि काल समीकरण वह समय है जिसे स्पष्ट सावन काल में बीजगणित की रीति से जोड़ देने पर मध्यम सावन काल आ जाता है।

उदाहरण—१९७९ वि० की बसंत पंचमी की मध्यरात्रि के समय काल समीकरण क्या है ?

पहले सूर्य का मध्यम सायन भोगांश जानना चाहिए। इस समय सूर्य का मध्यम स्थान ९ रा ८°१२′६″ था (देखो पृष्ठ १४७)। १९७९ वि० की मेष संक्रान्तिकाल में अयनांश २२°३७′३८″ था (देखो पृष्ठ २५२)। मेष संक्रान्ति से २८३ दिन पीछे इस वर्ष वसंत पंचमी हुई थी (देखो पृष्ठ ३९)। इसलिए २८३ दिन में अयन की गति

$$५८''\cdot ६६ \times \frac{२८३}{३६५\cdot २५} = ४५''\cdot ५$$

इसलिए वसंत पंचमी की मध्यरात्रि में मध्यम अयनांश २२°३७′३८″·१ + ४५″·५ = २२°३८′२३″·६ हुआ। स्पष्ट अयनांश जानने के लिए अक्ष विचलन संस्कार भी करना चाहिए परन्तु विस्तार के भय से यह संस्कार छोड़ दिया जाता है। इसलिए २२°३८′२३″.६ को ही स्पष्ट अयनांश मान लिया जाता है। अब,

सूर्य का मध्यम स्थान = ९ रा ८°१२′६″

अयनांश = २२°३८′२४″

∴ सूर्य का सायन मध्यम भोगांश = १० रा ०°५०′३३″

= ३००°५०′३३″

इसलिए सूत्र (८) के अनुसार,

काल समीकरण = २३′.१७ ज्या ३००°५०′३३″

+ ११२′·८३ कोज्या ३००°५०′३३″

बतलाया गया है। यदि यामोत्तरोल्लंघन काल से २२ घंटा समय हो गया है तो कहेंगे कि नतकाल २२ घंटा है यद्यपि प्राचीन मतानुसार इस समय पूर्वनत २ घंटा होगा।

* यहाँ सावन काल का आरम्भ मध्यान्ह से माना गया है।

$-१४८'\cdot०$ ज्या $(२ \times ३००°५०'३३'')$

$= २३'\cdot१७$ (— ज्या $५९°९'२७''$)

$+ ११२'\cdot८३$ (कोज्या $५९°९'२७''$)

$- १४८'$ ज्या $६०१°४१'६''$*

$= - २३'\cdot१७ \times \cdot८५८६$

$+ ११२'\cdot८३ \times \cdot५१२६$

$- १४८'(- \cdot८८०४)$

$= - १९'\cdot८९ + ५७'\cdot८४ + १३०'\cdot३०$

$= + १६८'\cdot२५$

$= + १६८\cdot२५$ असु

$= + २८$ पल

यदि अधिक शुद्धता की आवश्यकता हो तो समीकरण (६) की सहायता से काल समीकरण का मान जानना चाहिए। यह भी ध्यान रहे कि सूर्य का जो मध्यम स्थान ऊपर लिया गया है वह सूर्य-सिद्धान्त की रीति से जाना गया है। यदि शुद्ध वेध से सूर्य का मध्यम सायन भोगांश निकाला† जाय तो ३०१°५'२'' होता है। इसलिए यदि समीकरण (६) तथा वेधसिद्ध मध्यम सायन भोगांश से काल समीकरण निकाला जाय तो नाटिकल अलमैनेक में दिए हुए काल समीकरण के समान होगा।

काल समीकरण प्रकट करने का वक्र (curve)

असुओं में काल समीकरण का रूप सूत्र (७) में यह है

$३४३७.७५ \{ २$ च ज्या (भा — नी) — स्परे$^{२} \frac{क}{२}$ ज्या २ भा$\}$

---

* $६०१°४१'६'' = ३६०° + २४१°४१'६' = ३६०° + १८०° + ६१°४१'६''$

$\therefore$ ज्या $६०१°४१'६''$ = ज्या $(१८०° + ६१°४१'६'')$ = — ज्या $६१°४१'६''$

† इसकी रीति यह है :—

१९७९ वि० की मेष संक्रान्ति काल में १९२२ के नाटिकल अलमैनेक के अनुसार सूर्य का मध्यम सायन भोगांश २०°४४'५८'' था। मेष सक्रान्ति से वसन्त पंचमी की अर्द्धरात्रि तक २८४.४१६७ मध्यम सावन दिन होते हैं और सूर्य के मध्यम सायन भोगांश की गति प्रतिदिन ०°.९८५६४७३३५३९ होती है। इनको गुणा कर देने से २८०°.३३४५६२५ अथवा २८०°२०' ४''.४ आता है। इसको मेष संक्रान्ति काल के सायन भोगांश में जोड़ देने से ३०१°५'२''.४ हुआ।

यदि नी को २८१°३६′ मान लिया जाय तो

भा − नी = भा − २८१°३६′ = भा − (३६०° − ७८°२४′)

　　= भा + ७८°२५′ − ३६०°

　　= भा + ७८°२४′†

इसलिए उपर्युक्त सूत्र का रूप यह होगा

३४३७.७५ {२ च ज्या (भा + ७८°२४′) − $\text{स्परे}^{२} \frac{\text{क}}{\text{२}}$ ज्या २ भा}

इसमें च और $\text{स्परे}^{२} \frac{\text{क}}{\text{२}}$ के मान उत्थापन करने और सरल करने पर यह रूप होगा।

११५.१६५.४ ज्या (भा + ७ °२४′) − १४७.६६५ ज्या २ भा　　(क)

इससे दो वक्र खींचे जा सकते हैं जिनके समीकरण क्रमानुसार यह हैं

र = ११५.१६५ ज्या (भा + ७८°२४′)　　(ख)

रा = − १४७.६६५ ज्या २ भा　　(खा)

यदि भा की जगह ०, ३०, ६०, ९०, इत्यादि मान उत्थापित किये जायँ तो सरल करने पर र, रा और काल-समीकरण के मान पृष्ठ ३५१ की सारिणी के अनुसार होंगे।

इस सारिणी में सौर और अंग्रेजी तारीखें भी दे दी गयी हैं। इन्हीं तारीखों में काल-समीकरण के यह मान ठीक होते हैं। और तारीखों के काल-समीकरण जानने के लिए चित्र ६४ से काम लेना चाहिये। सौर मास की जो तारीखें लिखी हैं वह संक्रान्ति के हिसाब से हैं। जैसे ६ मीन का अर्थ है निरयन मीन संक्रान्ति से ६वां दिन, ६ सिंह का अर्थ है निरयन सिंह संक्रान्ति से ६ठां दिन।

पहले बतला दिया गया है कि काल-समीकरण सूर्य के नीच के मध्यम सायन भोगांश और सूर्य की परम क्रान्ति पर अवलम्बित है जो स्थिर नहीं है इसलिए काल-समीकरण के जो मान सारिणी या चित्र ६४ में दिए हुए हैं वह भी सदा के लिए शुद्ध नहीं हैं। इनमें सूक्ष्म अन्तर प्रति वर्ष हो रहा है। सूर्य का मध्यम सायन भोगांश प्रतिवर्ष १ कला के लगभग बढ़ रहा है। इस प्रकार ६० वर्ष में एक अंश का अन्तर

---

† किसी कोण में ३६० अंश जोड़ने या घटाने से उस कोण की ज्या, और कोटिज्या इत्यादि के मानों में कोई अन्तर नहीं पड़ता और न उस कोण के मान में ही कोई अन्तर पड़ता है।

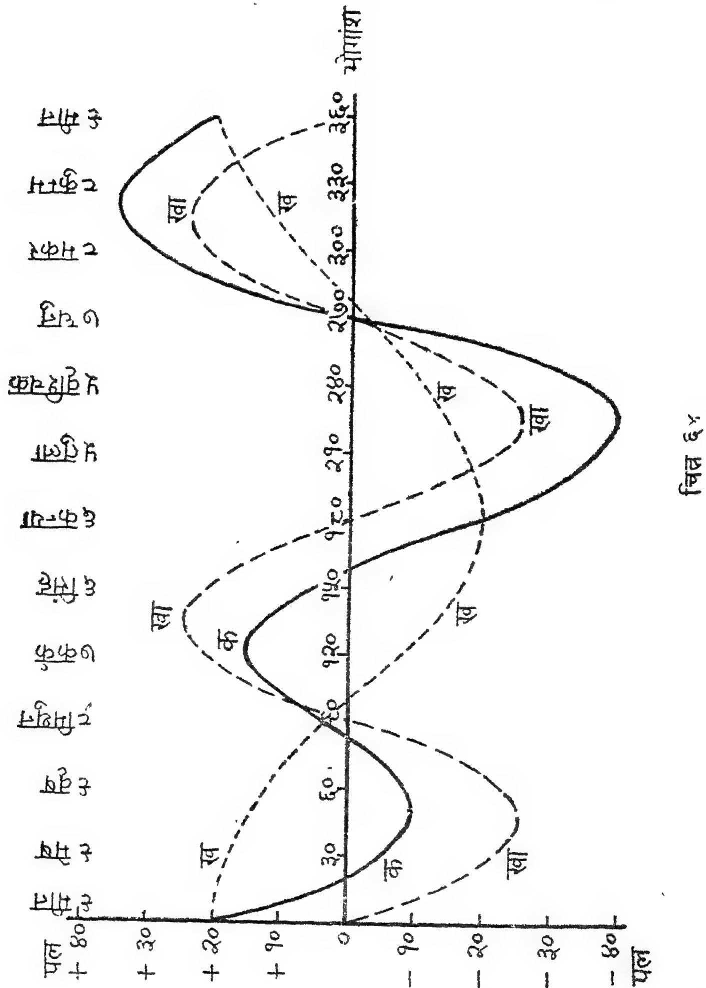
हो जाता है। इसलिए ६० वर्षों तक समीकरण के मान वही समझे जाँय जो सारिणी या चित्र ६४ से विदित होते हैं तो बहुत भूल नहीं पड़ेगी।

भा	र	रा	कालसमीकरण	निरयन सौरमास	अंग्रेजी तारीख
अंश	पल	ला पल	पल		
०	+१८.८	०	+१८.८	६ मीन	२३ मार्च
३०	+१८.२	−२१.४	−३.२	६ मेष	२२ अप्रैल
६०	+१२.४	−२१.४	−९	६ वृष	२३ मई
९०	+३.९	०	+३.९	८ मिथुन	२२ जून
१२०	−६	+२१.४	+१५.४	७ कर्क	२३ जुलाई
१५०	−१४.४	+२१.४	+७	६ सिंह	२२ अगस्त
१८०	−१८.८	०	−१८.८	६ कन्या	२२ सितम्बर
२१०	−१८.२	−२१.४	−३९.६	५ तु	२२ अक्टूबर
२४०	−१२.४	−२१.४	−३३.८	५ वृश्चिक	२१ नवम्बर
२७०	−३.९	०	−३.९	७ धनु	२२ दिसम्बर
३००	+६.१	+२१.४	+२७.५	८ मकर	२१ जनवरी
३३०	+१४.४	+२१.४	+३५.८	८ कुम्भ	२० फरवरी
३६०	+१८.८	०	+१८.८	६ मीन	२३ मार्च

अब वक्र खींचने की रीति संक्षेप में समझायी जाती है (देखो चित्र ६४)।

सूर्य के मध्यम सायन भोगांश भा को भुज (abscissa) और र, रा को कोटि (ordinate) माना गया है। भा की जगह ३०, ६०, ९० इत्यादि रखने से र, रा के जो मान आये हैं वह विन्दुओं मे प्रकट करके सब को मिला दिया गया है।

इससे दो वक्र बन गये हैं। दो पासवाली ऊर्ध्वाधर (vertical) रेखाओं के बीच का अन्तर ३ अंश और दो पासवाली क्षैतिज (horizontal) रेखाओं के बीच का अन्तर एक पल माना है। जब भा शून्य होता है तब र + १८.९ पल होता है और रा



शून्य होता है इसलिये शून्य भोगांश के सामने धनात्मक दिशा में १९वीं क्षैतिज रेखा पर र के लिए एक विन्दु बना दिया है। जब भा ३० अंश होता है तब र + १८.२ और रा – २.१ होते हैं। इसलिए ३० भोगांश के सामने धनात्मक दिशा में १८वीं

क्षैतिज रेखा पर एक विन्दु र के लिए और ऋणात्मक दिशा में २१वीं और २२वीं क्षैतिज रेखाओं के बीच एक विन्दु रा के लिए स्थिर किया गया है। इसी प्रकार अन्य विन्दु भी स्थिर किये गये हैं। र प्रकट करनेवाले जितने विन्दु हैं उनको मिला देने से ख ख ख ख वक्र बन गया है। इसी प्रकार रा प्रकट करने वाले विन्दुओं को मिला देने से खा खा खा खा वक्र बन गया है। इन दोनों वक्रों की सहायता से क क क क वक्र इस प्रकार खींचा गया है—

शून्य भोगांश पर र=+१८.८ और रा=०। इन दोनों का योग भी +१८.८ ही होगा इसलिए क क क क वक्र का विंदु भी +१८.८ पर होगा अर्थात् इस दशा में ख ख ख ख और क क क क वक्रों के विंदु सामान्य होगे। ३० भोगांश पर र=+१८.२ और रा=−२१.४। इन दोनों का योग−३.२ है। इसलिए क क क क वक्र का विंदु ऋणात्मक दिशा में तीसरी क्षैतिज रेखा पर होगा। ६० भोगांश पर र=+१२.४ और रा=−२१.४। इन दोनों का योग−९ है। इसलिए क क क क वक्र का विंदु ऋणात्मक दिशा में ९वीं क्षैतिज रेखा पर होगा। ९० भोगांश पर र=+३.९ और रा=शून्य इसलिए क क क क वक्र का विंदु धनात्मक दिशा दिशा में चौथी क्षैतिज रेखा पर होगा। यह विंदु क क क क और ख ख ख ख दोनों वक्रों पर होगा, इत्यादि।

क क क क वक्र य भुज को (Axis of x को) जहाँ चार विंदुओं पर काटता है वहाँ यह प्रकट होता है कि काल-समीकरण शून्य है। इन समयों में सूर्य का मध्यम भोगांश क्रम से २२, ८२, १६० और २७३.५ के लगभग होते हैं। यह भोगांश क्रम से मेष की २ री, मिथुन की १ ली, सिंह की १६ वीं और धनु की १०वीं तिथियों को होते हैं। इसलिए इन तिथियों में काल-समीकरण शून्य होता है। इसका अर्थ यह है कि इन तिथियों में स्पष्ट काल और मध्यम काल एक ही होते हैं। १७वीं तुला को काल समीकरण−४१ पल है। इसका अर्थ यह है कि इस तिथि को स्पष्ट सावन काल में अथवा धूप-घड़ी के समय में ४१ पल घटाने से मध्यम काल (यांत्रिक घड़ी का समय) ज्ञात होगा। इसी प्रकार मकर की २९वीं तिथि को काल समीकरण+३६ पल है, अर्थात् इस दिन धूप-घड़ी के समय में ३६ पल जोड़ने से मध्यम काल ज्ञात होगा।

---

* यह ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज रेखाएँ चित्र में नहीं दिखलायी गई हैं। इनका अनुमान भोगांश के अंकों और बगल में दिये हुए धनात्मक यह ऋणात्मक १०, २०, ३० के अंकों से किया जा सकता है।

अब यह सिद्ध हो गया कि जो लोग रेल या तारघर से मिली हुई घड़ी के समय को ही धूप-घड़ी का भी समय समझ कर लग्न निकालते हैं उनका लग्न शुद्ध नहीं होता क्योंकि धूप और मध्यम घड़ियों में कभी-कभी ४१ पल अथवा १६ मिनट का अंतर रहता है। इसके सिवा देशान्तर के कारण भी अन्तर पड़ता है क्योंकि भारतवर्ष के रेल या तार-घर की घड़ियों का समय ग्रीनविच के*मध्यम समय से ५½ घंटा अथवा १३ घड़ी ४५ पल आगे रखा जाता है। इसलिए यह समय केवल उन स्थानों के मध्यम काल के अनुसार ठीक होता है जो ग्रीनविच से ५½ घंटा अथवा ८२°३०′ पूर्व हैं। मिरजापुर ग्रीनविच से ८२°३८′१०″ पूर्व है। इसलिए मिरजापुर का मध्यम काल भारतीय मध्यम काल से ८′१०″ अथवा ८ असु या सवा पल अधिक है। यदि सवा पल का विचार न किया जाय तो कहा जा सकता है कि भारतीय मध्यम काल जो रेलवे और तार-घरों में प्रयोग किया जाता है मिरजापुर के मध्यम काल के समान होता है। इसलिए पूर्व के स्थानों के मध्यम काल जानने के लिए देशान्तर का संस्कार जोड़ना चाहिये और पच्छिम के स्थानों का मध्यम काल जानने के लिए देशान्तर का संस्कार घटाना चाहिए। यह नीचे के उदाहरणों से स्पष्ट होगा :—

उदाहरण १—प्रयाग में जिस समय सूर्योदय के उपरान्त धूप-घड़ी के अनुसार १६ घड़ी १५ पल बीतता है उस समय रेलवे की घड़ी में क्या समय होगा जब सूर्य का निरयन भोगांश उदय काल में ३^रा^५°५′६″ हो ?

इस दिन सूर्य कर्क राशि के ६ठे अंश पर है इसलिए कर्क की ६ठी तिथि है। सारिणी में कर्क की ७वीं तिथि को काल समीकरण+१५.४ पल है। इसलिए सारिणी से केवल यही पता लग सकता है कि इस दिन काल समीकरण+१५ पल के लगभग है। चित्र ६८ से जहाँ काल-समीकरण का वक्र दिया हुआ है यह पता चल सकता है कि कर्क की ६ठीं तिथि को काल समीकरण १५.४ पल से अधिक था या कम। देखने से स्पष्ट है कि ७ कर्क के दिन क क क क वक्र के विंदु की जो कोटि है उससे कम ७ कर्क के पहले के दिनों में है इसलिए यह निश्चय होता है कि ६ कर्क को काल समीकरण+१५.४ पल से कुछ कम है और ४ कर्क को यह ठीक+१५ पल है। इसलिए अभीष्ट काल-समीकरण+१५.३ पल के लगभग है। यह धनात्मक है इसलिए १६ घड़ी १५ पल में इसे जोड़ना चाहिए। इसलिए जब प्रयाग में धूप-घड़ी

---

* कुछ लोग समझते हैं कि तार-घर की घड़ी में मदरास का समय रहता है परन्तु यह भ्रम है। मदरास में एक वेधशाला अवश्य है और पहले वही समय सब घड़ियों में रखा जाता था परन्तु अब नियम बदल दिया गया है।

के अनुसार ६ कर्क को १६ घड़ी १५ पल होता है तब प्रयाग का मध्यम काल १६ घड़ी ३०.३ पल होगा।

परन्तु प्रयाग का मध्यम काल भारतीय मध्यम काल से कम होता है क्योंकि प्रयाग देशान्तर ग्रीनविच से ८१°५५′१५″ पूर्व है और भारतीय मध्यम काल ग्रीनविच से ८२°३०′ पूर्व होता है। इसलिए भारतीय मध्यम काल का देशान्तर प्रयाग के देशान्तर से ३४′४५″ पूर्व है। जब देशान्तर में १° का अंतर होता है तब समय में ४ मिनट या १० पल का अंतर हो जाता है और जब देशान्तर में १ कला का अंतर होता है तब समय में १ असु का अंतर पड़ता है इसलिए जब ३४′४५″ का अंतर है तब समय में ३५ असु या ६ पल के लगभग अंतर पड़ेगा। भारतीय मध्यम काल के देशान्तर से प्रयाग पच्छिम में है इसलिए भारतीय मध्यम काल प्रयाग के मध्यम काल से आगे है। इसलिए अभीष्ट काल में भारतीय मध्यम काल १६ घड़ी ३०.३ पल + ६ पल = १६ घड़ी ३६ पल के लगभग होगा। यह ६ घंटा ३८ मिनट २४ सेकंड के समान है।

इस दिन सूर्योदय से मध्याह्न तक का स्पष्ट सावन काल १६ घड़ी ४३ पल है (देखो पृष्ठ ३३१) जो ६ घंटा ४१ मिनट १२ सेकंड है। परन्तु मध्यान्ह ठीक १२ बजे होता है इसलिए १२ घंटा − ६ घंटा ४१ मिनट १२ सेकंड = ५ घंटा १८ मिनट ४८ सेकंड पर सूर्य का उदय हुआ होगा।

सूर्योदय का स्पष्ट काल = ५ घं० १८ मि० ४८ से०
सूर्योदय से इष्ट समय तक का मध्यमकाल = ६ घं० ३८ मि० २४ से०
∴ रेल घड़ी का समय = ११ घं० ५७ मि० १२ से०

अर्थात् इस समय रेल की घड़ी में ११ बजकर ५७ मिनट और १२ सेकंड होगा।

उदाहरण २—यदि मध्यान्ह के बाद घड़ी में जो रेल की घड़ी से मिली हुई है ५ बजकर २४ मिनट हुए हों तो काशी और प्रयाग की धूपघड़ियों में क्या समय होंगे ? इस दिन सूर्योदय काल में सूर्य का भोगांश ६^रा^१५°२३′३४″ है।

सूर्य तुला राशि के १६वें अंश पर है इसलिए इस दिन तुला नामक सौर मास की १६वीं तिथि है। चित्र ६४ से प्रकट है कि तुला की ५वीं तिथि को काल समीकरण − ३७.५ पल और २०वीं तिथि को − ४१ पल है। इससे सिद्ध होता है कि १५ दिन में — ३.५ पल के लगभग काल समीकरण बढ़ा है। इसलिए ११ दिन में

अर्थात् तुला की १६वीं तिथि को काल समीकरण – २·७ बढ़कर – ४०·२ पल हो जायगा जो – १६ मिनट के लगभग है। यह बतलाया गया है कि

मध्यम काल = स्पष्ट सावन काल + काल समीकरण

∴ ५ घंटा २४ मिनट = स्पष्ट सावन काल + (– १६ मिनट)

∴ स्पष्ट सावन काल = ५ घंटा २४ मिनट + १६ मिनट

= ५ घंटा ४० मिनट

यह समय ग्रीनविच से ८२½ अंश पूर्व के देशान्तर-रेखा पर स्थित स्थानों की धूपघड़ियों में होगा क्योंकि भारतवर्ष भर के तारघरों और रेल के स्टेशनों की घड़ियाँ इसी देशान्तर रेखा के मध्यम काल से मिली रहती हैं।

काशी ग्रीनविच से ८३°३′४″ अथवा ८३°३′ पूर्व है जो ८२° ३०′ से ३३′ अधिक है इसलिए काशी का स्पष्ट सावन काल उपर्युक्त सावन काल से ३३ असु अथवा ५½ पल अधिक होगा जो २ मिनट १२ सेकन्ड अथवा २ मिनट के समान है। इसलिए उस समय काशी की धूप-घड़ी में ५ बजकर ४२ मिनट हुआ रहेगा।

प्रयाग का देशान्तर ८१°५५′१५″ पूर्व है इसलिए यह ८२°३०′ से ३४′ ४५″ पच्छिम है। इसलिए यहाँ की धूप-घड़ी ३४¾ असु या २ मिनट १९ सेकंड पीछे होगी। इसलिए प्रयाग की धूपघड़ी में इस समय ५ घंटा ३७ मिनट ४१ सेकंड होगा।

उदाहरण ३—दूसरे उदाहरण में जो समय दिया हुआ है उस समय प्रयाग में क्या लग्न होगा ?

पहले सूर्योदय का स्पष्ट काल जानना आवश्यक है। इसके लिए प्रयाग का चर काल जानना चाहिए।

सूर्य का निरयन भोगांश = ६$^{रा}$१५°२३′३४″

१९८२ वि० की १६ तुला को अयनांश = २२°४१′६″ [दे० पृ० २५३]

∴ सूर्य का सायन भोगांश = ७$^{रा}$८°४′४०″

= ७$^{रा}$८°५′

= ६ राशि + ३८°५′

∴ सूर्य की क्रान्ति ज्या = ज्या ३८°५′ × ज्या २३°२७′ [दे० पृ० १२३]

= ·६१६८ × ·३९७९

= ·२४५४

∴ क्रान्ति $=$ १४°१२′

सूर्य का सयन भोगांश ६ राशि से अधिक है, इसलिए यह दक्षिण क्रान्ति है।

चर ज्या $=$ स्परे अक्षांश × स्परे क्रान्ति

$=$ स्परे २५°२५′ × स्परे १४°१२′

$=$ ·४७५२ × ·२५३०

$=$ ·१२०२

∴ चरांश $=$ ६°५४′

∴ चर पल $=$ ६९ पल

$=$ २७ मिनट ३६ सेकंड

क्रान्ति दक्षिण है इसलिए धूपघड़ी में ६ बज कर २७ मिनट ३६* सेकंड पर प्रयाग में सूर्य का उदय होगा। परन्तु इस दिन काल समीकरण – १६ मिनट है। इसलिए सूर्योदय काल में प्रयाग का मध्यम काल $=$ ६ बजकर २७ मिनट ३६ सेकंड – १६ मिनट $=$ ६ बजकर ११ मिनट ३६ सेकंड

प्रयाग के सूर्योदय काल में भारतवर्ष का मध्यम काल क्या होगा यह जानने के लिए २ मिनट १६ सेकंड और जोड़ना होगा क्योंकि प्रयाग २ मिनट १६ सेकंड पच्छिम है इसलिए यहाँ का मध्यम या स्पष्टकाल भारतवर्ष के मध्यम काल से इतना ही पीछे होगा, इसलिए प्रयाग में सूर्योदय के समय रेल की घड़ी में ६ बजकर १३ मिनट ३५ सेकंड हुआ रहेगा।

सूर्योदय से मध्यम मध्यान्ह काल १२ घंटा – ६ घंटा १३ मिनट ३५ सेकंड अथवा ५ घंटा ४६ मिनट २५ सेकंड पर होता है और संध्या के ५ बजकर २४ मिनट तक ११ घंटा १० मिनट २५ सेकंड होता है। यह २७ घड़ी ५६ पल के समान है। इसलिए इष्टकाल में सूर्योदयोपरान्त २७ घड़ी ५६ पल है। यह मध्यम सावन काल है। इसको नाक्षत्र काल में बदल कर लग्न जानने में सुविधा होगी।

६ सावन घड़ी $=$ ६ नाक्षत्र घड़ी + १ नाक्षत्र पल (पृष्ठ ३२६)

∴ २८ सावन घड़ी $=$ २८ नाक्षत्र घड़ी + ५ नाक्षत्र पल

∴ २७ घड़ी ५६ पल (सावन)

$=$ २७ घड़ी ५६ पल + ५ पल (नाक्षत्र)

$=$ २८ घड़ी १ पल (नाक्षत्र)

---

* वर्तन (Refraction of light) के कारण सूर्योदय इससे भी कुछ पहले होता है जिसकी चर्चा आगे की जायगी।

उदयकाल में सूर्य का निरयन भोगांश $= ६^{रा}१५°२३'३४''$

$= ६^{रा}१५°२४'$

इसलिए उदयकाल में तुला राशि का १५°२४' लग्न है।

प्रयाग में तुला राशि का उदयकाल ५ घड़ी ४२ पल है।

जब ३०° का उदय ५ घड़ी ४२ पल में होता है

तब १५° „ २ घड़ी ५१ पल में होगा

और ३०' „ ५ पल ४१ वि० में होगा

६' „ १ पल ८ वि० में होगा

∴ १५°२४' का उदय २ घड़ी ५५ पल ३४ वि० में होगा

अर्थात् तुला का भुक्तकाल = २ घड़ी ५६ पल के लगभग

∴ तुला का भोग्यकाल = २ घड़ी ४६ पल के लगभग

वृश्चिक का उदयकाल	= ५ „	४४	„
धनु का „	५ „	१५	„
मकर का „	४ „	२५	„
कुंभ का „	३ „	४८	„
मीन का „	३ „	४१	„
कुल का योग	२५ „	३९	„

अर्थात् सूर्योदय से घड़ी ३९ पल तक मीन राशि का उदय हो चुका।

इसलिए इष्टकाल में मेष राशि उदय हो रही है इसलिए यही उदय लग्न है। इसी को साधारणतः लग्न कहते हैं। यह जानने के लिए कि मेष राशि का कौन बिंदु लग्न है अनुपात से काम लेना चाहिये।

इष्टकाल = २८ घड़ी १ पल

मीन के अंत का उदयकाल २५ घड़ी ३९ पल

मेष का भुक्तकाल = २ घड़ी २२ पल

= १४२ पल

मेष का उदयकाल = ४ घड़ी ४ पल = २४४ पल

२४४ पल : १४२ पल :: ३० अंश : भुक्तांश

$$∴ \text{भुक्तांश} = \frac{१४२ \times ३०}{२४४} = १७°२९.'५$$

∴ मेष का १७°२७'.५ लग्न है।

उदाहरण ४—यदि प्रयाग में सूर्योदय काल के स्पष्ट सूर्य का निरयन भोगांश ६रा१५°२३′३४″ हो तो उस दिन उज्जैन में जिस समय सूर्य याम्योत्तरवृत्त पर आवेगा उस समय भारतीय मध्यम काल क्या होगा ?

उज्जैन ग्रीनविच से ७५°४६′ पूर्व देशान्तर और २३°६′ उत्तर अक्षांश पर है। प्रयाग का देशान्तर ८१°५५′१५″ और उत्तर अक्षांश २५°२५′ है।

उज्जैन प्रयाग से ८१°५५′१५″ − ७५°४६′ = ६°९′१५″ पच्छिम है। इसलिए उज्जैन का स्पष्ट मध्यान्ह प्रयाग के स्पष्ट मध्यान्ह से २४ मिनट ३७ सेकंड पीछे होगा। तीसरे उदाहरण में बतलाया गया है कि प्रयाग में धूपघड़ी के अनुसार ६ बजकर २७ मिनट ३६ सेकंड पर सूर्योदय होगा। इसलिए सूर्योदय के समय

नतकाल = १२ घंटा − ६ घं० २७ मि० ३६ से०.
= ५ घंटा ३२ मि० २४ से०

अर्थात् सूर्योदय के ५ घंटा ३२ मिनट २४ सेकंड उपरान्त स्पष्ट मध्यान्ह होगा। परन्तु सूर्योदय के समय भारतीय मध्यमकाल ६ घंटा १३ मिनट ३५ सेकंड होता है इसलिए प्रयाग में स्पष्ट मध्यान्ह के समय भारतीय मध्यकाल = ६ घंटा १३ मि० ३५ से० + ५ घं० ३२ मि० २४ से०

= ११ घंटा ४५ मिनट ४९ सेकंड

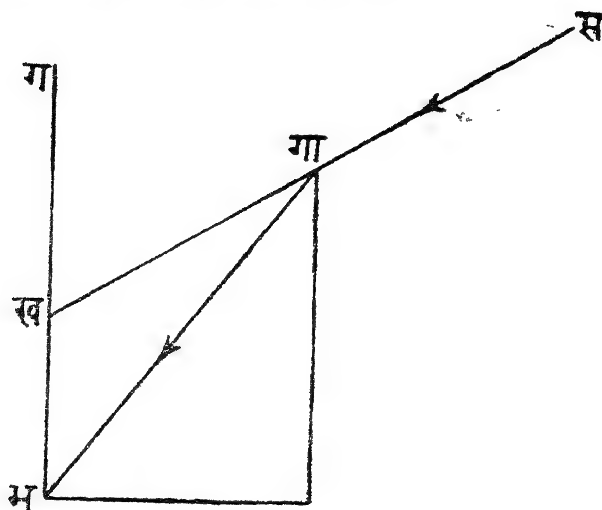
उज्जैन प्रयाग से २४ मिनट ३७ सेकंड पच्छिम है इसलिए यहाँ स्पष्ट मध्यान्ह प्रयाग के स्पष्ट मध्यान्ह से २४ मिनट ३७ सेकंड पीछे होगा। परन्तु प्रयाग के स्पष्ट मध्यान्ह के समय भारतीय मध्यम काल ११ घंटा ४५ मिनट ४९ सेकंड होता है, इसलिए उज्जैन के स्पष्ट मध्यान्ह के समय रेल की घड़ी में १२ बजकर १० मिनट २६ सेकंड हुआ रहेगा।

पृष्ठ ८० की टिप्पणी में लिखा गया है कि किरणों के झुक जाने के कारण गणना के समय से सूर्योदय कुछ पहले हो जाता है। इसलिए यह बतलाना आवश्यक है कि किरणों का झुकना क्या है और इससे दिन के परिमाण में जो अन्तर पड़ जाता है उसका संशोधन कैसे करना चाहिये।

वर्तन (REFRACTION OF LIGHT)

हवा, जल, काँच, अबरक ऐसे पदार्थ हैं जिनमें प्रकाश घुसकर दूसरी ओर चला जाता है। इसलिए ये पारदर्शक (transparent) कहलाते हैं। जब प्रकाश एक समजातीय (homogeneous) पारदर्शक पदार्थ से दूसरे समजातीय पारदर्शक

पदार्थ में जाता है तब उसकी दिशा वही नहीं रहती जो पहले पारदर्शक पदार्थ में होती है। इस घटना को किरण का वर्तन या केवल वर्तन कहते हैं। इसको कुछ लेखकों ने किरणवक्रीभवन का नाम दिया है परन्तु कई बातों की सुविधा के विचार से इसको वर्तन कहना अच्छा जान पड़ता है। इससे किसी वस्तु के यथार्थ और स्पष्ट स्थानों में बड़ा अन्तर देख पड़ता है। कभी-कभी वस्तुएँ विचित्र रूप धारण कर लेती हैं। परन्तु इन सब घटनाओं की चर्चा करने के लिए यह स्थान उचित नहीं हैं। यहाँ केवल उतना ही बतलाया जायगा जितना ज्योतिष से सम्बन्ध रखता है। अनुभव के लिए एक छोटा सा उदाहरण देना पर्याप्त होगा :—



चित्र ६५

पानी भरा हुआ गिलास धूप में रख दो और देखो कि गिलास का कितना भाग धूप से प्रकाशित होता है। पानी गिरा कर गिलास को फिर उसी जगह रख दो। इस बार गिलास का कुछ कम भाग प्रकाशित होगा। चित्र ६५ में ग गा एक गिलास है। यदि पानी भर कर यह धूप में रखा जाय तो ग से भ तक प्रकाशित देख पड़ता है अर्थात् यह देख पड़ता है कि धूप गिलास के पेंदे के किनारे तक भी पहुँचती है। परन्तु पानी गिरा कर गिलास को फिर वहीं रख देने पर देख पड़ता है कि अब गिलास का केवल ग ख भाग प्रकाशित रहता है, पेंदे तक धूप जाती ही नहीं। इससे यह प्रकट होता है कि हवा में यदि किरण स गा ख दिशा में होती है तो पानी में घुसते ही यह गा भ दिशा में हो जाती है।

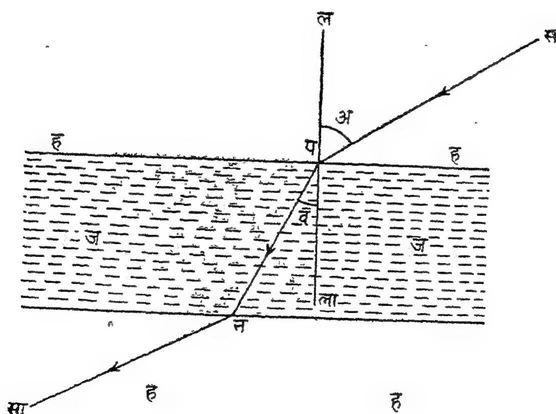
यदि प्रकाश की कोई किरण स प एक समजातीय पारदर्शक पदार्थ ह ह से दूसरे समजातीय पारदर्शक पदार्थ ज ज में प विन्दु से प्रवेश करके प न दिशा में चलती हुई न विन्दु से वह फिर ह ह पदार्थ में निकल आती है तो न सा और स प किरणें समानान्तर होती हैं। स प को आपात किरण (incident ray) प न को वर्तित किरण (refracted ray) और न सा को निर्गत किरण (emergent ray) कहते हैं। यदि प विन्दु पर ल प ला लम्ब (Normal) हो तो स प ल कोण को आपात कोण (angle of incidence) और न प ला कोण को वर्तित कोण (angle of refraction) कहते हैं। आपात और वर्तित किरणों तथा प्रवेश विन्दु का लम्ब एक ही तल में रहते हैं।

आपात और वर्तित कोणों में जो परस्पर सम्बन्ध होता है वह नीचे के सूत्र से प्रकट किया जाता है—

$$\frac{\text{आपात कोण की ज्या}}{\text{वर्तित कोण की ज्या}} = \text{स्थिर संख्या}$$

यदि आपात कोण को अ, वर्तित कोण को व और स्थिर संख्या को ध से सूचित किया जाय तो उपर्युक्त सूत्र का सरल रूप यह होगा

$$\frac{\text{ज्या अ}}{\text{ज्या व}} = \text{ध; अथवा ज्या अ} = \text{ध} \times \text{ज्या व}$$

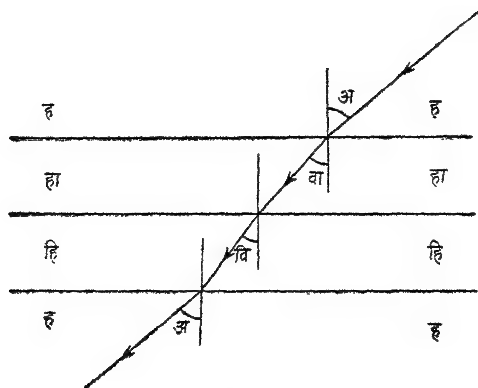


चित्र ६६

अ के बदलने से व भी इस तरह बदलेगा कि इन दोनों की ज्याओं का सम्बन्ध सदैव ध के समान होगा। ध का परिणाम दो पारदर्शक पदार्थों के गुण के

अनुसार बदलता है। इसको पहले पारदर्शक पदार्थ से दूसरे पारदर्शक पदार्थ का वर्तनाङ्क (index of refraction) कहते हैं। जब प्रकाश पतले पारदर्शक पदार्थ से घन पारदर्शक पदार्थ में जाता है तब वर्तित किरण लम्ब की ओर झुक जाती है अर्थात् वर्तित कोण आपात कोण से छोटा होता है। परन्तु जब प्रकाश घने पदार्थ से पतले पदार्थ में जाता है तब वह लम्ब से दूर हो जाता है। चित्र ६६ में ज ज पदार्थ ह ह पदार्थ से घना है इसलिए ज ज में वर्तित किरण लम्ब की ओर हो गई है और ज ज से निकल कर ह ह में आते समय वह लम्ब से दूर हो गयी है। यदि प्रकाश की दिशा उलट जाय अर्थात् ज ज में इसकी दिशा न प हो तो ह ह में इसकी दिशा प स हो जायगी। कई पारदर्शक पदार्थों में होता हुआ प्रकाश जिस जिस वक्र या टूटी हुई रेखा से जाता है यदि दिशा उलट जाय तो उसी उसी रेखा से वह लौट भी आता है।

मान लो ह ह, हि हि तीन पारदर्शक पदार्थों के स्तर हैं जो परस्पर समानान्तर हैं।



चित्र ६७

यदि ह ह से हा हा का वर्तनाङ्क धा हो और ह ह से हि हि का वर्तनांक धि है तो हा हा से हि हि के वर्तनाङ्क का ज्ञान सहज ही हो सकता है। यह परीक्षा से अनुभव किया जा सकता है कि यदि प्रकाश ह ह से हा हा और हि हि होता हुआ फिर ह ह में प्रवेश करे तो इसकी जो दिशा पहले ह ह में होती है वही अन्त में भी होती है अर्थात् ह ह और हा हा के प्रवेश विंदु पर जो अ पात कोण बनता है वही हि हि से ह ह में निकलते समय निर्गत विंदु पर भी बनता है। वर्तन के नियम के अनुसार

$$\text{ज्या अ} = \text{धा} \times \text{ज्या वा}; \quad \text{ज्या अ} = \text{धि} \times \text{ज्या वि}$$

$$\therefore \text{धा} \times \text{ज्या वा} = \text{धि} \times \text{ज्या वि}$$

$$\text{अथवा} \quad \frac{\text{ज्या वा}}{\text{ज्या वि}} = \frac{\text{धि}}{\text{धा}}$$

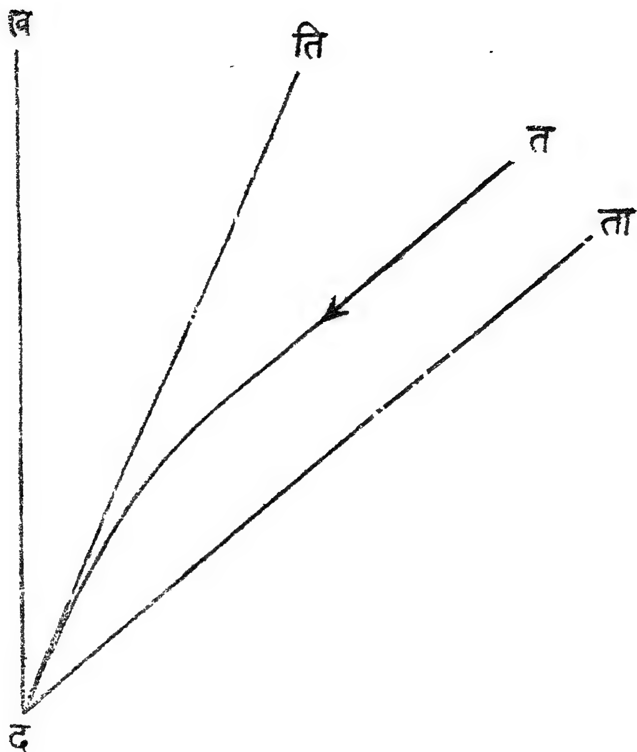
इससे यह सिद्ध होता है कि यदि एक पदार्थ ह ह से दूसरे पदार्थ हा हा का वर्तनाङ्क धा हो और पहले ही पदार्थ से तीसरे पदार्थ हि हि का वर्तनांक धि हो और यदि हा हा से हि हि में जाने वाली किरण का आपात कोण वा और वर्तित कोण वि हो तो दूसरे पदार्थ हा हा से तीसरे पदार्थ हि हि में जाने वाली किरण का वर्तनाङ्क धि ÷ धा होगा।

ज्योतिष संबंधी वर्तन—खगोल पिंडों से जो प्रकाश पृथ्वी पर आता है उसकी किरणें जब वातावरण में घुसती हैं तब इनमें वर्तन होता है। ऐसे वर्तन को ज्योतिष संबंधी वर्तन (Astronomical refraction) कहते हैं। वातावरण का घनत्व ऊपर से नीचे तक एक सा नहीं है। जैसे जैसे पृथ्वी से दूरी अधिक होती जाती है तैसे तैसे वातावरण पतला होता जाता है इसलिए कुल वातावरण सजातीय नहीं है। खगोलीय पिंड से आती हुई किरण जब वातावरण में प्रवेश करती है तब पहले बहुत पतले स्तर में जाती है और ज्यों ज्यों पृथ्वी के निकट पहुँचती आती है त्यों त्यों कम घने से अधिक घने स्तर में आने के कारण वह लम्ब की ओर कुछ कुछ झुकती हुई पृथ्वी पर पहुँचती है। इसलिए वातावरण में इसका मार्ग वक्र होता है। पृथ्वी पर पहुँचते समय किरण की जो दिशा होती है उसी में खगोलीय पिंड देख पड़ता है।

किसी तारे से कोई किरण त क की दिशा में क तक सीधी आकार क स्थान पर वातावरण में प्रवेश करती है। इस स्थान से इसकी राह सीधी नहीं रहती। क से द्रष्टा के स्थान द तक किरण को वातावरण के भिन्न-भिन्न स्तरों में घुसना पड़ता है जो क्रमशः घनी होती जाती हैं। इसलिए किरण भी क्रमशः वक्र होती जाती है और अन्त में द तक पहुँच जाती है। इस वक्र के द बिन्दु पर द ति स्पर्शरेखा है। द्रष्टा को जान पड़ता है कि तारा द ति दिशा में है। यदि द से द ता रेखा क त के समानान्तर खींची जाय तो द ता* दिशा में तारा उस समय देख पड़ता जब किरण को झुका देनेवाला वातावरण न होता। इसलिए वातावरण का प्रभाव यह हुआ कि

---

* बिलकुल शुद्ध दिशा द त है परन्तु त तारा इतनी दूर है कि त द ता कोण शून्य के समान है।



चित्र ६८

तारे का स्पष्ट स्थान ता से ति हो गया अर्थात् तारा खस्वस्तिक ख की ओर कुछ चढ़ा हुआ देख पड़ता है। इसलिए वर्तन के कारण खगोलीय पिंड का नतांश कुछ कम हो जाता है और उन्नतांश उतना ही अधिक हो जाता है। चित्र में इस वर्तन का परिमाण ता द ति कोण के समान है। त का यथार्थ नतांश ता द ख और स्पष्ट नतांश ति द ख है। जिस समय खगोलीय पिंड क्षितिज में रहता है उस समय उसका वर्तन सबसे अधिक ३५′ के लगभग होता है।

अब यह प्रकट हो गया होगा कि वातावरण के कारण किसी खगोलीय पिंड का स्पष्ट स्थान वही नहीं होता जो यथार्थ में होना चाहिए। इसलिए यदि वर्तन का संस्कार न किया जाय तो गणना में कुछ भूल रह जाती है। नीचे एक सारिणी* दी

* R. S. Ball's Spherical Astronomy page 120.

जाती है जिससे यह जान पड़ेगा कि वर्तन के कारण किसी तारे का नतांश कितना कम हो जाता है। यह सारिणी उस समय की है जिस समय वातावरण का दबाव ३० इंच ऊँचे पारे के दबाव के समान होता है और तापक्रम ५०° फारनहैट के समान होता है। इससे भिन्न अवस्था में कुछ अंतर हो जाता है।

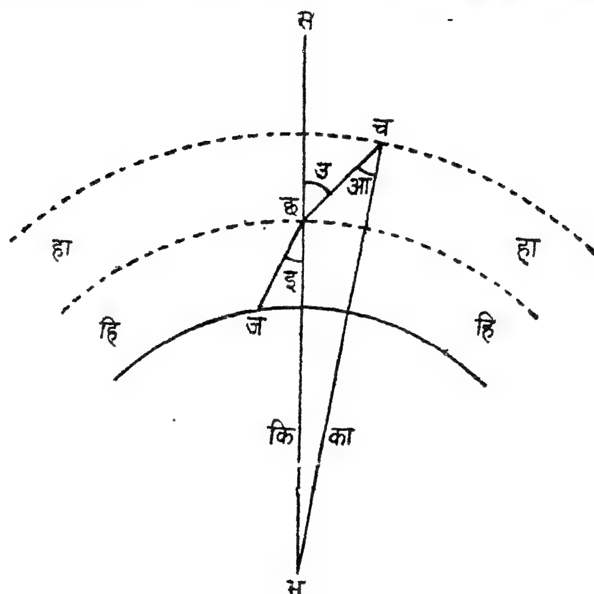
स्पष्ट नतांश	वर्तन	स्पष्ट नतांश	वर्तन	स्पष्ट नतांश	वर्तन
०°	०″	३५°	४१″	७०°	२′३९″
५°	५″	४०°	४९″	७५°	३′३४″
१०°	१०″	४५°	५८″	८०°	५′१९″
१५°	१६″	५०°	१′९″	८५°	९′५१″
२०°	२१″	५५°	१′२३″	८७°	१४′-३″
२५°	२७″	६०°	१′४१″	८८°	१८′१६″
३०°	३४″	६५°	२′४″	८८°४०′	२२′२२″
				९०°	३५′ लगभग

इस सारिणी से किसी तारे का यथार्थ नतांश सहज ही जाना जा सकता है। जैसे यदि किसी तारे का स्पष्ट नतांश ६०° हो तो इसका यथार्थ नतांश ६०°१′४१″ होगा। यह भी ध्यान देने की बात है कि जो तारा ठीक सिर के ऊपर (खस्वस्तिक पर) रहता है उसका स्पष्ट और यथार्थ स्थान एक ही होता है और यदि स्पष्ट नतांश ४५° से कम हो तो उसका वर्तन १′ से अधिक नहीं होता है। यदि स्पष्ट नतांश २०° से अधिक न हो तो प्रति १° नतांश के लिए १″ वर्तन होता है।

वातावरण सम्बन्धी वर्तन की साधारण मीमांसा—

सरलता के लिए यह समझ लेना अच्छा होगा कि पृथ्वी पूर्ण गोल है और वातावरण में नीचे से ऊपर तक पतले-पतले स्तर हैं जिनके केन्द्र भी वही हैं जो पृथ्वी

का केन्द्र है। यह भी मान लेना चाहिए कि प्रत्येक स्तर का वर्तनाङ्क उस स्तर में सब जगह स्थिर है परन्तु एक स्तर का वर्तनाङ्क दूसरे स्तर के वर्तनाङ्क से भिन्न है।



चित्र ६९

चित्र ६९ में ऐसे दो स्तरों हा हा और हि हि का सम्बन्ध दिखलाया जाता है। मान लो कि जब प्रकाश शून्य (aether) से हा हा में आता है तब इसका वर्तनाङ्क धा और जब प्रकाश शून्य से हि हि में आता है तब इसका वर्तनाङ्क धि होता है। मान लो कि हा हा में किरण की दिशा च छ है और हि हि में इसी किरण की दिशा छ ज हो जाती है।

यदि भ पृथ्वी का केन्द्र हो और भ च=का, भ छ=कि,

$\angle \text{भ च छ} = \text{आ}$, $\angle \text{भ छ ज} = \text{इ}$ और $\angle \text{स छ च} = \text{उ}$ हो,

तो पृष्ठ ३६३ के अनुसार

$$\frac{\text{ज्या उ}}{\text{ज्या इ}} = \frac{\text{धि}}{\text{धा}} \quad \therefore \text{ज्या उ} = \text{ज्या इ} \times \frac{\text{धि}}{\text{धा}}$$

परन्तु भ च छ त्रिभुज में

$$\frac{\text{ज्या उ}}{\text{का}} = \frac{\text{ज्या आ}}{\text{कि}} \qquad \therefore \text{ज्या उ} = \text{ज्या आ} \times \frac{\text{का}}{\text{कि}}$$

$$\therefore \text{ज्या इ} \times \frac{\text{धि}}{\text{धा}} = \text{ज्या आ} \times \frac{\text{का}}{\text{कि}}$$

अथवा कि × धि × ज्या इ = का × धा × ज्या आ

यह नियम किसी दो पासवाले स्तरों के लिये ठीक है। इस प्रकार यह साधारण नियम निकल आता है—

यदि वातावरण गोल सजातीय स्तरों का बना हुआ मान लिया जाय जिनका केन्द्र वही हो जो पृथ्वी का केन्द्र है परन्तु जिनका घनत्व एक दूसरे से भिन्न होता जाता है तो जब प्रकाश की किरण एक स्तर से दूसरे स्तर में घुसती हुई आगे बढ़ती है तब किसी स्तर के वर्तनाङ्क, त्रिज्या और वर्तित कोण की ज्या के गुणनफल स्थिर होते हैं।

इस नियम को नीचे के सूत्र से भी प्रकट किया जा सकता है—

का × धा × ज्या आ = क × ध × ज्या न (१)

जहाँ का, धा और आ क्रमशः किसी स्तर की त्रिज्या, वर्तनांक और वर्तित कोण और क, ध, न क्रमशः पृथ्वी की त्रिज्या, सबसे नीचे के स्तर के वर्तनांक और वर्तित कोण हैं। भूतल को छूने वाले स्तर में जो वर्तित कोण है वह प्रायः नतांश के समान होता है इसलिए न खगोलीय पिंड का स्पष्ट नतांश भी है।

यदि इन स्तरों को बहुत पतला मान लिया जाय तो किरण का मार्ग टूटी हुई रेखा के स्थान में वक्र रेखा होगी। मान लो च छ ज वह वक्र है जिस पर किरण इन पतले पतले स्तरों में क्रमशः घुसती हुई पृथ्वी तल के ज विन्दु पर पहुँचती है। इस वक्र के छ विन्दु पर छ ल भ एक स्पर्शरेखा है। किरण छ विन्दु पर जिस स्तर में घुसती है उसका वर्तनांक धा और त्रिज्या का हैं। यह स्पर्शरेखा वक्र बनानेवाली किरण से कुछ दूर तक एक हो जाती है इसलिए इस विन्दु पर जो वर्तित कोण बनता है वह छ ल भ कोण के समान होता है। मान लो यह आ के समान है, जब किरण वातावरण के सबसे ऊपरवाले स्तर में घुसती है तब इसकी दिशा वही होती है जो शून्य में उसकी यथार्थ दिशा है। जिस समय किरण पृथ्वी तल के विन्दु ज पर पहुँचती है उस समय इस विन्दु पर वक्र की जो स्पर्शरेखा ज स होती है वह उस दिशा को सूचित करती है जिसमें किरण द्रष्टा की आंख में पहुँचती है। यदि ज स्थान का खस्वस्तिक ख हो तो यही ख ज स कोण तारे का स्पष्ट नतांश होता है। सबसे ऊपर वाले स्तर में वक्र की जो स्पर्शरेखा होती है तथा पृथ्वी तल के बिन्दु पर वक्र की जो स्पर्शरेखा होती है उन दोनों के बीच में जो कोण होता है वही ज्योतिष सम्बन्धी वर्तन कहलाता है। इसी के जानने से किसी तारे के स्पष्ट और यथार्थ स्थान की जानकारी हो सकती है। इसी को साधारणतः वर्तन कहते हैं। यदि इसका

चित्र ७०

परिमाण व माना जाय तो ता (व) अर्थात् व की तत्कालिक गति पासवाले किसी दो स्तरों के वर्तनों का अन्तर और ता (धा) अर्थात वर्तनांक की तात्कालिक गति उन्हीं दो स्तरों के वर्तनांकों का अन्तर हुआ। यदि आ और इ इन दोनों स्तरों के वर्तित कोण तथा धा, धि इनके वर्तनांक हों तो

आ − इ = ता (व) और धि — धा = ता (धा)

∴ इ = आ — ता (व) और धि = धा + ता (धा)

परन्तु का × धा × ज्या आ = कि × धि × ज्या इ

यदि वातावरण के दो पतले स्तर बहुत पास हों तो उनकी त्रिज्याएँ प्रायः समान होती हैं इसलिए का = कि। ऐसी दशा में

धा × ज्या आ = धि × ज्या इ

= [धा + ता (धा)] × ज्या [आ − ता (व)]

= [धा + ता (धा)] × [ज्या आ × कोज्या ता (व) − कोज्या आ × ज्या ता (व)]

परन्तु ता (व) बहुत छोटा और चापीय मान में है इसलिए ज्या ता (व) = ता (व) और कोज्या ता (व) = १

$\therefore$ धा $\times$ ज्या आ

$=$[धा $+$ ता (धा)][ज्या आ $-$ ता (व) $\times$ कोज्या आ]

$=$धा $\times$ ज्या आ $-$ धा $\times$ ता (व) $\times$ कोज्या आ $+$ ता(धा) $\times$ ज्या आ

क्योंकि चौथे पद में ता (धा) और ता (व) के गुणनफल का गुणक (coefficient) बहुत छोटा है इसलिए छोड़ दिया गया है।

$\therefore$ ० $=$ ता (धा) $\times$ ज्या आ $-$ धा $\times$ ता (व) $\times$ कोज्या आ

$$\therefore \frac{\text{ज्या आ}}{\text{धा} \times \text{कोज्या आ}} = \frac{\text{ता (व)}}{\text{ता (धा)}}$$

अथवा
$$\frac{\text{ता (व)}}{\text{ता (धा)}} = \frac{\text{स्परे आ}}{\text{धा}} \qquad (२)$$

समीकरण (१) और (२) से ऐसा समीकरण जाना जा सकता है जिसमें आ न रहे।

समीकरण (१) से ज्या आ $= \dfrac{\text{क} \times \text{ध} \times \text{ज्या न}}{\text{क} \times \text{धा}}$

त्रिकोणमिति के यह प्रकट है कि

$$\text{स्परेआ} = \frac{\text{ज्या आ}}{\sqrt{(१ - \text{ज्या}^{२} \text{ आ})}}$$

$$= \frac{\dfrac{\text{क} \times \text{ध} \times \text{ज्या न}}{\text{का} \times \text{धा}}}{\sqrt{\left(१ - \dfrac{\text{क}^{२} \times \text{ध}^{२} \times \text{ज्या}^{२} \text{ न}}{\text{का}^{२} \times \text{धा}^{२}}\right)}}$$

$$= \frac{\text{क} \times \text{ध} \times \text{ज्या न}}{\sqrt{(\text{का}^{२} \times \text{धा}^{२} - \text{क}^{२} \times \text{ध}^{२} \times \text{ज्या}^{२} \text{ न})}}$$

$$\therefore \frac{\text{ता (व)}}{\text{ता (धा)}} = \frac{१}{\text{धा}} \times \frac{\text{क} \times \text{ध} \times \text{ज्या न}}{\sqrt{(\text{का}^{२} \times \text{धा}^{२} - \text{क}^{२} \times \text{ध}^{२} \times \text{ज्या}^{२} \text{ न})}}$$

यही ज्योतिष सम्बन्धी वर्तन का साधारण चलन-समीकरण (differential equation) है। यदि सबसे ऊपरवाले स्तर का वर्तनांक १ और सबसे नीचेवाले स्तर का वर्तनांक ध मान लिये जाय और उपर्युक्त चलन समीकरण का इन्हीं सीमाओं के बीच चलराशिकलन (Integration) किया जाय तो ज्योतिष सम्बन्धी वर्तन का पूरा ज्ञान किया जा सकता है। परन्तु ऐसा करने में कठिनाई यह पड़ती है कि इस चलन समीकरण में का और धा दो चल राशियाँ (Variables) हैं जिनका परस्पर सम्बन्ध ज्ञात नहीं हो सकता क्योंकि हमें इस बात का ठीक-ठीक पता नहीं है कि

पृथ्वी की किस ऊँचाई पर वर्तनांक क्या है। परन्तु इसके बिना जाने भी उपर्युक्त समीकरण का चलराशि कलन एक युक्ति से निकाला जा सकता है जिससे यथार्थ वर्तन का प्रायः ठीक-ठीक ज्ञान हो सकता है।

इस युक्ति में $\frac{\text{क}}{\text{क}}$ को १+छ मान लेना होता है जब कि छ का परिमाण अत्यन्त छोटा होता है क्योंकि का वातावरण के किसी स्तर की त्रिज्या है और क पृथ्वी की त्रिज्या है। यह भी ज्ञात है कि उस वातावरण की ऊँचाई जिसमें किरणों को झुका देने (वर्तन करने) का गुण होता है अधिक से अधिक ५० मील है। पृथ्वी की त्रिज्या अर्थात् क ४००० मील है, इसलिए $\frac{\text{का}}{\text{क}} = \frac{४०५०}{४०००} = १ + \frac{१}{८०}$। इससे स्पष्ट है कि छ $= \frac{१}{८०}$ और इसके वर्ग, घन इत्यादि इतने छोटे हैं कि छोड़ दिये जा सकते हैं। ऐसी कल्पना करने से

$$\text{व} = \int_{१}^{\text{ध}} \frac{\text{ध ज्या न ता (धा)}}{\text{ध}\,(\text{धा}^{२} - \text{ध}^{२}\,\text{ज्या}^{२}\,\text{न} + २\,\text{छ धा}^{२})^{\frac{१}{२}}}$$

$$= \int_{१}^{\text{ध}} \frac{\text{ध ज्या न ता (धा)}}{\text{धा}\,(\text{धा}^{२} - \text{ध}^{२}\,\text{ज्या}^{२}\,\text{न})^{\frac{१}{२}}} \left(१ + \frac{२\,\text{छ धा}^{२}}{\text{धा}^{२} - \text{ध}^{२}\,\text{ज्या}^{२}\,\text{न}}\right)^{\frac{१}{२}}$$

$$= \int_{१}^{\text{ध}} \frac{\text{ध ज्या न ता (धा)}}{\text{धा}\,(\text{धा}^{२} - \text{ध}^{२}\,\text{ज्या}^{२}\,\text{न})^{\frac{१}{२}}} - \int_{१}^{\text{ध}} \frac{\text{छ.धा.ध ज्या न ता (धा)}}{(\text{धा}^{२} - \text{ध}^{२}\,\text{ज्या}^{२}\,\text{न})^{\frac{१}{२}}}$$

सरल करने पर इसका रूप यह होगा—

$$\text{व} = \text{प स्परे न} + \text{फ स्परे}^{3}\,\text{न} \qquad (१)$$

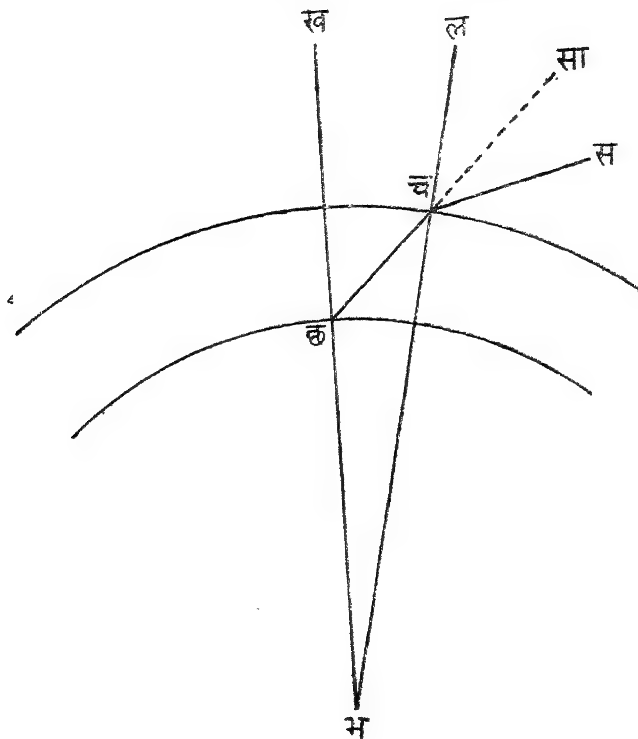
जहाँ प और फ कोई स्थिर राशियाँ हैं और न स्पष्ट नतांश है। प और फ के मान प्रत्यक्ष वेध से जाने जा सकते हैं।

कैसिनी का सूत्र—

कैसिनी नामक ज्योतिषी ने यह कल्पना किया कि वातावरण ऊपर से नीचे तक सजातीय है अर्थात् एक ही घनत्व का है। इस कल्पना से वर्तन का जो सूत्र ज्ञात हुआ वह ऊपर बतलाये गये सूत्र से मिलता जुलता है। इससे वर्तन का जो परिमाण जाना जाता है वह ८०° तक के नतांश के लिए सन्तोषप्रद है। यदि नतांश ८०° से अधिक हो तो वर्तन के परिमाण में स्थूलता रह जाती है।

इस कल्पना में यह मान लेना पड़ता है कि शून्य से आती हुई किरण वातावरण में प्रवेश करते ही एक बार झुक जाती है और फिर वही दिशा पृथ्वी तल तक बनी रहती है।

मान लो स च छ एक किरण है जो च विन्दु पर झुकी हुई है।



चित्र ७१

पृथ्वी की त्रिज्या = भ छ = क

भ च = क (१+छ) जबकि छ बहुत छोटा है जैसा कि पहले बतलाया गया है।

अ = आपात कोण = ∠स च ल = ∠स च सा + ∠ल च सा

= वर्तन + वर्तित कोण = व + छ च भ = व + वा

वर्तन के नियम के अनुसार

$$\text{ज्या अ} = \text{ध} \times \text{ज्या वा} \quad \text{या} \quad \text{ज्या (व} + \text{वा)} = \text{ध} \times \text{ज्या वा}$$

जहाँ ध वातावरण का वर्तनांक है।

यह स्पष्ट है कि व बहुत छोटा होता है। इसलिए

$$\text{ज्या (व} + \text{वा)} = \text{ज्या व} \times \text{कोज्या वा} + \text{कोज्या य} \times \text{ज्या वा}$$

$$= \text{व} \times \text{कोज्या वा} + \text{ज्या वा}$$

$$\therefore \text{ज्या वा} + \text{व} \times \text{कोज्या वा} = \text{ध} \times \text{ज्या वा}$$

$$\therefore \text{व} = (\text{ध} - १) \text{ स्परे वा}$$

त्रिभुज भ छ च में,

$$\frac{\text{ज्या वा}}{\text{ज्या न}} = \frac{\text{क}}{\text{क} (१ + \text{छ})} = \frac{१}{१ + \text{छ}}$$

$$\text{ज्या वा} = \frac{\text{ज्या न}}{१ + \text{छ}}$$

$$\text{परन्तु स्परे वा} = \text{ज्या वा} \div \text{कोज्या वा} = \text{ज्या वा} \div \sqrt{(१ - \text{ज्या}^२ \text{ वा})}$$

$$= \frac{\text{ज्या न}}{१ + \text{छ}} \div \sqrt{१ - \frac{\text{ज्या}^२ \text{ न}}{(१ + \text{छ})^२}}$$

$$= \frac{\text{ज्या न}}{\sqrt{\{(१ + \text{छ})^२ - \text{ज्या}^२ \text{ न}\}}}$$

$$\therefore \text{व} = (\text{ध} - १) \frac{\text{ज्या न}}{\sqrt{\{(१ + \text{छ})^२ - \text{ज्या}^२ \text{ न}\}}}$$

$$= (\text{ध} - १) \frac{\text{ज्या न}}{\sqrt{\{१ + २ \text{ छ} + \text{छ}^२ - \text{ज्या}^२ \text{ न}\}}}$$

$\text{छ}^२$ बहुत छोटा है इसलिए छोड़ दिया जा सकता है। ऐसी दशा में

$$\text{व} = (\text{ध} - १) \frac{\text{ज्या न}}{\sqrt{(\text{कोज्या}^२ \text{ न} + २ \text{ छ})}}$$

$$= \frac{(\text{ध} - १) \text{ ज्या न}}{\sqrt{\left(१ + \frac{२ \text{ छ}}{\text{कोज्या}^२ \text{ न}}\right)} \times \text{कोज्या न}}$$

$$= \frac{(\text{ध} - १) \text{ स्परे न}}{\sqrt{(१ + २\text{छ} \times \text{छे}^२ \text{ न})}} *$$

---

* Secant को छेदन रेखा कहते हैं जो Cosine अर्थात् कोटिज्या का विलोम होता है। छेदन रेखा का संक्षिप्त रूप छे माना गया है। इसी तरह Cosecant अर्थात् कोटिच्छेदन रेखा का संक्षिप्त रूप कोछे प्रयोग किया जाता है।

$=($ध$-१)$ स्परे न $($१$-$छ$\times$छे^{२} न$)$
$=($ध$-१)$ स्परे न $\{$१$-$छ $($१$+$स्परे^{२} न$)\}$
$=($ध$-१)$ स्परे न $\{$१$-$छ$-$छ स्परे^{२} न$\}$
$=($ध$-१)$ $($१$-$छ$)$ स्परे न$-$छ $($ध$-१)$ स्परे^{3} न
$=$प स्परे न$+$फ स्परे^{3} न (२)

यह पहले ही रूप का है। यहाँ प$=($ध$-१)$ $($१$-$छ$)$ और फ$=-$छ $($ध$-१)$

इस सूत्र का प्रयोग व्यवहार में उसी समय हो सकता है जब प और फ के मान ज्ञात हों। इनका ज्ञान प्रत्यक्ष वेध से हो सकता है जिसकी चर्चा आगे की जायगी। मान लो* यह पाया गया है कि ५०° फारनहैट के तापक्रम पर जबकि वायु का दबाव ३० इंच ऊँचे पारे के दबाव के समान है ५४° और ७४° नतांशों के वर्तन क्रमशः ८०″·०६ और २००″·४६ हैं।

उपर्युक्त सूत्र के अनुसार दो समीकरण यह हुए
८०″·०६$=$प (स्परे ५४°)$+$फ (स्परे ५४°)^3
२००″·४६$=$प (स्परे ७४°)$+$फ (स्परे ७४°)^3

इन समीकरणों से प और फ के मान क्रमशः ५८″·२६४ और ०″·०६६८२ आते हैं। इसलिए ५० फा० और ३० इंच के दबाव पर वर्तन का साधारण सूत्र यह होता है

व$=$५८″·२६३ स्परे न$-$०″.०६६८२ स्परे^{3} न (३)

यह भी प्रकट है कि $\frac{\text{फ}}{\text{प}}=\frac{१}{८७३}$, इसलिए जब तक स्परे^{3}न बहुत बड़ा न हो अर्थात् यदि सूर्य, या, तारा क्षितिज के पास न हो तब तक दूसरा पद भी छोड़ देने से कोई हानि नहीं हो सकती।

यदि नतांश ७०° से अधिक न हो और तापक्रम में भी बहुत अन्तर न हो तो वर्तन का मान जानने के लिए नीचे लिखे सरल पद का प्रयोग उचित होगा।

क स्परे न

जहाँ क के लिए ५८″·२ लेना अधिक शुद्ध होगा। इस क को वर्तन का गुणक (Coefficient of refraction) कहते हैं।

वायुमंडल का वर्तनांक ०°श तापक्रम और ७६० मि०मी० दबाव पर १·०००२९४ है (देखो Ball's Spherical Astronomy page 117) और कैसिनी

* Ball's Spherical Astronomy पृष्ठ १२७

के सूत्र के अनुसार ५०° फा० तापक्रम और ३० इंच दबाव पर वर्तनांक १·०००२८३ होता है।

सिम्प्सन और ब्रैडली नामक ज्योतिषियों ने भी वर्तन के सूत्र बनाये हैं परन्तु उनकी मीमांसा यहाँ आवश्यक नहीं है। यहाँ केवल ब्रैडली का सूत्र दे देना पर्याप्त होगा—

$$\text{व} = ५८''·३६१ \text{ स्परे (न—४·०६ व)} \qquad (४)$$

इस सूत्र से ८०° नतांश तक वर्तन का परिमाण सन्तोषजनक होता है। इस सूत्र से क्षितिज के पास वाले तारों का बेध ठीक-ठीक किया जा सकता है क्योंकि नतांश ६० अंश के निकट होने पर भी स्परे (न—४·०६ व) का परिमाण बहुत बड़ा नहीं होने पावेगा।

तापक्रम तथा वायुमंडल के दबाव के घटने-बढ़ने से भी वर्तन के परिमाण में अन्तर पड़ जाता है। परन्तु इन सब की चर्चा विस्तार के भय से छोड़ दी जाती है।

वेध से वातावरण के वर्तन का परिमाण जानना

वर्तन के लिए जो सूत्र पहले स्थापित किया गया है उसके गुणकों के मान जानने के लिए कई रीतियाँ काम में लायी जाती हैं। इनमें से तीन रीतियों की चर्चा यहाँ की जायगी। पहली और दूसरी रीतियों से एक ही वेधशाला के वेधों से काम चल सकता है यदि इसका अक्षांश बहुत कम या अधिक न हो। तीसरी रीति में दो वेधशालाओं की आवश्यकता पड़ती है।

पहली रीति—ऐसा तारा चुनना चाहिए जो दोनों यामोत्तरोल्लंघनों के समय क्षितिज के ऊपर रहे। चित्र ७२ में त, ता ऐसे ही एक तारे के स्पष्ट स्थान स्थान हैं। दोनों समय तारे का स्पष्ट नतांश जान लेना चाहिए। मान लो तारे का स्पष्ट नतांश त स्थान पर न और ता स्थान पर ना है।

सूत्र के अनुसार इसके यथार्थ नतांश हुए

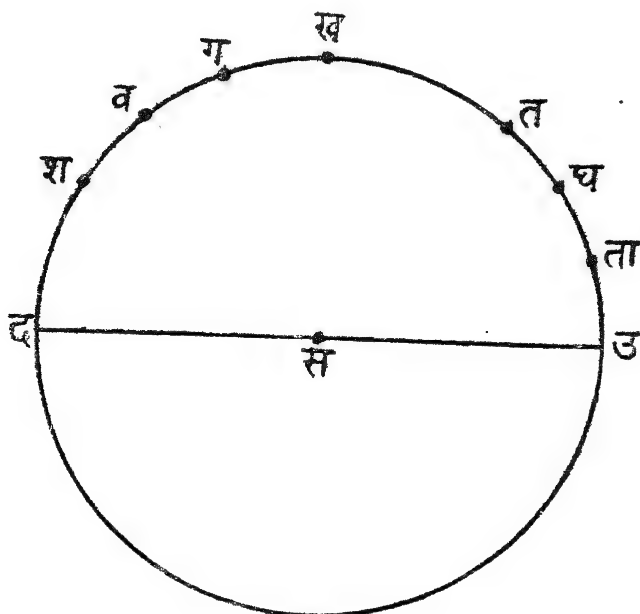
$$\text{न} + \text{प स्परे न} + \text{फ स्परे}^3 \text{ न}$$

$$\text{और ना} + \text{प स्परे ना} + \text{फ स्परे}^3 \text{ ना}$$

यदि त, ता तारे के यथार्थ स्थान मान लिए जायँ तो त ध = ता ध और ख त + ख ता = २ ख ध = २ लम्बांश = २ (६०° — अ) अर्थात् दोनों यथार्थ नतांशों का योग = २ (६०° — अ), जहाँ स स्थान का अक्षांश अ है।

$$\therefore \text{न} + \text{प स्परे न} + \text{फ स्परे}^3 \text{ न} + \text{ना} + \text{प स्परे ना}$$
$$+ \text{फ स्परे}^3 \text{ ना} = १८०° - २ \text{ अ}$$

यदि इस समीकरण में न और ना के मान जो वेध से जाने जाते है उत्थापित किये जायं तो तीन अज्ञात अंकों प, फ और अ का एकघात (linear) समीकरण आ जाता है। इसी प्रकार यदि तीन तारों के स्पष्ट नतांश वेध से जान लिये जायँ तो तीन समीकरण मिल जायँगे जिनसे प, फ और अ के मान सहज ही जाने जा सकते हैं।



चित्र ७२

उ स द=स स्थान की उत्तर दक्खिन रेखा

उ, द=क्षितिज के क्रमशः उत्तर दक्षिण विन्दु

उ ध ख व द=यामोत्तर वृत्त

ध=उत्तरी आकाशीय ध्रुव

ख=स स्थान का खस्वस्तिक

व=विषुवद्वृत्त और यामोत्तर वृत्त का सामान्य विन्दु

त=यामोत्तरोल्लंघन के समय तारे का उच्चतम स्थान

ता=यामोत्तरोल्लंघन के समय उसी तारे का नीचतम स्थान

ग=सूर्य का ग्रीष्मायन विन्दु

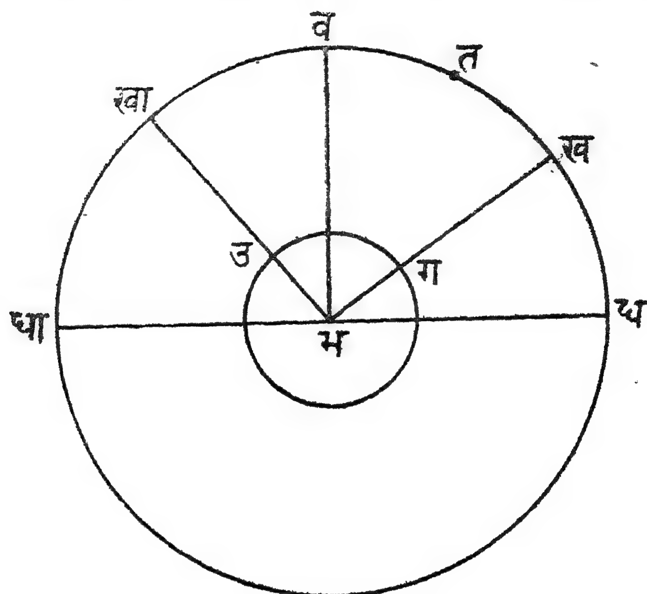
श=सूर्य का शीतायन विन्दु

दूसरी रीति—अयनान्त विन्दुओं के निकट जब सूर्य हो तब इसके नतांशों से भी वर्तन के स्थिर गुणक प, फ जाने जा सकते हैं।

चित्र ७२ में ख ग और ख श सूर्य के यथार्थ नतांश हों तो ख ग+ख श=२ ख व=२ अ

मान लो ग का स्पष्ट नतांश न और श का स्पष्ट नतांश ना है तो

न+प स्परे न+फ स्परे^{3} न + ना+प स्परे ना+फ स्परे^{3} ना=२ अ



चित्र ७३

भ=पृथ्वी का केन्द्र	छोटा वृत्त=पृथ्वीतल
बड़ा वृत्त=यामोत्तर वृत्त	ध, धा=उत्तरी और दक्षिणी आकाशीय ध्रुव
ग=उत्तर गोल की एक वेधशाला	उ=दक्षिण गोल की दूसरी वेधशाला
ख=ग स्थान का खस्वस्तिक	खा=उ स्थान का खस्वस्तिक
व=विषुवद्‌वृत्त का एक विन्दु	त=तारा

ध भ धा=पृथ्वी का अक्ष

यदि अ ज्ञात हो और फ स्परे^{3} न या फ स्परे^{3} ना बहुत छोटे होने के कारण छोड़ दिये जायँ तो प का मान सहज ही जाना जा सकता है। परन्तु इस रीति में ६ महीने लग जाते हैं।

तीसरी रीति—इस रीति में उत्तर और दक्खिन की दो वेधशालाओं से याम्योत्तर वृत्त पर स्थित उसी तारे के स्पष्ट नतांश जानकर वर्तन के गुणक स्थिर किये जाते हैं।

ग वेधशाला से त तारे का दक्षिण नतांश ख त और उ वेधशाला से त तारे का उत्तर नतांश खा त हैं।

ख त = ख व − व त = अ − क

खा त = खा व + व त = आ + क

जब कि अ, आ दोनों वेधशालाओं के अक्षांश और क तारे की क्रान्ति हैं।

यदि ग और उ से त के स्पष्ट नतांश न और ना हों तो

ख त = न + प स्परे न + फ स्परे^{3} न

और खा त = ना + प स्परे ना + फ स्परे^{3} ना

∴ न + प स्परे न + फ स्परे^{3} न + ना + प स्परे ना + फ स्परे^{3} ना

= ख त + खा त = अ + आ

यदि फ स्परे^{3} न और फ स्परे^{3} ना को अत्यन्त छोटे होने के कारण छोड़ दिया जाय तो

न + प स्परे न + ना + प स्परे ना = अ + आ

इसमें न, ना, अ और आ के मान वेध से जानकर उत्थापित करने से प का मान जाना जा सकता है। यदि फ का मान भी जानना हो तो एक और तारे के स्पष्ट नतांश जानने की आवश्यकता पड़ेगी।

उदाहरण के लिए अन्तरमदा पुञ्ज के ख तारे (β Andromeda) के नतांश ग्रीनविच और उत्तमाशा अन्तरीप (Cape of Good Hope) की वेधशालाओं से जिनके अक्षांश क्रमशः ५१°२८′३८″ उत्तर और ३३°५६′४″ दक्षिण हैं लिये जाते हैं। पहली वेधशाला से तारे का स्पष्ट दक्षिण नतांश जब वह याम्योत्तर वृत्त पर था १६°२०′३″ और दूसरी वेधशाला से उसी तारे का स्पष्ट उत्तर नतांश ६९°१′५०″ था। इसलिए

१६°२०′३″ + प स्परे १६°२०′३″ + ६९°१′५०″ + प स्परे ६९°१′५०″

= ५१°२८′३८″ + ३३°५६′४″

= ८५°२४′४२″

∴ प (स्परे १६°२०′३″ + स्परे ६९°१′५०″)

= ८५°२४′४२″ − ८५°२१′५३″

= २′४९″

या प (.२९३० + २.६०९३) = २′४९″ = १६९″

$$\therefore\ प = \frac{१६६}{२.६०७३} = ५८''\cdot२३$$

वर्तन के कारण आकाशीय पिंडों का उदय कुछ पहले और अस्त कुछ पीछे देख पड़ता है इसलिए दिनमान बढ़ जाता है।

आकाशीय पिण्डों का उदय उस समय समझा जाता है जिस समय उनका केन्द्र पूर्व क्षितिज पर आ जाता है। उस समय उनका स्पष्ट नतांश ९०° होता है। परन्तु यह सिद्ध हो चुका है कि स्पष्ट नतांश से यथार्थ नतांश वर्तन के समान अधिक होता है। यह भी बतलाया गया है कि जिस समय स्पष्ट नतांश ९०° होता है उस समय वर्तन ३५′ के लगभग होता है। इसलिए उदय होने के समय आकाशीय पिंड का यथार्थ नतांश ९०°३५′ के लगभग होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस समय आकाशीय पिंड का केन्द्र क्षितिज पर लगा हुआ देख पड़ता है उस समय क्षितिज से वह ३५′ के लगभग नीचे रहता है। इसलिये यह प्रत्यक्ष है कि जब सूर्य का केन्द्र क्षितिज से ३५′ नीचे रहता है तभी से वह उदय हुआ देख पड़ता है और अस्त होने के समय जब तक उसका केन्द्र क्षितिज से ३५′ नीचे तक नहीं पहुँच जाता तब तक देख पड़ता है। इस कारण स्पष्ट दिनमान यथार्थ दिनमान से ५ मिनट या १२, १३ पल के समान अधिक होता है। इस बढ़ती का ठीक-ठीक परिमाण जानने के लिए हमें उदय होते हुए सूर्य के नतकाल की तात्कालिक गति निकालनी चाहिए।

सूर्य का नतकाल जानने का सूत्र यह है [देखो पृष्ठ २९१ समीकरण (१)]

कोज्या (नतकाल) × कोज्या अक्षांश × कोज्या क्रान्ति

= कोज्या नतांश − ज्या अक्षांश × ज्या क्रान्ति

यदि नतकाल, अक्षांश, क्रान्ति और स्पष्ट नतांश के लिए न त, अ, क और न क्रमानुसार मान लिये जायँ और कुछ पद दाहिने से बायें अथवा बायें से दाहिने पक्ष में कर दिये जायँ तो

कोज्या न = ज्या अ × ज्या क + कोज्या अ × कोज्या (न त) × कोज्या क

अक्षांश और क्रान्ति को स्थिर मानकर न और न त के तात्कालिक सम्बन्ध ज्ञात किये जायँ तो

ज्या न × ता (न) = कोज्या अ × कोज्या क × ज्या (नत) × ता (नत)

परन्तु उदय या अस्त होते हुए सूर्य का नतांश ९०° होता है इसलिए

ज्या न = ज्या ९०° = १; कोज्या न = ० इसलिए

कोज्या (न त) = − स्परे अ × स्परे क (१)

ता (न) = कोज्या अ × कोज्या क × ज्या (न त) × ता (न त)

अथवा

$$\text{ता (न त)} = \frac{\text{ता (न)}}{\text{कोज्या अ} \times \text{कोज्या क} \times \text{ज्या (न त)}} \qquad (२)$$

यदि नतांश की तात्कालिक गति ता (न) की जगह ३५′ उत्थापित की जाय तो ६०° के स्पष्ट नतांश के वर्तन के लगभग होती है और समीकरण (२) का दाहिना पक्ष सरल किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि वर्तन के कारण उदयकालिक नतकाल कितना बढ़ जाता है।

उदाहरण १. काशी में सायन कर्क और सायन मकर संक्रान्ति के दिन स्पष्ट सूर्योदय से स्पष्ट सूर्यास्त तक के समय क्या हैं ?

आजकल सायन कर्क संक्रान्ति के दिन सूर्य की उत्तर क्रान्ति २३°२७′ और सायन मकर संक्रान्ति के दिन सूर्य की दक्षिण क्रान्ति २३°२७′ होती है। काशी का अक्षांश २५°१८′ मान लिया जाता है।

∴ कर्क संक्रान्ति के दिन

कोज्या (नत) = −स्परे २५°१८′ × स्परे २३°२७′

= −.४७२७ × .४३३७

= −.२०५०

यह ऋणात्मक है। इसलिए सिद्ध होता है कि नतकाल ९०° से अधिक है। यदि नतकाल = ९०° + ना, तो

कोज्या (९०° + ना) = .२०५०

− ज्या (ना) = −.२०५०

∴ ना = ११°५०′

∴ नतकाल = ९०° + ११°५०′ = १०१°५०′

= ६ घंटा ४७ मिनट २० सेकंड

= १६ घड़ी ५८ पल

यह गणित सिद्ध नतकाल हुआ।

मकर संक्रान्ति के दिन क्रान्ति दक्षिण है इसलिए समीकरण (१) का दाहिना पक्ष धनात्मक होगा और कोज्या (न त) = +.२०५० [देखो पृष्ठ २९२]

∴ मकर संक्रान्ति के दिन

गणित सिद्ध नतकाल = ७८°१०′ = ९०° − ११°५०′

= ६ घंटा − ४७ मि० २० से०

= ५ घंटा १२ मि० ४० से०

यदि वर्तन न होता तो यही सूर्योदय से मध्यान्ह तक का समय होता। परन्तु वर्तन का परिमाण ३५′ के लगभग होता है इसलिए समीकरण (२) में ता (न) की जगह ३५′ उत्थापन करने से, कर्क संक्रान्ति के दिन

$$\text{ता (नत)} = \frac{३५'}{\text{कोज्या } २५^\circ१८' \text{ कोज्या } २३^\circ२७' \text{ ज्या } १०१^\circ५०'}$$

$$= \frac{३५'}{.९०४१ \times .९१७५ \times .९७८७}$$

$$= \frac{३५'}{.८११८४}$$

$= ४३'.१२$

$= ४३.१२$ आसु

$=$ ७ पल या २ मिनट ५२ सेकंड

मकर संक्रान्ति के दिन भी वर्तन के कारण इतनी ही वृद्धि होगी क्योंकि ज्या ७८°१०′=ज्या १०१°५०′ और कोज्या २३°२७′ के मान में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा चाहे २३°२७′ उत्तर क्रान्ति हो या दक्षिण क्रान्ति हो क्योंकि कोज्या २३°२७′=कोज्या(– २३°·७′)

इसलिए काशी में कर्क संक्रान्ति के दिन उदयकालिक स्पष्ट या वेधसिद्ध नतकाल=१६ घड़ी ५८ पल+७ पल

=१७ घड़ी ५ पल

और स्पष्ट या वेधसिद्ध दिनमान=३४ घड़ी १० पल

इसी प्रकार काशी में मकर संक्रान्ति के दिन उदयकालिक स्पष्ट या वेधसिद्ध नतकाल=१३ घड़ी २ पल + ७ पल

=१३ घड़ी ९ पल

और स्पष्ट या वेधसिद्ध दिनमान=२६ घड़ी १८ पल

उदाहरण २—सायन मेष और सायन तुला संक्रान्तियों के दिन काशी में स्पष्ट दिनमान क्या होगा ?

सायन मेष या सायन तुला संक्रान्तियों के दिन यदि सूर्य के उदयकाल में क्रान्ति शून्य हो तो गणित के नतकाल ठीक ९०° या घंटा अथवा १५ घड़ी होगा। वर्तन के कारण जो वृद्धि होगी उसका परिमाण यों निकलेगा।

$$\text{ता (नत)} = \frac{३५'}{\text{कोज्या } २५^\circ१८' \text{ कोज्या} ०^\circ \text{ ज्या } ९०^\circ}$$

$$=\frac{३५'}{\text{कोज्या } २५^\circ\ १८'}=\frac{३५'}{.९०४१}$$

$=३८'.७$

$=३८.७$ असु

$=६$ पल के लगभग

∴ सायन मेष या तुला संक्रान्तियों के दिन वेधसिद्ध उदयकालिक नतकाल

$=१५$ घड़ी ६ पल

∴ इन दिनों मे वेधसिद्ध या स्पष्ट दिनमान $=३०$ घड़ी १२ पल

इस प्रकार सिद्ध है कि सायन मेष और सायन तुला संक्रान्ति के दिन वर्तन के कारण दिनमान रात्रिमान से १२ पल अधिक होता है। यह प्रसिद्ध बात है कि इन दिनों में दिनमान और रात्रिमान सब स्थानों में समान होते हैं। इसलिए यदि कोई सूर्य के उदय से अस्त तक के समय को वेध से नापकर विलोम रीति से सायन मेष और तुला संक्रान्ति का दिन जानना चाहे तो वह निश्चय करेगा कि सायन मेष संक्रान्ति यथार्थ संक्रान्ति काल से ३ दिन पहले और सायन तुला संक्रान्ति यथार्थ संक्रान्ति से ३ दिन पीछे पड़ेगी।

मकरन्द सारिणी के पृष्ठ १३ में काशी के लिए महत्तम दिनमान का परिमाण ३४ घड़ी ५ पल और लघुतम दिनमान का २५ घड़ी ५५ पल दिया हुआ है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस सारिणी में कर्क संक्रान्ति के दिन उदयकालिक नतकाल का परिमाण १७ घड़ी २.५ पल निश्चय किया गया था। अब यह देखना कि मकरन्द-कार ने गणित से अथवा वेध से यह दिनमान निश्चय किया था।

सूर्य-सिद्धान्त ने सूर्य की महत्तम क्रान्ति २४° माना है। इसलिए अनुमान होता है कि मकरन्दकार ने गणित से चरकाल जानने के लिए इसी क्रान्ति का उपयोग किया होगा। यह पता नहीं कि काशी का अक्षांश उन्होंने क्या माना था। आजकल यह $२५^\circ१८'$ के लगभग निश्चय हुआ है। इसलिए यह मान लेने में कोई हानि नहीं जान पड़ती कि मकरन्दकार ने काशी का अक्षांश २५° माना होगा। यदि २५° अक्षांश माना गया हो तो सायन कर्क संक्रान्ति के दिन काशी में

सूर्य की चरज्या $=$ स्परे $२४^\circ \times$ स्परे २५°

$=.४४५२ \times .४६६३$

$=.२०७६$

∴ चरांश $=११^\circ५९'$

$=७१९$ चरासु

$=१२०$ पल

$=२$ घड़ी

∴ उदयकालिक नतकाल = १५ + २ = १७ घड़ी

∴ कर्क संक्रान्ति के दिन काशी में महत्तम दिनमान = ३४ घड़ी

इससे प्रकट होता है कि काशी का अक्षांश २५° से कुछ अधिक माना गया होगा क्योंकि तभी चरकाल २ घड़ी २.५ पल हो सकता है।

इससे यह भी अनुमान होता है कि ब्रह्मगुप्त के समय से लेकर गणेश दैवज्ञ के समय तक सभी आचार्य सूर्य की परमक्रान्ति २४° इसीलिए मानते आये कि महत्तम दिनमान उनके वेध से उतना ही आता रहा जितना २४° की चरम क्रान्ति मानने से आता है क्योंकि उनको यह नहीं ज्ञात था कि वातावरण के कारण स्पष्ट दिनमान यथार्थ दिनमान से १४, १५ पल के लगभग बढ़ जाता है।

वर्तन का विचार करने से महत्तम दिनमान आजकल ३४ घड़ी १० पल होता है। यह ३४ घड़ी ५ पल से केवल ५ पल अधिक है। इतनी अशुद्धि उदय और अस्तकाल के वेध के लिए अधिक नहीं कही जा सकती।

वर्तन के कारण सूर्य के आकार में भेद—उदय अस्त होते हुए सूर्य का आकार बड़ा और कुछ अंडाकार देख पड़ता है। इसका कारण यही है कि क्षितिज के पास वर्तन की वृद्धि बहुत तीव्र होती है। सूर्य का विम्ब ३२ कला के लगभग होता है। इसलिए जिस समय सूर्य के विम्ब का सबसे नीचे वाला विन्दु क्षितिज में लगा रहता है उसका स्पष्ट नतांश ९०° रहता है और बिम्ब के सबसे ऊपर वाले विन्दु का नतांश ३२ कला के लगभग कम रहता है। इस भिन्नता के कारण नीचेवाला विन्दु अधिक उठा हुआ रहता है और ऊपर वाला विन्दु उससे कम। इससे विम्ब का ऊर्ध्वव्यास कोई ५ कला कम देख पड़ने से सूर्य अंडाकार देख पड़ता है।

वर्तन की और अधिक मीमांसा करने से विस्तार बहुत बढ़ जायगा। यदि यह जानना हो कि सूर्य का ऊपरी विम्ब क्षितिज पर कब आता है तो पृष्ठ ३७९ के समीकरण (२) में ता (न) की जगह ३५′ + सूर्य के अर्द्धव्यास अथवा ३५′ + १६′ उत्थापन करने से जितना आवे उसे गणित सिद्ध नतकाल में जोड़ देना चाहिए।

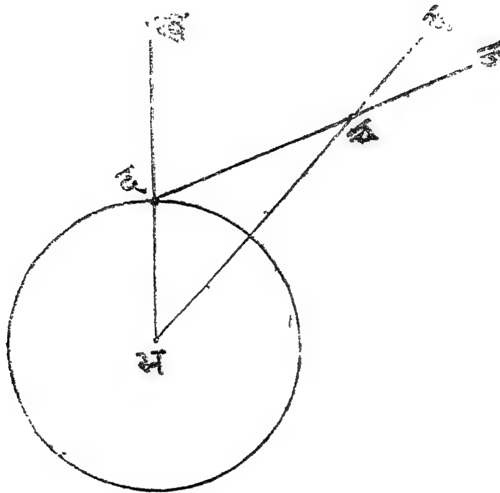
चन्द्रमा का उदयकाल जानने के लिए एक संस्कार और करना पड़ता है जिसे लम्बन संस्कार कहते हैं। इसलिए आगे लम्बन (parallax) की व्याख्या की जायगी।

लंबन*

स्पष्टाधिकार में बतलाई गयी नयी रीतियों से भी सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहों के जो स्थान ज्ञात होते हैं वह भूकेन्द्र से ठीक वैसे ही देखे जा सकते हैं। परन्तु भूतल के

*इस खंड के लिखने में Loomis की Practical Astronomy से बहुत सहायता ली गई है।

किसी स्थान से देखने पर उन स्थानों में कुछ अन्तर देख पड़ता है। यदि भूतल के किसी दो स्थानों से दो द्रष्टा चन्द्रमा को एक ही क्षण में देखें तो वह एक ही दिशा में नहीं देख पड़ता। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि किस स्थान से देखने पर आकाशीय पिण्ड यथार्थ स्थान से कितने अंतर पर देख पड़ता है। भूकेन्द्र और भूतल के किसी स्थान से देखने पर आकाशीय पिण्ड की दिशाओं में जो अन्तर देख पड़ता है उसे लंबन कहते हैं।



चित्र ७४

चित्र ७४ में भ पृथ्वी का केन्द्र या भूकेन्द्र है, द भूतल का एक स्थान जहाँ द्रष्टा चंद्रमा च को देख रहा है। भ द ख ऊर्ध्व रेखा है जो द स्थान के खस्वस्तिक ख तक जाती है। द स्थान से द्रष्टा को चन्द्रमा द च ज दिशा में देख पड़ेगा और भूकेन्द्र भ से चन्द्रमा भ च छ दिशा में देख पड़ेगा। इन दिशाओं में जो अंतर है वह कोण भ च द के समान है। यही द स्थान से चन्द्रमा का लंबन है।

द से चन्द्रमा का नतांश कोण ख द च के समान है जिसे चन्द्रमा का स्पष्ट नतांश कहते हैं। भ से चन्द्रमा का नतांश कोण ख भ च के समान है जिसे चन्द्रमा का यथार्थ नतांश कहा जाता है। चित्र से यह सिद्ध है कि चन्द्रमा का स्पष्ट नतांश चन्द्रमा का यथार्थ नतांश + लम्बन।

यह स्पष्ट है कि लम्बन के कारण चन्द्रमा का स्पष्ट नतांश यथार्थ नतांश से अधिक हो जाता है इसलिए चन्द्रमा का उन्नतांश उतना ही कम हो जाता है। इस

कारण चन्द्रमा यथार्थ स्थान से कुछ लटका हुआ देख पड़ता है। इसीलिए इस परिवर्तन का नाम लम्बन पड़ा। इस लम्बन का प्रभाव चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहों के भोगांश, शर, विषुवांश, क्रान्ति, इत्यादि पर भी पड़ता है जिसकी व्याख्या आगे की जायगी।

मान लो कि त्र=भ द, पृथ्वी की त्रिज्या;

क=भ च, भूकेन्द्र से चन्द्रमा की दूरी;

न=∠ख भ च, चन्द्रमा का यथार्थ नतांश;

ना=∠ख द च, चन्द्रमा का स्पष्ट नतांश;

ला=∠भ च द, चन्द्रमा का नतांश सम्बन्धी लम्बन;

त्रिभुज द भ च में

$$\frac{\text{भ द}}{\text{ज्या भ च द}} = \frac{\text{भ च}}{\text{ज्या भ द च}}$$

परन्तु ∠भ द च और ∠ख द च का योग १८०° होता है इसलिए ज्या भ द च =ज्या ख द च। इनकी जगह ऊपर लिखे संकेत के अक्षर उत्थापित करने से सिद्ध होता है की

$$\frac{\text{त्र}}{\text{ज्या ला}} = \frac{\text{क}}{\text{ज्या ना}}$$

$$\text{अथवा ज्या ला} = \frac{\text{त्र}}{\text{क}} \times \text{ज्या ना}$$

इसका अर्थ यह हुआ कि नतांश सम्बन्धी लम्बन की ज्या

$$= \frac{\text{पृथ्वी की त्रिज्या}}{\text{चन्द्रमा की दूरी}} \times \text{स्पष्ट नतांश की ज्या}$$

इससे यह सिद्ध होता है कि किसी दिये हुए स्थान के लिए यदि चन्द्रमा या किसी ग्रह की दूरी दी हुई हो तो इसका लम्बन इसके स्पष्ट नतांश की ज्या के अनुसार घटता बढ़ता है, अर्थात् यदि इसका स्पष्ट नतांश कम हो तो लम्बन कम होगा और अधिक हो तो लम्बन अधिक होगा। यदि स्पष्ट नतांश ९०° हो अर्थात् चन्द्रमा या ग्रह उदय या अस्त हो रहा हो तो इसकी ज्या का मान १ होगा जो महत्तम है। ऐसी दशा में नतांश सम्बन्धी लम्बन भी महत्तम अर्थात् सबसे अधिक होगा। महत्तम लम्बन को परम लम्बन या क्षितिज लम्बन कहते हैं क्योंकि इतना बड़ा लम्बन उसी समय होता है जब आकाशीय पिंड उदय या अस्त हो रहा हो और क्षितिज पर हो। यह भी स्पष्ट है कि जब पिंड ठीक खस्वस्तिक पर रहता है तब उसका नतांश शून्य होने

से स्पष्ट नतांश की ज्या भी शून्य होगी और लम्बन का मान शून्य हो जायगा। अर्थात् जब आकाशीय पिंड ठीक सिर के ऊपर खस्वस्तिक पर रहता है तब उसमें नतांश सम्बन्धी लम्बन नहीं होता।

यदि क्षितिज लम्बन को ल से प्रकट किया जाय तो

$$\text{ज्या ल} = \frac{\text{त्र}}{\text{क}}$$

यदि पहले समीकरण में $\frac{\text{त्र}}{\text{क}}$ की जगह ज्या ल रखा जाय तो

$$\text{ज्या ला} = \text{ज्या ल} \times \text{ज्या ना} \qquad (१)$$

इसका अर्थ यह हुआ कि क्षितिज लम्बन की ज्या को स्पष्ट नतांश की ज्या से गुणा कर दिया जाय तो नतांश सम्बन्धी लम्बन की ज्या आ जायगी।

इस सूत्र से लम्बन का ज्ञान तभी हो सकता है जब पिंड का स्पष्ट नतांश ज्ञात हो। यदि यथार्थ नतांश दिया हुआ हो तो दूसरे प्रकार के सूत्र से काम चलेगा जिसका रूप इस प्रकार सिद्ध होता है—

चित्र ७४ से स्पष्ट है कि

$$\text{ना} = \text{न} + \text{ला}$$

इसलिए सूत्र (१) से

$$\text{ज्या ला} = \text{ज्या ल} \times \text{ज्या } (\text{न} + \text{ला})$$

$$= \text{ज्या ल } (\text{ज्या न कोज्या ला} + \text{कोज्या न ज्या ला})$$

$$= \text{ज्या ल ज्या न कोज्या ला} + \text{ज्या ल कोज्या न ज्या ला}$$

दोनों पक्षों को कोज्या ला से भाग देने पर

$$\text{स्परे ला} = \text{ज्या ल ज्या न} + \text{ज्या ल कोज्या न स्परे ला}$$

स्परे ला को एक पक्ष में करने पर

$$\text{स्परेला} = \frac{\text{ज्या ल ज्या न}}{1 - \text{ज्या ल कोज्या न}}$$

इस सूत्र से लम्बन का मान उस समय जाना जा सकता है जब यथार्थ नतांश दिया हुआ हो। परन्तु इस रीति से लम्बन जानने में सुविधा नहीं होती क्योंकि इसमें गुणा भाग बहुत करना पड़ता है। इसलिए इसको सरल करने के लिए दूसरा रूप सिद्ध करना चाहिए।

यदि दाहिने पक्ष के अंश को हर से भाग दे दिया जाय तो

$$\text{स्परे ला} = \text{ज्या ल ज्या न} + \text{ज्या}^{2}\text{ ल ज्या न कोज्या न} + \text{ज्या}^{3}\text{ ल ज्या न कोज्या}^{2}\text{ न} + \text{ज्या}^{4}\text{ ल ज्या न कोज्या}^{3}\text{ न} \cdots \text{इत्यादि}$$

इस श्रेणी के आगे के पद इतने छोटे होते जाते हैं कि केवल पहले तीन पद ले लेने में कोई हानि नहीं हो सकती, यदि ल का मान १° से अधिक न हो।

स्परेला की जगह ऐसे पद भी रखे जा सकते हैं जिनमें केवल ला हो क्योंकि*

$$\text{ला} = \text{स्परेला} - \frac{१}{३}\,\text{स्परे}^3\,\text{ला}$$

जो धनु को उसकी स्पर्शरेखा में प्रकट करने का प्रायः शुद्ध सूत्र है यदि धनु का परिमाण बहुत छोटा हो। इस सूत्र के दूसरे पद के लिए यदि केवल $\frac{\text{ज्या}^3\text{ल ज्या}^3\text{न}}{३}$ ले लिया जाय तो कोई हानि नहीं हो सकती। ऐसी दशा में

$$\text{ला} = \text{ज्या ल ज्या न} + \text{ज्या}^२\text{ल ज्या न कोज्या न} + \text{ज्या}^3\text{ल ज्या न कोज्या}^२\text{न} - \frac{\text{ज्या}^3\text{ल ज्या}^3\text{न}}{३} + \cdots\cdots$$

$$= \text{ज्या ल ज्या न} + \text{ज्या}^२\text{ल ज्या न कोज्या न} + \text{ज्या}^3\text{ल}\left(\text{ज्या न कोज्या}^२\text{न} - \frac{\text{ज्या}^3\text{न}}{३}\right) + \cdots\cdots$$

$$\text{परन्तु ज्या न कोज्या न} = \frac{\text{ज्या २ न}}{२}$$

$$\text{और ज्या न कोज्या}^२\text{न} - \frac{\text{ज्या}^3\text{न}}{३}$$

$$= \frac{३\,\text{ज्या न कोज्या}^२\text{न} - \text{ज्या}^3\text{न}}{३}$$

$$= \frac{३\,\text{ज्या न} - ३\,\text{ज्या}^3\text{न} - \text{ज्या}^3\text{न}}{३}$$

$$= \frac{३\,\text{ज्या न} - ४\,\text{ज्या}^3\text{न}}{३}$$

$$= \frac{\text{ज्या ३ न}}{३}\,**$$

$$\text{इसलिए ला} = \text{ज्या ल ज्या न} + \frac{\text{ज्या}^२\text{ल ज्या२ न}}{२} + \frac{\text{ज्या}^3\text{ल ज्या३ न}}{३} + \cdots\cdots$$

---

* देखो सुधाकर द्विवेदी का चलन कलन पृष्ठ ४०

** देखो Hall and Knight की त्रिकोणमिति पृष्ठ १०५ (१९१० की छपी)

इस सूत्र से ला का जो मान आवेगा वह रेडियन में होगा। इसको विकलाओं में प्रकट करने के लिए दाहिने पक्ष के प्रत्येक पद को ज्या १″ से भाग दे देना चाहिए अथवा कोछेरे १″ से गुणाकर देना चाहिए क्योंकि

१ रेडियन=२०६२६५″

∴ १″=.००००४८५ रेडियन

∴ ज्या १″=.००००४८५

इससे सिद्ध है कि रेडियन से विकला बनाना हो तो रेडियन को ·००००४८५ से भाग दो। परन्तु .००००४८५=ज्या १″, इसलिए रेडियन से विकला बनाने के लिए रेडियन को ज्या १″ से भी भाग दे देना चाहिए।

इस प्रकार

$$\text{ला}=\frac{\text{ज्या ल ज्या न}}{\text{ज्या १}''}+\frac{\text{ज्या}^{२}\text{ल ज्या२ न}}{२\text{ज्या १}''}+\frac{\text{ज्या}^{३}\text{ल ज्या३ न}}{३\text{ ज्या १}''}+ \qquad (३)$$

=ज्या ल ज्या न कोछेरे १″+ज्या^{२}ल ज्या २ न कोछेरे २″+ज्या^{३} ल ज्या ३ न कोछेरे ३″ क्योंकि $\frac{१}{\text{ज्या १}''}$=कोटि छेदन रेखा १″ जिसे संक्षेप में कोछेरे १″ लिखा गया है

२ ज्या १″=ज्या २″ ∴ $\frac{१}{\text{२ ज्या १}''}=\frac{१}{\text{ज्या २}''}$=कोछेरे २″, इत्यादि।

इस सूत्र से किसी आकाशीय पिंड का लम्बन उस समय निकाला जा सकता है जब उसका यथार्थ नतांश दिया हुआ हो।

चंद्रमा का लम्बन जानने के लिए इस श्रेणी के तीनों पदों की आवश्यकता पड़ती है परन्तु सूर्य तथा ग्रहों के लिए केवल पहले पद से काम चल जाता है क्योंकि इनके लंबन बहुत कम होते हैं इसलिए दूसरे और तीसरे पदों के मान नहीं के समान होते हैं।

इसलिए सूर्य तथा ग्रहों के लंबन के लिए केवल यह सूत्र पर्याप्त होगा :—

$$\text{ला}=\frac{\text{ज्या ल ज्या न}}{\text{ज्या १}''}$$

* उदाहरण १—यदि शुक्र का क्षितिज लंबन ३०″ हो तो जिस समय इसका यथार्थ नतांश ६०° होगा उस समय इसका लंबन क्या होगा ?

ला = ल ज्या न

= ३०″ × ज्या ६०°

= ३०″ × .८६६

= २५″.६८

उदाहरण २—यदि सूर्य का क्षितिज लम्बन ८″.६ हो तो जिस समय इसका यथार्थ उन्नतांश १६° होगा उस समय इसका लम्बन क्या होगा ?

सूर्य का यथार्थ नतांश ९०° − १६° = ७४°

ला = ल ज्या न

= ८″.६ × ज्या ७४°

= ८″.६ × .९६१३

= ८″.२७

उदाहरण ३—यदि चन्द्रमा का क्षितिज लम्बन ६०′ ४१″.५ हो तो उसका लम्बन क्या है जब कि उसका स्पष्ट नतांश ८०° १९′ १९″ हो ?

यहाँ चन्द्रमा का स्पष्ट नतांश दिया हुआ है इसलिए पहले सूत्र से काम लेना होगा। इसलिए

ज्या ला = ज्या ल × ज्या ना

= ज्या ६०′ ४१″.५ × ज्या ८०° १९′ १९″

गुणा भाग की क्रिया को कम करने के लिए इन कोणों की लघुरिक्थ सम्बन्धी ज्या (logarithmic sines) से काम लेना अच्छा होगा। लघुरिक्थ सम्बन्धी ज्या, कोज्या, स्पर्शरेखा को संक्षेप में लरि ज्या, लरि कोज्या और लरि स्परे लिखा जायगा।

लरि ज्या ६०′ ४१″.५ = ८.२४६८३३

लरि ज्या ८०° १९′ १९″ = ९.९९३७७५

योग = ८.२४०६०८

∴ लरि ज्या ला = ८.२४०६०८

और ला = ५९′ ४९″.६७

उदाहरण ४—यदि चन्द्रमा का क्षितिज लम्बन ६०′ ४१″.५ हो और उसका यथार्थ नतांश ७९° १९′ २९″.३३ हो तो उसका लम्बन क्या होगा ?

* लम्बन के सम्बन्ध में जितने उदाहरण लिखे गये हैं वे सब Loomi's Practical Astronomy से लिये गये हैं।

यहाँ यथार्थ लम्बन दिया हुआ है इसलिए सूत्र (३) से काम लेना पड़ेगा।

लरिज्या ६०′ ४१″ .५ = ८ . २४६८३३
लरिज्या ७९° १९′ २९″ .३३ = ९ . ९९२४१८
लरि कोछेरे १″ = ५ . ३१४४२५
योग = ३ . ५५३६७६

परन्तु लरि ३५७८′ . २९ = ३ . ५५३६७६
∴ सूत्र (३) का पहला पद = ३५७८″ . २९
= ५९′ ३८″ . २९

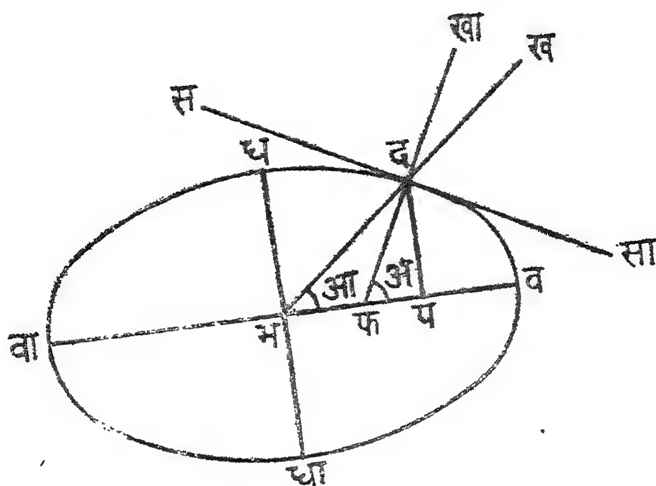
लरि ज्या² ६०′ ४१″ . ५ = ६ . ४९३७
लरिज्या २ × ७९° १९′ २९″ . ३३ = ९ . ५६१२
लरि कोछेरे २″ = ५ . ०१३४
योग = १ . ०६८३

परन्तु लरि ११″ . ७० = १ . ०६८३
∴ (सूत्र ३) का दूसरा पद = + ११″ . ७०
लरि ज्या³ ६०′ ४१″ . ५ = ४ . ७४०
लरि ज्या ३ × ७९° १९′ २९″ . ३३ = ९ . ९२८ ऋणात्मक
लरि कोछेरे ३″ = ४ . ८३७
योग = ९ . ५०५
∴ तीसरे पद का मान = − ०″ . ३२

तीनों पदों को इकट्ठा करने पर
लंबन = ५९′ ३८″ . २९ + ११″ . ७० − ०″ . ३२ = ५९′ ४९″ . ६७

यह बतलाया गया है कि क्षितिज लम्बन = $\frac{त्र}{क}$ जहां त्र द्रष्टा के स्थान से भूकेन्द्र की दूरी है और क आकाशीय पिंड से भूकेन्द्र की दूरी है। परन्तु पृथ्वी पूर्ण गोल नहीं है इसलिए त्र का मान सब जगह एक सा नहीं है। ऐसी दशा में क्षितिज लंबन का मान सब स्थानों के लिए एक नहीं हो सकता। इसलिए गणित से पहले वह क्षितिज लम्बन जाना जाता है जो निरक्ष देश (विषुवत् रेखा) के किसी स्थान पर होता है। फिर इसकी सहायता से अन्य स्थानों का क्षितिज लम्बन तथा इष्टकालिक स्पष्ट लम्बन जाना जाता है।

मान लो व ध वा धा पृथ्वी की मध्यान्ह रेखा है, ध, धा पृथ्वी के उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव तथा व वा विषुवत् रेखा के दो विन्दु हैं। भूकेन्द्र से विषुवत रेखा के व



चित्र ७५

विन्दु की दूरी भ व और ध ध्रुव की दूरी भ ध है । द द्रष्टा का स्थान है और स द सा द स्थान की स्पर्शरेखा है जो द की क्षितिज रेखा के तल में है । द खा रेखा स द सा स्पर्शरेखा से समकोण पर है इसलिए यही द स्थान की ऊर्ध्व रेखा है । इसलिए द स्थान का स्पष्ट खस्वस्तिक खा है । यदि यह ऊर्ध्वरेखा पृथ्वी के भीतर बढ़ायी जाय तो पृथ्वी के केन्द्र को न जाकर भ व रेखा के फ विन्दु पर पहुँचेगी । यदि पृथ्वी के केन्द्र से द तक रेखा खींची जाय और वह आकाश की ओर बढ़ाई जाय तो ख विन्दु पर पहुँचेगी । इसलिए यह सिद्ध है कि द स्थान का भूकेन्द्रीय खस्वस्तिक ख है । खा को द स्थान का भौगोलिक खस्वस्तिक कहते हैं । मध्यमाधिकार पृष्ठ ५५ में बतलाया गया है कि द भ व कोण द स्थान का भूकेन्द्रिक अक्षांश है इसलिए द फ व कोण द स्थान का स्पष्ट या भौगोलिक अक्षांश कहलाता है । द स्थान की ऊर्ध्वरेखा द फ और पृथ्वी की त्रिज्या भ द से जो कोण भ द फ बनता है उसे द स्थान के ऊर्ध्वरेखा कोण (angle of the vertical) कहते हैं । किसी स्थान के भौगोलिक अक्षांश को अ और भूकेन्द्रिक अक्षांश को आ अक्षरों से प्रकट* किया जाता है ।

मुखोपाध्याय की Geometry of Conics पृष्ठ ९३, ९४ से सिद्ध है कि

$$\text{प फ} = \text{प भ} \times \frac{\text{थ}^{२}}{\text{त}^{२}}$$

*अंग्रेज़ी में भौगोलिक अक्षांश को ϕ और भूकेन्द्रिक अक्षांश को ϕ' से प्रकट किया जाता है ।

जहाँ त, थ क्रम से दीर्घवृत्त से दीर्घ और लघु अक्ष के आधे हैं।

परन्तु प द = प भ × स्परे ∠ प भ द = प फ × स्परे ∠ प फ द

∴ प भ × स्परे आ = प फ × स्परे अ

$$= \text{प भ} \times \frac{\text{थ}^2}{\text{त}^2} \times \text{स्परे अ}$$

$$\therefore \text{स्परे आ} = \frac{\text{थ}^2}{\text{त}^2} \text{स्परे अ} \qquad (५)$$

इसका अर्थ यह हुआ कि किसी स्थान के भौगोलिक अक्षांश की स्पर्शरेखा को $\frac{\text{थ}^2}{\text{त}^2}$ से गुणा कर दिया जाय तो उस स्थान के भूकेन्द्रिक अक्षांश की स्पर्शरेखा आ जायगी। विलोम क्रिया के द्वारा भूकेन्द्रिक अक्षांश दिया हुआ हो तो भौगोलिक अक्षांश भी जाना जा सकता है।

यह बतलाया गया है कि त और थ पृथ्वी के दीर्घ और लघु अक्षों के आधे हैं जिनके मान कर्नल क्लार्क के मतानुसार* यह हैं :—

त = २,०६,२६,२०२ फुट

= ३९६३.३ मील (स्वल्पान्तर से)

थ = २,०८,५४,८९५ फुट

= ३९४९.८ मील (स्वल्पान्तर से)

$$\therefore \frac{\text{थ}^2}{\text{त}^2} = \frac{२०८५४८९५^2}{२०९२६२०२^2} = .९९३१९६५ = .९९३२$$

उदाहरण १—देहरादून का भौगोलिक अक्षांश ३०°१८′५१″.८ उत्तर है तो इसका भूकेन्द्रिक अक्षांश और ऊर्ध्वरेखा का कोण क्या है ?

उपर्युक्त सूत्र के अनुसार,

स्परे आ = .९९३२ × स्परे ३०°१८′५१″.८

∴ लरि स्परे आ = लरि .९९३२ + लरि स्परे ३०°१९

= १.९९७० + ९.७६७०

= ९.७६४

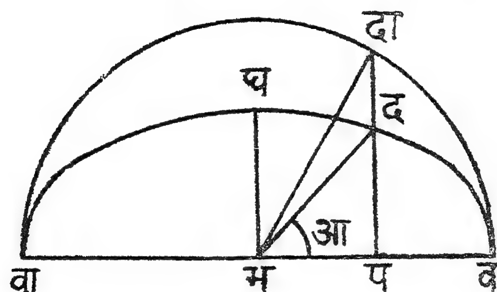
आ = ३०°८′४०″

यही देहरादून का भूकेन्द्रिक अक्षांश हुआ। यदि इसको भौगोलिक अक्षांश से घटा दिया जाय तो ऊर्ध्वरेखा का कोण १०′१२″ के समान होगा। ऊर्ध्वरेखा के

*Hall's Spherical Astronomy pp. 44.

कोण को नाटिकल अलमैनेक में Reduction to Geocentric latitude कहा जाता है। १६२७ ई० के नाटिकल अलमैनेक में इसका मान १०′५″.३ लिखता है। अंतर का कारण यह है कि इस गणना में लघुरिक्थों की शुद्धता केवल चार अङ्कों तक ली गयी है।

भूकेन्द्र से किसी स्थान की दूरी इस तरह जानी जा सकती है :—



चित्र ७६

चित्र ७६ में व ध वा आधे दीर्घवृत्त का छेद (section) है जो विषुवत् रेखा के व विन्दु से आरम्भ होकर उत्तरी ध्रुव ध से होता हुआ विषुवत् रेखा की दूसरी ओर वा तक गया है। यदि व वा पर एक अर्धवृत्त व दा वा खींचा जाय तो यही व थ वा का सहायकवृत्त (auxiliary circle) होगा। प भ द कोण भूकेन्द्रिक अक्षांश हुआ जो आ से सूचित किया जायगा। भूकेन्द्र से द स्थान की दूरी भ द को त्र अक्षर से सूचित किया जायगा। त्रिभुज प भ द में

$$\text{प भ} = \text{भ द कोज्या आ} = \text{त्र कोज्या आ}$$

$$\text{प द} = \text{भ द ज्या आ} = \text{त्र ज्या आ}$$

मुखोपाध्याय की Geometry of Conics पृष्ठ ६५ से सिद्ध है कि

$$\frac{\text{प द}}{\text{प दा}} = \frac{\text{भ ध}}{\text{भ व}} = \frac{\text{थ}}{\text{त}}$$

$$\therefore \text{प दा} = \frac{\text{त}}{\text{थ}} \times \text{प द} = \frac{\text{त}}{\text{थ}} \times \text{त्र ज्या आ}$$

परन्तु $\text{प भ}^2 + \text{प दा}^2 = \text{भ दा}^2 = \text{त}^2$

$$\therefore \left(\text{त्र कोज्या आ}\right)^2 + \left(\frac{\text{त}}{\text{थ}} \times \text{त्र ज्या आ}\right)^2 = \text{त}^2$$

या $\quad \text{त्र}^2 \text{ कोज्या}^2 \text{ आ} + \frac{\text{त}^2}{\text{थ}^2} \times \text{त्र}^2 \text{ ज्या}^2 \text{ आ} = \text{त}^2$

परन्तु पृष्ठ ३९१ में सिद्ध हो चुका है कि $\frac{थ^2}{त^2} = \frac{स्परे\ आ}{स्परे\ अ}$

इसलिए $त्र^2$ कोज्या^{2} आ $+ \frac{स्परे\ अ}{स्परे\ आ} \times त्र^2$ ज्या^{2} आ $= त^2$

यहाँ $\frac{ज्या^2\ आ}{स्परे\ आ} = \frac{ज्या^2\ आ \times कोज्या\ आ}{ज्या\ आ}$

$= ज्या\ आ \times कोज्या\ आ$

और स्परे आ $= \frac{ज्या\ अ}{कोज्या\ अ}$

$\therefore त्र^2$ कोज्या^{2} आ $+ \frac{ज्या\ अ}{कोज्या\ अ}$ ज्या आ $\times$ कोज्या आ $\times त्र^2 = त^2$

प्रत्येक पक्ष को कोज्या अ से गुणा करके प्रत्येक पद के सामान्य खंडों को इकट्ठा करने पर

$त्र^2$ कोज्या आ (कोज्या अ $\times$ कोज्या आ $+$ ज्या अ $\times$ ज्या आ)

$= त^2$ कोज्या अ

$\therefore त्र^2$ कोज्या आ कोज्या (आ $-$ अ) $= त^2$ कोज्या अ*

$$\therefore त्र^2 = \frac{त^2\ कोज्या\ अ}{कोज्या\ आ\ कोज्या\ (आ - अ)} \qquad (६)$$

$= \frac{कोज्या\ अ}{कोज्या\ आ\ कोज्या\ (आ - अ)}$ जब कि निरक्ष देशीय त्रिज्या १ मान ली जाय ।

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि किसी स्थान का भौगोलिक अक्षांश, उसके ऊर्ध्वरेखा का कोण और विषुवत् रेखा से भूकेन्द्र की दूरी ज्ञात हो तो भूकेन्द्र से उस स्थान की दूरी जानी जा सकती है ।

किसी स्थान का क्षितिज लम्बन जानना

मान लो कि चन्द्रमा का क्षितिज लंबन निरक्ष देश (equator) पर ल और किसी अन्य स्थान पर लि है । यदि भूकेन्द्र से निरक्ष देश की दूरी त और उस स्थान की दूरी त्र हो तो पृष्ठ ३८५ से स्पष्ट है कि—

$$ज्या\ ल = \frac{त}{क}$$

*देखो Hall and Knight's Elementary Trigonometry pp. 95.

और $\quad$ ज्या लि $= \dfrac{त्र}{क}$

इसलिए ज्या लि $= \dfrac{त्र}{त}$ ज्या ल

यदि त को १ मान लिया जाय तो

$$ज्या\ लि = त्र\ ज्या\ ल \qquad (७)$$

इसका अर्थ यह हुआ कि यदि निरक्ष देशीय पृथ्वी की त्रिज्या १ मान ली जाय तो चन्द्रमा के निरक्ष देशीय क्षितिज लम्बन की ज्या को किसी स्थान की त्रिज्या से गुणा कर देने पर उस स्थान का क्षितिज लम्बन ज्ञात हो जायगा ।

उदाहरण २—यदि चंद्रमा का निरक्ष देशीय क्षितिज लंबन ५३′ हो तो देहरादून में क्षितिज लम्बन क्या होगा ?

ऊर्ध्व रेखा का कोण उदाहरण (१) में जान लिया गया है । इसलिए पहले देहरादून की त्रिज्या सूत्र (६) से जानना चाहिए :—

$$त्र^२ = \frac{कोज्या\ अ}{कोज्या\ आ\ कोज्या\ (आ - अ)}$$

$$= \frac{कोज्या\ ३०^\circ १८' ५२''}{कोज्या\ ३०^\circ ८' ४०''\ कोज्या\ १०' १२''}$$

$\therefore$ २ लरि त्र = लरि कोज्या ३०°१८′५२″ — लरि कोज्या ३०°८′४०″ — लरि कोज्या १०′१२″

= ९.९३६१ — .९.९३६९ — १०

= $\bar{१}$.९९९२

$\therefore$ लरि त्र = $\bar{१}$.९९९६

$\therefore$ त्र = .९९९

$\therefore$ देहरादून के क्षितिज लंबन की ज्या

= .९९९ × ज्या ५३′

= .९९९ × ·०१५४

= .०१५३८

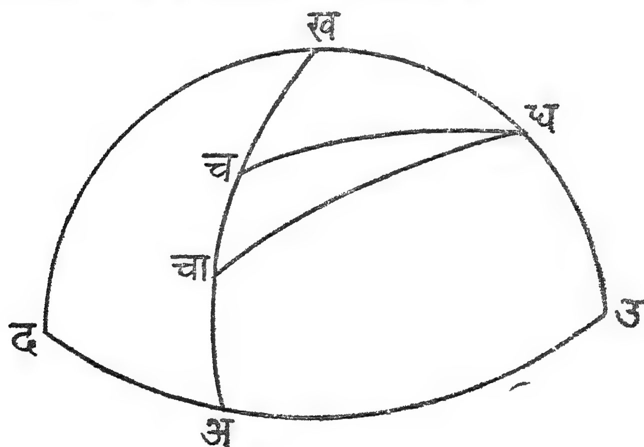
$\therefore$ देहरादून का क्षितिज लंबन = ५२′५६″*

---

* ऐसी सूक्ष्म गणना के लिए लघुरिक्थों की सारिणी कम से कम दशमलव के सात अंकों की होनी चाहिए नहीं तो बहुत स्थूलता रह जाती है ।

लम्बन के कारण आकाशीय पिण्ड के स्पष्ट और यथार्थ विषुवांशों में क्या अन्तर पड़ता है ?

लंबन के सम्बन्ध में अब तक जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट है कि इसके कारण आकाशीय पिंड के नतांश में अन्तर पड़ता है जिससे पिंड के विषुवांश, क्रान्ति, भोगांश और शर सब पर कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता है। परन्तु जिस समय पिण्ड याम्योत्तर वृत्त पर होता है उस समय लंबन के कारण नतांश में जो अन्तर पड़ता है उसका पूरा प्रभाव क्रान्ति पर ही पड़ता है न कि विषुवांश पर। परन्तु अन्य स्थानों में विषुवांश और क्रान्ति दोनों ही में अन्तर देख पड़ता है क्योंकि जिस ऊर्ध्व वृत्त पर नतांश का अन्तर होता है वह विषुवत् वृत्त से भिन्न होता है।



चित्र ७०

विषुवांश का लम्बन जानना

मान लो कि उ ख द किसी स्थान का याम्योत्तर वृत्त है, उ, द उस स्थान की क्षितिज उ अ द के उत्तर, दक्खिन विन्दु हैं, ख भूकेन्द्रिक खस्वस्तिक और ध उत्तरी आकाशीय ध्रुव है। मान लो कि चन्द्रमा का यथार्थ स्थान जो पृथ्वी के केन्द्र से देख पड़ता है च है और इसका स्पष्ट स्थान जो द्रष्टा को भूतल से देख पड़ता है चा है। च चा चन्द्रमा का नतांश लंबन है जिसके लिए पृष्ठ ३८३ में लिखा गया है। कोण ख ध च और ख ध चा च और चा के नतकाल (hour angle) हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि लंबन के कारण चन्द्रमा का यह स्पष्ट नतकाल, यथार्थ नतकाल से कोण च ध चा के समान अधिक है। यही कोण च ध चा चन्द्रमा का

विषुवांश लंबन है। यह भी स्पष्ट है कि चन्द्रमा का स्पष्ट ध्रुवान्तर ध चा उसके यथार्थ ध्रुवान्तर ध च से अधिक है। इसलिए स्पष्ट क्रान्ति यथार्थ क्रान्ति से कम हो जायगी। इसलिए चंद्रमा का क्रान्ति लंबन ध चा − ध च के समान होगा।

मान लो कि द्रष्टा के स्थान में चंद्रमा के क्षितिज लंबन लि, विषुवांश लंबन ली, यथार्थ नतकाल घ, और यथार्थ क्रान्ति क तथा द्रष्टा का भूकेन्द्रिक अक्षांश आ है। तब यह स्पष्ट है कि चन्द्रमा का स्पष्ट नतकाल ख ध चा = घ + ली = घा

गोलीय त्रिभुज च ध चा में

$$\frac{\text{ज्या (च ध)}}{\text{ज्या (च चा ध)}} = \frac{\text{ज्या (च चा)}}{\text{ज्या (च ध चा)}}$$

परन्तु $\angle$ च ध चा = ली

$$\therefore \text{ ज्या ली} = \frac{\text{ज्या (च चा)} \times \text{ज्या (च चा ध)}}{\text{ज्या (च ध)}} \qquad \text{(क)}$$

और गोलीय त्रिभुज ख ध चा में

$$\frac{\text{ज्या (ख चा)}}{\text{ज्या (ख ध चा)}} = \frac{\text{ज्या (ख ध)}}{\text{ज्या (ख चा ध)}}$$

$$\therefore \text{ ज्या (ख चा ध)} = \frac{\text{ज्या (ख ध)} \times \text{ज्या (ख ध चा)}}{\text{ज्या (ख चा)}} \qquad \text{(ख)}$$

परन्तु $\angle$ख चा ध = $\angle$च चा ध

$$\therefore \text{ ज्या ली} = \frac{\text{ज्या (च चा)}}{\text{ज्या (च ध)}} \times \frac{\text{ज्या (ख ध)} \times \text{ज्या (ख ध चा)}}{\text{ज्या (ख चा)}} \qquad \text{(ग)}$$

परन्तु पृष्ठ ३८५ के सूत्र (१) के अनुसार,

ज्या (च चा) = ज्या लि $\times$ ज्या (ख चा)

इसको समीकरण (ग) में उत्थापन करने से

$$\text{ज्या ली} = \frac{\text{ज्या लि}}{\text{ज्या (च ध)}} \times \text{ज्या (ख ध)} \times \text{ज्या (ख ध चा)}$$

च ध = च का ध्रुवान्तर = ९०° − क

$\therefore$ ज्या (च ध) = कोज्या क

ख ध = द्रष्टा का लम्बांश = ९०° − आ

$\therefore$ ज्या (ख ध) = कोज्या आ

$\angle$ख ध चा = $\angle$ख ध च + $\angle$च ध चा = घ + ली

$$\therefore \text{ ज्या ली} = \frac{\text{ज्या लि} \times \text{कोज्या आ} \times \text{ज्या (घ + ली)}}{\text{कोज्या क}} \qquad \text{(क)}$$

मान लो कि $\text{प}=\dfrac{\text{ज्या लि}\times\text{कोज्या आ}}{\text{कोज्या क}}$

तब $\text{ज्या ली}=\text{प}\times\text{ज्या}\ (\text{घ}+\text{ली})$ (१)

$=\text{प ज्या घ कोज्या ली}+\text{प कोज्या घ ज्या ली}$

यदि प्रत्येक पक्ष को कोज्या ली से भाग दिया जाय तो

$\text{स्परे ली}=\text{प ज्या घ}+\text{प कोज्या घ स्परे ली}$

$\therefore \text{स्परे ली}=\dfrac{\text{प ज्या घ}}{१-\text{प कोज्या घ}}$ (२)

इस सूत्र का विस्तार करके उसी प्रकार की श्रेणी बनायी जा सकती है जिस प्रकार पृष्ठ ३८५—३८८ में सूत्र (२) को सूत्र (३) के रूप में लाया गया है। इस तरह

$\text{ली}=\dfrac{\text{प ज्या घ}}{\text{ज्या } १''}+\dfrac{\text{प}^{२}\text{ ज्या २ घ}}{\text{ज्या } २''}+\dfrac{\text{प}^{३}\text{ ज्या ३ घ}}{\text{ज्या } ३''}+$ (३)

विषुवांश लम्बन जानने के लिए सूत्र (१) उस समय काम में लाया जा सकता है जब स्पष्ट नतकाल ज्ञात हो और जब यथार्थ नतकाल ज्ञात रहता है तब सूत्र (२) या (३) काम में लाया जाता है।

उदाहरण १—चन्द्रमा का विषुवांश लम्बन बतलाओ जब कि द्रष्टा के स्थान का उत्तर अक्षांश ३८°५७'७", इस स्थान के लिए चन्द्रमा का क्षितिज लम्बन ५९'३६".८, चन्द्रमा की उत्तर क्रान्ति २४°५'११".६ और चन्द्रमा का यथार्थ नतकाल ६१°१०'४७".४।

इस स्थान का भूकेन्द्रिक अक्षांश पृष्ठ ३९१ के सूत्र (५) के अनुसार ३८°४५'४७".५ हुआ।

लरि ज्या लि=लरि ज्या ५९'३६".८=८.२३९०४८

लरि कोज्या अ=लरि कोज्या ३८°४५'४७".५=९.८८५७५४

*लरि छेरे क=लरि छेरे २४°५'११".६=०.०३९५६३

∴ लरि प=८.१६४३६५

लरि ज्या घ=लरि ज्या ६१°१०'४७".४=९.९४२५७२

लरि कोछेरे १"=५.३१४४२५

---

* पृष्ठ ३९७ में यह माना गया है कि $\text{प}=\dfrac{\text{ज्या लि}\times\text{कोज्या आ}}{\text{कोज्या क}}$ परन्तु $\dfrac{१}{\text{कोज्या क}}$=छेदन रेखा क=छेरे क, इसलिए प=ज्या लि × कोज्या आ × छेरे क

इसलिए सूत्र (३) के पहले पद का लघुरिक्थ = ३.४२१३६२

∴ पहला पद = २६३८″.५३

लरि प^2 = २ लरि प = ६.३२८७

ज्या २ घ = ज्या २ × ६१°१०′४७″.४ = ९.९२६७

लरि कोछेरे २″ = ५.०१३४

∴ दूसरे पद का लघुरिक्थ = १.२६८८

∴ दूसरा पद = + १८″.५७

लरि प^3 = ३ लरि प = ४.४९३

लरि ज्या ३ घ = लरि ज्या ३ × ६१°१०′४७″.४ = ८.७९१ ऋणात्मक

लरि कोछेरे ३″ = ४.८३७

∴ तीसरे पद का लघुरिक्थ = ८·१२१ ऋणात्मक

∴ तीसरा पद = − ०″·०१

∴ ली = २६३८″·५३ + १८″·५७ − ०″·०१

= २६५७″·०९

= ४४′१७″·०९ = ४४′१७″·१

∴ चंद्रमा का स्पष्ट नतकाल

= ६१°१०′४७″·४ + ४४′१७″·१

= ६१°५५′४″·५

यदि वही स्पष्ट नतकाल दिया होता तो सूत्र (१) से विषुवांश लंबन इस प्रकार जाना जाता :—

लरि ज्या ली = लरि प + लरि ज्या ६१°५५′४″·५

= ८·१६४३६५ × ९·९४५६०४

= ८·१०९९६९

∴ ली = ४४′१७″·०९

इस प्रकार किसी स्थान के विषुवांश लंबन की सारिणी तैयार की जा सकती है।

चन्द्रमा का क्रान्ति लम्बन (Parallax in declination) जानना

इस काम के लिए भी चित्र ७७ काम देगा। मान लो कि चंद्रमा की यथार्थ क्रान्ति क, यथार्थ नतांश न और यथार्थ नतकाल घ है और लंबन के कारण चंद्रमा की स्पष्ट क्रान्ति, स्पष्ट नतांश और स्पष्ट नतकाल क्रमानुसार का, ना, और घा हैं।

मान लो कि चन्द्रमा का क्रान्ति लंबन लु है।

गोलीय त्रिभुज च ध ख और चा ध ख में,

$$\text{कोज्या च ख ध} = \frac{\text{कोज्या च ध} - \text{कोज्या च ख कोज्या ध ख}}{\text{ज्या च ख ज्या ध ख}}$$

$$\text{कोज्या चा ख ध} = \frac{\text{कोज्या चा ध} - \text{कोज्या चा ख कोज्या ध ख}}{\text{ज्या चा ख ज्या ध ख}}$$

परन्तु च ख ध और चा ख ध कोण एक ही हैं और

च ध = चंद्रमा का यथार्थ ध्रुवान्तर $= ९०° -$ क

चा ध = ,, स्पष्ट ,, $= ९०° -$ का

∴ कोज्या च ध = कोज्या $(९०° -$ क$)$ = ज्या क

और कोज्या चा ध = ज्या का

$$\therefore \frac{\text{ज्या क} - \text{कोज्या न} \times \text{ज्या आ}}{\text{ज्या न}} = \frac{\text{ज्या का} - \text{कोज्या ना} \times \text{ज्या आ}}{\text{ज्या ना}}$$

अर्थात् ज्या क ज्या ना — ज्या आ ज्या ना कोज्या न

= ज्या का ज्या न — ज्या आ ज्या न कोज्या ना

या ज्या क ज्या ना — ज्या आ (ज्या ना कोज्या न — कोज्या ना ज्या न)

= ज्या का ज्या न

∴ ज्या क ज्या ना — ज्या आ ज्या (ना — न) = ज्या का ज्या न

परन्तु ना — न चंद्रमा का नतांश लम्बन है इसलिए

ज्या (ना — न) = ज्या ला = ज्या लि ज्या ना (देखो पृष्ठ ३८५)

यहाँ लि क्षितिज लम्बन माना गया है।

∴ ज्या क ज्या ना — ज्या आ ज्या लि ज्या ना = ज्या का ज्या न

या ज्या का ज्या न = ज्या ना (ज्या क — ज्या लि ज्या आ) (क)

इस समीकरण से ज्या ना और हटाने के लिए गोलीय त्रिभुज च ध ख और चा ध ख से इस प्रकार काम लेना होगा—

$$\frac{\text{ज्या च ख ध}}{\text{ज्या च ध}} = \frac{\text{ज्या च ध ख}}{\text{ज्या च ख}}$$

$$\text{और} \quad \frac{\text{ज्या चा ख ध}}{\text{ज्या चा ध}} = \frac{\text{ज्या चा ध ख}}{\text{ज्या चा ध}}$$

परन्तु च ख ध और चा ख ध एक ही हैं, इसलिए

$$\frac{\text{ज्या च ध ज्या च ध ख}}{\text{ज्या च ख}} = \frac{\text{ज्या चा ध ज्या चा ध ख}}{\text{ज्या चा ख}}$$

$$\text{या ज्या चा ध ज्या च ख} = \frac{\text{ज्या च ध ज्या च ध ख ज्या चा ख}}{\text{ज्या चा ध ख}}$$

$$\text{या कोज्या का ज्या न} = \frac{\text{कोज्या क ज्या घ ज्या ना}}{\text{ज्या घा}} \qquad (\text{ख})$$

समीकरण (क) के बायें पक्ष का समीकरण (ख) के बायें पक्ष से और उसके दाहिने पक्ष को इसके दाहिने पक्ष से भाग देने पर

$$\text{स्परे का} = \frac{\text{ज्या क} - \text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{ज्या घ कोज्या क}} \times \text{ज्या घा}$$

$$= \frac{\text{ज्या क} - \text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}} \times \frac{\text{ज्या घा}}{\text{ज्या ध}}$$

$$= \left(\frac{\text{ज्या क}}{\text{कोज्या क}} - \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}}\right) \times \frac{\text{ज्या घ}}{\text{ज्या घ}}$$

$$= \text{स्परे क}\left(१ - \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{ज्या क}}\right)\frac{\text{ज्या धा}}{\text{ज्या घ}} \qquad (१)$$

यदि यथार्थ क्रान्ति, नतकाल और स्पष्ट नतकाल ज्ञात हो तो इस सूत्र से स्पष्ट क्रान्ति जानी जा सकती है। फिर स्पष्ट क्रान्ति से यथार्थ क्रान्ति घटाने पर क्रान्ति लम्बन जाना जा सकता है। यदि क्रान्ति लम्बन का मान सीधे ही जानना हो तो सूत्र (१) को दूसरे रूप में लिखना होगा जो इस प्रकार सिद्ध होता है :—

सूत्र (१) से सिद्ध है कि

$$\frac{\text{स्परे का ज्या घ}}{\text{ज्या धा}} = \text{स्परे क}\left(१ - \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{ज्या क}}\right)$$

$$= \text{स्परे क} - \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}}$$

$$\therefore \text{स्परे क} - \frac{\text{स्परे का ज्या घ}}{\text{ज्या घा}} = \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}}$$

$$\text{अथवा स्परे क} - \text{स्परे का} \times \text{स्परे का} - \frac{\text{स्परे का ज्या घ}}{\text{ज्या घा}}$$

$$= \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}}$$

$$\text{परन्तु स्परे क} - \text{स्परे का} = \frac{\text{ज्या क}}{\text{कोज्या क}} - \frac{\text{ज्या का}}{\text{कोज्या का}}$$

$$= \frac{\text{ज्या क कोज्या का} - \text{कोज्या क ज्या का}}{\text{कोज्या क कोज्या का}}$$

$$= \frac{\text{ज्या (क—का)}}{\text{कोज्या क कोज्या का}}$$

$$\therefore \frac{\text{ज्या (क—का)}}{\text{कोज्या क कोज्या का}} \times \text{स्परे का} \left(१ - \frac{\text{ज्या घ}}{\text{ज्या घा}} \right)$$

$$= \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}}$$

अथवा

$$\frac{\text{ज्या (क—का)}}{\text{कोज्या क कोज्या का}} = \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}} - \frac{\text{स्परे का}}{\text{ज्या घा}} \left(\text{ज्या घा—ज्या घ} \right)$$

परन्तु Hall and Knight की Trigonometry पृष्ठ ११३ के अनुसार

$$\text{ज्या घा—ज्या घ} = २ \text{ ज्या } \frac{\text{घा—घ}}{२} \text{ कोज्या} \frac{\text{घा+घ}}{२}$$

जहाँ घा स्पष्ट नतकाल और घ यथार्थ नतकाल है।

इसलिए घा — घ = विषुवांश लम्बन = ली

$$\text{घा + घ = घा − घ + २ घ = ली + २ घ}$$

$$\therefore \text{ज्या घा − ज्या घ} = २ \text{ ज्या } \frac{\text{ली}}{२} \text{ कोज्या} \left(\frac{\text{ली + २ घ}}{२} \right)$$

और क — का = स्पष्ट और यथार्थ क्रान्तियों का अन्तर

= क्रान्ति लम्बन = लु (देखो पृष्ठ ३६६)

$$\therefore \frac{\text{ज्या लु}}{\text{कोज्या क कोज्या का}} = \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}} - \frac{\text{स्परे का}}{\text{ज्या घा}}$$

$$\times २ \text{ ज्या} \frac{\text{ली}}{२} \text{ कोज्या} \left(\text{घ} + \frac{\text{ली}}{२} \right)$$

$$\text{परन्तु ज्या ली} = २ \text{ ज्या} \frac{\text{ली}}{२} \text{ कोज्या} \frac{\text{ली}}{२}$$

$$\therefore २ \text{ ज्या} \frac{\text{ली}}{२} = \frac{\text{ज्या ली}}{\text{कोज्या} \frac{\text{ली}}{२}}$$

$$= \frac{\text{ज्या लि कोज्या आ ज्या (घ+ली)}}{\text{कोज्या क कोज्या } \frac{\text{ली}}{२}} \text{ (देखो पृष्ठ ३६७)}$$

$$\therefore २ \text{ ज्या} \frac{\text{ली}}{२} = \frac{\text{ज्या लि कोज्या आ ज्या घा}}{\text{कोज्या क कोज्या} \frac{\text{ली}}{२}}$$

इसलिए

$$\frac{\text{ज्या लु}}{\text{कोज्या क कोज्या का}} = \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}} - \frac{\text{स्परे का}}{\text{ज्या घा}} \times \frac{\text{ज्या लि कोज्या आ ज्या घा}}{\text{कोज्या क कोज्या}\frac{\text{ली}}{2}} \times \text{कोज्या}\left(\text{घ} + \frac{\text{ली}}{2}\right)$$

यदि दोनों पक्षों को कोज्या क कोज्या का से गुणा कर दिया जाय और सरल किया जाय तो

$$\text{ज्या लु} = \text{ज्या लि ज्या आ कोज्या का} - \frac{\text{ज्या लि कोज्या आ कोज्या}\left(\text{घ} + \frac{\text{ली}}{2}\right)\text{ज्या का}}{\text{कोज्या}\frac{\text{ली}}{2}} \quad (\text{क})$$

मान लो कि

$$\text{कोस्परे फ} = \frac{\text{कोज्या}\left(\text{घ} + \frac{\text{ली}}{2}\right)\text{कोस्परे आ}}{\text{कोज्या}\frac{\text{ली}}{2}}$$

तब ज्या लु = ज्या लि ज्या आ कोज्या का — ज्या लि ज्या आ ज्या का कोस्परे फ

इसलिए

$$\text{ज्या लु} = \text{ज्या लिज्या आ}\ (\text{कोज्या का} - \text{ज्या का कोस्परे फ})$$

$$= \text{ज्या लि ज्या आ}\left(\frac{\text{कोज्या का ज्या फ} - \text{ज्या का कोज्या फ}}{\text{ज्या फ}}\right)$$

$$= \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{ज्या फ}}\ \text{ज्या}\ (\text{फ} - \text{का})$$

यदि $\frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{ज्या फ}}$ के लिए ब मान लिया जाय तो

$$\text{ज्या लु} = \text{ब ज्या}\ (\text{फ} - \text{का})$$

$$\text{परन्तु क} - \text{का} = \text{शु}\ \therefore \text{का} = \text{क} - \text{लु}$$

$$\therefore \text{ज्या लु} = \text{ब ज्या}\ (\text{फ} - \text{क} + \text{लु}) \quad (2)$$

$$= \text{ब}\ \{\text{ज्या}\ (\text{फ} - \text{क})\ \text{कोज्या लु} + \text{कोज्या}\ (\text{फ} - \text{क})\ \text{ज्या लु}\}$$

दोनों पक्षों को कोज्या लु से भाग देने पर

$$\text{स्परे लु} = \text{ब ज्या (फ} - \text{क)} + \text{ब कोज्या (फ} - \text{क) स्परे लु}$$

$$\text{या स्परे लु} = \frac{\text{ब ज्या (फ} - \text{क)}}{1 - \text{ब कोज्या (फ} - \text{क)}} \qquad (३)$$

यदि इसको पहले की तरह श्रेणी में विस्तार किया जाय तो

$$\text{लु} = \frac{\text{ब ज्या (फ} - \text{क)}}{\text{ज्या } 1''} + \frac{\text{ब}^2 \text{ ज्या}2\text{ (फ} - \text{क)}}{\text{ज्या}2''} + \frac{\text{ब}^3 \text{ ज्या}3\text{ (फ} - \text{क)}}{\text{ज्या } 3''} + \cdots\cdots \qquad (४)$$

जब स्पष्ट क्रान्ति ज्ञात हो तो सूत्र (२) से और यथार्थ क्रान्ति ज्ञात हो तो सूत्र (३) और (४) से क्रान्ति लम्बन जाना जा सकता है।

यह जानना कि विषुवांश लम्बन में प्रति घंटा क्या भेद पड़ता है :—

पृष्ठ ३६७ में विषुवांश लंबन का सूत्र यह आया है :—

$$\text{ज्या ली} = \frac{\text{ज्या लि} \times \text{कोज्या आ} \times \text{ज्या घा}}{\text{कोज्या क}}$$

ली और लि धनु बहुत छोटे होते हैं इसलिए

$$\text{ज्या ली} = \text{ली}$$

$$\text{और ज्या लि} = \text{लि}$$

लम्बन के कारण यथार्थ नतकाल और स्पष्ट नतकाल में जो भिन्नता देख पड़ती है वह भी बहुत कम होती है इसलिए व्यवहार की सुविधा के लिए ज्या घ को ज्या घा के समान समझ लेने में कोई हानि नहीं। इसलिए उपर्युक्त सूत्र का रूप यह हुआ :—

$$\text{ली} = \frac{\text{लि} \times \text{कोज्या आ} \times \text{ज्या घ}}{\text{कोज्या क}}$$

इस सूत्र में घ ही ऐसा है जिसका भेद प्रतिक्षण बहुत बढ़ता रहता है, लि, ली, आ और क में जो विकार उत्पन्न होता है वह इतना मन्द होता है कि कुछ समय के लिए यह मात्राएँ स्थिर मानी जा सकती हैं। इसलिए यदि घ को चल राशि मान कर ली की तात्कालिक गति निकाली जाय तो

$$\text{त (ली)} = \frac{\text{लि} \times \text{कोज्या आ}}{\text{कोज्या क}} \text{ कोज्या घ ता (घ)}$$

यहाँ ता (घ) को रेडियन में लिखना होगा। यदि यह जानना हो कि प्रति घंटा विषुवांश लम्बन में क्या भेद उत्पन्न होता है तो ता (घ) को १५° के रेडियन में प्रकट करना चाहिए। यह विदित है कि

१८०° = π रेडियन

= ३·१४१ ५९ रेडियन

∴ १५° = ·२६१७९९ रेडियन

और ६° = ·१०४७१९७ रेडियन

उदाहरण—चन्द्रमा के विषुवांश लम्बन में प्रति घंटा क्या भेद पड़ता है जब एक स्थान का क्षितिज लंबन ५७′, भूकेन्द्रिक अक्षांश ४२°११′२१″, चंद्रमा की क्रान्ति २५° और नतकाल ५०° हो ?

लरि लि = लरि ५७′ = लरि ३४२०″ = ३·५३ ०२६

लरि कोज्या आ = लरि कोज्या ४२°११′२१″ = ९·८६९७७८

लरि कोज्या घ = लरि कोज्या ५०° = ९·८०८०६७

लरि ता (घ) = लरि ·२६१७९९ = $\overline{१}$·४१७९६९

लरि छेरे क = लरि छेरे २५° = ०·०४२७२४

∴ लरि ता (ली) = २·६७२५६४

∴ ता (ली) = ४७०″·५ = ७′५०·५

यह जानना कि क्रान्ति लम्बन में प्रति घंटा क्या भेद पड़ता है :—

पृष्ठ ४०२ में सिद्ध हुआ है कि

ज्या लु = ज्या लि ज्या आ कोज्या का

$$- \frac{\text{ज्या लि कोज्या आ कोज्या}\left(\text{घ}+\frac{\text{ली}}{२}\right)\text{ज्या का}}{\text{कोज्या}\ \frac{\text{ली}}{२}}$$

यदि पहले की तरह ज्या लु और ज्या लि की जगह लु और ली लिये जायँ, घ + $\frac{\text{ली}}{२}$ को घ और कोज्या $\frac{\text{ली}}{२}$ को १ तथा का को क मान लिया जाय तो

लु = लि ज्या आ कोज्या क − लि कोज्या आ कोज्या घ ज्या क

अब यदि केवल घ को चल-राशि मानकर इस समीकरण की तात्कालिक गति निकाली जाय तो

ता (लु) = लि कोज्या आ ज्या क ज्या घ ता (घ)

उदाहरण—चन्द्रमा के क्रान्ति लम्बन में प्रति घंटा क्या भेद पड़ता है, जब एक स्थान का क्षितिज लम्बन ५७′, भूकेन्द्रिक अक्षांश ४२°११′२१″, चन्द्रमा की क्रान्ति २५° और नतकाल ५०° है ?

लरि लि = लरि ५७′ = लरि ३४२०″ = ३·५३४०२६
लरि कोज्या आ = लरि कोज्या ४२°११′२१″ = ९·८६९७७८
लरि ज्या क = लरि ज्या २५° = ९·६२५९४८
लरि ज्या घ = लरि ज्या ५०° = ९·८८४२५४
लरि ता (घ) = लरि·२६१७९९ = १·४१७९६६
∴ लरि ता (लु) = २·३३१९७५
∴ ता (लु) = २१४″·८ = ३′३४″·८

भोगांश और विक्षेप (शर) पर लम्बन का प्रभाव—

जिस प्रकार विषुवांश और क्रान्ति सम्बन्धी लम्बन जानने के लिए सूत्र स्थापित किये गये हैं ठीक उसी प्रकार ऐसे सूत्र भी स्थापित किये जा सकते हैं जिनसे भोगांश और शर सम्बन्धी लंबन जाने जा सकते हैं। इस काम के लिए चित्र ७७ के ध विन्दु को कदंब (क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव) समझना होगा। ऐसी दशा में कदंब और खस्वस्तिक ख से जाता हुआ ऊर्ध्ववृत्त उ ध ख द वह वृत्त होगा जिस पर त्रिभोन लग्न या वित्रिभ लग्न है (देखो चित्र ६३ और पृष्ठ ३३०), ध च और ध चा कदम्ब-प्रोतवृत्तों पर ग्रह के यथार्थ और स्पष्ट कदम्बान्तर हैं। इसलिए ९०° − ध च और ९०° − ध चा ग्रह के यथार्थ और स्पष्ट शरों के समान होंगे। ख ध खस्वस्तिक से कदम्ब का अन्तर है जिसको ९०° से घटाने पर त्रिभोन लग्न का नतांश आ जायगा। यही त्रिभोन लग्न का नतांश खस्वस्तिक से क्रान्तिवृत्त का यथार्थ अन्तर है इसलिए यह खस्वस्तिक का भूकेन्द्रिक शर हुआ।

मान लो कि खस्वस्तिक का भूकेन्द्रिक शर या त्रिभोन लग्न का नतांश त्रा है, ग्रह का यथार्थ शर श और स्पष्ट शर शा है, ग्रह के भोगांश और त्रिभोन लग्न का यथार्थ अन्तर ख ध च है जिसे संक्षेप में यथार्थ विश्लेषांश या केवल व कहा जायगा। यदि लि क्षितिज लम्बन तथा भी भोगांश लम्बन हो तो पृष्ठ ३९७ के समीकरण (क) की तरह

$$\text{ज्या भी} = \frac{\text{ज्या लि कोज्या त्रा ज्या (व + भी)}}{\text{कोज्या श}} \qquad (\text{क})$$

पृष्ठ ३९७ में दिखाई गयी रीति के अनुसार इसको यों भी लिखा जा सकता है।

$$\text{स्परे भी} = \frac{\text{त ज्या व}}{\text{१} - \text{त कोज्या व}} \qquad (\text{२})$$

$$\text{जब त} = \frac{\text{ज्या लि कोज्या त्रा}}{\text{कोज्या श}}$$

यह स्पष्ट है कि सूत्र (क) में भी और लि बहुत छोटे हैं इसलिए इनकी ज्याओं की जगह धनु लिखने में कोई हानि नहीं होगी परन्तु सरलता हो जायगी। इसलिए

$$\text{भी} = \frac{\text{लि कोज्या त्रा ज्या व}}{\text{कोज्या श}} \qquad \text{(ख)}$$

अथवा यदि ग्रह का शर बहुत छोटा हो जैसे सूर्य-ग्रहण के समय चन्द्रमा का शर होता है तो कोज्या श का मान १ के प्रायः समान होगा। इसलिए

$$\text{भी} = \text{लि कोज्या त्रा ज्या व} \qquad \text{(ग)}$$

यही रूप सूर्य-सिद्धान्त के सूर्य-ग्रहणाधिकार श्लोक ७-८ में बतलाया गया है।

शर लंबन या नति—यदि भु शर लंबन हो तो पृष्ठ ४०२ के समीकरण (क) की तरह

$$\text{ज्या भु} = \text{ज्या लि ज्या त्रा कोज्या शा}$$

$$- \frac{\text{ज्या लि कोज्या त्रा कोज्या}\left(\text{व} + \frac{\text{भी}}{२}\right)\text{ज्या शा}}{\text{कोज्या}\frac{\text{भी}}{२}} \qquad \text{(घ)}$$

यह स्पष्ट है कि $\frac{\text{भी}}{२}$ अर्थात् भोगांश लंबन बहुत छोटा है इसलिए कोज्या $\frac{\text{भी}}{२} = १$। ऐसी दशा में यदि व $+ \frac{\text{भी}}{२}$ की जगह व और शा की जगह श रखा जाय तो बहुत अन्तर नहीं पड़ेगा और सूत्र (घ) सरल होकर ऐसा हो जायगा :—

$$\text{ज्या भु} = \text{ज्या लि ज्या त्रा कोज्या श} - \text{ज्या लि कोज्या त्रा ज्या श कोज्या व} \qquad \text{(ङ)}$$

यदि ज्या भु और ज्य लि की जगह इनके धनु लिये जायँ क्योंकि यह बहुत छोटे हैं तो

$$\text{भु} = \text{लि ज्या त्रा कोज्या श} - \text{लि कोज्या त्रा ज्या श कोज्या व} \qquad \text{(च)}$$

भोगांश लंबन की समानता विषुवांश लंबन से तथा क्रान्ति लंबन की समानता शर लंबन से समझने के लिए यह याद रखना चाहिए कि

भोगांश लम्बन के सूत्र में	विषुवांश लम्बन के सूत्र में
लि=क्षितिज लम्बन	लि=क्षितिज लम्बन
भी=भोगांश लम्बन	लि=विषुवांश लम्बन

त्रा=त्रिभोन लग्न का नतांश	आ=भूकेन्द्रिक अक्षांश
व=विश्लेषांश	घ=यथार्थ नतकाल
श=यथार्थ शर	क=यथार्थ क्रान्ति
शा=स्पष्ट शर	का=स्पष्ट क्रान्ति
भु=शर लम्बन या नति	लु=क्रान्ति लम्बन

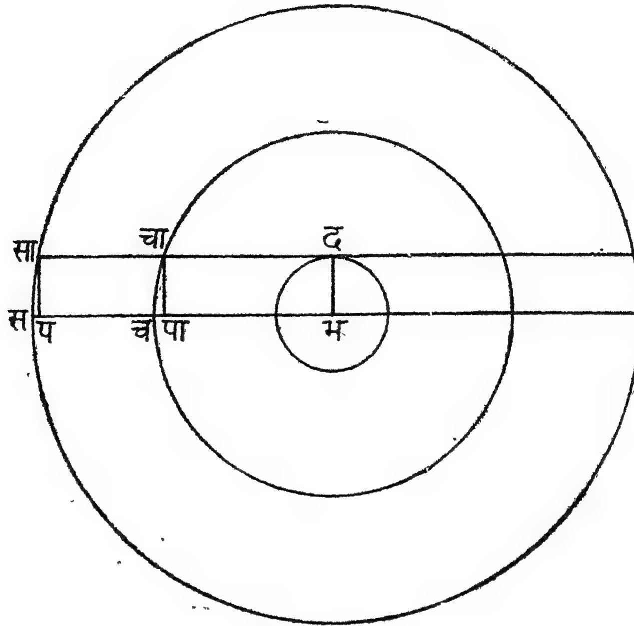
सूर्य-सिद्धान्त ने भोगांश लंबन का नाम हरिज और शर लंबन का नाम नति रखा है। अन्य सिद्धान्त ग्रन्थों में भोगांश लंबन को केवल लंबन या स्फुट लंबन और शर लंबन को नति कहा गया है।

अब संक्षेप में यह बतलाया जायगा कि हमारे आचार्यों ने लम्बन के विषय में क्या लिखा है :—

भास्कराचार्य ने लिखा* है कि किसी ग्रह की दैनिक गति को १५ से भाग देने पर उस ग्रह का परम लम्बन (क्षितिज लम्बन) आ जाता है। इसका कारण यह बतलाया गया है :—

भूतल के किसी स्थान को स्पर्श करता हुआ समतल (horizontal plane) आकाश को जिस वृत्त पर काटता हुआ देख पड़ता है उसे उस स्थान का क्षितिज वृत्त कहते हैं। यह क्षितिज वृत्त आकाश के गोल को दो भागों में बाँट देता है। इस क्षितिज वृत्त को स्पष्ट क्षितिज वृत्त (sensible horizon) कहते हैं। यदि पृथ्वी के केन्द्र से होता हुआ स्पष्ट क्षितिज वृत्त के समानान्तर दूसरा समतल आकाश की ओर बढ़ाया जाय तो यह आकाश को जिस वृत्त पर काटता है उसे उस स्थान का यथार्थ क्षितिज वृत्त (true या rational horizon) कहते हैं। चित्र ७८ में द भूतल पर द्रष्टा का स्थान और भ पृथ्वी का केन्द्र है। द से जो समतल पृथ्वी तल को छूता हुआ खींचा गया है वह चन्द्रमा की कक्षा को चा बिन्दु पर और सूर्य की कक्षा को सा बिंदु पर काटता है। इसलिए चा, सा विंदु द स्थान की स्पष्ट क्षितिज पर है। यदि इसी के समानान्तर भ से होता हुआ एक समतल आकाश की ओर बढ़ाया जाय जो चन्द्र और सूर्य की कक्षाओं को क्रम से च और स विन्दुओं पर काटे तो भ च स तल को द स्थान का यथार्थ क्षितिज कहते हैं। यह प्रकट है कि जिस समय चंद्रमा और सूर्य अथवा अन्य कोई ग्रह द स्थान के यथार्थ क्षितिज पर रहता है उस समय वह भ च स तल में रहता है जो द स्थान के स्पष्ट क्षितिज से नीचे है इसलिए वह द्रष्टा को नहीं देख पड़ेगा। ऐसी दशा में ग्रह स्पष्ट क्षितिज से जितना नीचे रहेगा उसका परिमाण चा पा या सा प है जो भ द अर्थात् पृथ्वी के अर्द्ध-व्यास के समान

*गणिताध्याय पृष्ठ १६२।



चित्र ७८

है। इसलिए यह कहने में कुछ भी दोष नहीं है कि जब ग्रह किसी स्थान के यथार्थ क्षितिज पर रहता है तब वह उस स्थान के स्पष्ट क्षितिज से पृथ्वी के अर्द्धव्यास के समान नीचे रहता है अर्थात् उसका लंबन पृथ्वी के अर्द्धव्यास के समान होता है। यदि चा पा को चा च के समान और सा प को सा स के समान समझ लें तो बहुत अन्तर न पड़ेगा क्योंकि चा च या सा स पूरी कक्षा की तुलना में बहुत छोटा है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जब ग्रह यथार्थ क्षितिज पर रहता है तब वह द्रष्टा की क्षितिज से अपनी कक्षा में पृथ्वी के अर्द्धव्यास के समान नीचे रहता है।

यह पहले बतलाया जा चुका है (देखो पृष्ठ १६-१७) कि हमारे आचार्यों ने मान लिया था कि प्रत्येक ग्रह की योजनात्मक गति समान होती है। आगे आनेवाले भूगोलाध्याय के श्लोक ८१-८२ के अनुसार प्रत्येक ग्रह की दैनिक गति ११८५८.७२ योजन होती है। पृथ्वी का अर्द्धव्यास सूर्य सिद्धान्त के अनुसार ८०० योजन और सिद्धान्त शिरोमणि के अनुसार ७९०.५ योजन होता है (देखो मध्यमाधिकार पृष्ठ-५३)। पिछले ग्रन्थ में लिखा हुआ पृथ्वी का अर्द्धव्यास ग्रह की दैनिक गति का ठीक पन्द्रहवाँ भाग है। पहले ग्रन्थ के अनुसार भी ग्रह की दैनिक गति पृथ्वी के अर्द्धव्यास

के प्रायः १५ गुने के समान है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जिस समय ग्रह यथार्थ क्षितिज पर रहता है उस समय यह स्पष्ट क्षितिज से अपनी दैनिक गति के १५वें भाग के समान नीचे रहता है। अर्थात् ग्रह का परम लंबन उसकी दैनिक गति के १५वें भाग के समान होता है। एक दिन ६० घड़ी के समान होता है इसलिए ६० घड़ी में जो गति होती है उसका पन्द्रहवाँ भाग चार घड़ी की गति के समान हुआ। इसका अर्थ यह हुआ कि ग्रह चार घड़ी में जितना चलता है उतना ही उसका परम लंबन (कलाओं में) होता है। समय की इकाइयों में ग्रह का परम लंबन ४ घड़ी के समान होता है।

यदि ग ग्रह की दैनिक कोणात्मक गति, य उसकी दैनिक योजनात्मक गति, ल परम लंबन, क पृथ्वी से ग्रह कक्षा की दूरी और त्र पृथ्वी का अर्द्धव्यास हो तो ऊपर लिखी बातें इस प्रकार भी प्रकट की जा सकती हैं :—

$$ल = \frac{ग}{१५} = \frac{य}{१५ क} = \frac{त्र}{क}$$

क्योंकि यदि ग्रह बहुत दूर हो तो उसकी दैनिक योजनात्मक गति को अर्थात् १ दिन में ग्रह अपनी कक्षा का जितना धनु (arc) चलता है उसको कक्षा के अर्द्धव्यास से भाग देने पर उसकी दैनिक कोणात्मक गति ज्ञात होती है इसलिए $ग = \frac{य}{क}$। परन्तु य को १५ से भाग देने पर जो आता है वह पृथ्वी के अर्द्धव्यास के समान होता है इसलिए $\frac{य}{१५} = त्र$।

इससे सिद्ध हुआ कि हमारे आचार्यों ने परम लंबन का परिमाण जानने के लिए जो नियम बनाये थे वह आजकल के बनाये नियम से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं (देखो पृ० ३८३)। परन्तु इसमें भूल यह थी कि ग्रह की योजनात्मक गति समान नहीं है जैसा कि आजकल के वेधों से सिद्ध होता है इसलिए हमारे आचार्यों के बताये हुए नियम से परम लंबन के जो मान आते हैं वे आजकल के वेधों द्वारा आये हुए परम लंबनों से बहुत भिन्न हैं। पृष्ठ ४१० की तुलनात्मक सारिणी से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

अब यह बतलाना आवश्यक है कि हमारे आचार्य ग्रह का परम लम्बन जानकर उसका स्पष्ट भोगांश लंबन और शर लंबन अथवा नति कैसे जानते थे। भास्कराचार्य जी लिखते हैं कि (१) जिस समय ग्रह खस्वस्तिक पर रहता है उस समय उसमें किसी प्रकार का लंबन नहीं होता क्योंकि पृथ्वी के केन्द्र से और द्रष्टा से

ग्रह	भास्कराचार्य के अनुसार मध्यम परम लम्बन	आजकल के वेधों से प्राप्त परम लम्बन		आजकल के वेधों से प्राप्त स्पष्ट बिम्ब	
		लघुतम	महत्तम	लघुतम	महत्तम
	विकला	विकला	विकला	विकला	विकला
सूर्य	२३६५	८.७	६.०	१८६०	१९५६
चन्द्रमा	३१६२.३	३१८६	३७२०	१७४०	२०२८
मङ्गल	१२५.७	३.५	१६.६	४.४	२१.२
बुध	६८२.१	६.४	१४.४	४.८	१०.६
गुरु	२०.०	१.४	२.१	३१.६	४६.७
शुक्र	३८४.५	५.०	३१.४	६.६	६०.०
शनि	८.०	०.८	१.०	१५.८	१६.५

ग्रह तक खींची गयी रेखाएँ एक* ही होती हैं। (२) जिस समय ग्रह त्रिभोन लग्न पर होता है अर्थात् जिस समय ग्रह क्रान्तिवृत्त के उस बिंदु पर होता है जो उदय लग्न से तीन राशि कम होता है तब ग्रह में भोगांश लंबन नहीं होता, केवल नति होती है। (३) जिस समय क्रान्तिवृत्त खस्वस्तिक से होता हुआ ऊर्ध्ववृत्त बनाता है और ग्रह क्रान्तिवृत्त पर होता है उस समय उसमें शरलम्बन नहीं होता, केवल भोगांश लम्बन होता है। अन्य दशाओं में लम्बन और नति क्या होती है यह जानने के नियम बतलाये गये हैं।

पृष्ठ ४०६ में बतलाया गया है कि किसी समय का भोगांश लम्बन जानने के लिए पहले यह जानना आवश्यक है कि उस समय के त्रिभोन लग्न का नतांश या

* इससे जान पड़ता है कि भास्कराचार्य ने पृथ्वी को पूर्ण गोल माना था क्योंकि तभी यह बात ठीक होती है।

उन्नतांश क्या है क्योंकि त्रिभोन लग्न के उन्नतांश की ज्या सूत्र (ख) का एक अंग है। त्रिभोन लग्न के नतांश की ज्या को दृक्क्षेप और उन्नतांश की ज्या को अथवा नतांश की कोटिज्या को दृग्गति कहा गया है। चित्र ७६ में दिखलाया गया है कि जब क्रान्तिवृत्त का उदय लग्न क्षितिज के पूर्व बिन्दु के दक्खिन होता है तब त्रिभोन लग्न यामोत्तरवृत्त से पच्छिम होता है क्योंकि त्रिभोन लग्न उदय लग्न से ३ राशि या ९० अंश कम होता है। त्रिभोन लग्न खस्वस्तिक और कदम्ब विंदुओं से जाता हुआ ऊर्ध्ववृत्त क्रान्तिवृत्त से समकोण बनाता है और क्षितिज को फ बिन्दु पर काटता है।

चित्र ७६

उ पू द फ=स स्थान का क्षितिज वृत्त

उ ध ख म व द=स स्थान का यामोत्तर वृत्त

ध=उत्तरी आकाशीय ध्रुव

ख=खस्वस्तिक

म=मध्य लग्न

व पू=विषुवद्वृत्त

त्र म त अ=क्रान्तिवृत्त

त्र=त्रिभोन लग्न

त=शरद सम्पात (सायन तुला)

क=कदम्ब

क ख त्र फ=त्रिभोन लग्न से जाता हुआ ऊर्ध्ववृत्त

अ पू=उदय लग्न की अग्रा

इसलिए धनु अ द फ=९०°=धनु पू अ द । यदि दोनों धनुओं से सामान्य खंड अ द निकाल दिया जाय तो अ पू=द फ

गोलीय त्रिभुज अ त पू में

$$\frac{\text{ज्या (अ पू)}}{\text{ज्या अ त पू}} = \frac{\text{ज्या (अ त)}}{\text{ज्या अ पू त}}$$

परन्तु अ त पू विषुवद्वृत्त और क्रान्तिवृत्त के बीच का कोण अर्थात् सूर्य की परम क्रान्ति है और अ पू त कोण व द धनु के समान है जो स स्थान का लम्बांश है।

$$\therefore \text{ज्या (अ पू)} = \frac{\text{परम क्रान्ति ज्या} \times \text{ज्या (त अ)}}{\text{लम्बज्या}}$$

यही सूर्यग्रहणाधिकार के तीसरे श्लोक का तात्पर्य है। इसी ज्या अ पू का नाम उदय या उदय ज्या रखा गया है। परन्तु अ पू=द फ, जो म ख त्र कोण के समान है।

अब यदि गोलीय समकोण त्रिभुज म ख त्र के धनु म ख का ज्ञान हो जाय तो धनु ख त्र का मान सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि कोण ख त्र म समकोण है। यह स्पष्ट ही है कि म ख मध्य लग्न का नतांश है जो मध्य लग्न की उत्तर क्रान्ति व म और इष्ट स्थान के अक्षांश व ख का अन्तर है। क्रान्ति दक्षिण होती तो जोड़ना पड़ता। म ख की ज्या का नाम मध्य ज्या रखा गया है यह जानने की रीति उसी अधिकार के ४थे और ५वें श्लोकों में बतलाई गयी है। इसलिए समकोण गोलीय त्रिभु ख त्र म में

$$\text{ज्या (त्र ख)} = \text{ज्या (ख म त्र)} \times \text{ज्या (म ख)}$$

यदि गोलीय त्रिभुज ख त्र म को समतल त्रिभुज (plane triangle) मान लिया जाय तो ज्या (ख म त्र), =कोज्या (म ख त्र) क्योंकि ख म त्र और म ख त्र का योग ९०° के समान होगा।

इसलिए

$$\begin{aligned}\text{ज्या (त्र ख)} &= \text{कोज्या (म ख त्र) ज्या (म ख)}\\ &= \text{कोज्या (द फ)} \times \text{ज्या (म ख)}\\ &= \text{ज्या (म ख)} \sqrt{१ - \text{ज्या}^{२} \text{(द फ)}}\\ &= \sqrt{\text{ज्या}^{२} \text{(म ख)} - \text{ज्या}^{२} \text{(म ख) ज्या}^{२} \text{(द फ)}}\end{aligned}$$

$$\therefore \text{दृक् क्षेप} = \sqrt{\text{मध्यज्या}^{२} - \text{मध्यज्या}^{२} \times \text{उदय}^{२}}$$

$$\text{दृग्गति} = \sqrt{१ - \text{दृक्क्षेप}^{२}}$$

यही सूर्यग्रहणाधिकार के ५—६ श्लोकों का अर्थ है, यहाँ त्रिज्या १ मानी गयी है।

$$\text{छेद} = \frac{(\text{ज्या } ३०^\circ)^२}{\text{दृग्गति}} = \frac{(\frac{१}{२})^२}{\text{दृग्गति}} = \frac{१}{४ \text{ दृग्गति}}$$

$$\text{लम्बन} = \frac{\text{ज्या विश्लेषांश*}}{\text{छेद}}$$

$$= \frac{\text{ज्या विश्लेषांश}}{\frac{१}{४ \text{ दृग्गति}}}$$

$$= ४ \times \text{दृग्गति} \times \text{ज्या विश्लेषांश}$$

इससे लम्बन का जो परिमाण ज्ञात होगा वह घड़ियों में होगा। यह सूत्र पृष्ठ ४०६ के सूत्र (ग) से मिलता है जहाँ लि=४ घड़ी=ग्रह का परम लम्बन, दृग्गति=त्रिभोन लग्न की उन्नतांश की ज्या=कोज्या त्रा और व=विश्लेषांश।

शरलम्बन या नति के लिए केवल यह दिया हुआ है कि दृक्क्षेप को परम-लम्बन से गुणा करने पर नति आती है। यह रीति बहुत स्थूल है।

लम्बन और नति की आवश्यकता सूर्य-ग्रहण की गणना करने में पड़ती थी। इसलिए हमारे ग्रन्थों में इसकी चर्चा सूर्यग्रहणाधिकार में की गयी है। परन्तु आजकल लम्बन से ग्रहों और ताराओं की दूरी का पता भी लगाया जाता है। यह बतलाया गया है कि क्षितिज लम्बन की ज्या$=\frac{\text{त्र}}{\text{क}}$। इसलिए यदि क्षितिज लम्बन की ज्या और भूकेन्द्र से द्रष्टा की दूरी त्र ज्ञात हो तो क सहज ही जाना जा सकता है। अब संक्षेप में यह बतलाया जायगा कि ग्रह का लम्बन कैसे नापा जाता है।

किसी ग्रह का लंबन नापना—मान लो कि चित्र ८० में द, दा भूतल के ऐसे दो स्थान हैं जो एक ही देशान्तर रेखा पर हैं और जिनके अक्षांश भी शुद्धता-पूर्वक जान लिये गये हैं। जिस समय ग्रह च यामोत्तर वृत्त पर आता है उस समय द से उसका स्पष्ट नतांश ख द च अथवा न है और दा से उसका स्पष्ट नतांश खा दा च अथवा ना है। इन दोनों स्थानों के अक्षांशों का योग द भ दा ज्ञात है, इसलिए

$$\angle \text{ द च दा} = ३६०^\circ - (\angle \text{ च द भ} + \text{च दा भ} + \angle \text{द भ दा})$$

$$= ३६०^\circ - (१८०^\circ - \text{न} + १८०^\circ - \text{ना} + \angle \text{द भ दा})$$

$$= \text{न} + \text{ना} - \angle \text{द भ दा}$$

* ग्रह के भोगांश और त्रिभोन लग्न का अन्तर विश्लेषांश है (देखो पृष्ठ ४०५)

परन्तु हमें द च दा कोण के जानने की आवश्यकता नहीं है। हमको तो द या दा से च का लम्बन जानना है अर्थात् हमको द च भ या दा च भ कोण जानना है जो द और दा से च के लम्बन हैं। मान लो द च भ=ल और दा च भ=ला और द च दा=च। अब

$$\text{ज्या ल} = \text{ज्या न} \times \frac{\text{भ द}}{\text{भ च}}$$

$$\text{ज्या ला} = \text{ज्या ना} \times \frac{\text{भ दा}}{\text{भ च}} = \text{ज्या ना} \times \frac{\text{भ द}}{\text{भ च}}$$

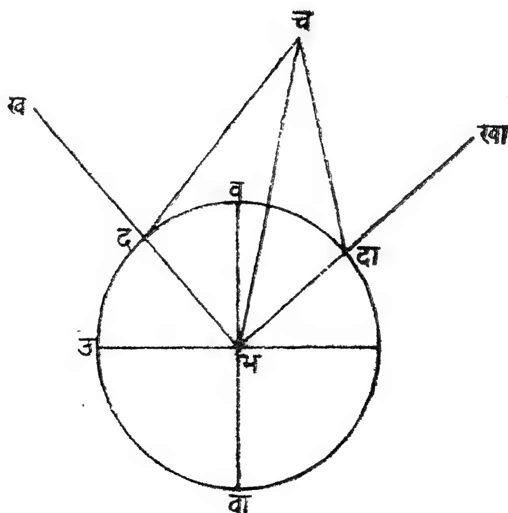
क्योंकि भ द और भ दा दोनों पृथ्वी की त्रिज्याएँ हैं इसलिए समान मानी जा सकती हैं। इसलिए

$$\frac{\text{ज्या ल}}{\text{ज्या न}} = \frac{\text{ज्या ला}}{\text{ज्या ना}}$$

अथवा $\text{ज्या ला} = \text{ज्या ला} \times \dfrac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$

परन्तु $\text{ल} = \text{च} - \text{ला}$

$$\therefore \text{ज्या (च} - \text{ला)} = \text{ज्या ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$$



चित्र ८०

$$\therefore \quad \text{ज्या च कोज्या ला} - \text{कोज्या च ज्या ला} = \text{ज्या ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$$

यदि इस समीकरण के प्रत्येक पक्ष को ज्या च ज्या ला से भाग दिया जाय तो

$$\text{कोस्परे ला} - \text{को स्परे च} = \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या च ज्या ना}}$$

$$\text{अथवा कोस्परे ला} = \text{कोस्परे च} + \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या च ज्या ना}}$$

इस प्रकार यह सिद्ध है कि यदि दो स्थानों से किसी ग्रह का नतांश वेध करके जान लिया जाय तो उन स्थानों के अक्षांशों के ज्ञान से द च दा कोण अर्थात् च की जानकारी हो सकती है। फिर च से ला की जानकारी उपर्युक्त समीकरण से की जा सकती है।

यह तो स्पष्ट ही है कि चन्द्रमा को छोड़कर अन्य ग्रहों के लम्बन बहुत छोटे होते हैं इसलिए यदि इनके लम्बनों की ज्याओं के स्थान में इनके धनु ही रखे जायँ तो कोई हानि नहीं हो सकती। ऐसी दशा में

$$\text{ज्या } (\text{च} - \text{ला}) = \text{ज्या ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}, \text{ की 'जगह}$$

$$\text{च} - \text{ला} = \text{ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}} \text{ लिखा जा सकता है।}$$

$$\therefore \text{च} = \text{ला} + \text{ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$$

$$= \text{ला}\left(1 + \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}\right)$$

$$= \text{ला} \times \frac{\text{ज्या ना} + \text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$$

$$\therefore \text{ला} = \frac{\text{च ज्या ना}}{\text{ज्या न} + \text{ज्या ना}}$$

$$= \frac{\text{च ज्या ना}}{२ \text{ ज्या } \frac{\text{न} + \text{ना}}{२} \text{ कोज्या } \frac{\text{न} - \text{ना}}{२}} \qquad (\text{क})$$

इस सूत्र से किसी ग्रह का वेध करके उसका साधारण लम्बन या क्षितिज लम्बन जाना जा सकता है क्योंकि यदि क्षितिज लम्बन लि हो तो

$$\text{ज्या लि} = \frac{\text{ज्या ला}}{\text{ज्या ना}}$$

$$\text{अथवा लि} = \frac{\text{ला}}{\text{ज्या ना}} \qquad (\text{ख})$$

समीकरण (क) और (ख) को एकत्र करने से

$$\text{लि} = \frac{\text{च}}{२\ \text{ज्या}\frac{\text{न}+\text{ना}}{२}\ \text{कोज्या}\frac{\text{न}-\text{ना}}{२}} = \frac{\text{च}}{\text{ज्या न}+\text{ज्या ना}}$$

उदाहरण---यदि द स्थान का उत्तर अक्षांश ५६°२०′३०″ और दा का दक्षिण अक्षांश ३३°५५′५″ हो तथा द और दा से मंगल ग्रह के यामोत्तर नतांश ६८°१४′६″ और २५°२′ हो तो मंगल का क्षितिज लम्बन क्या है ?

द भ दा = ५६°२०′३०″ + ३३°५५′५″ = ६३°१५′२५″

न + ना = ६८°१४′६″ + २५°२′ = ९३°१६′६″

∴ च = द च दा = न + ना − द भ दा

= ९३°१६′६″ − ९३°१५′३५″

= ३१″

ज्या न = ज्या ६८°१४′६″ = .९२८७

ज्या ना = ज्या २५°२′ = .४२३१

∴ ज्या न + ज्या ना = १·३५१८

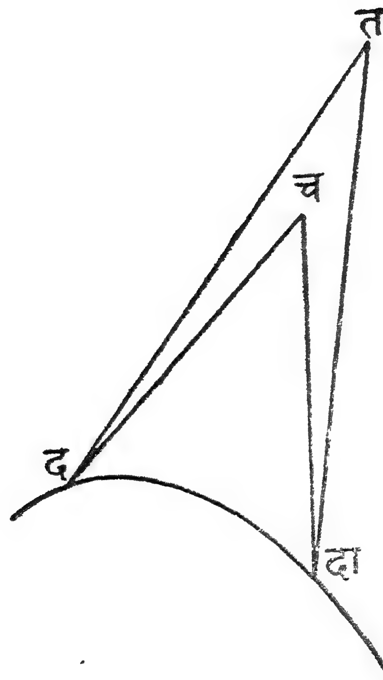
$$\therefore \text{क्षितिज लंबन लि} = \frac{३१''}{१\cdot३५१८} = २२''\cdot९३$$

यह प्रकट है कि इस रीति से च का मान जानने के लिए हमको दो स्थानों के अक्षांश जानना आवश्यक है। परन्तु यदि हम यह देखें कि जिस समय ग्रह यामोत्तर वृत्त पर है उस समय वह किसी पासवाले तारे से कितना ऊपर या नीचे दोनों स्थानों से देख पड़ता है तो च का मान सहज ही जाना जा सकता है। मान लो कि चित्र ८१ में च ग्रह का स्थान है और त उसी के पास वाले किसी तारे का स्थान है। द से देखने पर त से च का अन्तर त द च कोण के समान है और दा से इन दोनों का अन्तर त दा च कोण के समान है।

इसलिए द च दा = त द च + त दा च + द त दा

परन्तु तारा त इतनी दूर होता है कि द त दा कोण शून्य के समान होता है। इसलिए

द च दा = त द च + त दा च



चित्र ८१

इस चित्र में द स्थान से, त से नीचे च देख पड़ता है और दा स्थान से त से ऊपर च देख पड़ता है। इसलिए च और त के अन्तरों का योग किया गया है। यदि दोनों स्थानों से, त के एक ही ओर च देख पड़े तो त द च और त दा च कोणों का अन्तर द च दा कोण के समान होता है।

व्यवहार में ठीक एक ही देशान्तर रेखा के दो स्थानों से किसी ग्रह या तारे का वेध लेना कठिन है। परन्तु यदि दो स्थान ऐसे हों जिसके देशान्तरों के थोड़ा ही भेद हो तो भी उपर्युक्त नियम लागू हो सकता है क्योंकि इससे जो अशुद्धि होगी वह नहीं के समान होगी।

केवल चन्द्रमा और मङ्गल ग्रह का लम्बन जानने के लिए यह रीति काम में लायी जा सकती है। मङ्गल के लिए भी यह रीति तभी शुद्ध हो सकती है जब वह पृथ्वी के बहुत पास हो अर्थात् सूर्य से ६ राशि के लगभग दूर हो। अन्य दूर के ग्रहों के लिए यह रीति उपयोगी नहीं है क्योंकि जब लंबन १० या १२ विकला से

कम होता है तब इस रीति से काम लेने में वेध करने की कुछ भूलें ऐसी रह जाती हैं जिनसे फल बहुत अशुद्ध हो जाता है। चन्द्रमा इतने पास है कि यदि पृथ्वी को पूर्ण गोल मानना जाय जैसा कि उपर्युक्त नियम के लिए भ द और भ दा समान समझ लिये गये हैं तो भी कुछ स्थूलता रह जाती है। इसलिए चन्द्रमा का लंबन जानने के लिए भ द को भ दा के समान न समझ कर इनका यथार्थ परिमाण लेना पड़ेगा। यदि ज्या ल की जगह ल और ज्या ला की जगह ला रखा जाय तो ४१४ पृष्ठ के अनुसार.

$$\text{ल} = \frac{\text{भ द}}{\text{भ च}} \times \text{ज्या न}$$

$$\text{ला} = \frac{\text{भ दा}}{\text{भ च}} \times \text{ज्या न}$$

$$\therefore \text{च} = \text{ल} + \text{ला} = \frac{\text{भ द} \times \text{ज्या न} + \text{भ दा} \times \text{ज्या ना}}{\text{भ च}}$$

परन्तु क्षितिज लम्बन $\text{लि} = \frac{\text{त्र}}{\text{भ च}}$ जहाँ त्र = पृथ्वी की त्रिज्या।

$$\therefore \text{भ च} = \frac{\text{त्र}}{\text{लि}}$$

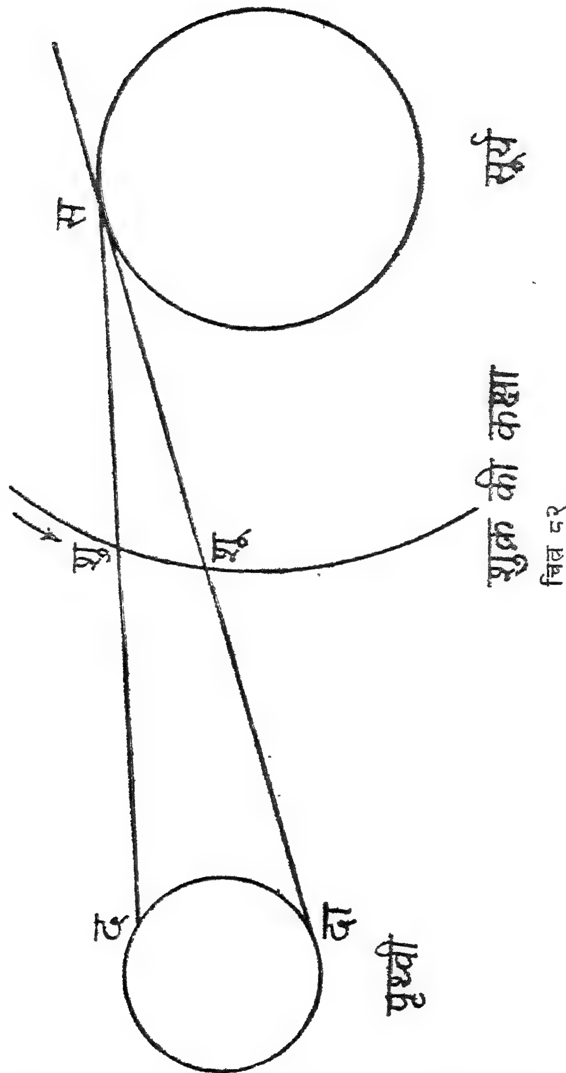
$$\therefore \text{च} \times \frac{\text{त्र}}{\text{लि}} = \text{भ द} \times \text{ज्या न} + \text{भ दा} \times \text{ज्या ना}$$

$$\therefore \text{लि} = \frac{\text{च} \times \text{त्र}}{\text{भ द} \times \text{ज्या न} + \text{भ दा} \times \text{ज्या न}}$$

यहाँ न और ना चन्द्रमा के यथार्थ नतांश हैं। यदि भौगोलिक या स्पष्ट नतांश के अनुसार लि का मान जानना हो तो पृष्ठ ३८३ में बतलायी गयी रीति से भौगोलिक नतांश से यथार्थ नतांश जान लेना चाहिए। उपर्युक्त सूत्र से यह सिद्ध होता है कि द्रष्टा के स्थान में भिन्नता होने से क्षितिज लंबन में भिन्नता होती है क्योंकि भ द और भ दा बदलते रहेंगे। यह बात वेध से भी देखी गयी है कि भिन्न-भिन्न स्थानों में चन्द्रमा का क्षितिज लम्बन भिन्न-भिन्न देख पड़ता है। यह इस बात का प्रमाण है कि पृथ्वी पूर्ण गोल नहीं है वरन् अंडाकार है।

सूर्य का लम्बन उपर्युक्त रीति से नहीं जाना जा सकता। इसके लिए कई रीतियाँ काम में लायी जाती हैं जिनमें से दो नीचे लिखी जाती हैं :—

पहली रीति —भूतल पर दो स्थान द और दा ऐसे चुने जाते हैं जो विषवत् रेखा के निकट हैं और परस्पर बहुत दूर हैं। सरलता के लिए यह भी मान लो कि शुक्र की कक्षा शु शू और सूर्य भी विषुवत् रेखा के तल पर है जिस तल पर द, दा



चित्र ८२

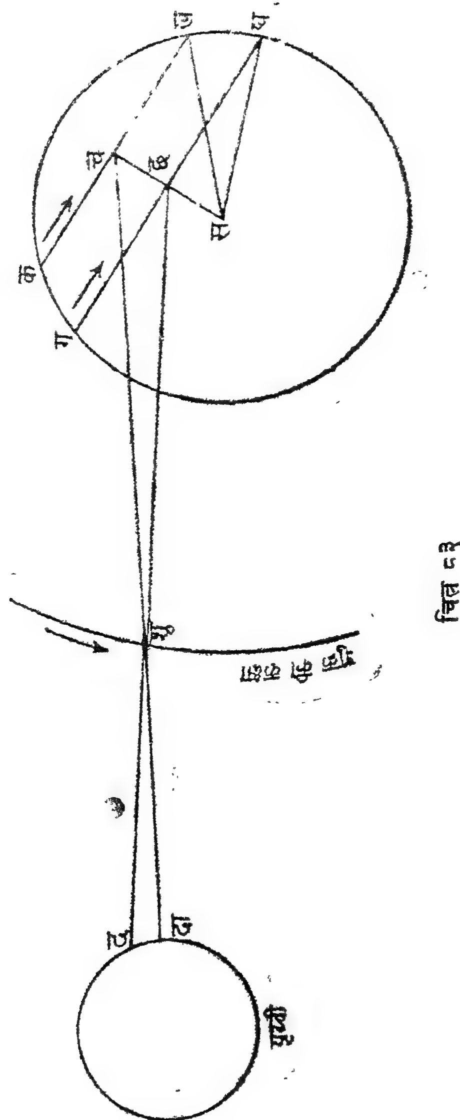
स्थान हैं। द, दा स्थानों से सूर्य के स बिन्दु तक दो स्पर्शरेखाएँ द स और दा स खींचो। द स्थान का द्रष्टा यह ध्यान से देखता है कि शुक्र शु किस समय सूर्य बिम्ब के सामने पहुँच कर उसको भीतर से स्पर्श करता है। इसी प्रकार दा स्थान का द्रष्टा शुक्र और सूर्यबिम्ब के भीतरी स्पर्श का समय ध्यान से देख लेता है। इन दोनों

वेधों के समय में जो अन्तर होता है उतने ही समय में शुक्र शु बिन्दु से शू बिन्दु पर अपनी कक्षा में जाता है अर्थात् उतने ही समय में शुक्र सूर्य की परिक्रमा शु स शू कोण के समान करता हुआ देख पड़ता है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि सूर्य के चारों ओर जाने वाली शुक्र की यह गति शुक्र और पृथ्वी की गतियों के अन्तर के समान है। परंतु हमको मालूम है कि शुक्र और पृथ्वी दोनों कितने समय में सूर्य की परिक्रमा करती हुई एक रेखा में आ जाती है, इसलिए शु स शू या द स दा कोण का परिमाण जाना जा सकता है। जब यह मालूम हो गया कि सूर्यविम्ब के एक बिन्दु पर भूतल के दो स्थानों से कितना कोण बनता है तब चित्र ८० और ८१ में बतलायी गयी रीति से यह सहज ही जाना जा सकता है कि सूर्य का क्षितिज लम्बन क्या है।

व्यवहार में यह रीति इतनी सुविधाजनक नहीं है जितनी देख पड़ती है क्योंकि शुक्र और पृथ्वी की कक्षाएँ एक ही तल में नहीं हैं, दूसरे द, दा स्थानों के देशान्तरों को बहुत ही शुद्धतापूर्वक जानने की आवश्यकता है। यह रीति डीलिस्ले (Delisle) ने चलायी थी।

दूसरी रीति—इस रीति में द्रष्टा के स्थानों के देशान्तरों के जानने की आवश्यकता ही नहीं मड़ती। यहाँ तो केवल यह देखा जाता है कि दो भिन्न-भिन्न स्थानों से शुक्र कितनी देर तक सूर्यबिम्ब के सन्मुख एक किनारे से दूसरे किनारे तक जाता हुआ देख पड़ता है। इस काम के लिए दो द्रष्टाओं के स्थान परस्पर बहुत दूर परन्तु उत्तर दक्खिन होने चाहिए।

मान लो कि शु शुक्र और द दा भूतल पर द्रष्टा के दो स्थान एक ही तल पर अर्थात् कागज के तल पर हैं और सूर्य का बिम्ब प्रकट करने वाला वृत्त जिसका केन्द्र स है इस तल के समकोण पर है। दा स्थान के द्रष्टा को देख पड़ेगा कि शुक्र अपनी कक्षा में तीर की दिशा में चलता हुआ सूर्य बिम्ब को क ख रेखा में काटता हुआ जाता है। परन्तु द स्थान के द्रष्टा को देख पड़ेगा कि सूर्य के बिम्ब को शुक्र ग घ रेखा में काटता हुआ जाता है। जितनी देर में शुक्र सूर्य के सामने एक किनारे से दूसरे किनारे तक जाता हुआ देख पड़ता है वह समय प्रत्येक स्थान से ध्यानपूर्वक देख कर लिख लेना चाहिए। शुक्र जिस गति से सूर्य के बिम्ब को काटता हुआ निकल जाता है उसकी गणना सहज ही की जा सकती है। यह १ मिनट में ४ विकला के लगभग होती है। इसलिए जब यह मालूम है कि शुक्र क ख या ग घ रेखाओं को कितने समय में पार करता है तब इन रेखाओं के विकलात्मक मान सहज ही और बहुत शुद्धतापूर्वक जाने जा सकते हैं। इसलिए क ख और ग घ चापों के



चित्र ८३

आधे भागों के भी परिमाण जाने जा सकते हैं। परन्तु सूर्य बिम्ब का कोणात्मक मान विकलाओं में मालूम ही रहता है। इसलिए स च और स छ के विकलात्मक

$$\text{स छ}^2 = \text{स घ}^2 - \text{घ छ}^2$$

और $$\text{स च}^2 = \text{स ख}^2 - \text{ख च}^2$$

स च और स छ की जानकारी हो जाने पर इन दोनों का अन्तर निकाल लेने से हमको च छ का ज्ञान हो जाता है। इससे च छ की दूरी मीलों में भी मालूम हो सकती है क्योंकि यदि दोनों त्रिभुज द शु दा और च शु छ सजातीय (Similar) समझ लिये जायँ तो

$$\frac{\text{च छ}}{\text{द दा}} = \frac{\text{शु छ}}{\text{शु द}}$$

परन्तु शु छ और शु द का सम्बन्ध हमें केपलर के नियमों से मालूम है क्योंकि शु छ शुक्र से सूर्य की दूरी है और शु द शुक्र से पृथ्वी की दूरी है। इसलिए यदि शु छ ७२३ और शु द २७७ हो तो

$$\frac{\text{च छ}}{\text{द दा}} = \frac{७२३}{२७७}$$

द दा पृथ्वी तल के दो स्थान हैं इसलिए इनकी परस्पर दूरी सहज ही जानी जा सकती है। इस प्रकार च छ का परिमाण मीलों में भी जाना जा सकता है। परन्तु उपर्युक्त रीति से च छ का परिमाण विकलाओं में भी जाना जा सकता है। इसलिए जब इसका परिमाण विकलाओं और मीलों दोनों में मालूम है तब यह सहज ही जाना जा सकता है कि सूर्य पृथ्वी से कितनी दूर है क्योंकि

$$\frac{\text{च छ का विकलात्मक मान}}{२०६२६५} = \frac{\text{च छ का मान मीलों में}}{\text{पृथ्वी से सूर्य की दूरी}}$$

$$\therefore \text{पृथ्वी से सूर्य की दूरी} = \frac{२०६२६५ \times \text{च छ का मान मीलों में}}{\text{च छ का मान विकलाओं में}}$$

इससे सूर्य का लंबन सहज ही जाना जा सकता है। हैली (Hally) ने १७७३ वि० में इस रीति का आविष्कार किया था। इन दोनों रीतियों में यह दोष है कि शुक्र और सूर्य के बिम्बों के भीतरी स्पर्श का समय ठीक-ठीक वेध करना बड़ा कठिन होता है। शुक्र की गति इतनी मन्द होती है और सूर्य के बिम्ब का किनारा इतना अस्पष्ट होता है कि स्पर्शकाल के समय में कई असुओं का अन्तर पड़ सकता है।

क्षितिज लम्बन जानकर सूर्य और चन्द्रमा की दूरी जानना—यह बतलाया गया है कि क्षितिज लंबन की ज्या = त्र ÷ क, जहाँ त्र पृथ्वी की त्रिज्या और क भूकेन्द्र से ग्रह की दूरी है।

$$\therefore \text{क} = \frac{\text{पृथ्वी की त्रि ज्या}}{\text{क्षितिज लंबन की ज्या}}$$

क्षितिज लम्बन की ज्या को कलाओं और विकलाओं में प्रकट करने से सुविधा होती है इसलिए पृथ्वी की त्रिज्या को भी कलाओं और विकलाओं में लिखना चाहिए। यह बतलाया गया है कि

$$\text{त्रिज्या} \times २ \times ३.१४१५९ = \text{परिधि} = ३६०^\circ$$

$$\therefore \text{त्रिज्या} = \frac{३६०^\circ}{२ \times ३.१४१५९} = ५७^\circ.२९५७७९५$$

$$= ३४३७'.७४६७७$$

$$= २०६२६४''.८०६२$$

$$= २०६२६५''$$

सूर्य का मध्यम क्षितिज लम्बन $= ८''.८०$

$$\therefore \text{सूर्य की मध्यम दूरी} = \frac{२०६२६५}{८.८}$$

$$= २३४३९ \text{ पृथ्वी की त्रिज्याओं में}$$

यह दूरी पृथ्वी की त्रिज्याओं में है जिसका विषुवद्वृत्तीय मान ३९६३.३ मील है। इसलिए सूर्य की दूरी $= २३४३९ \times ३९६३.३$ मील $= ९२८९५७८९$ मील।

चंद्रमा का मध्यम क्षितिज लम्बन $= ५७'१''.८ = ३४२२''$

$$\therefore \text{चंद्रमा की मध्यम दूरी} = \frac{२०६२६५}{३४२२}$$

$$= ६०.३ \text{ पृथ्वी की त्रिज्याओं में}$$

$$= ६०.३ \times ३९६३.३ = २३८९८७ \text{ मील}$$

सूर्य और चन्द्रमा के विस्तार—यदि किसी आकाशीय पिंड का कोणात्मक अर्द्धव्यास वेध से जान लिया जाय और उसका लम्बन भी ज्ञात हो तो उसका विस्तार भी जाना जा सकता है क्योंकि

$$\text{कोणात्मक अर्द्धव्यास की ज्या} = \frac{\text{पिंड की त्रिज्या}}{\text{पिंड की दूरी}}$$

$$\text{लम्बन की ज्या} = \frac{\text{पृथ्वी की त्रिज्या}}{\text{पिंड की दूरी}}$$

सूर्य का अर्द्धव्यास १६′ और लम्बन ८″.८ है, इसलिए

$$\frac{\text{सूर्य की त्रिज्या}}{\text{पृथ्वी की त्रिज्या}} = \frac{१६'}{८''.८} = \frac{९६०}{८.८} = १०९$$

∴ सूर्य की त्रिज्या = १०९ × पृथ्वी की त्रिज्या
= १०९ × ३९६३.३ मील
= ४३१९९९.७ मील
= ४३२००० मील

चन्द्रमा का अर्द्धव्यास १५′ ३९″.९ और लम्बन ५७′ १″.८ है

$$\text{इसलिए चंद्रमा की त्रिज्या} = \text{पृथ्वी की त्रिज्या} \times \frac{\text{ज्या } १५' ३९''.९}{\text{ज्या } ५७' १''.८}$$

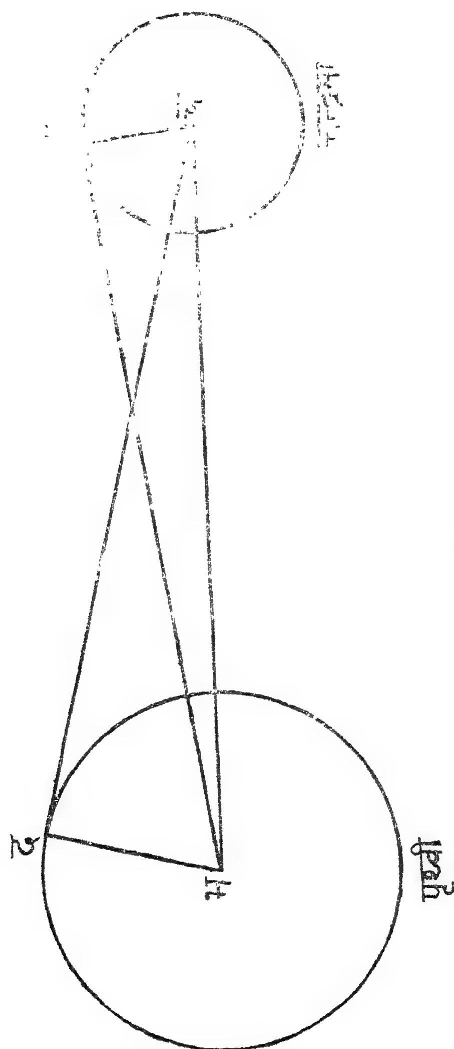
$$= \text{पृथ्वी की त्रिज्या} \times \frac{१५' ३९''.९}{५७' १''.८}$$

= ३९६३.३ × .२७५
= १०८९.९
= १०९० मील

चित्र ८४ में ∠ प भ च = चंद्रमा का कोणात्मक अर्द्धव्यास
∠ भ च द = चंद्रमा का लम्बन
प च = चंद्रमा की त्रिज्या
भ द = पृथ्वी की त्रिज्या

वार्षिक लम्बन

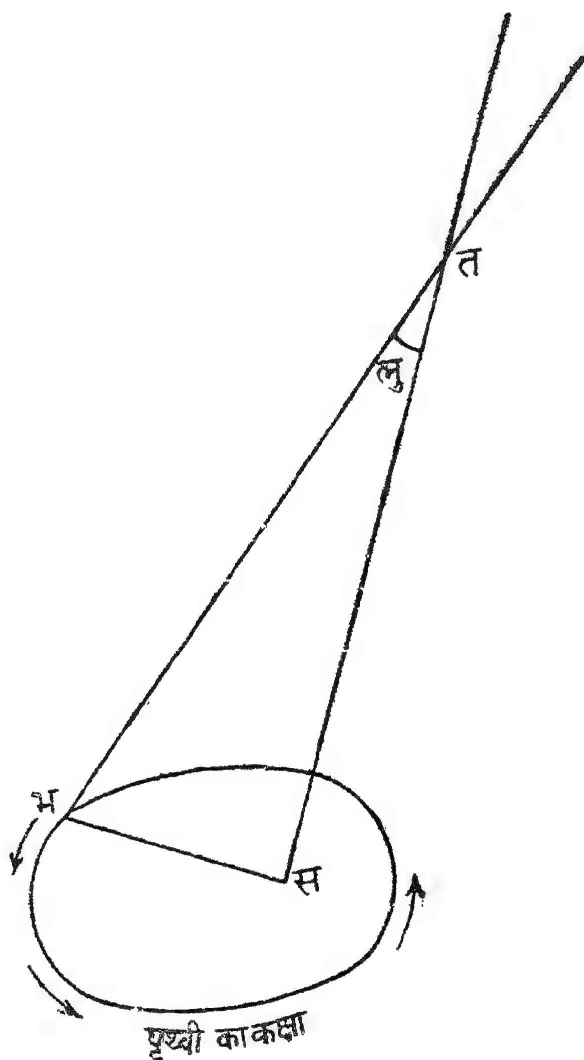
वार्षिक लम्बन—यह बतलाया गया है कि तारे हमसे इतनी दूर हैं कि भूतल के किसी दो स्थानों से देखने पर इनके लम्बन का पता नहीं लग सकता। परन्तु यदि पूरे वर्ष भर तक किसी तारे का वेध किया जाय तो पृथ्वी की वार्षिक-गति के कारण एक ही द्रष्टा से स्थानों में बहुत अंतर पड़ता जाता है जिससे देख पड़ता है कि तारे में भी कुछ लम्बन होता है। यह अभी सिद्ध हुआ है कि पृथ्वी से सूर्य की दूरी ९,३०,००००० मील के लगभग है। यह विदित ही है कि पृथ्वी एक वर्ष में सूर्य की परिक्रमा करती है। इस लिए ६ मास में पृथ्वी आधा परिक्रमा करती है। अब यदि किसी तारे का वेध किसी दिन किया जाय और फिर ६ महीने के बाद उसी तारे का वेध किया जाय तो द्रष्टा के स्थानों का अन्तर १८,६०,००,००० मील हो जाता है जिससे तारे की दिशा में कुछ परिवर्तन देख पड़ता है। यह परिवर्तन लम्बन के कारण होता है। जब द्रष्टा के



चित्र ८५

दो स्थानों का अंतर अठारह करोड़ साठ लाख मील दूर होता है तब भी सब तारों का लम्बन नहीं देख पड़ता है क्योंकि बहुत से तारे हममे इतनी दूर हैं कि पृथ्वी की कक्षा का व्यास भी उनके सामने शून्य के समान है। इसलिए बहुत-सूक्ष्म यंत्रों से भी थोड़े ही तारों का लंबन नापा जा सका है।

वार्षिक लम्बन—किसी तारे का वार्षिक लंबन वह कोण है जो पृथ्वी की



चित्र ८५

कक्षा के अर्द्धव्यास के सम्मुख तारे पर बनता है। चित्र ८५ में यदि भ पृथ्वी, स सूर्य और त किसी तारे के स्थान हों तो त का वार्षिक लम्बन कोण स त भ अथवा लु के समान है।

जिस प्रकार चन्द्रमा या ग्रह का लम्बन जानने के लिए सूत्र स्थापित किये गये हैं उसी तरह तारे का लम्बन जानने का सूत्र भी स्थापित हो सकता है।

$$\frac{\text{ज्या लु}}{\text{ज्या स भ त}} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}}$$

$$\therefore \text{ज्या लु} = \text{लु} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}} \times \text{ज्या स भ त}$$

अर्थात् किसी तारे का वार्षिक लम्बन उस कोण की ज्या के अनुपात में होता है जो उस तारे और सूर्य के बीच भूकेन्द्र पर बनता है। यह स्पष्ट है कि जब कोण स भ त ९०° के समान होता है अर्थात् जब तारे का भोगांश सूर्य के भोगांश से ९०° आगे या पीछे होता है तब लम्बन का परिमाण महत्तम होता है। इसलिये किसी तारे का महत्तम लंबन वर्ष में दो बार देख पड़ता है। इसका सूत्र यह है :—

$$\text{तारे का महत्तम लंबन} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}}$$

यदि महत्तम लंबन को लू मान लिया जाय तो तारे का किसी समय का लम्बन

$$\text{लु} = \text{लू} \times \text{ज्या स भ त}$$

साधारणतः तारे के महत्तम लम्बन को ही तारे का लम्बन कहते हैं।

ऊपर के सूत्रों में लु और लू रेडियन के दशमलव भिन्न में है। यदि इनको विकलाओं में लिखा जाय तो

$$\frac{\text{लू विकला}}{२०६२६५} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}}$$

इससे सिद्ध होता है कि यदि लू मालूम हो तो स त अर्थात् तारे की दूरी मालूम हो सकती है क्योंकि स भ तो मालूम ही है।

उदाहरण—यदि किसी तारे का वार्षिक लंबन ०″.८ हो तो सूर्य से उस तारे की दूरी बतलाओ ?

$$\frac{०.८}{२०६२६५} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}}$$

$$\therefore \text{स त} = \frac{२०६२६५}{.८} \times \text{स भ} = २,५७,८३१ \text{ स भ}$$

अर्थात् सूर्य पृथ्वी से जितनी दूर है उसकी २,५७,८३१ गुनी दूर सूर्य से वह तारा है।

$$\text{मीलों में यह दूरी} = २,५७,८३१ \times ९,३०,००,०००$$
$$= २,३९,७८,२८,३०,००,०००$$

इससे यह सिद्ध है कि यदि तारों के दूरी मीलों में लिखी जाय तो बहुत बड़ी संख्या का व्यवहार करना आवश्यक होगा जिसमें सुभीता नहीं है। इसलिए

ज्योतिषियों ने इतनी बड़ी दूरी को प्रकट करने के लिए एक और इकाई स्थिर की है जिसे प्रकाश वर्ष कहते हैं। एक वर्ष में प्रकाश जितनी दूर चलता है उसे प्रकाश वर्ष कहते हैं। यह कई प्रयोगों से सिद्ध हो गया है कि सूर्य का प्रकाश पृथ्वी तक ८ मिनट १८ सेकेन्ड में पहुँचता है अर्थात् प्रकाश की गति प्रति सेकेन्ड १,८६,०० मील है। इसलिए एक सायन वर्ष में प्रकाश ३६५.२४२२ × २४ × ६० × ६० × १८६००० मील अथवा ५८,६६,५८,८२,५०,८८० मील चलता है। इसलिए इसी दूरी को एक प्रकाश वर्ष कहते हैं।

यह भी याद रखना चाहिए कि जहां इतनी बड़ी दूरियों का हिसाब लगाया जाता है वहां लाखों मील की दूरी की भूल रह जाना साधारण बात है क्योंकि यदि

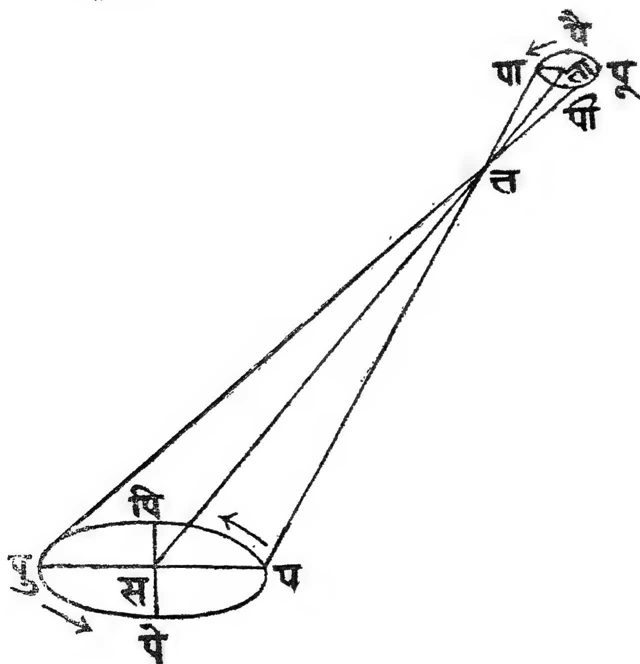
नाम अंग्रेजी में	नाम हिन्दी में	वार्षिक लम्बन	पृथ्वी से सूर्य की दूरी का कितने गुनी दूरी	प्रकाश वर्ष में दूरी
α Centauri	...	०″.७५०±०″.०१	२,८०,०.००	४.४
61 Cygni	...	०.३७±०.०२	५,६०,०००	८.८
Sirius	लुब्धक	०.३७±०.०१	५,६०,०००	८.८
Procyon	प्रश्वा	०.३१	६,६०,०००	११
Altair	श्रवण	०.२८±०.०२	७,४०,०००	१२
Aldebaran	रोहिणी	०.१७±०.०२	१४,००,०००	२२
Capella	ब्रह्म हृदय	०.१२±०.०२	१७,००,०००	२७
Vega	अभिजित्	०.१२±०.०२	१७,००,०००	२७
Polaris	ध्रुव तारा	०.०७±०.०२	३०,००,०००	४७
Arcturus	स्वाती	०.०२४	८७,००,०००	१४०
α Gruis	...	०.०१५	१,४०,००,०००	२२०

किसी तारे के लंबन के वेध करने में .००१ विकला की भूल रह जाय, जो असम्भव नहीं है, तो उसकी दूरी में बहुत अन्तर पड़ सकता है।

पीछे एक सारिणी दी गई है जिससे जान पड़ेगा कि कुछ तारों के लम्बन और उनकी दूरियां क्या हैं। यह सारिणी R. S. Ball की Spherical Astronomy पृष्ठ ३२८ से ली गई है।

प्रकाश वर्ष की दूरी की कल्पना इस प्रकार की जा सकती है। जब यह कहा जाता है कि आकाश मण्डल का सबसे चमकीला तारा लुब्धक हमसे ८.८ प्रकाश वर्ष दूर है तब इसका अर्थ यह भी होता है कि लुब्धक की जो किरण इस समय हमारी आँखों में पहुँच कर लुब्धक का परिचय करा रही है वह वहाँ से ८.८ वर्ष पहले चली थी अर्थात् यह आज की किरण लुब्धक की ८.८ वर्ष पहले की दशा बतला रही है। अब लुब्धक की क्या दशा है इसका ज्ञान आज से ८.८ वर्ष बाद हो सकता है, इसके पहले नहीं जैसे पत्र के द्वारा किसी दूर के मित्र का जो कुछ समाचार मिलता है वह उस समय का समाचार होता है जिस समय पत्र लिखा जाता है न कि इसके पहुँचने के समय का।

आजकल दूरदर्शक यंत्रों से ऐसे तारों का भी परिचय मिला है जो यहाँ से लाखों प्रकाश वर्ष दूर हैं।



वार्षिक लम्बन के कारण तारा वर्ष भर में एक नन्हे से दीर्घवृत्त पर चलता हुआ जान पड़ता है।

चित्र ८६ में स सूर्य है, प, पि, पु, पे चार विन्दुओं पर पृथ्वी अपनी वार्षिक परिक्रमा करती हुई दिखलाई गई है। न तारे का स्थान है। यदि प और स से दो रेखाएँ त तक खींच कर और आगे, त से भी बहुत दूर स्थित तारों के पास पहुँचायी जाय तो स सूर्य से देखने पर तारा ता स्थान पर पृथ्वी से देखने पर पा स्थान पर देख पड़ेगा। इसी तरह जब पृथ्वी पि पु और पे विंदुओं पर रहेगी तब तारा क्रमानुसार पी, पू और पै विन्दुओं पर देख पड़ेगा। इसका परिणाम यह होगा कि तारा पा पी पू पै विंदुओं से बनी हुई कक्षा पर घूमता हुआ देख पड़ेगा। यह छोटी कक्षा क्रान्तिवृत्त प पि पू पे के समानान्तर तल पर होगी और इसका आकार दीर्घवृत्त की तरह का देख पड़ेगा।

जो तारा क्रान्तिवृत्तीय ध्रुवों अर्थात् कदम्बों पर होता है उसकी कक्षा केवल वृत्त के आकार की देख पड़ती है क्योंकि ऐसी दशा में इस छोटी कक्षा का तल हमारे दृष्टिसूत्र से समकोण पर रहेगा। परन्तु जो तारा क्रान्तिवृत्त पर होता है वह मध्य स्थान से छः महीने तक पूरब और छः महीने तक पच्छिम देख पड़ेगा जैसे किसी वृत्त पर घूमता हुआ पिंड उस समय केवल आगे बढ़ता हुआ या पीछे हटता हुआ जान पड़ता है जब वृत्त का तल देखनेवाले के दृष्टिसूत्र की ही सीध में हो। तारे के वार्षिक लम्बन जानने की विधि भी प्रायः उसी तरह है जैसा चित्र ८१ में बतलाया गया है। परन्तु इस काम के लिए बहुत सूक्ष्म वेध रखना पड़ता है जिसकी चर्चा करने की आवश्यकता यहाँ नहीं जान पड़ती।

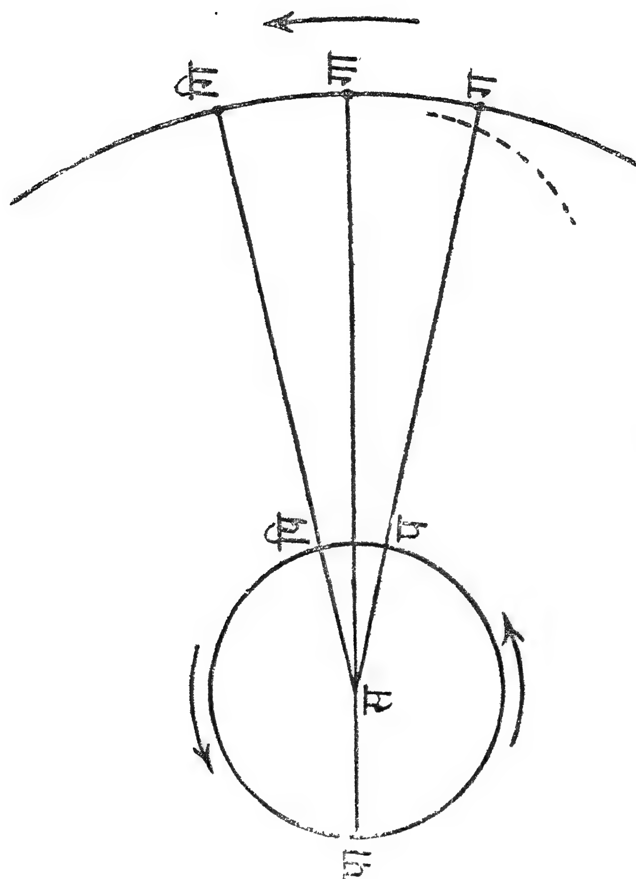
भूचलन संस्कार (Aberration)

यह ऊपर बतलाया गया है कि प्रकाश एक सेकंड में १,८६,००० मील चलता है। पृथ्वी भी वर्ष भर में सूर्य की परिक्रमा करती है जिससे यह अपनी कक्षा में प्रति सेकंड १८½ मील चलती है क्योंकि पृथ्वी की कक्षा का परिमाण २ π × ९,३०,००,००० मील है और एक वर्ष में ३६५.२४२२ × २४ × ६० × ६० सेकंड होते हैं, इसलिए पृथ्वी की कक्षा को एक वर्ष के सेकंडों से भाग देने पर १८½ मील के लगभग आता है। इन दोनों गतियों के कारण दूरदर्शक यंत्र में आकाशीय पिंडों का जो स्थान देख पड़ता है वह यथार्थ स्थान से कुछ आगे या पीछे होता है। किसी पिंड के यथार्थ और स्पष्ट स्थानों में इन दोनों गतियों के कारण जो अंतर देख पड़ता है उसे भूचलन संस्कार (Aberration) कहते हैं। इसकी मीमांसा करने के पहले संक्षेप में यह बतलाना आवश्यक है कि प्रकाश की गति कैसे नापी गयी और दो गतियों के संयोग से पदार्थों के यथार्थ और स्पष्ट स्थानों में कैसा अंतर देख पड़ता है।

प्रकाश की गति—प्रकाश की गति नापने की कई रीतियाँ हैं। इनमें से पहली रीति की चर्चा यहाँ की जायगी :—

प्रकाश की चाल का पता रोमर नामक ज्योतिषी ने संवत् १७३२ विक्रमीय में लगाया। इसके पहले किसी की कल्पना में भी यह बात नहीं आयी थी कि एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में प्रकाश को भी कुछ समय की आवश्यकता पड़ती है। रोमर ने कैसे इस बात का पता लगाया यह भी आश्चर्यजनक है। आप लोगों ने चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण कई बार देखा होगा। चंद्रग्रहण के समय पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा के बीच आ जाती है इसलिए चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में पड़ जाता है। जब पूरा चन्द्रमा छाया में आ जाता है तब पूर्ण ग्रहण लगता है और जब कुछ ही भाग छाया में पड़ता है तब खंड ग्रहण लगता है। जैसे चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमता है और कभी आधा, कभी चौथाई, कभी तीन चौथाई देख पड़ता है वैसे ही वृहस्पति के चारों ओर चार पांच चंद्रमा चक्कर लगाते हैं। वृहस्पति के चंद्रमा इतने छोटे हैं कि बिना दूरबीन के देखे नहीं जा सकते। ये चंद्रमा घूमते-घूमते बहुत जल्दी-जल्दी वृहस्पति की छाया में चले जाते हैं इसलिए कुछ देर तक दिखाई नहीं पड़ते। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जब बृहस्पति के चन्द्रमा उसकी छाया में पड़ जाते हैं तब उनका ग्रहण लगता है। इन ग्रहणों के समय भी गणना करके कई वर्ष पहले उसी प्रकार जान लिये जाते हैं जिस प्रकार सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण के समय। जहाज वाले तो इन ग्रहणों को देख कर घड़ी का काम लेते हैं। बस इसी के सम्बन्ध में सोचते-सोचते रोमर को प्रकाश की गति का पता मिला।

कल्पना कीजिए कि चित्र ८७ में स सूर्य है, प पा पि पृथ्वी के तीन स्थान अपनी कक्षा पर हैं और ग गा गि गुरु अथवा वृहस्पति के तीन स्थान बृहस्पति की कक्षा पर हैं। पृथ्वी और गुरु दोनों एक ही दिशा में सूर्य की परिक्रमा क्रमानुसार १ और १२ वर्ष में करते हैं। जिस समय सूर्य पृथ्वी और गुरु क्रम से स प और ग स्थानों में होते हैं उस समय पृथ्वी गुरु के बहुत पास होती है और जिस समय पृथ्वी पा पर, गुरु गा पर और सूर्य मध्य में होते हैं उस समय पृथ्वी गुरु से अत्यन्त दूर हो जाती है। प से पा पर पहुँचने में पृथ्वी को ६॥ महीने लग जाते हैं। १३ महीने में पृथ्वी प से पा पर होती हुई फिर पि पर पहुँच कर सूर्य और गुरु के बीच आ जाती है। जैसे-जैसे पृथ्वी प से चल कर पा के पास होती जाती है तैसे-तैसे वृहस्पति के चन्द्रमा के ग्रहण का प्रत्यक्ष समय गणित से जाने हुए समय से पीछे पड़ता जाता है और जब पृथ्वी पा पर पहुँच जाती है और बृहस्पति गा पर अर्थात् पृथ्वी बृहस्पति से बहुत दूर हो जाती है तब गणित-सिद्ध काल से प्रत्यक्ष काल सबसे



चित्र ८७

अधिक पिछड़ जाता है। रोमर ने ग्रहण काल जानने की रीति अनेक वेधों से निश्चित की थी, जब पृथ्वी गुरु से दूर और निकट प्रत्येक दशा में रही थी। इसलिए इस रीति से ग्रहण काल का जो समय आता था वह मध्यम मान के अनुसार ठीक होता था। इस काल से प्रत्यक्ष ग्रहण जितने परिमाण में पिछड़ता था उसका आरम्भ वह उस समय से करता था जिस समय पृथ्वी गुरु से अत्यन्त निकट रहती थी अर्थात् जब वह प विन्दु की दशा में रहती थी। इसी प्रकार जब पृथ्वी पा से आगे बढ़ कर वृहस्पति के पास पहुँचती जाती थी तब गणित-सिद्ध काल से प्रत्यक्ष-ग्रहण काल का पिछड़ना कम पड़ता जाता था। जब पृथ्वी पि पर और वृहस्पति गि पर हो जाते थे तब प्रत्यक्ष और गणित-सिद्ध कालों का अन्तर शून्य हो जाता था अर्थात् प्रत्यक्ष

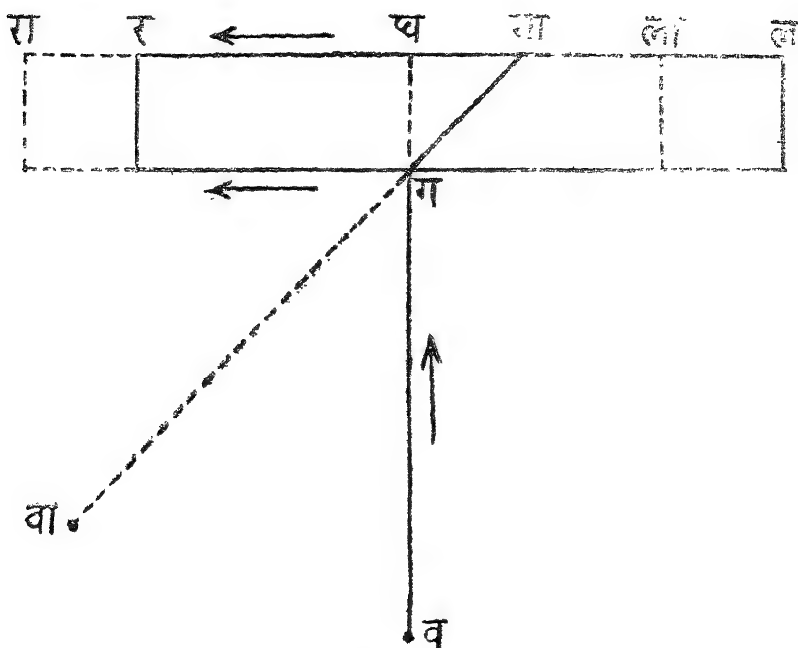
ग्रहण का समय भी वही होता था जो गणित से ठीक आता था। चित्र ८९ से जान पड़ेगा कि गणित से निकाले हुए ग्रहण के समय और प्रत्यक्ष ग्रहण के समय में जो सबसे अधिक अन्तर पड़ता है वह उन दोनों समयों के अन्तर के समान होगा जितने में गुरु के चंद्रमा का प्रकाश ग से प तक और गा से पा तक जाता है अर्थात् यह अंतर उस समय के समान होगा जितने में प्रकाश पृथ्वी की कक्षा के व्यास के समान दूरी तै करता है।

अनुभव से यह जाना गया है कि पा और प से देखने पर ग्रहण के समय में जो अन्तर पड़ता है वह सबसे अधिक होता है और १६ मिनट ३६ सेकेंड के समान होता है। पृथ्वी की कक्षा का अर्द्धव्यास ९,३०,००,००० मील के लगभग है इसलिए इसका व्यास १८,६०,००,००० मील हुआ। इसलिए जब प्रकाश इतनी दूर चलने में १६ मिनट ३६ सेकेंड का समय लेता है तब एक सेकेंड में इसकी गति १८,६०,००,००÷९९६=१,८६,००० मील के लगभग।

इसके बाद कई अन्य वैज्ञानिकों ने प्रकाश की गति नापने के प्रयोग किये। इन सब प्रयोगों से जो फल निकले वे प्रायः एक से हैं। इन प्रयोगों से यह सिद्ध हो गया कि प्रकाश की गति १,८६,३५० मील है।

जब यह सिद्ध हो गया कि प्रकाश गतिमान है तब यह समझ लेना कठिन नहीं है कि यदि गतिमान प्रकाश किसी दूसरी गतिवाली वस्तु में प्रवेश करे तो इसकी दिशा में परिवर्तन हो जायगा। उदाहरण के लिए मान लो कि एक रेलगाड़ी ६० मील प्रति घंटे के हिसाब से दौड़ी चली जा रही है। यदि एक बन्दूक रेलगाड़ी को लक्ष्य करके इस तरह चलायी जाय कि गोली गाड़ी की दिशा से समकोण बनाती हुई एक ओर घुसे और दूसरी ओर आर-पार निकल जाय तो क्या गोली गाड़ी के डब्बे के भीतर भी उसकी दिशा से समकोण बनाती जायगी? जितनी देर में गोली रेलगाड़ी के समान दीवाल से पीछे की दीवाल तक पहुँचेगी उतनी देर में गाड़ी कुछ आगे बढ़ जायगी और गोली पीछे की दीवाल में घुसने के छेद के ठीक सामने न लगकर कुछ पीछे पड़ जायगी। कल्पना करो कि र ल गाड़ी का एक डब्बा है जो र की ओर ६० मील प्रति घंटे या ८८ फुट प्रति सेकंड की गति से आगे बढ़ रहा है और ब स्थान से बन्दूक ऐसी दागी गई कि गोली ब ग दिशा में चलती हुई डब्बे में ग स्थान से घुसती है। जिस समय गोली ग पर आयी डब्बा र ल स्थिति में था। यदि गाड़ी स्थिर होती तो गोली घ स्थान पर छेद करती हुई बाहर निकल जाती। परन्तु बात ऐसी नहीं होने पाती क्योंकि जिस समम गोली ग छेद से घुसकर घ की ओर जाती रहती है उस समय गाड़ी भी आगे बढ़ी जा रही है। इसलिए जिस समय

गोली पीछे की दीवाल तक पहुँचे उस समय डब्बा रा ला स्थिति में हो गया और घ की जगह गा विन्दु सामने आ गया। इसलिए गोली गा पर छेद करती हुई देख पड़ेगी। डब्बे में बैठे हुए मुसाफिर कहेंगे कि गोली ग गा दिशा से आयी, इसलिए बन्दूक चलाने वाला वा स्थान की सीध में रहा होगा।



चित्र ८८

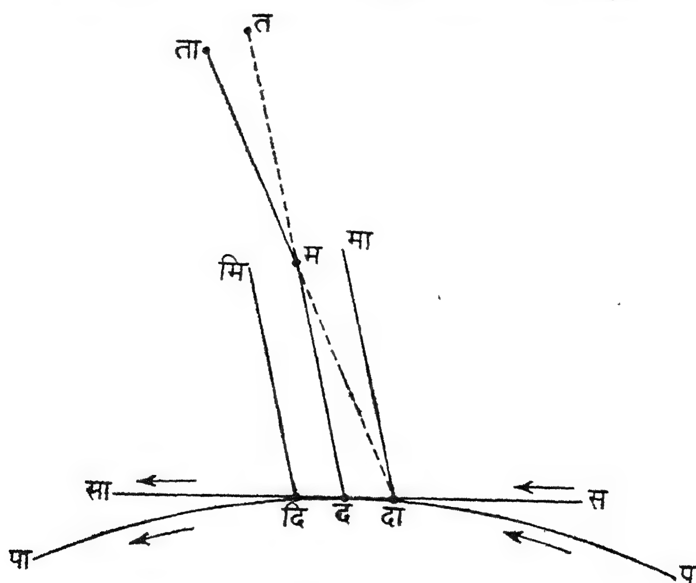
जिस समय पानी बरस रहा हो और बूँदें खड़ी गिर रही हों उस समय यदि मनुष्य छतरी ठीक ऊपर थाँमे खड़ा हो तो भीगने से बच जाता है परन्तु यदि वह छतरी ठीक उसी तरह थाँमे आगे बढ़े तो वह भीगने से बच नहीं सकता क्योंकि उसके चलने के कारण खड़ी गिरती हुई बूँदें भी उसके मुँह पर तिरछी आती हुई पड़ती हैं। मनुष्य की चाल जितनी ही अधिक होगी उतनी ही तिरछी बूँदें उस पर पड़ेंगी। यह भी इसी बात का उदाहरण है।

इसी प्रकार जब प्रकाश दूरदर्शक यन्त्र के भीतर प्रवेश करता है तब उसकी दिशा में परिवर्तन हो जाता है। कल्पना करो कि किसी तारे का यथार्थ स्थान त है और द्रष्टा की आँख द पर है। यदि द्रष्टा अचल हो और वर्तन (refraction) भी

हो तो तारा द त दिशा में सदैव देख पड़ेगा, चाहे तारे से प्रकाश द्रष्टा की आँख में उसी क्षण पहुँच जाय जिस क्षण तारे से चलता है या उसके आने में कुछ देर लगे।

परन्तु यदि यह मान लिया जाय कि द्रष्टा द दि दिशा में चल रहा है तो तारा उसको द त की दिशा में तभी देख पड़ेगा जब प्रकाश उसी क्षण द्रष्टा की आँख में पहुँचे जिस क्षण तारे से चलता है परन्तु यदि प्रकाश के त से द तक आने में कुछ समय लगता है तो तार द त दिशा में कदापि नहीं देख पड़ेगा।

मान लो कि द म उस नली का अक्ष (axis) है जिसके मा दा और मि दि समानान्तर भुज हैं। जिस समय प्रकाश नली में म से अक्ष म द की ओर उतर रहा है यदि उसी समय नली अपने ही समानान्तर द दि की ओर जा रही है और जितनी देर में प्रकाश म द दूरी चलता है उतनी देर में नली द दा दूरी के समान आगे बढ़ती है तो चित्र ८ की तरह यह प्रकट है कि प्रकाश द पर न पहुँच कर दा पर



चित्र ८६

पहुँचेगा। इससे यह जान पड़ेगा कि प्रकाश म दा दिशा से आ रहा है और तारा दा म की सीध में कहीं ता पर है। इस कारण यदि नली चलायमान हो और तारा त पर हो तो यह नली की अक्ष की दिशा में नहीं देख पड़ेगा वरन् दा म ता दिशा में देख पड़ेगा। अर्थात् तारे का स्पष्ट स्थान ता होगा जो यथार्थ स्थान से उसी दिशा की

ओर बढ़ा हुआ है जिस दशा में नली जा रही है । इस प्रकार इन दोनों गतियों के कारण तारे के यथार्थ और स्पष्ट स्थानों में त म ता कोण का अन्तर पड़ता है जिसे भूचलन संस्कार (Aberration) कहते हैं ।

यह जानना सहज है कि त म ता अथवा द म दा कोण का परिमाण क्या है क्योंकि म द दा त्रिभुज में

$$\frac{\text{द दा}}{\text{म दा}} = \frac{\text{ज्या द म दा}}{\text{ज्या म द दा}}$$

परन्तु द दा पृथ्वी उतने समय की चाल है जितने समय में प्रवाश म दा के समान चलता है इसलिए द दा और म दा की दूरियों में वही अनुपात है जो पृथ्वी और प्रकाश की गतियों में है । परन्तु पृथ्वी प्रति सेकेन्ड १८½ मील चलती है और प्रकाश १,८६,००० मील चलता है इसलिए

$$\frac{\text{ज्या द म दा}}{\text{ज्या म द दा}} = \frac{\text{द दा}}{\text{म दा}} = \frac{\text{पृथ्वी की गति}}{\text{प्रकाश की गति}} = \frac{१८.५}{१८६०००} \text{ के लगभग}$$

$$= \frac{१}{१००००} \text{ के लगभग}$$

यदि भूचलन संस्कार को भू माना जाय तो ज्या द म दा=ज्या भू=भू जब कि भू का मान रेडियन में हो । ऐसी दशा में

$$\text{भू} = \frac{१}{१००००} \times \text{ज्या म द दा}$$

यदि भू को विकलाओं में लिखा जाय तो

$$\frac{\text{भू}''}{२०६२६५} = \frac{१}{१००००} \text{ज्या म द दा} = \frac{१}{१००००} \text{ज्या त द ता}$$

अथवा $\text{भू}'' = २०''.६३$ ज्या त द सा

२०″.६३ को भूचलन संस्कार का स्थिराङ्क (coefficient of aberration) कहते हैं । इसका अधिक शुद्ध मान २०″.४७ है । यदि त द सा कोण ९०° के समान हो तो यह स्पष्ट है कि भूचलन संस्कार का महत्तम मान २०″.४७ होगा ।

यह स्पष्ट है कि भूचलन संस्कार के स्थिराङ्क में पृथ्वी की गति एक गुणक के रूप में वर्तमान है ।-परंतु पृथ्वी की गति सदा समान नहीं होती जिस समय पृथ्वी अपने नीच पर रहती है उस समय इसकी गति अत्यन्त तीव्र और जिस समय यह अपने उच्च पर रहती है उस समय इसकी गति अत्यन्त मंद रहती है । इसलिए पहली दशा में भूचलन संस्कार का स्थिराङ्क २०″.८० और दूसरी दशा में २०″.१३ होता है ।

भूचलन संस्कार के कारण सूर्य, तारों और दूर के ग्रहों के भोगांश, शर, विषुवांश और क्रान्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है इसकी व्याख्या विस्तार के भय से छोड़ दी जाती है। यहाँ इसकी चर्चा साधारण रीति से कर दी जाती है:—

जिस प्रकार वार्षिक लंबन के कारण तारा अपने यथार्थ स्थान के चारों ओर एक छोटी सी कक्षा में घूमता हुआ देख पड़ता है उसी प्रकार भूचलन संस्कार के कारण भी वह अपने यथार्थ स्थान के चारों ओर एक छोटी सी कक्षा में घूमता हुआ देख पड़ता है। यह कक्षा भी क्रान्तिवृत्त के तल के समानान्तर होती है। इसकी कक्षा का आकार भी उसी प्रकार बदलता है जिस प्रकार लंबन के कारण तारे की कक्षा का आकार बदलता है। जिस समय इसका आकार दीर्घवृत्त की तरह होता है उस समय इसका दीर्घ अक्ष २०″.४७ के समान होता है और लघु अक्ष २०″.४७ × ज्या श के समान होती हैं जब कि श तारे का शर या विक्षेप हो।

यह स्पष्ट ही है कि तारे का भूचलन संस्कार उसी दिशा मे होता है जिस दिशा में पृथ्वी की गति होती है परन्तु जिस दिशा में पृथ्वी की गति होती है उससे ९०° आगे सूर्य रहता है क्योंकि पृथ्वी की गति भूकक्षा की स्पर्शरेखा की दिशा में होती है जो भूकक्षा के अर्द्धव्यास से ९०° का कोण बनाता और सूर्य भूकक्षा के केन्द्र पर रहता है। इसलिए यह सिद्ध हो गया कि तारे का भूचलन संस्कार क्रान्ति-वृत्त के उस विन्दु की ओर होता है जो सूर्य से ९०° पीछे रहता है अर्थात् जिसका भोगांश सूर्य के भोगांश से ९०° कम होता है।

जो तारा क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव अर्थात् कदम्ब पर होता है वह वर्ष भर में अपने यथार्थ स्थान के चारों ओर एक वृत्त पर घूमता हुआ देख पड़ता है जिसके अर्द्धव्यास का कोणात्मक मान २०″·४९ होता है।

जो तारा क्रान्तिवृत्त पर होता है वह क्रान्तिवृत्त पर ही अपने यथार्थ स्थान से २०″·४९ आगे और पीछे लोलक की तरह आन्दोलन (Oscillation) करता हुआ देख पड़ता है। इसलिए वर्ष भर में कुल अंतर ४०″.९ के समान पड़ता है।

जो तारा किसी और स्थान में रहता है जिससे उसका शर मान लो श के समान होता है, वह वर्ष भर में एक दीर्घवृत्त पर घूमता हुआ देख पड़ता है जिसका केन्द्र तारे का यथार्थ स्थान होता है, जिसके दीर्घ अक्ष का आधा २०″·४९ और लघु अक्ष का आधा २०″·४९ ज्याश तथा जिसका तल क्रान्तिवृत्त के तल के समानान्तर होता है।

इस पर बहुत से पाठक पूछ बैठेंगे कि वार्षिक लंबन और भूचलन संस्कार में फिर अंतर क्या है। इसका उत्तर यह है कि वार्षिक लम्ब के कारण तारा जिस

कक्षा में घूमता हुआ देख पड़ता है उसका विस्तार तारे की दूरी पर अवलंबित है अर्थात् तारा जितना ही दूर होगा उसका लंबन उतना ही कम होगा जिसके कारण कक्षा का आकार भी छोटा होगा। सबसे निकट वाले तारे की जो कक्षा लंबन के कारण देख पड़ती है उसके दीर्घ अक्ष का आधा $0''\cdot७६$ से अधिक नहीं है। परन्तु भूचलन संस्कार के कारण तारे की जो कक्षा देख पड़ती है उसके दीर्घ अक्ष का आधा सदैव $२०''\cdot४७$ होता है और यह सब तारों के लिए समान होता है। दूसरी बात यह है कि यदि तारा उसी दिशा में हो जिस दिशा में सूर्य है अथवा सूर्य से ठीक १८०° पर हो तो लंबन का परिमाण शून्य होता है परन्तु भूचलन संस्कार का परिमाण महत्तम अर्थात् $२०''\cdot४७$ होता है। तीसरे यह कि लंबन के कारण तारा सूर्य की ही ओर कुछ हटा हुआ देख पड़ता है परन्तु भूचलन संस्कार के कारण तारा उस विन्दु की ओर हटा हुआ देख पड़ता है जो सूर्य से ९०° पीछे होता है।

ग्रहों पर भूचलन संस्कार का प्रभाव दो तरह से पड़ता है, एक तो पृथ्वी की गति के कारण; दूसरा ग्रह की गति के कारण। यदि ग्रह की गति पृथ्वी की गति के समान हुई और उसी दिशा में हुई तो भूचलन संस्कार का अभाव होगा। अन्य दशाओं में भूचलन संस्कार क्या होगा इसकी गणना अलग-अलग सहज ही की जा सकती है।

चन्द्रमा की गति प्रकाश की गति की तुलना में बहुत कम होती है इसलिए इसके कारण भूचलन संस्कार शून्य के समान समझा जा सकता है। पृथ्वी की गति के कारण भी चन्द्रमा में भूचलन संस्कार नहीं के समान होता है क्योंकि पृथ्वी के साथ-साथ चन्द्रमा भी वर्ष भर में सूर्य की परिक्रमा कर आता है। इसलिए चन्द्रमा में भूचलन संस्कार का प्रभाव शून्य के समान होता है।

दैनिक भूचलन संस्कार—पृथ्वी की दैनिक गति के कारण विषुवत् रेखा का कोई विन्दु दिन भर में २५,००० मील के लगभग चलता है क्योंकि विषुवत् रेखा पर पृथ्वी की परिधि २५,००० मील के लगभग लम्बी होती है। अन्य स्थानों की परिधि इससे छोटी होती है। इसलिए जब दिन भर में २५,००० मील की गति होती है तो एक सेकंड में $\frac{३}{१०}$ मील की गति सिद्ध हुई। परन्तु पृथ्वी की वार्षिक गति $१८\frac{१}{२}$ मील प्रति सेकंड होती है। इसलिए पृथ्वी की दैनिक गति उसकी वार्षिक गति की $\frac{३}{१०} \div \frac{३७}{२} = \frac{३}{१०} \times \frac{२}{३७} = \frac{६}{३७०} = \frac{१}{६२}$। इसलिए वार्षिक गति के कारण जितना भूचलन संस्कार होता है उसका बासठवाँ भाग दैनिक गति के कारण विषुवत् रेखा पर होगा। अन्य स्थान पर इससे भी कम होगा इसलिए यह भी नहीं के समान समझ लेने में अनुचित नहीं है।

भूचलन संस्कार आविष्कार—इसके आविष्कार की कथा बहुत ही रोचक है। परन्तु विस्तार के साथ लिखने की आवश्यकता नहीं है। ब्रैडली नामक

ज्योतिषी जिस समय अजगर नामक तारा पुंज के तीसरे तारे (γ Draconis) के वार्षिक लम्बन की जाँच कर रहा था उस समय उसको जान पड़ा कि इस तारे का शर स्थिर नहीं रहता वरन् वर्ष भर में क्रमानुसार कुछ बदलता रहता है जिसका कारण उस समय तक की जितनी जानी हुई बातें थीं उनसे समझ में नहीं आता था। अंत में वह इस सिद्धांत पर पहुँचा कि पृथ्वी की वार्षिक गति और प्रकाश की गति के कारण यह वार्षिक परिवर्तन सभी तारों में होता रहता है—ब्रैडली को इस घटना का अनुभव १७८६ विक्रमीय में हुआ था।

इस प्रकार काल-समीकरण, वर्तन, लंबन, भूचलन-संस्कार इत्यादि नवीन आविष्कारों की मीमांसा सहित त्रिप्रश्नाधिकार का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

इति